

श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम्

सामवेदीया

छान्दोग्योपनिषत्

मिताक्षरा हिन्दीव्याख्यासंवलितशाङ्करभाष्ययुता
(पारायण संस्करण)





'विद्यानन्दीमिताक्षरा' व्याख्याकार एवं निर्देशक

श्री कैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर

श्रीमत्स्वामी विद्यानन्दगिरि जी महाराज वेदान्त-सर्वदर्शनाचार्य

ॐ

बन्धो मोक्षश्च तृप्तिश्च, चिन्तारोग्य क्षुदादय:
स्वेनैव वेद्या यज्ज्ञानं, परेषां आनुमानिकम्॥ वि·चू.
दशभि: पुत्रै: सह गर्धभी भारं वहति॥

अन्ध सुदर्पण वेद पुराणा - दर्वी कहाँ महारस जाना॥
लोभ पास जेहि गर न बन्धाया, सो नर तुम्ह समान रघुराया-
नारि नयन सर जाहिं न लागा, महा मोह निशि तम सो जागा॥
मम दर्शन फल परम अनूपा, जीव पाव निज सहज स्वरूपा।
कामिन की दीनता दिखाई, धीरन के मन बिरति दृढाई॥
नहि असत्य सम पातक पुंजा, गिरि सम होई कि कोटिक गुंजा॥
नारि बिबस नर सकल गोसाई, नाचहि नट मर्कट की नाई॥.

सांख्य, योगी - परिणाम वाद.
नैय्यायिक, वैशेषिक = आरम्भवाद.
वेदान्ति = विवर्त वाद.

1) कर्मांङ्ग उपासना (eg) उद्‌गीथ, कर्म में समृद्धि.
2) संपद् or अभ्युदय फलक उपासना (eg) प्रतीक ऐश्वर्य प्राप्ति.
3) अहंग्रह उपासना or कैवल्य सन्निकृष्ट उपासना. सालोक्य, सामीप्य.
(eg) प्रणव; महावाक्य.
प्रतीक उपासनाओं में केवल प्रज्ञाप्तिविद्या गृहस्थों के लिये -
मूर्ति उपासना = @ अवैदिक एवं तान्त्रिक उपासना है.
वेदान्ती एवं सांख्य = सत्कार्यवाद eg तिलेषु तैलम्.
नैय्यायिक = असत्कार्यवाद.

1) कथा का वेगन.
आत्मा में अनात्मा का अध्यास = स्वरूपाध्यास एवं संसर्गाध्यास
अनात्मा में आत्मा का अध्यास = केवल संसर्गाध्यास.
कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा भानुमती कुनबा जोड़ा.
(s) = उत्स ऋषि के शिष्य वर्तन्तु ~~[illegible]~~ 14 विद्या पढ़े हो। 14000 असरफी
का दो। राजा जो भी दान देकर ऋषि का पात्र लेकर जंगल जाने वाले थे।
दक्षिणा चुकाने के लिये क्या करूँ। कहाँ याचना करूँ। (सोचते सोचते सोचा)
र कोष पर चढ़ाई के लिये रात सोचा। नारद कुबेर को बताया। कुबेर प्रात: सोने का
[illegible]

ॐ स्वामी मेधानन्द पुरी

ॐ

।। श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम् ।।

श्रीकैलासविद्यालोकस्य अष्टसप्ततितमः (७८वाँ) सोपानः

सामवेदीया

छान्दोग्योपनिषत्

मिताक्षरा हिन्दीव्याख्यासंवलितशाङ्करभाष्ययुता

(पारायण संस्करण)

विद्यानन्दीमिताक्षरा व्याख्याकार एवं निर्देशक

वेदान्त-सर्वदर्शनाचार्य यतीन्द्रकुलतिलक श्रीकैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर श्रीमत्स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज



सम्पादक :

स्वर्ण लाल तुली

बी० इ०, डी० डी० इ०

प्रकाशक :–
श्री कैलासविद्या प्रकाशन
कैलास आश्रम, कैलास गेट, ऋषिकेश-२४९२०१
द्वारा कैलास विद्यातीर्थ, आदिशंकराचार्य स्मारक,
६ भाई वीर सिंह मार्ग, नई दिल्ली-११०००१ दूरभाष : ३३४७४७५
Website : www.kailasashram.com

सौजन्य **:- स्वर्गीय कैप्टन श्री जगदीश लाल ढल जी की पुण्य स्मृति में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मल ढल एवं सुपुत्र सर्वश्री विपिन, राजीव, सुमित एवं गगन ढल, अशोक विहार, नई दिल्ली दूरभाष : ७४३६९६६ (निवास), ७१३२०१३ (आफिस)**

प्रथमावृत्ति : ३,००० - वि. सं. २०५९ - सन् २००२ ई.

मूल्य : ३०० रुपये

पुस्तक प्राप्ति स्थान:-

१. **कैलास विद्या केन्द्रीय समिति,** ६, भाई वीर सिंह मार्ग, नई दिल्ली-११०००१
२. **श्रीकैलास आश्रम, कैलास गेट,** मुनि की रेती, ऋषिकेश–२४९२०१,
दूरभाष- ०१३५-४३०५९८, ४३५४९६
३. **ब्रह्मानन्द आश्रम,** मुनि की रेती, ऋषिकेश–२४९२०१, दूरभाष- ०१३५-४४२२९८
४. **श्री दशनाम संन्यास आश्रम,** भूपतवाला, हरिद्वार–२४९४०१, दूरभाष- ०१३३-४६१७०६
५. **श्री कैलास आश्रम,** उजेली, उत्तरकाशी-२४९१९३, दूरभाष- ०१३७४-२२३६१
६. **श्री कैलासधाम,** नई झूंसी (प्रयागराज)-२२१५०६, दूरभाष- ०५३२-६६८७१८
७. **श्री शंकर ब्रह्मविद्याकुटीर,** ८३-ए, द्वारका पुरी, मुजफ्फर नगर-२५१००१
८. **चैतन्य सत्संग भवन,** १३/३६१ गोविन्द नगर, कानपुर-६
९. **श्री राम आश्रम,** समानामण्डी, पटियाला-१४७१०१, दूरभाष- ०१७६४-२०४५०
१०. **श्री कैलासविद्यातीर्थ (आदिशंकराचार्य स्मारक)**
६, भाई वीर सिंह मार्ग, नई दिल्ली-११०००१ दूरभाष- ०११-३३४७४७५
११. **श्री कैलास आश्रम,** मॉडल टाऊन, रोहतक-१२४००१ दूरभाष- ०१२६२-४००३०
१२. **श्री कैलास विद्यातीर्थ,** गिरियक रोड, राजगीर (नालन्दा)-८०३११६, दूर.- ०६११२-५५२८३
१३. **श्री कैलास विद्याधाम,** रूप नगर, जम्मू तवी-१८०००१, दूरभाष- ०१९१-५९५१४०
१४. **नर्मदा सत्संग आश्रम,** भिलाड़िया घाट, होशंगाबाद (म.प्र.)
१५. **श्री माधवानन्द आश्रम,** महोमदाबाद, जिला- खेड़ा (गुजराज), दूरभाष- ०२६९४-४४८६८

ॐ

श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम्

सम्पादकीय

दिशन्तु शं मे गुरुपादपांसवः

सामवेदीय छान्दोग्योपनिषत् में आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में क्रमशः १३, २४, १९, १७, २४, १६, २६ एवं १५ खण्ड हैं जिनमें आये हुए मन्त्रों की कुल संख्या ६२८ है। श्रुति प्रस्थान के अन्तर्गत इस उपनिषद् पर भगवान् आदि शंकराचार्य भगवत्पाद का प्रसन्न एवं गम्भीर भाष्य है। प्रस्तुत ग्रन्थ में मूल मन्त्रों तथा शांकरभाष्य के अतिरिक्त श्री कैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर अनन्त श्री स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज द्वारा विरचित विद्यानन्दी मिताक्षरा हिन्दी व्याख्या भी उपनिषद् मन्त्रों के साथ दी गई है जिसमें मन्त्र के प्रत्येक पद का अन्वय क्रम से अर्थ दिया गया है जो शाङ्करभाष्य सम्मत है। मन्त्रार्थ स्पष्ट करने के लिए आवश्यक शब्द राशि कोष्ठक में दे दी गई है जिससे पाठकों को सुगमता से मन्त्रार्थ का बोध हो जावे। मन्त्र के तात्पर्य समझाने के लिए शीर्षक भी दिया गया है।

छान्दोग्योपनिषत् के अन्तर्गत विषयों का बिहंगदृष्ट्या विवेचन महाराज श्री ने पाठकोपयोगी प्रस्तावना में अपनी अद्वितीय शैली द्वारा सर्वसुबोध्य रूप में कर दिया है। प्रस्तावना को देखते रहने से पारायण में अधिक आनन्द मिलता रहेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रतिदिन एक घण्टा भाष्य पारायण क्रमानुसार छान्दोग्योपनिषत् सोलह आह्निकों (दो-दो अध्याय के चार आह्निक चतुष्कों) में विभक्त है जिसका अवलोकन 'आह्निक प्रदीपिका' में पाठक कर सकते हैं। विषय सूची में दिये गये विषयों का विभाजन प्रत्येक खण्ड के आधार पर किया गया है। अतः १५४ खण्डों के १५४ विषय, इस सूची में उपलब्ध हैं। प्रत्येक खण्ड में आये मन्त्रों की संख्या भी यथा स्थान विषय सूची में देख सकते हैं।

प्रस्थानत्रयी शांकरभाष्य का इस धरा पर प्रादुर्भाव १ जुलाई १९९८ (आषाढ़ शु. सप्तमी वि.सं. २०५५) को हुआ था। इसका आवाहन श्री कैलासपीठाधीश्वर जी महाराज ने 'देवानुग्रह त्रिदशक महोत्सव' के शुभारम्भ पर किया था। उस समय महाराज श्री को कैलास ब्रह्मविद्यापीठ पर विराजे २९ वर्ष पूर्ण होकर तीसवां वर्ष लगा था। महाराज श्री ने वर्ष पर्यन्त एक घण्टा प्रतिदिन शांकरभाष्य पारायण का व्रत लिया था। वर्ष पर्यन्त भाष्यपारायण में हुए अनुभवों के आधार पर महाराज श्री ने आजीवन इस व्रत को धारण कर लिया और दूसरों को भी इसे अपनाने की सच्ची प्रेरणा देने लगे। महाराज श्री का उद्घोष है कि नियमतः श्रद्धापूर्वक कम से कम एक घण्टा प्रतिदिन शाङ्करभाष्य पारायण से धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों पुरुषार्थों की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। यह रामबाण के समान अचूक साधन है। महाराज श्री की प्रेरणा से हजारों सन्त एवं भक्त इस साधन को आजीवन अपनाने का व्रत ले चुके हैं और इसके फलस्वरूप विलक्षण आनन्द एवं शान्ति का अनुभव कर रहे हैं। इससे लाभान्वित भक्तों के नित्य नये अनुभव भी सुनने को मिलते हैं। अतएव धर्मावलम्बी सभी जनों को शाङ्करभाष्य पारायण को शीघ्रातिशीघ्र अपनाना चाहिये। विशेषकर श्रीमद्भगवद्गीता शाङ्करभाष्य पारायण सभी नर-नारी निःसंकोच अपना सकते हैं क्योंकि इस शास्त्र में मानव

मात्र का अधिकार है। अतएव हम सभी भक्तों को श्रीमद्भगवद्गीता शाङ्करभाष्य का अवलम्बन लेने एवं इससे होने वाले आत्म कल्याण के भागी बनने की अपील करते हैं।

वेदान्त साधना क्रम में प्राचीनतम पद्धति के अनुसार स्वाध्याय के अतिरिक्त शांकरभाष्य पारायण एवं अष्टादशाह प्रवचन तो कई वर्षों से महाराजश्री चला ही रहे हैं। इसके अतिरिक्त एक अन्य नूतन क्रम भी उपयुक्त समझकर महाराजश्री ने निश्चित किया है, वह है- एक दिवसीय औपनिषद ज्ञानयज्ञ, द्विदिवसीय औपनिषद ज्ञानयज्ञ, त्रिदिवसीय औपनिषद ज्ञानयज्ञ, चतुर्दिवसीय औपनिषद ज्ञानयज्ञ, पंचदिवसीय औपनिषद ज्ञानयज्ञ, षट्दिवसीय औपनिषद ज्ञानयज्ञ एवं सप्तदिवसीय औपनिषद ज्ञानयज्ञ। इस प्रकार का ज्ञानयज्ञ भी वेदान्त प्रचार के लिए उपयुक्त होगा, जिसका क्रम निम्नांकित होगा-

१. ईशावास्योपनिषद् भाष्य पारायण तथा प्रातः-सायं दो-दो घण्टे प्रवचन।

२. ऐतरेयोपनिषद् भाष्य पारायण एवं पूर्वोक्त क्रम से दो दिनों में प्रवचन।

३. केनोपनिषद् भाष्य पारायण एवं उक्त क्रम से तीन दिनों में प्रवचन।

४. कठोपनिषद् भाष्य पारायण एवं चार दिनों में उक्त क्रम से प्रवचन।

५. तैत्तिरीयोपनिषद् भाष्य पारायण एवं उक्त क्रम से पाँच दिनों में प्रवचन।

६. प्रश्नोपनिषद् तथा मुण्डकोपनिषद् भाष्य पारायण तथा पूर्वोक्त रीति से छः दिनों में प्रवचन।

७. सकारिका माण्डूक्योपनिषद् भाष्य पारायण तथा सात दिनों तक प्रातः-सायं दो-दो घण्टे का प्रवचन।

प्रस्तुत छान्दोग्योपनिषत् (पारायण संस्करण) के प्रकाशन के साथ ही कैलास विद्या प्रकाशन द्वारा दसों उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता एवं ब्रह्मसूत्र के पारायण संस्करणों के प्रकाशन का लक्ष्य पूर्ण होता है। पारायणोपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन एवं पारायणानुरक्त भक्तों को उनका निःशुल्क वितरण, महाराज श्री के मन में लोककल्याण के प्रति गहरी आस्था एवं संवेदना का प्रतीक है।

छान्दोग्योपनिषत् (पारायण संस्करण) का प्रकाशन महाराजश्री की प्रेरणा से स्वर्गीय कैप्टन जगदीश लाल ढल की पुण्य स्मृति में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मल ढल एवं सुपुत्रों सर्वश्री विपिन, राजीव, सुमित और गगन ढल ने करवाया है। हम उनकी महाराजश्री के प्रति अनन्य भक्ति एवं उनके आदेश के प्रति अटूट श्रद्धा के लिए उनको भूरिशः धन्यवाद देते हैं।

ग्रन्थ के शोधपत्रों को पढ़ने और शुद्ध करने में कैलासाश्रम के आदरणीय आचार्य स्वामी भास्कर संविद्गिरि जी ने सहयोग दिया है उनके हम आभारी हैं। नाथ प्रिन्टर्स के श्री प्रवेश शर्मा एवं गिरीश शर्मा जी तथा कम्पोजकर्ता श्री अनिल जी भी विशेष धन्यवाद के योग्य हैं।

हरि ॐ सत्सत्।

२०५९ नवसंवत्सरारम्भे
१३ अप्रैल २००२

गुरुपादानुरागी
स्वर्णलाल तुली
विद्यासदन, ४५, गुजराँवाला टाऊन, भाग-२
दिल्ली-११०००९

ॐ

छान्दोग्योपनिषत्

(हिन्दीमिताक्षराव्याख्यासंवलितशाङ्करभाष्ययुता)

आह्निक प्रदीपिका

आह्निक क्रमाङ्क	अध्याय	खण्ड (तक)	पृष्ठ सं.	कुल पृष्ठ
		प्रथम आह्निक चतुष्क		
१	१	५	१ - २५	२५
२	१	१३	२६ - ५२	२७
३	२	१८	५३ - ७७	२५
४	२	२४	७८ - ९५	१८
				योग - ९५
		द्वितीय आह्निक चतुष्क		
५	३	१३	९६ - १२२	२७
६	३	१९	१२३ - १४३	२१
७	४	९	१४४ - १६५	२२
८	४	१७	१६६ - १८४	१९
				योग - ८९
		तृतीय आह्निक चतुष्क		
९	५	९	१८५ - २०९	२५
१०	५	२४	२१० - २३९	३०
११	६	७	२४० - २६३	२४
१२	६	१६	२६४ - २८९	२६
				योग - १०५
		चतुर्थ आह्निक चतुष्क		
१३	७	१५	१९० - ३१७	२८
१४	८	३	३१८ - ३४२	२५
१५	८	८	३४३ - ३६१	१९
१६	८	१५	३६२ - ३८२	२१
				योग - ९३

कुल पृष्ठ सं॰ ३८२

ॐ

छान्दोग्योपनिषत्

(हिन्दीमिताक्षराव्याख्यासंवलितशाङ्करभाष्ययुता)

विषय सूची

द्वितीय अध्याय

पञ्चमाध्याय

षष्ठाध्यायः

सप्तमाध्यायः

ॐ

प्रस्तावना

दिशन्तु शम्मे गुरुपादपांसवः

अनादि अपौरुषेय वेद का प्रामाण्य आस्तिक समाज में सर्वमान्य है। इसकी प्राचीनता को आधुनिक विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व की रचना का अन्दाज पाश्चात्य विद्वानों ने लगाया है; साथ ही यह भी कहा है कि विश्व के पुस्तकालय में सर्वप्रथम वेद ही आया है। यद्यपि इनके सभी विचारों से हम सहमत नहीं हैं, फिर भी इन्होंने सर्वाधिक प्राचीनता वेद की मानी है, एतदर्थ ये धन्यवाद के पात्र हैं। सायणाचार्य ने वेद के विषय में कहा है कि-

> ''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
> एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता।।''

'वेदों की वेदता इसी बात में है कि जो उपाय प्रत्यक्ष या अनुमान प्रमाण से नहीं जाना जा सकता, उसे लोग वेद से जान लेते हैं।'

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं, जिनके स्वरूप, साधन तथा अधिकारी आदि की सम्यक् प्रकार से चिन्ता वेदों में की गयी है। इन चारों में मोक्ष परम पुरुषार्थ है क्योंकि वह नित्य और निरतिशय है। मोक्ष का साधन ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान है और ब्रह्मात्मैक्यज्ञान वेद के शिरोभाग उपनिषदों के विचार से होता है। वेद में कर्म, उपासना तथा ज्ञान ये तीन काण्ड हैं। कर्म और उपासना से शुद्ध एवं शान्त अन्तःकरण वाले पुरुष के मन में लोक परलोक के समस्त भोगों से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है तभी वह नित्य शाश्वत परमात्म स्वरूप मोक्ष की अभिलाषा करता है। इसीलिए कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड उपनिषत् का हेतुहेतुमद्भाव सम्बन्ध माना गया है।

''वेदानां सामवेदोऽस्मि'' इस भगवद्गीता वाक्यानुसार सामवेद परमेश्वर की दिव्य विभूतियों में माना गया है। ''सहस्रवर्त्मा सामवेदः'' इस उक्ति के अनुसार किसी समय सामवेद की सहस्र शाखायें थीं, जिनमें कौथुम, जैमिनि, तलवकार तथा राणायण ये चार शाखायें आज भी उपलब्ध हैं। सायणाचार्य जी षड्विंश ब्राह्मण के भाष्य में लिखते हैं कि सामवेद के १- प्रौढ़ब्राह्मण (पंचविंश), २- षड्विंश ब्राह्मण, ३- सामविधान, ४- आर्षेय ब्राह्मण, ५- देवताध्याय ब्राह्मण, ६- उपनिषद् ब्राह्मण, ७- संहितोपनिषद् और ८- वंश ब्राह्मण माने जाते हैं अर्थात् सामवेद के सभी आठ ब्राह्मण हैं। यहाँ पर उपनिषद् ब्राह्मण का दूसरा नाम छान्दोग्य ब्राह्मण है। किन्तु कुमारिलभट्ट आदि ने जहाँ भी प्रमाण दिया है, उससे यह निश्चित होता है कि सामवेद के सभी ब्राह्मण छान्दोग्य नाम से प्रसिद्ध थे। अस्तु। सामवेद की उपलब्ध उपर्युक्त चार शाखाओं

में से तीसरी तलवकार शाखा का ब्राह्मण छान्दोग्य नामक है। जिसके सभी दश अध्याय हैं। उनमें से प्रारम्भ के दो अध्यायों को छोड़कर शेष आठ अध्यायों को छान्दोग्योपनिषद् कहते हैं। अतः तलवकार शाखीय छान्दोग्य ब्राह्मण के अन्तर्गत छान्दोग्योपनिषद् मानी जाती है। जिस पर आद्य शंकराचार्य भगवत्पादने प्रसन्न एवं गम्भीर भाष्य लिखा है। यद्यपि ब्रह्मसूत्र में छान्दोग्योपनिषद् की श्रुतियों का आलम्बन कर सर्वाधिक अधिकरणों की रचना भगवान् वेदव्यास ने की है जिनका अतिगम्भीर चिन्तन शांकरभाष्य में किया गया है; किन्तु छान्दोग्योपनिषत् के क्रमबद्ध विषयों का चिन्तन ब्रह्मसूत्र में नहीं हो सका। इसलिए छान्दोग्योपनिषत् पर पाठक्रमानुसार भाष्य लिखना आवश्यक समझकर भगवान् शंकराचार्य जी ने भाष्य की रचना की है।

यद्यपि द्राविड भाष्य में पाठक्रमानुसार छान्दोग्योपनिषत् का विस्तृत चिन्तन इससे पूर्व हो चुका था फिर भी संक्षेप में पाठक्रमानुसार भाष्य लिखना आवश्यक माना जाता है। इन दोनों बातों का वर्णन छान्दोग्योपनिषत् के सम्बन्ध भाष्य में आचार्य शंकर ने ''ऋजुविवरणमल्प-ग्रन्थमिदमारभ्यते'' इस वाक्य द्वारा किया है। छान्दोग्योपनिषत् के प्रारम्भिक पाँच अध्यायों में उपासना का विस्तार से विधान है और कहीं-कहीं कर्मों का भी विधान देखा जाता है- यथा लोकद्वार सामका पाठ और ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के उच्चारण में भूल होने पर ''भूः स्वाहा'' इत्यादि मन्त्रों से प्रायश्चित्य होम का विधान है। शेष अन्तिम तीन अध्यायों में केवल दहरविद्या को छोड़कर सर्वत्र निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है।

आदर-सत्कारपूर्वक निरन्तर दीर्घकाल तक चिन्तन को उपासना कहते हैं। कर्माङ्ग अवबद्धोपासना, प्रतीकोपासना तथा अहंग्रहोपासना भेद से तीन प्रकार की उपासनाएं कही गयी हैं। भाष्यकारीय वचन के अनुसार कर्म समृद्धि के लिए कर्माङ्ग अवबद्ध उपासना, कैवल्यसंनिकृष्ट फलक उपासना और अभ्युदय साधनरूप उपासना, ऐसी तीन उपासनाएं मानी गयी हैं। इनमें प्रथम उद्गीथावयव प्रणव में परमात्मदृष्टि का विधान किया गया है। उद्गीथ एक कर्म और उद्गीथ नामक उपासना भी है। यह उपासना कर्मफल समृद्धि के लिए है। यजमान को प्राप्त होने वाले कर्मफल में ऋत्विजों द्वारा की गयी उद्गीथ उपासना कुछ अतिशय उत्पन्न करती है। अतएव यजमान से भी यह उपासना करायी जाती है। उपासना के अभाव में भी उद्गीथ कर्म का अनुष्ठान अंग विगुण नहीं है, अपितु सफल है। इसे ''यदेव विद्या करोति'' इस श्रुति में कहा गया है। उपकोसलविद्या शाण्डिल्यविद्या इत्यादि अहंग्रह उपासनाएं हैं। इनमें उपास्य ब्रह्म को अहंभाव से ग्रहणकर चिन्तन किया जाता है। ''आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत'', ''लोकेषु पञ्चविधं सामोपासीत'', तथा पञ्चाग्निविद्या ये सब प्रतीक उपासनाएं हैं। इनमें पञ्चाग्निविद्या का फल देवयान से ब्रह्मलोक की प्राप्ति बतलाया गया है। शेष प्रतीकोपासनाओं का फल अभ्युदय ही है, मोक्ष नहीं। इस प्रकार कर्म में अतिशय आधान करने वाली कर्माङ्गावबद्ध उद्गीथादि उपासना,

अभ्युदय फलक प्रतीकोपासना तथा कैवल्य सन्निकृष्ट फलप्रद अहंग्रहोपासना का विस्तृत वर्णन इस छान्दोग्योपनिषद् में किया गया है। जिसका संक्षिप्त विचार इस प्रस्तावना में भी किया जाता है और इसकी विस्तार मूलग्रन्थ के अध्ययन काल में ही स्वयं पाठक देख सकेंगे।

प्रथमाध्याय

प्रथमखण्ड:- प्रथमाध्याय में तेरह खण्ड हैं, जिनमें प्रथमखण्ड के अन्तर्गत उद्गीथावयव प्रणव को सर्वलोक वेदसारत्व, सर्वकामावाप्ति गुणवत्त्व तथा समृद्धिगुण ऐसे तीन गुणों से विशिष्ट कहा गया है। इस प्रणव में परमात्मदृष्टि से उपासक को उपास्य के अनुरूप फल की प्राप्ति होती है। यों तो सभी वेदों में प्रणव आया है, किन्तु ''व्याप्तेश्च समञ्जसम् (ब्र० ३।३।९)'' इस सूत्र में भगवान् वेदव्यास ने सामभक्ति उद्गीथ के अवयव प्रणव को ही परमात्मदृष्टि से उपासना करने के लिए कहा है।

द्वितीयखण्ड:- इसमें देवासुर संग्राम कथा व्याज से चक्षुरादि इन्द्रियों की अपेक्षा प्राण में श्रेष्ठत्व बतलाया गया है। ऐसे श्रेठ प्राणरूप से उद्गीथावयव प्रणव की उपासना का विधान किया गया है।

अशास्त्रीय स्वाभाविक वृत्ति से प्राण का पराभव कभी भी नहीं होता। इसलिए यही उपास्य है। प्राण शरीर के अङ्गों में रसरूप से रहता है। अत: वह अङ्गिरा ऋषि है, वाणी का पति और आस्य से निकलने के कारण अयास्यरूप है। ऐसे प्राण के तीनों गुण उपासना के लिए कहे गए हैं।

तृतीयखण्ड:- उद्गीथ अवयव प्रणव की उपासना आदित्यदृष्टि से इस तीसरे खण्ड में बतलायी गयी है। जैसे आदित्य, तम और तज्जनित भय को दूर कर डालता है, वैसे ही आदित्यदृष्टि से प्रणव की उपासना करने पर अज्ञान एवं तज्जन्य भय का नाश हो जाता है। अधिदैव तथा अध्यात्मदृष्टि से इस उद्गीथ की उपासना कहे जाने पर भी भेद नहीं माना गया।

चतुर्थखण्ड:- अमृत अभय गुणविशिष्ट ब्रह्म है। इस ब्रह्मदृष्टि से कर्मनिरपेक्ष प्रणव की उपासना करने पर उपासक को आपेक्षिक अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

पञ्चमखण्ड:- ऋग्वेदादि में आये हुए प्रणव में आदित्यदृष्टि की निन्दा की गयी है; साथ ही भेद विशिष्ट आदित्यरश्मिदृष्टि का विधान किया गया है। वैसे ही भेद गुण वाले प्राणदृष्टि से उद्गीथ अवयव प्रणव की अध्यात्मोपासना भी कही गयी है। उद्गीथ और प्रणव में अभेद दर्शन से होतृप्रयुक्त शस्त्र से अपने कर्म में उत्पन्न अनिष्ट का परिहार उद्गाता कर लेता है।

षष्ठखण्ड:- इसमें उद्गीथ संबन्धी आधिदैविक उपासनाएं कही गयी हैं। उपास्य को ''कप्यासं पुण्डरीकम्'' उपमा देकर कहा गया है। आदित्यान्तर्गत पुरुष के लिए यह हीन उपमा उचित नहीं ऐसा वैष्णवाचार्यों ने कहा है। वस्तुतः आदित्यान्तर्गत पुरुषनेत्र के लिए 'पुण्डरीकम्' उपमा है और उस 'पुण्डरीकम्' का विशेषण 'कप्यासम्' है। अतः हीन आत्मा की आशंका अविचारित रमणीय हैं।

सप्तमखण्ड:- इसमें उद्गीथ अवयव प्रणव की अध्यात्मोपासना बतलायी गयी है। अध्यात्म एवं अधिदैव पुरुष की एकता का चिन्तन कहा गया है और उसका फल बतलाया गया है कि वह उपासक अपने या यजमान के लिए जिस किसी इष्ट कामना का उद्गान करेगा तो वह फल उसे प्राप्त हो ही जाएगा।

अष्टम तथा नवमखण्ड:- अनेकों दृष्टान्तों से उद्गीथ उपासना का उत्कर्ष बतलाया गया है। शिलक, चैकितायन और प्रवाहण की कथा से उद्गीथ उपासना का उत्कर्ष सिद्ध होता है। आकाश सबका आश्रय है। क्योंकि सभी भूत आकाश से उत्पन्न होते हैं, आकाश में स्थित रहते हैं और आकाश में लीन होते हैं। इस प्रकार ब्रह्मलिङ्ग को देखते हुए आकाश का अर्थ ब्रह्म ही मानना चाहिए। इस उपासना का फल है विशिष्ट जीवन अपना तथा पुत्र-पौत्रादि का इस लोक एवं परलोक को प्राप्त करना।

दशम तथा एकादशखण्ड:- उषस्ति चाक्रायण के द्वारा जूठी उड़द को खाना तथा जूठे पानी का त्याग कर देना आपद्धर्म का सूचक है। प्राण एक ऐसा पदार्थ है जिसकी रक्षा के लिए आपतकाल में अभक्ष्य भक्षण भी किया जा सकता है। साम की प्रस्ताव भक्ति में जिस प्राण का चिन्तन बतलाया गया है, वह जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय के कारण होने से परमात्मा ही है। इस प्रकार ध्यान करते हुए सामगान से कर्मफल में अतिशय आता है। साम भक्ति में परमात्मा उपास्य है, उद्गीथ भक्ति में आदित्य उपास्य है और प्रतिहार भक्ति में अन्नदेवता उपास्य है ऐसा बतलाया गया है।

द्वादशखण्ड:- श्वानों के द्वारा देखे गये सामों को शौव साम कहते हैं। इस शौव साम के गान से अन्न की प्राप्ति होती है।

त्रयोदशखण्ड:- गीतिकाल पूर्ण करने के लिए सामगान में ''हाउ'' इत्यादि जिन निरर्थक अक्षरों का उपयोग हेता है; उन्हें स्तोभाक्षर कहते हैं। इस खण्ड में स्तोभाक्षर विषयक उपासनाएं बतलायी गयी हैं, जिनका फल अन्नवान् तथा अन्नादि होना माना गया है। इस प्रकार संक्षेपरूप में प्रथमाध्याय के विषयों का उल्लेख किया गया।

द्वितीयाध्याय

साम के एकदेश के साथ सम्बद्ध सामावयव विषयक उपासना बतलाने के बाद समस्त साम विषयक उपासना द्वितीय अध्याय में बतलायी जाती है। हिङ्कार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार तथा निधन ये पाँचों भक्तियाँ पाञ्चभक्तिक साम के अवयव हैं। वैसे ही आदि और उपद्रव को मिलाकर साप्तभक्तिक साम के सात अवयव माने जाते हैं। ऐसे सर्वावयव विशिष्ट साम की उपासना का विधान इस द्वितीय अध्याय में किया गया है। इसमें चौबीस खण्ड हैं।

प्रथमखण्ड में सर्वावयव विशिष्ट साम की उपासना साधुदृष्टि से करने के लिए कहा गया है। इस समस्त साम की उपासना से उपासक को सभी शास्त्र सम्मत धर्म अतिशीघ्र प्राप्त होते हैं और विनम्रभाव भी आजाते हैं। द्वितीयखण्ड से लेकर सप्तमखण्ड तक फल सहित क्रमश: लोकदृष्टि से, वृष्टि दृष्टि से, जल, ऋतु, पशु और प्राणदृष्टि से पाञ्चभक्तिक सामकी उपासना कही गयी है। अष्टम से दशमखण्ड तक क्रमश: वाणी तथा आदित्यदृष्टि से साप्तभक्तिक साम की उपासना विधान के बाद मृत्यु से अतीत सप्तविध सामोपासना कही गयी है। एकादश से बीसवें खण्ड तक क्रमश: गायत्रसाम, रथन्तर, वामदेव्य, बृहत्, वैरूप्य, वैराज, शक्वरी, रेवती यज्ञायज्ञीय तथा राजन साम की उपासना फल सहित विविध प्रकार से बतलायी गयी है।

इक्कीसवें खण्ड में सर्वव्यापक साम की पञ्चविध उपासना से सर्वरूपता, सर्वज्ञता एवं सर्वैश्वर्य की प्राप्ति कही गयी है।

बाईसवें खण्ड में विनर्दि गुण युक्त साम की उपासना, स्तवन के समय में ध्यान विधि, स्वरादि वर्णों की देवरूपता तथा वर्णों के उच्चारण काल में चिन्तनीय वस्तु का वर्णन है।

तेईसवें खण्ड में धर्म के तीन स्कन्धों का वर्णन करते हुए ''ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति'' वाक्य द्वारा संन्यासी को ब्रह्ममें सम्यक् प्रकार से स्थित हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति कही गयी है। तीनों लोकों के सार तीनों देव हैं, उनका सार व्याहृति-त्रय और भूरादि व्याहृतियों के सार रूप से ओङ्कार का प्रादुर्भाव कहा गया है। पत्ते की नसों की भाँति ओङ्कार से सम्पूर्ण वाणी को व्याप्त कहा है। अत: ओङ्कार ही सब कुछ है।

चौबीसवें खण्ड में प्रात: सवन के देवता वसु, मध्याह्न सवन के रुद्र और सायं सवन के अधिष्ठातृदेव आदित्य तथा विश्वेदेव आदि को जानने वाला ही यज्ञानुष्ठान का अधिकारी कहा गया है। प्रात:काल में पढ़ने योग्य शस्त्र नामक स्तोत्र के पाठ से पूर्व वह यजमान गार्हपत्याग्नि के पीछे उत्तराभिमुख बैठकर वसुदेवता सम्बन्धी साम का गान राज्यप्राप्ति के लिये करता है, जिससे वसुगण उस यजमान को प्रात: सवन प्रदान करा देते हैं। मध्याह्न सवन को प्रारम्भ करने

से पूर्व यजमान दक्षिणाग्नि के पृष्ठभाग में उत्तराभिमुख बैठकर वैराज्यपद प्राप्ति के लिए रुद्रदेवता सम्बन्धी साम को गाता है जिसके फलस्वरूप रुद्रगण उस यजमान को मध्याह्न सवन प्रदान करते हैं। वैसे ही तृतीय सवन को प्रारम्भ करने से पूर्व यजमान आहवनीय अग्नि के पीछे उत्तराभिमुख बैठकर स्वाराज्य और सामराज्य प्राप्ति के लिए क्रमशः आदित्य और विश्वेदेवा सम्बन्धी साम का गान करता है। जिसके फलस्वरूप आदित्य एवं विश्वेदेवा उस यजमान को तृतीय सवन प्रदान करते हैं। सामगान के अनन्तर उक्त देवताओं के नाम से यजमान हवन भी करता है इस प्रकार इस अध्याय का संक्षिप्त वर्णन समाप्त हो जाता है।

तृतीयाध्याय

इसमें उन्नीस खण्ड हैं। कर्माङ्ग उपासना बतलाकर कर्मफल रूप आदित्य की अब स्वतन्त्र उपासना इस अध्याय में बतलाते हैं। आदित्य सभी प्राणियों के कर्मफल रूप प्रत्यक्ष देवता है और सभी का उपजीव्य है। अतः यज्ञ उपदेश के अनन्तर उसके कार्यरूप आदित्य विषयक उपासना श्रेष्ठतम फलप्रद है। इसीलिए श्रुति आदित्य को देवमधु रूप से उपासना करने को कहती है। देवताओं को प्रसन्न करने वाले होने से आदित्य देवताओं का मधु है, द्युलोक ही उसका तिरछा बाँस है, यह अन्तरिक्ष मधु का छत्ता है और आदित्य किरणें उसके बच्चे हैं। ऐसा बतलाने के बाद आदित्य की पूर्वदिशा सम्बन्धी किरणों में मधु नाड्यादि दृष्टि प्रथमखण्ड में बतलायी गयी है।

द्वितीयखण्ड से पञ्चमखण्ड तक क्रमश दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा ऊर्ध्वदिक् सम्बन्धी आदित्य किरणों में मधु नाड्यादि दृष्टि बतलायी गयी है।

षष्ठखण्ड से दशमखण्ड तक क्रमशः वसुओं के जीवन आश्रयभूत प्रथम अमृत की उपासना, रुद्रों के जीवन आश्रयभूत द्वितीय अमृत की उपासना, आदित्यों के जीवन आश्रयभूत तृतीय अमृत की उपासना मरुद्गणों के जीवन आश्रयभूत चतुर्थ अमृत की उपासना और साध्यों के जीवन आश्रयभूत पञ्चम अमृत की उपासना बतलायी गयी है। इस प्रकार उदय और अस्त द्वारा प्राणियों के स्वकर्म फल भोग में अनुग्रह कर भोगक्षय के अनन्तर वह ऊर्ध्वगत हो उदय एवं अस्तभाव से रहित ब्राह्मीभाव को उपासक प्राप्त कर लेता है। ऐसा एकादशखण्ड में बतलाने के बाद मधु विद्या का फल और हिरण्यगर्भ से लेकर उद्दालक पर्यन्त इस मधुविद्या की वंश परम्परा का वर्णन किया गया है। ज्येष्ठ पुत्र अथवा सुयोग्य शिष्य को ही इस विद्या का अधिकारी समझकर उपदेश करने को कहा है और साथ ही यह भी कहा है कि मधुविद्या के ऋण से उऋण होने के लिए शिष्य के पास कोई धन नहीं है जिसे आचार्य को देकर वह शिष्य विद्या के ऋण से मुक्त हो सके।

द्वादशखण्ड में प्रतीकोपासना बतलाते समय गायत्री द्वारा ब्रह्मोपासना कही गयी है। ''गायत्री वा इदं सर्वम्'' इस प्रकार वर्ण समुदाय गायत्री में सर्वात्मत्व सम्भव नहीं है। अतः गायत्री छन्द वाले ऋचा में उपास्यरूप से अनुगत ब्रह्म को ''सोऽहम्'' इस प्रकार अभेदभाव से उपासना के लिए कहा है। कार्य और शुद्ध ब्रह्म का स्वरूप बतलाया गया है। गायत्री द्वारा कहा गया त्रिपाद अमृत स्वरूप ब्रह्म यही है, जो यह पुरुष से बाहर प्रसिद्ध आकाश है। जो उपासक इस प्रकार पूर्ण और अविनाशी गुण विशिष्ट की उपासना करता है, वह पूर्ण तथा अविनाशी विभूति को प्राप्त करता है।

त्रयोदश खण्ड में हृदय के अन्तर्गत पूर्वछिद्र रूप प्राण की उपासना कही गयी है। वैसे ही दक्षिण छिद्र में व्यान की, पश्चिम छिद्र में अपान की, उत्तर छिद्र में समान की और उर्ध्ववर्ती छिद्र में उदान की उपासना कही गयी है। उपर्युक्त प्राणादि द्वारपालों की उपासना का फल बतलाया गया, हृदयस्थ मुख्य ब्रह्म की उपासना ज्योतिरूप से कही गयी है और हृदयस्थ पुरुष के दर्शन का उपाय बतलाया गया है।

चौदहवें खण्ड में सगुण ब्रह्म की उपासना शाण्डिल्यविद्या के रूप में कही गयी है। ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत'' इस वाक्य में प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषयभूत सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म में आरोपित है। अतः नामरूपात्मक जगत् का ब्रह्म के साथ बाधरूप सामानाधिकरण्य है। उस ब्रह्म में आरोपित मनोमयत्वादि चिन्तनीय गुणों का वर्णन किया गया है। वह अणु से अणु और महान् से महान् है। हृदयस्थ ब्रह्म तथा परब्रह्म का अभेदरूप से चिन्तन करने पर उपासक को ब्रह्मभाव की प्राप्ति कही गयी है। इस विद्या के उपदेशक आचार्य शाण्डिल्य ऋषि थे। इसीलिए इसे शाण्डिल्य विद्या कहते हैं।

पञ्चदश खण्ड में पुत्र की दीर्घायुष्य के लिए विराट् की उपासना कही गयी है। उस कोश की पूर्व दिशा जुहू नाम वाली है, दक्षिण दिशा सहमाना नाम वाली है, पश्चिम दिशा राज्ञी नाम वाली है और उत्तरदिशा सुभूता नाम वाली है। दिशाओं से उत्पन्न होनेके कारण वायु उनका वत्स है। इस वायु की उपासना करने वाले को पुत्र के मरण अथवा वियोग जनित दुःख नहीं होता है। पुत्र का नाम लेकर उसके दीर्घायुष्य के लिए प्रार्थना बतलायी गयी है। फलतः उपासक पुत्र की दीर्घायुष्य को प्राप्त होता है।

षोडश खण्ड में कहा गया है कि पुत्र के दीर्घायुष्य होने पर भी स्वयं यदि अल्पायुष्य हो तो फिर उससे क्या लाभ? अतः अपनी दीर्घायुष्य के लिए आत्मयज्ञ का सम्पादन करना चाहिए। पुरुष की पूर्ण आयु एक सौ सोलह वर्ष की मानी जाती है। पहले चौबीस वर्ष तत्पश्चात् चौवालीस वर्ष और फिर अड़तालीस वर्ष कहे गये हैं। जीवन के इन तीन भागों को परस्पर

जोड़ने के लिए आत्मयज्ञ बतलाया गया है। जिसके अनुष्ठान से उपासक दीर्घायुष्य को प्राप्त करता है। सप्तदशखण्ड में पुरुष की समस्त चेष्टाओं को आत्मयज्ञ उपासना के रूप में कहा गया है और जिसके फल अक्षयादि कहे गये हैं।

अष्टादश खण्ड में मनरूप अध्यात्म प्रतीक में और आकाशरूप अधिदेव प्रतीक में ब्रह्मदृष्टि करने को कहा है। वाक् प्राण, चक्षु और श्रोत्र ऐसे चार पाद अध्यात्म में एवं अग्नि, वायु, आदित्य और दिशा में चारपाद अधिदैव के कहे गये हैं। अध्यात्म तथा अधिदैव पादों को अभिन्नरूप से चिन्तन करने के लिए कहा है और जिसका फल है, अतिशीघ्र आदित्य भाव की प्राप्ति।

उन्नीसवें खण्ड में आदित्य और अन्यदृष्टि से आध्यात्मिक एवं आधिदैविक उपासना कही गयी है। इस उपासना से आदित्यभाव की प्राप्ति कही गयी है। इस प्रकार तृतीय अध्याय के संगृहीत विषय बतलाये गये।

चतुर्थाध्याय

चतुर्थाध्याय में सप्तदश खण्ड हैं। इनके प्रारम्भिक तीन खण्डों में जानश्रुति और रैक्व के उपाख्यान द्वारा संवर्ग विद्या का वर्णन किया गया है। किसी भी साधक में कर्मानुष्ठानमात्र से कृतकृत्यता नहीं आती किन्तु उससे ऋषि और देवता अवश्य प्रसन्न होते हैं जिसके फलस्वरूप ब्रह्मविद्या के आचार्य की प्राप्ति होती है। ऐसी ही घटना जानश्रुति राजा के जीवन में भी घटती है। राजा जानश्रुति संवर्गविद्या के आचार्य रैक्व के पास जाता है और विपुल धन एवं कन्यारूप भेंट समर्पित कर उनसे संवर्गविद्या ग्रहण करता है। अधिदैव में वायु को संवर्ग कहा गया है क्योंकि इसी में अग्नि, वायु, सूर्य तथा जल का लय देखा जाता है। अध्यात्म में प्राण को संवर्ग कहा गया है; क्योंकि सुषुप्ति के समय प्राण में ही वाणी, चक्षु, श्रोत्र तथा मन का लय होता देखा जाता है। उपास्य के गुण उपासक में आ जाते हैं। अत: इनकी आत्मभाव से उपासना करने वाले को पूर्वोक्त दश देव स्वरूपत्व की प्राप्ति होती है और प्राण होकर सर्वत्र अन्नवान् तथा अन्नादि हो जाता है।

चतुर्थखण्ड से नवम खण्ड तक सत्यकाम जाबालोपाख्यान है। सत्यकाम जाबाल ने आचार्य गौतम की आज्ञा से उनकी प्रसन्नता के लिए अरण्य में ब्रह्मचर्य तथा गोपालन करते हुए अनेक वर्षों तक रहता है। इसकी इस व्रतचर्या से प्रसन्न हो वायु देवता ऋषभ में प्रविष्ट होकर स्वयं ही उपदेश करते हैं। ऋषभ ने सत्यकाम को प्राची, दक्षिणा, प्रतीची और उदीची ऐसे चार कला वाले ब्रह्म के प्रथम प्रकाशवान् नामक पाद का उपदेश किया, जिसकी उपासना का फल प्रसिद्धिमत्ता है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक और समुद्र ऐसे चार कला वाले ब्रह्म के अनन्तवान्

नामक द्वितीय पाद का उपदेश अग्नि से किया, जिसकी उपासना का फल है अविच्छिन्न सन्तति और अनन्त लोक की प्राप्ति। अग्नि, सूर्य, चन्द्र, और विद्युत् रूप चार कला वाले ब्रह्म के ज्योतिष्मान नामक तृतीय पाद का उपदेश हंसरूप से सूर्य ने किया, जिसकी उपासना से उपासक दीप्तिमान हो जाता है। प्राण, चक्षु, श्रोत्र और मनरूप चारकला वाले ब्रह्म के आयतनवान् नामक चतुर्थ पाद का उपदेश सत्यकाम जाबाल को मद्गुपक्षीरूप से प्राण ने किया, जिसकी उपासना से उपासक सबका आश्रय बन जाता है और लोक और परलोक में उसे विस्तृत आयतन की प्राप्ति होती है। इस प्रकार उपर्युक्त चारों से उपदेश प्राप्त कर सत्यकाम ब्रह्मज्ञानी की भाँति तेजस्वी होकर आचार्य हारिद्रुमत गौतम के पास लौटकर आता है और कहता है कि मुझे आप मेरी इच्छा के अनुसार उपदेश करें। मैंने आप जैसे महानुभावों से सुना है कि आचार्य से जानी गयी विद्या ही साधिष्ठ को प्राप्त कराती है। तत्पश्चात्, आचार्य गौतम ने सत्यकाम को देवताओं द्वारा प्राप्त विद्या का फिर से उपदेश किया। उसमें कुछ भी न्यूनता नहीं की। फलतः सत्यकाम की विद्या पूर्ण हो जाती है।

दशमखण्ड से पञ्चदश खण्ड पर्यन्त उपकोसल विद्या का प्रसंग आता है, जिसमें सत्यकाम जाबाल ऋषि के प्रिय शिष्य उपकोसल को सर्व प्रथम तीनों अग्नियों ने मिलकर उपदेश किया कि प्राण ब्रह्म है अपरिच्छिन्न सुख ब्रह्म है। तत्पश्चात् गार्हपत्याग्नि ने बतलाया पृथिवी, अन्न, अग्नि, और आदित्य, ऐसे मेरे चार शरीर हैं। अपना तथा आदित्य का अभेद बतलाया, जिसकी उपासना का फल पाप की निवृत्ति, अग्नि लोक की प्राप्ति, दीर्घायुष्य तथा दोनों लोकों में अग्नि परिपाल्यत्व कहा गया है। दक्षिणाग्नि ने जल, दिशा, नक्षत्र और चन्द्रमा इन चारों को अपना स्वरूप बतलाया, चन्द्रमा तथा दक्षिणाग्नि में रहने वाले एक ही पुरुष उपास्य है। इस उपासना का फल भी पूर्व की भाँति ही कहा गया है। आहवनीयाग्नि ने कहा- प्राण, आकाश, द्युलोक, तथा विद्युत्; ये मेरे शरीर हैं। विद्युदभिमानी पुरुष में एवं आहवनीयाग्नि में ज्योति स्वरूप अभेदभाव से उपासना करने को कहा है और इस उपासना का फल पूर्व की भाँति कहा है। तत्पश्चात्, तीनों अग्नियों ने संयुक्तरूप से पुनः उपकोसल को कहा है कि हे उपकोसल! हमने तुझे अपनी-अपनी विद्या एवं आत्मविद्या बतला दी है। अब इस विद्या की फल प्राप्ति के लिए मार्ग का उपदेश तुझे आचार्य करेंगे। कालान्तर में इसके आचार्य ने वहाँ आकर उससे कहा- हे उपकोसल! तेरी मुखाकृति ब्रह्मज्ञानी की भाँति प्रतीत हो रही है। बतलाओ तो सही तुझे किसने उपदेश किया। उपकोसल पिछली घटना को छिपाना चाहता था किन्तु भयभीत अनिग्यों की ओर देखकर उसे कहना पड़ा कि मेरी सेवा से प्रसन्न होकर इन अग्नियों ने मुझे उपदेश किया है। आचार्य के पूछने पर अग्नियों से प्राप्त समग्र विद्या को उपकोसल ने ज्यों का त्यों सुना दिया। आचार्य सत्यकाम ने कहा- अग्नियों ने तुझे केवल लोकों को ही बतलाया है; पर

अब मैं तुझे वह बतलाता हूँ जिसे जानने वाला जल में कमल की भाँति पापकर्म से लिप्त नहीं होता। यह जो नेत्र में पुरुष दीखता है, वह आत्मा है। वह अमर, अभय एवं ब्रह्म स्वरूप है। इसीलिए तो नेत्र में जल या घृत डालने पर उसमें प्रविष्ट नहीं होते, प्रत्युत इधर-उधर से निकल जाते हैं। जिस नेत्रस्थ पुरुष का स्थान ही इतना निःसंग है, उस पुरुष की निःसंगता के विषय में तो कहना ही क्या है। उसके संयतवामत्व, वामनीत्व एवं भामनीत्व नित्य गुण हैं, उन गुणों से विशिष्ट नेत्रस्थ पुरुष की उपासना से तदनुरूप फल उपासक को प्राप्त होता है। इस विद्या के जानने वालों की अन्त्येष्टि करें या न करें, वे अर्चिरादि मार्ग से ब्रह्मलोक को प्राप्त करते ही हैं और वहाँ से वे उपासक वर्तमान मानव सृष्टि में नहीं लौटते, ऐसा कहा गया है।

षोडशवेंखण्ड में गतिमान् यज्ञ की उपासना बतलायी गयी है। यह प्रत्यक्ष वायु यज्ञ स्वरूप है। वाणी और मन इस वायु रूप यज्ञ पुरुष के मार्ग हैं। इन दोनों मार्गों में से मौन धारण करने वाला एक मार्ग का मन से संस्कार करता है और वाणी द्वारा होता, अध्वर्यु एवं उद्गाता अवशिष्ट दूसरे मार्ग का संस्कार करते हैं। ब्रह्मा के मौन भंग से यज्ञ की हानि होती है और ब्रह्मा के मौन पालन द्वारा ब्रह्मा से सहकृत यजमान इस यज्ञ का अनुष्ठान कर श्रेष्ठ हो जाता है।

सप्तदशखण्ड में कहा गया है कि यज्ञ में आये हुए दोषों की निवृत्ति के लिए व्याहृतियों की उपासना करनी चाहिए। इसीलिए प्रजापति ने तीनों लोकों को तपाकर उनके सार अग्नि, वायु और आदित्य को ग्रहण किया। पुनः इन तीनों देवताओं के सार रूप से तीनों वेदों और उनके सारभूत ''भूर्भुवः स्वः'' इन व्याहृतियों को निकाला। अतः ऋग्वेद के अपभ्रंश आदि से प्राप्त होने वाले दोष की निवृत्ति के लिए ''भूः स्वाहा'' इस मन्त्र से गार्हपत्याग्नि में हवन करे, यजुर्वेद सम्बन्धी दोष निवृत्ति के लिए ''भुवः स्वाहा'' इस मन्त्र से दक्षिणाग्नि में हवन करे और सामवेद सम्बन्धी दोषों की निवृत्ति के लए प्रायश्चित्य रूप से ''स्वः स्वाहा'' इस मन्त्र द्वारा आहवनीय अग्नि में हवन करे। फलतः तीनों लोक, तीनों देव और तीनों वेद के सारभूत भूरादि व्याहृतियों द्वारा हवन करने से यज्ञ के समस्त अरिष्ट की निवृत्ति होती है और वह यज्ञ सुसंस्कृत माना जाता है किन्तु यह सब विद्वान् ब्रह्मा के कार्य कौशल एवं वैदुष्य का ही सुपरिणाम है, जो यज्ञ, यजमान और सभी ऋत्विजों की रक्षा करता है। अतः यज्ञ में ऐसे विद्वान् को ही ब्रह्मा बनाना चाहिए।

पञ्चमाध्याय

पञ्चमाध्याय में चौबीस खण्ड हैं। प्रथम एवं द्वितीय खण्ड में प्राणोपासना का प्रसंग आता है। यद्यपि वाणी में वसिष्ठत्व, चक्षु में प्रतिष्ठात्व, श्रोत्र में सम्पत्त्व और मन में आयतनत्व गुण प्रारम्भ में कहे गये हैं। तथापि प्राण के श्रेष्ठत्व का निश्चय हो जाने के बाद घ्राणादि अमुख्य प्राणों ने अपने-अपने गुणों को प्राणाधीन समझकर उन्हें मुख्य प्राण में ही समर्पित कर दिया।

क्योंकि प्रजापति के द्वारा ली गयी परीक्षा में केवल मुख्य प्राण ही उत्तीर्ण हुआ था। अतः ज्येष्ठत्व, श्रेष्ठत्व, वसिष्ठत्व, प्रतिष्ठात्व, सम्पत्त्व तथा आयतनत्व रूप छः गुणों से युक्त मुख्य प्राण ही उपास्य है 'ऐसा षड्गुण विशिष्ट प्राण मैं हूँ' इस भाव में प्राण की उपासना करनी चाहिए। ''प्राणियों द्वारा जो कुछ भी खाया जाता है, वह सब प्राण का अन्न है', ऐसा भी चिन्तन प्राणोपासना के अङ्गरूप से प्राणोपासक को करना चाहिए। इससे उपासक अन्न के दोषों से लिप्त नहीं होता। भोजन से पूर्व और पश्चात् भी आचमन करना चाहिए। ''अमृतोपस्तरणमसि'' ''अमृतापिधानमसि'' इन मन्त्रों से उस आचमनीय जल में प्राण के वस्त्रोपवस्त्र की दृष्टि करनी चाहिए। इस प्राणोपासना के अङ्ग चिन्तन का फल वस्त्रादि की प्राप्ति है। यदि वह प्राणोपासक लोकों में महत्त्व प्राप्त करना चाहता हो तो उसे मन्थाख्य कर्म का भी अनुष्ठान करना चाहिए। इस मन्थाख्य कर्म का प्रतिपादन छान्दोग्योपनिषत् की अपेक्षा बृहदारण्यकोपनिषत् में विस्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है।

तृतीयखण्ड से दशमखण्ड तक पञ्चाग्नि विद्या का प्रसङ्ग आता है। जिसके द्युलोक, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष और योषित् ये पाँचों आध्यासिक अग्नि माने गये हैं, जिनमें श्रद्धा, सोम, वृष्टि, औषधि तथा रेत को आहुति के रूप में चिन्तन करने को कहा है। क्रमशः इन पाँचों आहुतियों के पूर्ण होने पर वह श्रद्धा पुरुषसंज्ञा को प्राप्त करती है। प्रथम अग्नि में यजमान के द्वारा डाला गया आहुति रूप जल श्रद्धापद वाच्य है। उससे उत्पन्न अपूर्व सहित यजमान स्वर्गलोक रूप अग्नि में हवन करता है। इस प्रकार देवता यजमान को चन्द्रलोक प्राप्त कराते हैं। स्वर्गलोक प्राप्ति निमित्तक पुण्यकर्म के क्षीण हो जाने पर वह यजमान अपूर्व परिवेष्टित हो पर्जन्य में हवन करता है। क्रमशः वृष्टि द्वारा पृथिवी में, औषधि द्वारा पुरुषाग्नि में और शुक्र द्वारा योषाग्नि में वह हवन करता है। तत्पश्चात्, वह जीव पुरुषसंज्ञा को प्राप्त होता है। इस पञ्चाग्निविद्या की उपासना गृहस्थों के लिए बतलायी गयी है और इसका फल अर्चिरादि मार्ग द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति कही गयी है। श्वेतकेतु के पिता आरुणि को प्रवाहण जैवलि राजा ने शेष चार प्रश्नों का उत्तर भी सुना दिया। पञ्चमहापातकों का विनाश भी इस पञ्चाग्निविद्या की उपासना से हो जाता है, यह बात भी वहाँ पर बतलायी गयी है। यद्यपि पञ्चाग्निविद्या भी प्रतीकोपासना ही है, फिर भी इससे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ऐसा श्रुति और भाष्य में स्पष्ट कहा गया है।

एकादश खण्ड से चौबीस खण्ड तक वैश्वानर विद्या का प्रसंग आता है, जिसमें अश्वपति कैकेय के पास औपमन्यव, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन, बुडिल और उद्दालक इन छः ऋषियों को वैश्वानरविद्या सीखने के लिए आना कहा गया है। इन छः प्रार्थी ऋषियों की बात सुनकर राजा अश्वपति एक बार खिन्न चित्त हो जाता है। क्योंकि अब तक इस विद्या का अनुशासन क्षत्रिय राजा ही करते आ रहे थे, किन्तु इन श्रद्धालु विद्यार्थियों की प्रार्थना को अस्वीकार करना भी

सम्भव नहीं था। अतः दूसरे दिन विधि पूर्वक वैश्वानरविद्या सीखनेके लिए उन ऋषियों को अपने समीप आने का आदेश राजा अश्वपति ने दिया। राजा के पूछने पर अपनी-अपनी उपासना का स्वरूप ऋषियों ने बतलाया। उनका एक अवयव को सम्पूर्ण वैश्वानर मानकर उपासना करना अपूर्ण एवं अनुचित था। राजा ने वैश्वानर के समस्त रूप की उपासना उन्हें बतलायी। स्वर्ग शिर, सूर्य नेत्र, वायु प्राण, आकाश मध्यम भाग, जलाशय समुद्रादि मूत्रकोष और पृथिवी उस वैश्वानर आत्मा के पाद हैं। इस प्रकार सर्वलोकात्मक वैश्वानर आत्मा की उपासना अहंभाव से करनी चाहिए, जिसका फल है कि उपासक सम्पूर्ण भूतों में सर्वात्मभाव से अन्न का भक्षण करता है तथा उस भोजन जन्य तृप्ति का भागी भी बन जाता है। वैश्वानर के उपासक को प्राणाग्निहोत्र भी करना चाहिए। इसके लिए भोजनार्थ परोसे गये अन्न को "ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा" इन मन्त्रों से मुख में डाले। यही प्राणाग्निहोत्र नाम से प्रसिद्ध है। इसमें अग्निहोत्र की भावना करने पर वह उपासक सम्पूर्ण लोकों में मानो अन्न की आहुति डाल रहा है और उससे सभी प्राणी तृप्त होते हैं। इस उपासना से उपासक के सभी पाप दग्ध हो जाते हैं क्षुधा से पीड़ित बालक जैसे स्तन्य पान के लिए अपनी माता की उपासना करता है, वैसे ही सभी प्राणी उस उपासक के इस प्राणाग्निहोत्र रूप भोजन की उपासना करते हैं।

षष्ठाध्याय

इसमें सोलह खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में कहा गया है कि पिता की आज्ञा से द्वादशवर्षीय श्वेतकेतु चौबीस वर्ष की आयु तक गुरुकुलवास एवं समस्त वेदों का अध्ययन कर अपने को बहुत बड़ा विद्वान् मानकर पिता के पास लौट आता है। विद्या विनय को देती है किन्तु अपने पुत्र श्वेतकेतु की विपरीत दशा देखकर उद्दालक आरुणि ने उसे उपदेश करना प्रारम्भ कर दिया। एक के विज्ञान से सब विज्ञान कैसे होता है" इस प्रश्न का उत्तर देना तो दूर रहा, उस प्रश्न को भी श्वेतकेतु न समझ सका। उद्दालक ऋषि ने मृत्पिण्ड स्वर्णाभूषण एवं नख निकृन्तन के दृष्टान्त से उस प्रश्न को समझाया, तत्पश्चात् प्रश्न के उत्तर न आने के कारण श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक ऋषि का शरणापन्न हो जाता है।

द्वितीय खण्ड में अनेक पक्षों का खण्डन कर जगत् की सद्रूपता का वर्णन किया गया है। तृतीय खण्ड में सृष्टिक्रम का वर्णन आता है। चतुर्थ खण्ड में एक के विज्ञान से सर्व विज्ञान को युक्ति से सिद्ध किया गया है। पञ्चम एवं षष्ठ खण्ड में अन्नादि के त्रिविध परिणाम बतलाकर उनके सूक्ष्म भाग को मन, प्राण, तथा वाणी का पोषक कहा है। सप्तमखण्ड में सोलह कला विशिष्ट पुरुष का उपदेश किया गया है। सुषुप्तिकाल में जीव की स्थिति का वर्णन अष्टम खण्ड

में किया गया है। सुषुप्ति में सत्य की प्राप्ति का ज्ञान न होने में मधु-मक्खियों का दृष्टान्त नवम खण्ड में दिया गया है। दशमखण्ड में नदी के दृष्टान्त से ब्रह्म और आत्मा की एकता बतलायी गयी है। एकादश खण्ड में वृक्ष के दृष्टान्त से सत्य आत्मा का उपदेश किया गया है। द्वादश से पञ्चदश खण्ड पर्यन्त क्रमशः वटवृक्ष, लवण, विवेकी पुरुष एवं मरणासन्न पुरुष के दृष्टान्त द्वारा उसी सत्य का उपदेश किया गया है। अन्तिम षोडशखण्ड में चोर के द्वारा तप्तपरशु को ग्रहण कराकर भी सत्य का ही उपदेश किया गया है।

तात्पर्य निर्णायक षड्विधलिंगों के द्वारा चिन्तन करने पर अद्वय ब्रह्म में ही इस छठे अध्याय के तात्पर्य का निश्चय होता है। ''सदेव सोम्येदमग्र आसीत'' यह उपक्रम है ''ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि'' यह उपसंहार है। ''तत्त्वमसि'' इस महावाक्य का नौबार उपदेश अभ्यास है ''आचार्यवान् पुरुषो वेद'' इससे उसकी अपूर्वता बतलायी गयी है। ''तस्य तावदेवचिरं यावन्नविमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य'' यह फल है ''अत्र वाव किल सत्सोम्य न निभालयसे'' यह अर्थवाद और ''अन्नेन सोम्य! शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छ'' यह उपपत्ति है। इस प्रकार निर्गुण निर्विशेष ब्रह्म में ही इस अध्याय का तात्पर्य निश्चित होता है।

सप्तमाध्याय

इस अध्याय में छब्बीस खण्ड है। प्रथम खण्ड में कहा है कि ऋगादि चारों वेद, इतिहास, पुराणरूप पंचम वेद, वेदों का वेद व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पात ज्ञान, महाकाल निधि शास्त्र, तर्क शास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, शिक्षा, कल्प, छन्द और चितिरूप ब्रह्मविद्या, भूतशास्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिषविद्या, गारुडविद्या, तथा नृत्य संगीतादि विद्या के अध्ययन कर लेने पर भी आत्मज्ञान न होने से शोकमग्न हो नारद सनत्कुमार के पास शिष्यभाव से उपसन्न हुए। तब सनत्कुमार जी ने कहा तुम्हारी पढ़ी हुई यह समस्त विद्या नाम ही है। अतः प्रतिमा में विष्णु बुद्धि की भाँति तू ब्रह्म बुद्धि से नाम की उपासना कर। सनत्कुमार से उपदिष्ट नारद ने नाम ब्रह्म की उपासना की। तत्पश्चात् नारद ने उससे श्रेष्ठ वस्तु को जानने के लिए बार-बार प्रश्न किया। अतः द्वितीयखण्ड से लेकर पन्द्रहवें खण्ड तक क्रमशः एक की अपेक्षा दूसरे को श्रेष्ठ कहकर वाणी, मन, संकल्प, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मर, आशा और प्राण को श्रेष्ठ बतलाते हुए उनको उपासना ब्रह्म बुद्धि से करने के लिए सनत्कुमार ने नारद को उपदेश किया। वहाँ पर इन प्रतीकोपासनाओं का पृथक-पृथक फल भी बतलाया गया है। तत्पश्चात् प्राण से श्रेष्ठ तत्त्व के विषय में नारद जी के प्रश्न न करने पर भी अपने शिष्य नारद को अकृतार्थ देखकर शिष्य को कृतार्थ करने के लिए सनत्कुमार जी उपदेश का क्रम बनाये रखते हैं। सोलहवें खण्ड में इक्कीसवें खण्ड तक सत्य, विज्ञान, मति, श्रद्धा, निष्ठा और कृति को उपासना के योग्य बतलाते हुए सनत्कुमार जी ने इनकी उपासना के लिए नारद जी को उपदेश किया।

बाईसवें खण्ड से छब्बीसवें खण्ड तक निर्गुण निर्विशेष सुख स्वरूप भूमातत्त्व का उपदेश सनत्कुमार ने किया है। जहाँ द्रष्टा, दर्शन एवं दृश्य भेद समाप्त हो जाता है, वही भूमा है। अपरिच्छिन्न ब्रह्मस्वरूप है, वह आत्मा है, उससे भिन्न परिच्छिन्न वस्तु नश्वर है। वही भूमा सबकी प्रतिष्ठा है, उसकी कोई अन्य प्रतिष्ठा नहीं है। वह तो अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित है। उस भूमा की व्यापकता बतलाते हुए तटस्थ रूप से, अहंकारादेश और आत्मादेश रूप से भी सनत्कुमार ने नारद को बतलाया है। भूमतत्त्व को जानने वाला सब कुछ जान लेता है। वह निर्विशेष ब्रह्मभाव से प्रतिष्ठित हो जाता है। इसीलिए उसे त्रिविध ताप सताते नहीं हैं। यदि उसके मन में संकल्प हो जाए तो अनेक रूपों में अपने को विभक्त देखता हुआ सम्पूर्ण विश्व के ऐश्वर्य का भोक्ता अपने को समझता है। इस भूमतत्त्व तक पहुँचने के लिए प्रथम आहार शुद्धि की आवश्यकता है, उससे अन्तःकरण की शुद्धि हो जाने पर अचल स्मृति होती है और इस स्मृति के बाद सम्पूर्ण ग्रन्थियों का विमोक हो जाता है। आचार्य सनत्कुमार से भूमतत्त्व का उपदेश ग्रहण कर नारद कृतकृत्य हो गए एवं शोक-मोह से अतीत हो गए उस समय विश्व के सभी विद्वान् सनत्कुमार जी को स्कन्द शब्द से सम्बोधित करने लगे।

अष्टमाध्याय

इसमें सभी पन्द्रह खण्ड हैं। प्रथमखण्ड में दहरपुण्डरीक में ब्रह्म की उपासना बतलायी गयी है। और कर्मफल को अनित्य कहा गया है। द्वितीयखण्ड में दहर ब्रह्म की उपासना का फल सत्य संकल्पत्व की प्राप्ति बतलायी गयी है। तृतीयखण्ड में असत् से अवृतसत् की और नामाक्षर की उपासना कही गयी है। चतुर्थखण्ड में सेतु स्वरूप आत्मा की उपासना उपासना का फल बतलाया गया है। पञ्चमखण्ड में ब्रह्मचर्य दृष्टि से यज्ञादि की उपासना कही गयी है। षष्ठखण्ड में हृदयस्थ नाड़ियाँ तथा आदित्य रश्मियों की उपासना बतलायी गयी है। सप्तमखण्ड में आत्मतत्त्व अनुसन्धान के लिए देवराज इन्द्र और असुरराट् विरोचन की शिष्यभाव से प्रजापति के पास जानेकी बात कही गयी है। बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करते हुए आचार्य की उपासना के बाद अष्टमखण्ड में प्रजापति जलपूर्ण सकोरे में आत्म प्रतिबिम्ब का दर्शन कराते हैं, जिससे स्थूल शरीर को ही आत्मा मानकर असुरों का राजा विरोचन अपने को कृतकृत्य मानने लगा किन्तु स्थूल शरीर के प्रतिबिम्ब में या बिम्बभूत स्थूलदेह में प्रजापति की घोषणा के अनुसार आत्मा का लक्षण घटता न देखकर इन्द्र पुनः प्रजापति के पास आकर पूछते हैं। यह नवमखण्ड में वर्णित है। दशमखण्ड में बत्तीस वर्ष पुनः ब्रह्मचर्य पालन करते हुए अपने शरणापन्न इन्द्र को प्रजापति ने स्वप्न पुरुष का उपदेश किया, फिर भी इन्द्र को आत्मा का यथार्थ बोध न हो सका। अतः उन्हें प्रजापति की आज्ञा से पुनः बत्तीस वर्ष तक गुरुकुल वास करना पड़ा। तत्पश्चात् प्रजापति ने इन्द्र को सौषुप्त पुरुष का उपदेश किया। इस सौषुप्त आत्मा में भी आत्मा

के पूर्वोक्त लक्षण को घटता हुआ न देखकर संशय ग्रस्त हो इन्द्र पुनः प्रजापति की शरण होते हैं। इस बार केवल पाँच वर्ष तक ही ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरुकुल वास करने के लिए प्रजापति ने इन्द्र को कहा, यह बात एकादशखण्ड में बतलायी गयी है।

द्वादशखण्ड में तीनों देहों को मरणधर्मा बतलाते हुए उनमें आत्मबुद्धि करने वाला शरीराभिमानी जीव इष्टानिष्ट से मुक्त नहीं हो सकता, किन्तु शरीराभिमान से शून्य आत्मनिष्ठ को इष्ट और अनिष्ट का कभी भी स्पर्श नहीं होता। ऐसा कहने के बाद प्रजापति ने यह भी कहा है कि इन तीनों देहों में शरीराभिमान का परित्यग कर तत्त्वविद् पुरुष परम ज्योति को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह ब्रह्म से अभेदभाव को प्राप्त हो जाता है। वह उत्तम पुरुष है, उसकी उपासना देवता लोक ब्रह्मलोक में करते हैं। वह सम्पूर्ण लोकों को तथा सम्पूर्ण भोगों को भी प्राप्त कर लेता है।

तेरहवें खण्ड में ''श्यामाच्छबलं प्रपद्ये'' इत्यादि मन्त्र का उपदेश जाप के लिए किया गया है। चतुर्दशखण्ड में आकाश नामक प्रसिद्ध आत्मा को संसार के समस्त नामरूप का निर्वाहक कहा गया है, वह आत्मा ब्रह्मस्वरूप और अमृत है। उस ब्रह्म को प्राप्त करने के बाद शरीर ग्रहण के लिए पुनः मातृगर्भ में न जाऊँ, ऐसी प्रार्थना बतलायी गयी है। पञ्चदश खण्ड में आत्मज्ञान का उपसंहार करते हुए इस विद्या की वंश परम्परा का वर्णन किया गया है। वेदाध्ययन कर आचार्य कुल से गार्हस्थ्य जीवन में आने वाले के लिए कुछ पालनीय कर्तव्यों का उपदेश किया गया है। अन्त में ब्रह्मलोक गये हुए जीव की अपुनरावृत्ति बतलायी गयी है।

इस प्रकार समस्त छान्दोग्योपनिषत् का संक्षेप में वर्णन कर दिया गया है। विस्तार से मूल ग्रन्थ में अध्ययन करते समय शांकरभाष्य, आनन्दगिरि टीका, मूल तथा भाष्य के अनुवाद और टिप्पण में पाठकगण देखेंगे ही।

ईशादिबृहदारण्यक सभी दशोपनिषद् भाष्य प्रतिदिन एक घण्टा पारायण करने पर ६४ दिनों में पूर्ण होता है। इनका विभाग आह्नि क के रूप में किया गया है। तदनुसार छान्दोग्योपनिषद् १६ आह्नि कों में है। जिन्हें पाठक आह्नि क प्रदीपिका में तथा आह्नि कों के विरामस्थल में देखेंगे।

इस बार पारायण संस्करण तथा सटिप्पण संस्करण नामसे छान्दोग्योपनिषद् का प्रकाशन अपना महत्त्व रखता है। जिसका विशेष वर्णन तत्तत् सम्पादकीय निबन्धमें पाठक पढ़ेंगे।

श्रीशङ्करः प्रीयताम्

श्रावणी पूर्णिमा
वि. सं. २०५८

भगवत्पादीयः
परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द गिरि
कैलास आश्रम, ऋषिकेश (उत्तराञ्चल)

① ॐ = परमात्मनो अभिधानम् नेदिष्ठम् प्रयुज्यमाना प्रसादाय प्रथनाम ग्रहणाय प्रतीकम्। नामत्वेन प्रतीकत्वेन परमात्मोपासनम् साधनम्।
② जप, कर्म, स्वाध्यायेषु प्रयोगः
③ उद्गीथ भक्ति अवयव परमात्म प्रतीके दृढामैकाग्र्य लक्षणं मतिं सन्तनुयात् सामवेदीय
कर्माङ्ग उपासना = उपासना सहित कर्म.
अभ्युदय फलक = इह पर अभ्युदय के लिये
कैवल्य सन्निकृष्ट or अहं ग्रहोपासना = ब्रह्म सन्निहित करने.

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

परमात्म प्रतीके दृढामैकाग्र्य लक्षणं मतिं सन्तनुयात्.

सामवेदीया तलवकार शाखा.

① जैमिनी
② तलवकार
③ राणायनी
④ कौथुम. out 1000 branches. only 4 survived.

पहले 5 अध्याय उपासना तत्र तत्र कर्म. अन्तिम 3 अध्याय में ज्ञान.

छान्दोग्योपनिषत्

मिताक्षराहिन्दीव्याख्यासंवलितशाङ्करभाष्ययुता

(अथ श्रीमच्छङ्करभगवत्पादविरचितं भाष्यम्)

(तत्र भाष्यकारोपोद्घातः ।)

ओमित्येतदक्षरमित्याद्यष्टाध्यायी छान्दोग्योपनिषत् । तस्याः संक्षेपतोऽर्थजिज्ञासुभ्य ऋजुविवरणमल्पग्रन्थमिदमारभ्यते । तत्र संबन्धः । समस्तं कर्माधिगतं प्राणाग्न्यादिदेवता-विज्ञानसहितमर्चिरादिमार्गेण ब्रह्मप्रतिपत्तिकारणम् । केवलं च धूमादिमार्गेण चन्द्रलोक-प्रतिपत्तिकारणम् । स्वभावप्रवृत्तानां च मार्गद्वयपरिभ्रष्टानां कष्टाऽधोगतिरुक्ता । न चोभयोर्मार्गयोरन्यतरस्मिन्नपि मार्गे आत्यन्तिकी पुरुषार्थसिद्धिरित्यतः कर्मनिरपेक्षम-द्वैतात्मविज्ञानं संसारगतित्रयहेतूपमर्देन वक्तव्यमित्युपनिषदारभ्यते ।

न चाद्वैतात्मविज्ञानादन्यत्राऽऽत्यन्तिकी निःश्रेयसप्राप्तिः । वक्ष्यति हि— "अथ येऽन्यथाऽतो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति । विपर्यये च स स्वराड्भवति" इति । तथा द्वैतविषयानृताभिसंधस्य बन्धनं तस्करस्येव तप्तपरशुग्रहणे बन्धदाहभावः संसारदुःखप्राप्तिश्चेत्युक्त्वाऽद्वैतात्मसत्याभिसंधस्यातस्करस्येव तप्तपरशुग्रहणे बन्धदाहाभावः संसारदुःखनिवृत्तिर्मोक्षश्चेति । अत एव न कर्मसहभाव्यद्वैतात्मदर्शनम् । क्रियाकारकफलभेदोमपर्देन सदेकमेवाद्वितीयमात्मैवेदं सर्वमित्येवमादिवाक्यजनितस्य बाधकप्रत्ययानुपपत्तेः।

कर्मविधिप्रत्यय इति चेत् । न । कर्तृभोक्तृस्वभावविज्ञानवतस्तज्जनितकर्मफल-रागद्वेषादिदोषवतश्च कर्मविधानात् । अधिगतसकलवेदार्थस्य कर्मविधानादद्वैतज्ञानवतोऽपि कर्मेति चेत् । न । कर्माधिकृतविषयस्य कर्तृभोक्त्रादिज्ञानस्य स्वाभाविकस्य 'सदेकमेवाद्वितीयम्' 'आत्मैवेदं सर्वम्' इत्यनेनोपमर्दितत्वात् । तस्मादविद्यादिदोषवत

जीवो ईशो विशुद्धाचित् तथा जीवेशयोर्भिदा। अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकं अनादयः।

उद्गीथावयव प्रणव को सर्वलोक वेदसार सर्वकामावाप्ति गुणवत्त्व तथा समृद्धिगुण से विशिष्ट कहा गया है।

ॐ

उद्गीथ दृष्टि से ओंकार की उपासना

प्रथमोऽध्याय:

(अथ प्रथमाध्यायस्य प्रथम: खण्ड:)

आप्यायन्तु ममाङ्गानि...

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत। ओमिति ह्युद्गायति

साम गान, उद्गाता

उद्गीथ दृष्टि से ओंकार की उपासना

उद्गीथ शब्दवाच्य "ओम्" इस अक्षर की उपासना करे, (क्योंकि) "ओम्" ऐसा (उच्चारण करके यज्ञादि में उद्गाता) उच्च स्वर से साम गान करता है। उस अक्षर का ही

एव कर्माणि विधीयन्ते नाद्वैतज्ञानवत:। अत एव हि वक्ष्यति —"सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति। ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" इति।

तत्रैतस्मिन्नद्वैतविद्याप्रकरणेऽभ्युदयसाधनान्युपासनान्युच्यन्ते। कैवल्यसंनिकृष्टफलानि चाद्वैतादीषद्विकृतब्रह्मविषयाणि "मनोमय: प्राणशरीर:" इत्यादीनि, कर्मसमृद्धिफलानि च, कर्माङ्गसंबन्धीनि। रहस्यसामान्यान्मनोवृत्तिसामान्याच्च यथाऽद्वैतज्ञानं मनोवृनिमात्रं तथाऽन्यान्यप्युपासनानि मनोवृत्तिरूपाणीत्यस्ति हि सामान्यम्। कस्तर्ह्यद्वैतज्ञानस्योपासनानां च विशेष:। उच्यते। स्वाभाविकस्याऽऽत्मन्यक्रियेऽध्यारोपितस्य कर्त्रादिकारकक्रिया-फलभेदविज्ञानस्य निवर्तकमद्वैतविज्ञानम्, रज्ज्वादाविव सर्पाद्यध्यारोपलक्षणज्ञानस्य रज्ज्वादिस्वरूपनिश्चय: प्रकाशनिमित्त:; उपासनं तु यथाशास्त्रसमर्पितं किंचिदालम्बनमुपादाय तस्मिन्समानचित्तवृत्तिसंतानकरणं तद्विलक्षणप्रत्ययानन्तरितमिति विशेष:।

तान्येतान्युपासनानि सत्त्वशुद्धिकरत्वेन वस्तुतत्त्वावभासकत्वादद्वैतज्ञानोपकारकाण्या-लम्बनविषयत्वात्सुसाध्यानि चेति पूर्वमुपन्यस्यन्ते। तत्र कर्माभ्यासस्य दृढीकृतत्वा-त्कर्मपरित्यागेनोपासन एव दु:खं चेत:समर्पणं कर्तुमिति कर्माङ्गविषयमेव तावदादावुपासनमुपन्यस्यते।

(इति भाष्यकारोपोद्घात:)

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत। ओमित्येतदक्षरं परमात्मनोऽभिधानं नेदिष्ठम्।। तस्मिन्हि प्रयुज्यमाने स प्रसीदति प्रियनामग्रहण इव लोक:। तदिहेतिपरं प्रयुक्तमभिधायकत्वाद्व्यावर्तितं शब्दस्वरूपमात्रं प्रतीयते। तथा चार्चादिवत्परस्याऽऽत्मन: प्रतीकं संपद्यते। एवं नामत्वेन प्रतीकत्वेन च परमात्मोपासनसाधनं श्रेष्ठमिति सर्ववेदान्तेष्ववगतम्। जपकर्मस्वाध्यायाद्यन्तेषु च बहुश: प्रयोगात्प्रसिद्धमस्य श्रैष्ठ्यम्। अतस्त**देतदक्षरं** वर्णात्मकमुद्गीथभक्त्यवयवत्वादुद्गीथशब्दवाच्य**मुपासीत**। कर्माङ्गावयवभूते

तस्योपव्याख्यानम् ।।१।।

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसः। अपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः ।।२।।

स एष रसानाꣳ रसतमः परमः पराध्योऽष्टमो यदुद्गीथः ।।३।।

उपव्याख्यान प्रारम्भ किया जाता है, अर्थात् किस प्रकार उसकी उपासना होती है, उसकी विभूति क्या है और फल क्या है, इत्यादि कथन को उपव्याख्यान कहते हैं ।।१।।

रसों में श्रेष्ठ उद्गीथ है।

इन चराचर प्राणियों का जन्म, स्थिति और लय स्थान होने के कारण पृथिवी रस है, पृथिवी का रस जल है, जल का रस औषधियां हैं, उन औषधियों का रस पुरुष है, पुरुष का रस वाक् है, वाक् का रस ऋक् है, ऋक् का रस साम है और साम का रस उद्गीथ है। (प्रकरण के बल से यहाँ पर ॐकार को ही उद्गीथ कहा है, जो साम का भी सारतर है)।।२।।

वही यह उद्गीथ भूतादि उत्तरोत्तर सम्पूर्ण रसों में श्रेष्ठ रस और परमात्मा का प्रतीक होने के कारण उत्कृष्ट एवं परार्ध्य है, संख्या की दृष्टि से पृथिव्यादि रसों में ॐ आठवाँ है।।३।।

ॐकारे परमात्मप्रतीके दृढामैकाग्र्यलक्षणां मतिं संतनुयात्। स्वयमेव श्रुतिरोंकारस्योद्गीथशब्दवाच्यत्वे हेतुमाह— **ओमिति ह्युद्गायति**। ओमित्यारभ्य हि यस्मादुद्गायत्यत उद्गीथ ओंकार इत्यर्थः। **तस्योपव्याख्यानं** तस्याक्षरस्योपव्याख्यानमेवमुपासनमेवंविभूत्येवंफलमित्यादिकथनमुपव्याख्यानम् प्रवर्तत इति वाक्यशेषः।।१।।

एषां चराचराणां **भूतानां पृथिवी रसो** गतिः परायणमवष्टम्भः। **पृथिव्या आपो रसो**ऽप्सु ह्योता च प्रोता च पृथिव्यतस्ता रसः पृथिव्याः **अपामोषधयो रसो**ऽप्परिणामत्वादो**षधीनाम्**। तासां **पुरुषो रसो**ऽन्नपरिणामत्वात्पुरुषस्य। तस्यापि **पुरुषस्य वाग्रसः**। पुरुषावयवानां हि वाक्सारिष्ठा। अतो वाक्पुरुषस्य रस उच्यते। तस्या अपि **वाच ऋग्रसः** सारतरा। **ऋचः साम रसः** सारतरम्। तस्यापि **साम्न उद्गीथः** प्रकृतत्वादोंकारः सारतरः।।२।।

एवं **स एष** उद्गीथाख्यः ॐकारो भूतादीनामुत्तरोत्तर**रसानाम**तिशयेन रसो **रसतमः**। **परमः** परमात्मप्रतीकत्वात्। **पराध्यो**ऽर्धं स्थानं परं च तदर्धं च परार्धं तदर्हतीति परार्ध्यः परमात्मस्थानार्हः परमात्मवदुपास्यत्वादित्यभिप्रायः। **अष्टमः** पृथिव्यादिरससंख्यायां **यदुद्गीथो** य उद्गीथः।।३।।

कतमा कतमक्कतमत्कतमत्साम कतमः कतम उद्गीथ इति विमृष्टं भवति ।।४।।

वागेवक्प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथः, तद्वा एतन्मिथुनं

उद्गीथ उपासनान्तर्वर्ती ऋक्, साम एवं उद्गीथ का निर्णय

कौन-कौन ऋक् है? कौन-कौन साम है? और कौन-कौन उद्गीथ है? इसी का अब विचार किया जाता है। (ऋग्वेद के एक होने पर भी ऋग् मन्त्र रूप व्यक्ति के बाहुल्य से "डतमच्" प्रत्यय का प्रयोग किया गया है)।।४।।

वाणी ही ऋक् है, प्राण साम है, तथा "ओम्" यह अक्षर उद्गीथ है। वाक् और प्राण क्रमशः ऋक् और साम के कारण हैं। इसलिये वाक् ही ऋक् है और प्राण साम है। इस प्रकार

वाच ऋग्रस इत्युक्तम्। **कतमा सक्कतम**त्तत्**साम कतमो** वा स उद्गीथः। कतमा कतमेति वीप्साऽऽदरार्था। ननु "वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्" (पा. ५.३.९३)। न ह्यत्र ऋग्जातिबहुत्वं कथं डतमच्प्रयोगः; नैष दोषः। जातौ परिप्रश्नो जातिपरिप्रश्न इत्येतस्मिन्विग्रहे जातावृग्व्यक्तीनां बहुत्वोपपत्तेः। न तु जातेः परिप्रश्न इति विगृह्यते। ननु जातेः परिप्रश्न इत्यस्मिन्विग्रहे कतमः कठ इत्याद्युदाहरणमुपपन्नं, जातौ परिप्रश्न इत्यत्र तु न युज्यते? तत्रापि कठादिजातावेव व्यक्तिबहुत्वाभिप्रायेण परिप्रश्न इत्यदोषः। यदि जातेः परिप्रश्नः स्यात्कतमा कतमर्गित्यादावुपसंख्यानं कर्तव्यं स्याद्**विमृष्टं भवति** विमर्शः कृतो भवति।।४।।

विमर्शे हि कृते सति प्रतिवचनोक्तिरुपपन्ना वागेवक्प्राणः **सामे**ति। वागृचोरेकत्वेऽपि नाष्टमत्वव्याघातः पूर्वस्माद्वाक्यान्तरत्वादाप्तिगुणसिद्धये। वाक्प्राणावृक्सामयोनी इति **वागेवक्प्राणः सामे**त्युच्यते। यथाक्रममृक्सामयोन्योर्वाक्प्राणयोर्ग्रहणे हि सर्वासामृचां सर्वेषां च साम्नामवरोधः कृतः स्यात्। सर्वक्सामावरोधे चक्सामसाध्यानां कर्मणामवरोधः कृतः स्यात्। तदवरोधे च सर्वे कामा अवरुद्धाः स्युः। **ओमित्येतदक्षरमुद्गीथ** इति भक्त्याशङ्का निवर्त्यते। **तद्वा एतदि**ति **मिथुनं** निर्दिश्यते। किं तन्मिथुनमित्याह **यद्वाक्च प्राणश्च** सर्वऋक्सामकारणभूतौ मिथुनम्। **ऋक्च साम चे**ति ऋक्सामकारणभूतावृक्सामशब्दोक्तावित्यर्थः। न तु स्वतन्त्रमृकच साम च मिथुनम्। अन्यथा

यद्वाक्च प्राणश्चर्क्च साम च ।।५।।

तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे सꣳसृज्यते यदा वै मिथुनौ समागच्छत आपयतो वै तावन्योन्यस्य कामम् ।।६।।

आपयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वान-क्षरमुद्गीथमुपास्ते ।।७।।

इन दोनों के मिथुन (जोड़े) हैं।।५।।

उक्त मिथुन के ओंकार में संसृष्ट होने का फल

वह यह मिथुन "ओम्" इस अक्षर में संसृष्ट होता है। जिस समय मिथुन के अवयव परस्पर मिलते हैं, उस समय में एक दूसरे की कामनाओं को प्राप्त कराते हैं। (ऐसा लोक में ग्राम्य धर्म के समय मिथुन के अवयव स्त्री और पुरुष के संसर्ग में देखा गया है)।।६।।

उक्त उपासना का फल

जो उपासक इस प्रकार "ओम" अक्षररूप उद्गीथ की उपासना करता है वह (यजमान की) कामनाओं को प्राप्त कराने वाला होता है।।७।।

हि वाक्च प्राणश्चेत्येकं मिथुनमृक्साम चापरं मिथुनमिति द्वे मिथुने स्याताम्। तथा च तदेतन्मिथुनमित्येकवचननिर्देशोऽनुपपन्नः स्यात्। तस्मादृक्सामयोन्योर्वाक्प्राणयोरेव मिथुनत्वम्।।५।।

तदेतदेवंलक्षणं **मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे संसृज्यते**। एवं सर्वकामाप्तिगुणविशिष्टं मिथुनमोंकारे संसृष्टं विद्यत इत्योंकारस्य सर्वकामाप्तिगुणवत्त्वं सिद्धम्। वाङ्मयत्वमोंकारस्य प्राणनिष्पाद्यत्वं च मिथुनेन संसृष्टत्वं मिथुनस्य कामापयितृत्वं प्रसिद्धमिति दृष्टान्त उच्यते। यथा लोके **मिथुनौ** मिथुनावयवौ स्त्रीपुंसौ **यदा समागच्छतो** ग्राम्यधर्मतया संयुज्येयातां, तदाऽऽ**पयतः** प्रापयतो**ऽन्योन्यस्ये**तरेतरस्य तौ **कामम्**। तथा स्वात्मानुप्रविष्टेन मिथुनेन सर्वकामाप्तिगुणवत्त्वमोंकारस्य सिद्धमित्यभिप्रायः।।६।।

तदुपासकोऽप्युद्गाता तद्धर्मा भवतीत्याह— **आपयिता ह वै कामानां** यजमानस्य **भवति य एतदक्षरमेवमा**प्तिगुणव**दुद्गीथमुपास्ते** तस्यैतद्यथोक्तं फलमित्यर्थः। "तं यथा यथोपासते तदेव भवति" (मं. ब्रा. २०) इति श्रुतेः।।७।।

तद्वा एतदनुज्ञाक्षरं यद्धि किंचानुजानात्योमित्येव तदाहैषो एव समृद्धिर्यदनुज्ञा समर्धयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ।।८।।

तेनेयं त्रयी विद्या वर्तत ओमित्याश्रावयत्योमिति शँसत्यो-

ओंकार में समृद्धि गुण

वह यह "ओंकार" ही अनुमतिसूचक अक्षर है। अतएव (लोक में कोई विद्वान् या धनी पुरुष धनादि के लिये) किसी को जो कुछ अनुमति देता है, तो "ओम्" ऐसा ही कहता है। यह अनुज्ञा ही समृद्धि का सूचक है। जो इस प्रकार जानने वाला पुरुष समृद्धि गुणयुक्त इस उद्गीथ की उपासना करता है, निश्चय ही वह यह यजमान की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है।।८।।

ओंकार की स्तुति

उस अक्षर से ही वह ऋग्वेदादि रूपत्रयी विद्या (और उसमें विहित कर्म प्रवृत्त होते हैं) "ओम्" ऐसा उच्चारण कर अध्वर्यु आश्रावण कर्म कराता है, "ओम्" ऐसा बोल कर होता

समृद्धिगुणवांश्चोंकारः। कथम्? **तद्वा** एतत्प्रकृत**मनुज्ञाक्षरम**नुज्ञा च साऽक्षरं च तत्। अनुज्ञाऽनुमतिरोंकार इत्यर्थः। कथमनुज्ञेत्याह श्रुतिरेव। **यद्धि किंच** यत्किंच लोके ज्ञानं धनं वा**ऽनुजानाति** विद्वान्धनी वा तत्रानुमतिं कुर्वन्नो**मित्येव तदाह**। तथा च वेदे "त्रयस्त्रिंशदित्योमिति होवाच" (बृ. ३.९.१) इत्यादि। तथा च लोकेऽपि तवेदं धनं गृह्णामीत्युक्त ओमित्याह। अत एषा उ **एवैषैव समृद्धिर्यदनुज्ञा** याऽनुज्ञा सा समृद्धिस्तन्मूलत्वादनुज्ञायाः समृद्धो ह्योमित्यनुज्ञां ददाति। तस्मात्समृद्धि-गुणवानोंकार इत्यर्थः। समृद्धिगुणोपासकत्वात्तद्धर्मा सन्**समर्धयिता ह वै कामानां** यजमानस्य **भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त** इत्यादि पूर्ववत्।।८।।

अथेदानीमक्षरं स्तौत्युपास्यत्वात्प्ररोचनार्थम्। कथं, **तेना**क्षरेण प्रकृते**नेयमृ**ग्वेदादिलक्षणा **त्रयी विद्या** त्रयीविद्याविहितं कर्मेत्यर्थः। न हि त्रयी विद्यैवाऽऽश्रावणादिभि**र्वर्तते** कर्म तु तथा प्रवर्तत इति प्रसिद्धम्। कथ**मोमित्याश्रावयत्योमिति शंसत्यो-मित्युद्गायती**ति लिङ्गाच्च सोमयाग इति गम्यते। तच्च **कर्मैतस्यैवाक्षरस्यापचित्यै**

मित्युद्गायत्येतस्यैवाक्षरस्यापचित्यै महिम्ना रसेन ।।९।।

तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद। नाना तु विद्या चाविद्या च यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोनिषदा तदेव

शंसन कराता है और "ओम्" ऐसा उच्चारण कर ही उद्गाता उद्गान करता है। इस अक्षर की पूजा के लिये ही (वेदोक्त सम्पूर्ण कर्म है) तथा ऋत्विक् यजमानादि के प्राणरूप महिमा से एवं व्रीहि-यवादि रस से निष्पन्न हुए हवि के द्वारा वैदिक कर्म सम्पन्न होता है।।९।।

अज्ञानी और ज्ञानी के कर्मफल में भेद

जो कोई उस अक्षर को इस प्रकार जानता है और जो ऐसा नहीं जानता है, वे दोनों ही उस अक्षर के द्वारा कर्म करते हैं, परन्तु विद्या और अविद्या दोनों भिन्न फल वाले हैं। जो कोई विद्या श्रद्धा और योग से युक्त हो जिस कर्म को करता है उसका वही कर्म अन्य की अपेक्षा प्रबलतर

पूजार्थम्। परमात्मप्रतीकं हि तत्। तदपचितिः। परमात्मन एव सा। "स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः" (गी. १८.४६) इति स्मृतेः। **महिम्ना रसेन** किंचैतस्यैवाक्षरस्य महिम्ना महत्त्वेन ऋत्विग्यजमानादिप्राणैरित्यर्थः। तथैतस्यैवाक्षरस्य रसेन व्रीहियवादिरसनिर्वृत्तेन हविषेत्यर्थः। यागहोमाद्यक्षरेण क्रियते। तच्चाऽऽदित्यमुपतिष्ठते। ततो वृष्ट्यादिक्रमेण प्राणोऽन्नं च जायते। प्राणैरन्नेन च यज्ञस्तायते। अत उच्यतेऽक्षरस्य महिम्ना रसेनेति।।९।।

तत्राक्षरविज्ञानवतः कर्म कर्तव्यमिति स्थितमाक्षिपति— **तेना**क्षरेण**भौ यश्चैत**दक्षर**मेवं** व्याख्यातं **वेद**, यश्च कर्ममात्रविदक्षरयाथात्म्यं **न वेद** तावु**भौ कुरुतः** कर्म। तयोश्च कर्मसामर्थ्यादेव फलं स्यात्किं तत्राक्षरयाथात्म्यविज्ञानेनेति। दृष्टं हि लोके हरीतकीं भक्षयतोस्तद्रसाभिज्ञेतरयोर्विरेचनम्। नैवम्। यस्मा**न्नाना तु विद्या चाविद्या च**। भिन्ने हि विद्याविद्ये। तुशब्दः पक्षव्यावृत्त्यर्थः। नोंकारस्य कर्माङ्गत्वमात्रविज्ञानमेव रसतमाप्तिसमृद्धिगुणवद्विज्ञानं किं तर्हि ततोऽभ्यधिकम्। तस्मात्तदङ्गाधिक्यात्फलाधिक्यं युक्तमित्यभिप्रायः। दृष्टं हि लोके वणिकशबरयोः पद्मरागादिमणिविक्रये वणिजो विज्ञानाधिक्यात्फलाधिक्यम्। तस्मा**द्यदेव विद्यया** विज्ञानेन युक्तः सन्**करोति** कर्म **श्रद्धया** श्रद्दधानश्च सन्**नुपनिषदा** योगेन युक्तश्चेत्यर्थः। **तदेव** कर्म **वीर्यवत्तरम-**

वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति ॥१०॥

इति प्रथमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः॥१॥

(अथ प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः)

देवासुरा ह वै यत्र संयेतिर उभये प्राजापत्यास्तद्ध देवा

होता है। अतएव निश्चय ही यह सम्पूर्ण संसार इस ओंकर अक्षर का ही व्याख्यान है॥१०॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

निम्नाङ्कित आख्यायिका से प्राण उपासना श्रेष्ठ सिद्ध होती है

प्रसिद्ध है कि प्रजापति के पुत्र देवता (शास्त्रालोकित इन्द्रिय वृत्तियाँ) और असुर (विषयासक्त तमःप्रधान इन्द्रिय वृत्तियाँ) किसी निमित्त को लेकर परस्पर युद्ध करने लगे। उनमें से देवताओं

विद्वत्कर्मणोऽधिकफलं **भवतीति**। विद्वत्कर्मणो वीर्यवत्तर (त्व) वचनादविदुषोऽपि कर्म वीर्यवदिह भवतीत्यभिप्रायः। न चाविदुषः कर्मण्यनधिकारः, औषस्त्ये काण्डेऽविदुषामप्यार्त्विज्यदर्शनात्। रसतमाप्तिसमृद्धिगुणवदक्षरमित्येकमुपासनम्। मध्ये प्रयत्नान्तरादर्शनात्। अनेकैर्हि विशेषणैरनेकधोपास्यत्वात्**खल्वेतस्यैव** प्रकृतस्योद्गीथाख्यस्या**क्षरस्योपव्याख्यानं** भवति॥१०॥

इति प्रथमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः॥१॥

देवासुरा देवाश्चासुराश्च। देवा दीव्यतेर्द्योतनार्थस्य शास्त्रोद्भासिता इन्द्रियवृत्तयः। असुरास्तद्विपरीताः स्वेष्वेवासुषु विष्वग्विषयासु प्राणनक्रियासु रमणात्स्वाभाविक्यस्तमआत्मिका इन्द्रियवृत्तय एव। **ह वा** इति पूर्ववृत्तोद्भासकौ निपातौ। यत्र यस्मिन्निमित्त इतरेतरविषयापहारलक्षणे **संयेतिरे**। संपूर्वस्य यततेः संग्रामार्थत्वमिति संग्रामं कृतवन्त इत्यर्थः। शास्त्रीयप्रकाशवृत्त्यभिभवनाय प्रवृत्ताः स्वाभाविक्यस्तमोरूपा इन्द्रियवृत्तयोऽसुराः। तथा तद्विपरीताः शास्त्रार्थविषयविवेकज्योतिरात्मानो देवाः स्वाभाविकतमोरूपासुराभिभवनाय प्रवृत्ता इत्यन्योन्याभिभवोद्भवरूपः संग्राम इव सर्वप्राणिषु प्रतिदेहं देवासुरसङ्ग्रामोऽनादिकालप्रवृत्त इत्यभिप्रायः। स इह श्रुत्याऽऽख्यायिकारूपेण धर्माधर्मोत्पत्तिविवेकविज्ञानाय कथ्यते **प्राणविशुद्धिविज्ञानविधिपरतया**। अतः उभयेऽपि

उद्गीथमाजहरुरनेनैनानभिभविष्याम इति॥१॥

ते ह नासिक्यं प्राणमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तथ्ंहासुरा पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं जिघ्रति सुरभि च दुर्गन्धि च पाप्मना

ने यह निश्चय किया, कि इस उद्गीथ के द्वारा हम असुरों को जीत लेंगे, ऐसा निश्चय कर उद्गीथ का अनुष्ठान किया।।१।।

घ्राण आदि का असुरों से पराभव

पहले देवताओं ने नासिका में रहने वाले घ्राण की उद्गीथ रूप से उपासना की। किन्तु असुरों ने अधर्म और आसक्ति रूप पाप से घ्राणदेव को बिंध दिया। अतएव घ्राण से वह सुगन्ध

देवासुराः प्रजापतेरपत्यानीति **प्राजापत्याः**। प्रजापतिः कर्मज्ञानाधिकृतः पुरुषः। "पुरुष एवोक्थमयमेव महान्प्रजापतिः" इति श्रुत्यन्तरात्। तस्य हि शास्त्रीयाः स्वाभाविकयश्च करणवृत्तयो विरुद्धा अपत्यानीव तदुद्भवत्वात्। तत्तत्रोत्कर्षापकर्षलक्षणनिमित्ते **ह देवा उद्गीथमु**द्गीथभक्त्युपलक्षितमौद्गात्रं कर्माऽऽ**जह्रु**राहृतवन्तः। तस्यापि केवलस्याऽऽहरणासंभवाज्ज्योतिष्टोमाद्याहृतवन्त इत्यभिप्रायः। तत्किमर्थमाजह्रुरित्युच्यते। **अनेन** कर्म**णैनान**सुरान**भिभविष्याम इत्ये**वमभिप्रायाः सन्तः।।१।।

यदा च तदुद्गीथं कर्माऽऽजिहीर्षवस्तदा— **ते ह** देवा **नासिक्यं** नासिकायां भवं चेतनावन्तं घ्राणं **प्राणमु**द्गीथकर्तारमुद्गातारमुदगीथभक्त्यो**पासांचक्रिरे** (उपासनं) कृतवन्त इत्यर्थः। नासिक्यप्राणदृष्ट्योद्गीथाख्यमक्षरमोंकारमुपासांचक्रिर इत्यर्थः। एवं हि प्रकृतार्थपरित्यागोऽप्रकृतार्थोपादानं च न कृतं स्यात्। खल्वेतस्यैवाक्षरस्येत्योंकारो ह्युपास्यतया प्रकृतः। ननूद्गीथोपलक्षितं कर्माऽऽहृतवन्त इत्यवोचः इदानीमेव कथं नासिक्यप्राणदृष्ट्योंकारमुपासांचक्रिरे इत्यात्थ? नैष दोषः। उद्गीथकर्मण्येव हि तत्कर्तृप्राणदेवतादृष्ट्योद्गीथभक्त्यवयवश्चोंकार उपास्यत्वेन विवक्षितो न स्वतन्त्रः, अतस्तादर्थ्येन कर्माऽऽहृतवन्त इति युक्तमेवोक्तम्। **त**मेवं देवैर्वृतमुद्गातारं **हासुराः** स्वाभाविकतमआत्मानो ज्योतीरूपं नासिक्यं प्राणं देवं स्वोत्थेन **पाप्मना**ऽधर्मासङ्गरूपेण **विविधु**र्विद्धवन्तः संसर्गं कृतवन्त इत्यर्थः। स हि नासिक्यः प्राणः **कल्याणगन्ध-**

ह्येष विद्धः॥२॥

अथ ह वाचमुद्गीथमुपासांचक्रिरे ताꣳहासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तयोभयं वदति सत्यं चानृतं च पाप्मना ह्येषा विद्धा॥३॥

अथ ह चक्षुरुद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधु-

और दुर्गन्ध दोनों ही को सूँघता है क्योंकि वह पाप से बिंधा हुआ है।।२।।

तत्पश्चात् देवताओं ने उद्गीथ दृष्टि से वाणी की उपासना की, किन्तु असुरों ने उसे भी उक्त रीति से पाप के द्वारा बेध डाला। इसी से लोग वाणी द्वारा सत्य और असत्य दोनों ही प्रकार की बात बोलते हैं, क्योंकि वह वाणी आसक्तिरूप पाप से बिंधी हुई है।।३।।

फिर देवताओं ने उद्गीथरूप से चक्षु की उपासना की, असुरों ने उसे भी उक्तरीत्या पाप से वेध दिया। अतएव नेत्र से देखने योग्य और अयोग्य दोनों प्रकार की वस्तुओं को देखता है, क्योंकि वह नेत्र विषयासक्तिरूप पाप से बिंधा हुआ है।।४।।

पुनः देवताओं ने उद्गीथ दृष्टि से श्रोत्र की उपासना की। पूर्वोक्त असुरों ने उसे भी पाप से वेध डाला। इसी से लोग सुनने योग्य और अयोग्य दोनों ही प्रकार की बात श्रोत्र से सुनते हैं। क्योंकि श्रोत्र विषयासक्तिरूप पाप से बिंधा हुआ है।।५।।

तत्पश्चात् देवताओं ने उद्गीथ दृष्टि से मन की उपासना की, बेचारे मन को भी असुरों ने पाप से ही वेध डाला। अतएव संकल्प के योग्य और अयोग्य दोनों ही प्रकार के पदार्थों का

ग्रहणाभिमानासङ्गाभिभूतविवेकविज्ञानो बभूव स तेन दोषेण पाप्मसंसर्गी बभूव। तदिदमुक्तमसुराः पाप्मना विविधुरिति। यस्मादासुरेण पाप्मना विद्धस्**तस्मात्तेन** पाप्मना प्रेरितो घ्राणः प्राणो दुर्गन्धिग्राहकः प्राणिनाम्। अतस्तेनो**भयं जिघ्रति** लोकः **सुरभि च दुर्गन्धि च। पाप्मना ह्येष** यस्मा**द्विद्धः** उभयग्रहणमविवक्षितम्। यस्योभयं हविरार्तिर्मार्छतीति यद्वत्। 'यदेवेदमप्रतिरूपं जिघ्रती (बृ. १.३.३) ति समानप्रकरणश्रुतेः॥२॥

मुख्यप्राणस्योपास्यत्वाय तद्विशुद्धत्वानुभवार्थोऽयं विचारः श्रुत्या प्रवर्तितः। अतश्चक्षुरादिदेवताः क्रमेण विचार्याऽऽसुरेण पाप्मना विद्धा इत्यपोह्यन्ते। समानमन्यत्,

स्तस्मात्तेनोभयं पश्यति दर्शनीयं चादर्शनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम्।।४।।

अथ ह श्रोत्रमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳ शृणोति श्रवणीयं चाश्रवणीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम्।।५।।

अथ ह मन उद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳ संकल्पयते संकल्पनीयं चासंकल्पनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम्।।६।। मुख्यः प्राण से असुरों की हार

अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तꣳहासुरा ऋत्वा विदध्वंसुर्यथाऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसेत।।७।।

संकल्प मन से लोग करते हैं क्योंकि वह भी तो पाप से बिंधा हुआ है।।६।।

मुख्य प्राण से असुरों की हार

तदनन्तर जो यह प्रसिद्ध मुख के भीतर प्राणवायु है, देवताओं ने उद्गीथ दृष्टि से उसकी उपासना की। किन्तु उस प्राण के निकट जाकर असुर ऐसे ही विध्वस्त हो गये, मानो अभेद्य पाषाणखण्ड के पास जाकर मिट्टी का ढेला नष्ट हो गया हो।।७।।

अथ ह वाचं चक्षुः श्रोत्रं मन इत्यादि। अनुक्ता अप्यन्यास्त्वग्रसनादिदेवता द्रष्टव्याः। "एवमु खल्वेता देवताः पाप्मभिः" (बृ. १.३.६) इति श्रुत्यन्तरात्।।३।।४।।५।।६।।

आसुरेण पाप्मना विद्धत्वाद्घ्राणादिदेवता अपोह्याथानन्तरं **य एवायं** प्रसिद्धो मुखे भवो **मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तं हासुराः** पूर्ववद**त्वा** प्राप्य **विदध्वंसु**र्विनष्टा अभिप्रायमात्रेण अकृत्वा किंचिदपि प्राणस्य। कथं विनष्टा, इत्यत्र दृष्टान्तमाह— **यथा** लोकेऽ**श्मानमाखणं** न शक्यते खनितुं कुद्दालादिभिरपि भेत्तुं न शक्योऽखण एवाऽऽखणस्त**मृत्वा** सामर्थ्याल्लोष्टः पांसुपिण्डो वा श्रुत्यन्तराच्चाश्मनि क्षिप्तोऽश्मभेदनाभिप्रायेण तस्याश्मनः किंचिदप्यकृत्वा स्वयं **विध्वंसेत** विदीर्येतैवं विदध्वंसुरित्यर्थः।।७।।

एवं यथाऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसते एवꣳ हैव स विध्वꣳसते यँ एवंविदि पापं कामयते यश्चैनमभिदासति स एषोऽश्माखणः॥८॥

नैवैतेन सुरभि न दुर्गन्धि विजानात्यपहतपाप्मा ह्येष, तेन यदश्नाति तेनेतरान्प्राणानवति। एतमु एवान्ततोऽवित्त्वोत्क्रामति

प्राण उपासक की महिमा

जैसे (टैंकों से भी न टूटने वाले) दुर्भेद्य पाषाण को प्राप्त कर मिट्टी का ढेला नष्ट हो जाता है, वैसे ही वह व्यक्ति विध्वस्त हो जाता है, जो इस प्रकार जानने वाले उपासक पुरुष के प्रति पापाचरण करना चाहता है, या जो इसे ताड़नादि करता है क्योंकि वह प्राण उपासक के समान ही दुर्धर्ष है॥८॥

लोग इस मुख्य प्राण के द्वारा न सुगन्ध को और न दुर्गन्ध को ही जानते हैं, क्योंकि वह प्राण आसक्तिरूप पाप से पराभूत नहीं है। अतः यह प्राण जो कुछ खाता है या पीता है, उससे

एवं विशुद्धोऽसुरैरधर्षितत्वात्प्राण इति। एवंविदः प्राणात्मभूतस्येदं फलमाह— यथाऽश्मानमिति। एष एव दृष्टान्तः। **एवं** हैव स **विध्वंसते** विनश्यति। कोऽसावित्याह— **य एवंविदि** यथोक्तप्राणविदि **पापं** तदनर्हं कर्तुं **कामयत** इच्छति, यश्चाप्ये**नमभिदासति** हिनस्ति प्राणविदं, प्रत्याक्रोशताडनादि प्रयुङ्क्ते, सोऽप्येवमेव विध्वंसत इत्यर्थः। यस्मा**त्स एष** प्राणवित्प्राणभूतत्वादश्माखण इवा**श्माखणो**ऽधर्षणीय इत्यर्थः। ननु नासिक्योऽपि प्राणो वाय्वात्मा यथा मुख्यस्तत्र नासिक्यः प्राणः पाप्मना विद्धः प्राण एव सन्न मुख्यः। कथम्? नैष दोषः नासिक्यस्तु स्थानकरणवैगुण्याद्विद्धो वाय्वात्माऽपि सन्मुख्यः स्थानदेवताबलीयस्त्वान्न विद्ध इति युक्तम्। यथा वास्यादयः शिक्षावत्पुरुषाश्रयाः कार्यविशेषं कुर्वन्ति नान्यहस्तगतास्तद्वद्दोषवद्घ्राणसचिवत्वाद्विद्धा घ्राणदेवता न मुख्यः॥८॥

यस्मान्न विद्धोऽसुरैर्मुख्यस्तस्मा**न्नैवैतेन सुरभि दुर्गन्धि** वा **विजानाति** घ्राणेनैव तदुभयं विजानाति लोकः। अतश्च पाप्मकार्यादर्शना**दपहतपाप्मा**ऽपहतो विनाशितोऽपनीतः पाप्मा यस्मात्सोऽयमपहतपाप्मा **ह्येष** विशुद्ध इत्यर्थः। यस्माच्चाऽऽत्मंभरयः कल्याणव्यासङ्गवत्त्वाद्घ्राणादयो न तथाऽऽत्मंभरिर्मुख्यः, किं तर्हि सर्वार्थः। कथमिति?

व्याददात्येवान्तत इति॥९॥ प्राण का आंगिरस नाम क्यों

तथं हाङ्गिरा उद्गीथमुपासांचक्र एतमु एवाऽऽङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां यद्रसः॥१०॥

अन्य घ्राणादि इन्द्रियों का ही पोषण करता है। अन्त (मरणकाल) में मुख्य प्राण को न प्राप्त कर घ्राणादि प्राण समुदाय शरीर से निकल जाता है। अतएव मरण के समय में पुरुष मुख फाड़ देता है।।९।।

प्राण का आंगिरस नाम क्यों?

अंगिरा नाम के ऋषि ने इस मुख्य प्राण की उद्गीथ रूप से उपासना की थी। अतः इस प्राण को आंगिरस मानते हैं यह प्राण सम्पूर्ण अङ्गों का रसरूप है।।१०।।

उच्यते— **तेन** मुख्येन **यदश्नाति** यत्पिबति लोकस्तेनाशितेन पीतेन **चेतरान्घ्राणादीनवति** पालयति। तेन हि तेषां स्थितिर्भवतीत्यर्थः। अतः सर्वंभरः प्राणो, अतो विशुद्धः। कथं पुनर्मुख्याशितपीताभ्यां स्थितिरेषां गम्यत इति? उच्यते— **एतं** (तमु एव) मुख्यं प्राणं मुख्यप्राणस्य वृत्तिमन्नपाने इत्यर्थः। **अन्ततो**ऽन्ते मरणकालेऽवित्त्वा-ऽलब्ध्वो**त्क्रामति** घ्राणादिप्राणसमुदाय इत्यर्थः। अप्राणो हि न शक्नोत्यशितुं पातुं वा। तेन तदोत्क्रान्तिः प्रसिद्धा घ्राणादिकलापस्य। दृश्यते ह्युत्क्रान्तौ प्राणस्याशिशिषा। अतो **व्याददात्येवा**ऽऽस्यविदारणं करोतीत्यर्थः। तद्ध्यन्नालाभे उत्क्रान्तस्य लिङ्गम्।।९।।

तं हाङ्गिरास्तं मुख्यं हाङ्गिरा इत्येवं गुण**मुद्गीथमुपासांचक्र** उपासनं कृतवान्बको दाल्भ्य इति वक्ष्यमाणेन संबध्यते। तथा बृहस्पतिरित्यायास्य इति चोपासांचक्रे बक इत्येवं संबन्धं कृतवन्तः केचित्। **एतमु एवाऽऽङ्गिरसं** बृहस्पतिमायास्यं प्राणं **मन्यन्त** इति वचनात्। भवत्येवं यथाश्रुतासंभवे, संभवति तु यथाश्रुत-मृषिचोदनायामपि श्रुत्यन्तरवत्। तस्माच्छतर्चिन इत्याचक्षत एतमेव सन्तमृषिमपि। तथा माध्यमा गृत्समदो विश्वामित्रो वामदेवोऽत्रिरित्यादिऋषीनेव प्राणमापादयति श्रुतिः। तथैतानप्यृषीन्प्राणोपासकानङ्गिरोबृहस्पत्यायास्यान्प्राणं करोत्यभेदविज्ञानाय। "प्राणो ह पिता प्राणो माता" इत्यादिवच्च। तस्मादृषिरङ्गिरा नाम प्राण एव सन्नात्मानमङ्गिरसं प्राणमुद्गीथमुपासांचक्र इत्येतत्। यद्यस्मात्सो**ऽङ्गानां** प्राणः सन्**रस**स्तेनासावाङ्गिरसः।।१०।।

तेन तꣳ ह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासांचक्र एतमु एव बृहस्पतिं मन्यन्ते वाग्घि बृहती तस्या एष पतिः॥११॥

तेन तꣳ हाऽऽयास्य उद्गीथमुपासांचक्र एतमु एवाऽऽयास्यं मन्यन्त आस्याद्यद्यते॥१२॥

तेन तꣳ ह बको दाल्भ्यो विदांचकार। स ह नैमिशीयानामुद्गाता बभूव स ह स्मैभ्यः कामानागायति॥१३॥

प्राण का बृहस्पति नाम क्यों?

इसी कारण से बृहस्पति ने भी प्राण को उद्गीथ समझ कर उपासना की थी। अतः लोग इस प्राण को ही बृहस्पति मानते हैं, क्योंकि वाक् ही बृहती है और प्राण उस बृहती का पति है।।११।।

प्राण का आयास्य नाम क्यों?

इसी से आयास नामक ऋषि ने प्राण की उद्गीथ दृष्टि से उपासना की थी। अतः लोग इस प्राण को ही आयास्य मानते हैं, क्योंकि यह प्राण आस्य (मुख) से निकलता है।।१२।।

अतएव दल्भ के पुत्र बक ने भी पूर्वोक्त प्रकार से प्राण को जाना। इसी से वह नैमिषारण्य में यज्ञ करने वालों का उद्गाता हुआ और उन यजमानों की कामना के लिये दाल्भ्य ने प्राणविज्ञान सामर्थ्य से ही आगान किया।।१३।।

तथा वाचो बृहत्याः पतिस्तेनासौ बृहस्पतिः। तथा यद्यस्मादास्याद्यते निर्गच्छति **तेनाऽऽयास्य** ऋषिः, प्राण **एव** सन्नित्यर्थः। तथाऽन्योऽप्युपासक आत्मानमेवाऽऽङ्गिरसादिगुणं प्राणमुद्गीथमुपासीतेत्यर्थः।।११।।१२।।

न केवलमङ्गिरःप्रभृतय उपासांचक्रिरे। **तं ह बको** नाम दल्भ्यस्यापत्यं **दाल्भ्यो विदांचकार** यथादर्शितं प्राणं विज्ञातवान्। विदित्वा च **स ह नैमिशीयानां** सत्रिणा**मुद्गाता बभूव**। स च प्राणविज्ञानसामर्थ्यादेभ्यो नैमिशीयेभ्यः **कामानागायति** स्म हाऽऽगीतवान्किलेत्यर्थः।।१३।।

आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वान-क्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम्।।१४।।

इति प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।।२।।

(अथ प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः)

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष

प्राण से ओंकार की उपासना

ऐसा जानने वाला जो विद्वान् इस उद्गीथ नामक ओंकार की पूर्वोक्त रीति से उपासना करता है, वह (अन्य उद्गाता भी) कामनाओं का आगान करने वाला हो जाता है। ऐसी यह अध्यात्म उपासना है।।१४।।

।। इति द्वितीयः खण्डः।।

सूर्य दृष्टि से उद्गीथ की उपासना

अब अधिदैवत उपासना बतलाई जाती है। जो यह सूर्य तपता है (वह उद्गीथ है) उस उद्गीथ की उपासना करे। क्योंकि यह आदित्य उदित होता हुआ प्रजाओं के अन्न उत्पत्ति के लिये उद्गान करता है। इतना ही नहीं, व उदित होकर अन्धकार और तज्जन्य भय का भी नाश

तथाऽन्योऽप्युद्गाताऽऽ**गाता ह वै कामानां** भवति **य एवं विद्वा**न्यथोक्तगुणं प्राण**मक्षरमुद्गीथमुपास्ते** तस्यैतद्दृष्टं फलमुक्तम्। प्राणात्मभावस्त्वदृष्टम्। "देवो भूत्वा देवानप्येति" इति श्रुत्यन्तरात्सिद्धमेवेत्यभिप्रायः **इत्यध्या**त्ममेतदात्मविषयमुद्गीथोपासनमित्युक्तोपसंहारोऽधिदैवतोद्गीथोपासने वक्ष्यमाणे बुद्धिसमाधानार्थः।।१४।।

इति प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।।२।।

अथानन्तरमधिदैवतं देवताविषयमुद्गीथोपासनं प्रस्तुतमित्यर्थोऽनेकधोपास्यत्वादुद्गीथस्य **य एवासाव**ादित्यस्तपति **तमुद्गीथमुपासीता**ऽऽदित्यदृष्ट्योद्गीथमुपासीतेत्यर्थः। तमुद्गीथमित्युद्गीथशब्दोऽक्षरवाची सन्कथमादित्ये वर्तत इति, उच्यते **उद्यन्नु**दगच्छन्**वा एष प्रजाभ्यः प्रजार्थमुद्गायति** प्रजानामन्नोत्पत्त्यर्थम्। न ह्यनुद्यति तस्मिन्व्रीह्यादेः पक्तिः स्यादत उद्गायतीवोद्गायति, यथैवोद्गाताऽन्नार्थमत उद्गीथः सवितेत्यर्थः। किंचोद्यन्नैशं **तमस्तज्जं** च **भयं** प्राणिना**मपहन्ति** तमेवंगुणं सवितारं **यो वेद**

प्रजाभ्य उद्गायति। उद्यꣳस्तमो भयमपहन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद॥१॥

समान उ एवायं चासौ चोष्णोऽयमुष्णोऽसौ स्वर इतीममाचक्षते स्वर इति प्रत्यास्वर इत्यमुं तस्माद्वा एतमिमममुं चोद्गीथमुपासीत॥२॥

अथ खलु व्यानमेवोद्गीथमुपासीत यद्वै प्राणिति स प्राणो

करता है। जो इस प्रकार इसे जानता है, वह आत्मा के जन्म मरणादि भय और उसके कारण अज्ञान को नष्ट कर डालता है।।१।।

आदित्य और प्राण में साम्य होने के कारण प्राण दृष्टि से उद्गीथ की उपासना है। इस प्राण को "स्वर" इस नाम से कहते हैं और उस आदित्य को भी "स्वर" एवं "प्रत्यास्वर" ऐसा पुकारते हैं। (अतः तत्त्वतः अभिन्न होने के कारण) इस प्राण और सूर्यरूप से उद्गीथ के अवयवरूप ओंकार की उपासना करे।।२।।

अब (प्रकारान्तर से अध्यात्म उपासना) कही जाती है। व्यान दृष्टि से ही उद्गीथ की उपासना करनी चाहिये। पुरुष जो प्राणन (मुख और नासिका द्वारा वायु का बहिर्गमन) करता

सोऽ**पहन्ता** नाशयिता **ह वै भयस्य** जन्ममरणादिलक्षणस्याऽऽत्मनस्तमसश्च तत्कारणस्याज्ञानलक्षणस्य **भवति**।।१।।

यद्यपि स्थानभेदात्प्राणादित्यौ भिन्नाविव लक्ष्येते, तथाऽपि न सतत्त्वभेदस्तयोः। कथम्—

समान उ एव तुल्य एव प्राणः सवित्रा गुणतः सविता च प्राणेन। यस्मा**दुष्णोऽयं** प्राण उष्णश्चासौ सविता। किंच **स्वर इतीमं** प्राण**माचक्षते** कथयन्ति तथा **स्वर इति प्रत्यास्वर इति** चामुं सवितारम्। यस्मात्प्राणः स्वरत्येव न पुनर्मृतः प्रत्यागच्छति। सविता त्वस्तमित्वा पुनरप्यहन्यहनि प्रत्यागच्छति। अतः **प्रत्यास्वरोऽस्माद्गुणतो नामतश्च समानावितरेतरं प्राणादित्यौ**। अतः सतत्त्वाभेदादेतं प्राण**मिमममुं**चाऽऽदित्य**मुद्गीथमुपासीत**।।२।।

अथ खल्विति प्रकारान्तरेणोपासनमुद्गीथस्योच्यते **व्यानमेव** वक्ष्यमाणलक्षणं प्राणस्यैव वृत्तिविशेष**मुद्गीथमुपासीत**। अधुना तत्सतत्त्वं निरूप्यते— **यद्वै** पुरुषः

यदपानिति सोऽपानः। अथ यः प्राणापानयोः संधिः व्यानो यो व्यानः सा वाक्। तस्मादप्राणन्ननपानन्वाचमभिव्याहरति॥३॥

या वाक्सर्क्तस्मादप्राणन्ननपानन्नृचमभिव्याहरति यर्क्तत्साम तस्मादप्राणन्ननपानन्साम गायति यत्साम स उद्गीथस्त-स्मादप्राणन्ननपानन्नुद्गायति॥४॥

अतो यान्यन्यानि वीर्यवन्ति कर्माणि यथाऽग्नेर्मन्थनमाजेः

है, वह प्राण है (और जो मुख एवं नासिका द्वारा ही) वायु को भीतर खींचता है वह अपान है, तथा प्राणापान की जो संधि है वह व्यान है। जो व्यान है वही वाक् है। अतएव पुरुष प्राण और अपान की क्रियाएं न करता हुआ ही बोलता है॥३॥

वाक् ऋक् साम और उद्गीथ समानता का हेतु

जो वाणी है वही ऋक् है, इससे ही पुरुष प्राण और अपान क्रिया न करता हुआ वाक् विशेष ऋक् का उच्चारण करता है। जो ऋक् है, वही साम है, इसीलिये पुरुष प्राणापान क्रिया न करता हुआ सामगान करता है। जो साम है, वही साम के अवयवरूप ओंकार उद्गीथ भी है। अतः उसका उद्गान भी प्राणापान क्रिया न करता हुआ ही करता है॥४॥

प्राणिति मुखनासिकाभ्यां वायुं बहिर्निःसारयति स **प्राणा**ख्यो वायोर्वृत्तिविशेषो **यदपानित्य**पश्वसिति ताभ्यामेवान्तराकर्षति वायुं सोऽपानोऽपानाख्या वृत्तिः। ततः किमिति? उच्यते— **अथ य** उक्तलक्षणयोः **प्राणापानयोः संधि**स्तयोरन्तरा वृत्तिविशेषः **स व्यानः**, यः सांख्यादिशास्त्रप्रसिद्धः श्रुत्या विशेषनिरूपणान्नासौ व्यान इत्यभिप्रायः। कस्मात्पुनः प्राणापानौ हित्वा महताऽऽयासेन व्यानस्यैवोपासनमुच्यते? वीर्यवत्कर्महेतुत्वात्। कथं वीर्यवत्कर्महेतुत्वमित्याह— **यो व्यानः सा वाक्**। व्यानकार्यत्वाद्वाचः, यस्माद्व्याननिर्वर्त्या वाक**तस्मादप्राणन्ननपानन्**प्राणापानव्यापाराव-कुर्वन्**वाचमभिव्याहरत्यु**च्चारयति लोकः॥३॥

तथा **वाग्विशेषामृचमृ**कसंस्थं च **साम**, सामावयवं चोद्गीथमप्राणन्नपानन्व्यानेनैव निर्वर्तयतीत्यभिप्रायः॥४॥

सरणं दृढस्य धनुष आयमनमप्राणन्ननपानꣳस्तानि करोत्येतस्य हेतोर्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत॥५॥

अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचो ह गिर इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्ने हीदꣳ सर्वꣳस्थितम्॥६॥

इसके सिवा जो अन्य भी अधिक प्रयत्नसाध्य-सामर्थ्ययुक्त कर्म है, जैसे अग्नि का मन्थन, एक सीमा तक दौड़ना और सुदृढ़ धनुष को खींचना इन सभी कर्मों को पुरुष प्राण और अपान क्रिया को न करता हुआ ही करता है। अतएव व्यानदृष्टि से ही उद्गीथ की उपासना करनी चाहिये (प्राण की अन्य वृत्तिरूप से नहीं)॥५॥

अब उद्गीथ के अक्षरों की उपासना निश्चयपूर्वक करनी चाहिये। ''उद्गीथ'' इस शब्द में प्राण ही उत् है अर्थात् ''उत्'' अक्षर में प्राणदृष्टि करनी चाहिये क्योंकि सब लोग प्राण से ही उठते हैं। वाक् ही ''गी'' है क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष वाक् को ''गिर:'' ऐसा कहते हैं तथा अन्न ही ''थ'' है क्योंकि अन्न में ही यह सब स्थित है॥६॥

न केवलं वागाद्यभिव्याहरणमेवातोऽस्मादन्यान्यपि **यानि वीर्यवन्ति कर्माणि** प्रयत्नाधिक्यनिर्वर्त्यानि **यथाऽग्नेर्मन्थनमाजेर्म**र्यादाया: **सरणं** धावनं **दृढस्य धनुष आयमना**कर्षण**मप्राणन्ननपानंस्तानि करोति**। अतो विशिष्टो व्यान: प्राणादिवृत्तिभ्य:। विशिष्टस्योपासनं ज्याय:, फलवत्त्वाद्राजोपासनवत्। **एतस्य हेतो**रेतस्मात्कारणा**द्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत** नान्यद्वृत्त्यन्तरम्। कर्मवीर्यवत्तरत्वं फलम्॥५॥

अथाधुना **खलूद्गीथाक्षराण्युपासीत** भक्त्यक्षराणि मा भूवन्नित्यतो विशिनष्टि— **उद्गीथ इति**। उद्गीथनामाक्षराणीत्यर्थो नामाक्षरोपासनेऽपि नामवत एवोपासनं कृतं भवेदमुकमिश्रा इति यद्वत्। **प्राण एवोत्**, उदित्यस्मिन्नक्षरे प्राणदृष्टि:। कथं प्राणस्योत्त्वमित्याह— **प्राणेन ह्युत्तिष्ठति** सर्वोऽप्राणस्यावसाददर्शनादतोऽस्त्युद: प्राणस्य च सामान्यम्। **वाग्गी:**। **वाचो ह गिर इत्याचक्षते** शिष्टा:। तथा**ऽन्नं थमन्ने हीदं सर्वं स्थितम**तोऽस्त्यन्नस्य थाक्षरस्य च सामान्यम्॥६॥

विनियोग विना स्तुति आदि निष्फल - छन्द; ऋषि; देवता; बीज, शक्ति, कीलक.

उद्गीथ अक्षरोंमें द्युलोकादि और साम वेदादि दृष्टि

द्यौरेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी थमादित्य एवोद्वायुर्गी-रग्निस्थꣳसामवेद एवोद्यजुर्वेदो गीर्ऋग्वेदस्थं दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतान्येवं विद्वानुद्-गीथाक्षराण्युपास्त उद्गीथ इति॥७॥

सकाम उपासना का प्रकार

अथ खल्वाशीःसमृद्धिरुपसरणानीत्युपासीत येन साम्ना

ध्येयानी

उद्गीथ के अक्षरों में द्युलोकादि और साम वेदादि दृष्टि

ऊँचे स्थान होने से द्यौ लोक ही "उत्" है। लोकों का ग्रासक होने से अन्तरिक्ष "गी" है और सबकी प्रतिष्ठा होने से पृथ्वी "थ" है। उक्त न्याय से ही आदित्य उत् है, वायु "गी" है और अग्नि "थ" है। एवं सामवेद ही "उत्" है, यजुर्वेद "गी" है, ऋग्वेद "थ" है। क्योंकि ऋक् में ही साम अधिष्ठित है। इन अक्षरों को ऐसा जानकर जो इन उद्गीथ अक्षरों की उपासना करता है, उसके लिये जो ऋग्वेदादि वाक् का दोह है, उसे वाणी स्वयं ही दुहती है तथा वह अन्नवान् और अन्न का भोक्ता हो जाता है।।७।।

सकाम उपासना का प्रकार

इसके अनन्तर निश्चय ही कामनाओं की समृद्धि बतालाई जाती है। अपने ध्येयों की इस

त्रयाणां श्रुत्युक्तानि सामान्यानि तानि तेनानुरूपेण शेषेष्वपि द्रष्टव्यानि। **द्यौरेवोदु**च्चैः स्थानात् **अन्तरिक्षं गीर्**गिरणाल्लोकानाम्। **पृथिवी थं** प्राणिस्थानात्। **आदित्य** एवोदूर्ध्वत्वात्। वायुर्गीरग्न्यादीनां गिरणात्। **अग्निस्थं** यज्ञकर्मावस्थानात्। **सामवेद एवो**त्स्वर्गसंस्तुतत्वात्। **यजुर्वेदो गीर्**यजुषा प्रत्तस्य हविषो देवतानां गिरणात्। **ऋग्वेदस्थमृ**च्यध्यूढत्वात्साम्नः। उद्गीथाक्षरोपासनफलमधुनोच्यते— **दुग्धे** दोग्ध्य**स्मै** साधकाय। का सा वाक्, कं दोहम्। कोऽसौ दोह इत्याह— यो **वाचो दोहः**। ऋग्वेदादिशब्दसाध्यं फलमित्यभिप्रायस्तद्वाचो दोहस्तं स्वयमेव वाग्दोग्ध्यात्मानमेव दोग्धि। किंचा**न्नवान्**प्रभूतान्नो**ऽन्नाद**श्च दीप्ताग्नि**र्भवति**। य **एतानि** यथोक्तान्**येवं** यथोक्तगुणान्यु**द्गीथाक्षराणि विद्वान्**सन्नु**पास्त उद्गीथ इति**।।७।।

अथ खल्विदानीमाशीः, **समृद्धिराशिषः** कामस्य समृद्धिर्यथा भवेत्तदुच्यत इति

स्तोष्यन्स्यात्तत्सामोपधावेत्॥८॥

यस्यामृचि तामृचं, यदार्षेयं तमृषिं, यां देवतामभिष्टोष्यन्स्यात्तां देवतामुपधावेत्॥९॥

येन च्छन्दसा स्तोष्यन्स्यात्तच्छन्द उपधावेद्येन स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात्तꣳस्तोममुपधावेत्॥१०॥

यां दिशमभिष्टोष्यन्स्यात्तां दिशमुपधावेत्॥११॥

आत्मानमन्तत उपसृत्य स्तुवीत कामं ध्यायन्नप्रमत्तोऽभ्याशो

प्रकार उपासना करे। जिस साम-विशेष से उद्गाता की स्तुति करनी हो, उस साम का (उसकी उत्पत्ति आदि क्रम से) चिन्तन करे।।८।।

जिस ऋचा में (वह साम अधिष्ठित हो) उस ऋचा का, जिस ऋषि वाला हो, उस ऋषि का तथा जिस देवता की स्तुति करनी हो, उस देवता का भी चिन्तन करे।।९।।

वह जिस गायत्री आदि छन्द से स्तुति करने वाला हो, उस छन्द का चिन्तन करे। एवं जिस स्तोम से स्तुति करने वाला हो, उस त्रिवृत्पञ्चदशादिरूप स्तोम का भी चिन्तन करे।।१०।।

जिस दिशा की स्तुति करने वाला हो, देवतादि के सहित उस दिशा का चिन्तन करे।।११।।

(उद्गान करने के लिये समुद्यत) उद्गाता गोत्रोच्चारणपूर्वक अपने स्वरूप का चिन्तन करते हुए स्वरादि के उच्चारण में प्रमाद न करता हुआ स्तुति करे। जिस फलाभिलाषा वाला

वाक्यशेषः। **उपसरणान्युपसर्तव्यान्युपगन्तव्यानि** ध्येयानीत्यर्थः। कथम्, इत्युपासीत, एवमुपासीत। तद्यथा— **येन साम्ना** येन सामविशेषेण **स्तोष्यन्स्तुतिं** करिष्यन्**स्याद्भ**वेदुद्गाता **तत्सामोपधावेदु**पसरेच्चिन्तयेदुत्पत्त्यादिभिः।।८।।

यस्यामृचि तत्साम **तां** चर्चमुपधावेद्देवतादिभिः। **यदार्षेयं** साम **तं** चार्षिम्। **यां देवतामभिष्टोष्यन्स्यात्तां देवतामुपधावेत्**।।९।।

येन च्छन्दसा गायत्र्यादिना **स्तोष्यन्स्यात्तच्छन्द उपधावेत्। येन स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात्**। स्तोमाङ्गफलस्य कर्तृगामित्वादात्मनेपदं स्तोष्यमाण इति। **तं स्तोममुपधावेत्**।।१०।।

यां दिशमभिष्टोष्यन्स्यात्तां दिशमुपधावेदधिष्ठात्रादिभिः।।११।।

आत्मानमुद्गाता स्वरूपं गोत्रनामादिभिः सामादीन्क्रमेण स्वं चाऽऽत्मानमन्त-

ह यदस्मै स कामः समृध्येत यत्कामः स्तुवीतेति यत्कामः स्तुवीतेति॥१२॥

इति प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः॥३॥

(अथ प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्॥१॥

देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशꣳस्ते छन्दो-

होकर वह उद्गाता स्तुति करता है, ऐसे उपासक के लिये वही फल तत्काल समृद्धि को प्राप्त होता है॥१२॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

उद्गीथ नामक ओंकार उपासना के लिये आख्यान

''ओम्'' यह अक्षर ही उद्गीथ है, इस रूप में ही उद्गीथ की उपासना करे क्योंकि ओम् ऐसा उच्चारण कर उद्गाता यज्ञ में उद्गान करता है। उसी की व्याख्या की जाती है। (पूर्वप्रस्तावित ओंकार का ही इस वाक्य द्वारा ग्रहण करना चाहिये। 'उद्गीथ' शब्द के अक्षरों की उपासना से व्यवहित होने के कारण ही पुनः उस मन्त्र की आवृत्ति की गयी है)॥१॥

एक बार मृत्यु से भयभीत हुए देवताओं ने वेदत्रयी (द्वारा प्रतिपादित कर्म) में प्रवेश किया

तोऽन्त उपसृत्य स्तुवीत। कामं ध्यायन्नप्रमत्तः स्वरोष्मव्यञ्जनादिभ्यः प्रमादम- कुर्वंस्ततोऽभ्याशः क्षिप्रमेव **ह यद्य**त्रास्मा एवंविदे **स कामः समृध्येत** समृद्धिं गच्छेत्। कोऽसौ, **यत्कामो** यः कामोऽस्य सोऽयं यत्कामः सं**स्तुवीतेति**। द्विरुक्तिरादरार्था॥१२॥

इति प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः॥३॥

ओमित्येतदित्यादिप्रकृतस्याक्षरस्य पुनरुपादानमुद्गीथाक्षराद्युपासनान्तरितत्वादन्यत्र प्रसङ्गो मा भूदित्येवमर्थम्। प्रकृतस्यैवाक्षरस्यामृताभयगुणविशिष्टस्योपासनं विधातव्यमित्यारम्भः। ओमित्यादि व्याख्यातम्॥१॥

देवा वै मृत्योर्मारकाद्बिभ्यतः किं कृतवन्त इत्युच्यते । **त्रयीं विद्यां** त्रयीविहितं कर्म **प्राविशन्**प्रविष्टवन्तो वैदिकं कर्म प्रारब्धवन्त इत्यर्थः। तन्मृत्योस्त्राणं मन्यमानाः

भिरच्छादयन्यदेभिरच्छादयꣳस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्।।२।।

तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिपश्येदेवं पर्यपश्यदृचि साम्नि यजुषि। ते नु विक्त्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन्।।३।।

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येवꣳ सामैवं यजुरेष

तथा कर्मों में न विनियोग किये गये मन्त्रों से जप-होमादि करते हुए देवताओं ने अपने को इन मन्त्रों से आच्छादित कर दिया। उन्होंने जो छन्दों द्वारा अपने को आच्छादित किया, वही छन्दों (मन्त्रों) का छन्दस्त्व है।।२।।

जैसे (मछुवा गहरे) जल में मछलियों को देख लेता है, वैसे ही मृत्यु ने ऋक्, साम और यजुः संबन्धी कर्मों में संलग्न देवताओं को देखा। (वैदिक कर्मानुष्ठान के कारण विशुद्धान्तःकरण वाले) देवताओं ने मृत्यु की बात को जानकर ऋक्, साम और यजुः संबन्धी (कर्मों से निवृत्त हो) स्वर में ही प्रवेश किया।।३।।

ओम की महिमा

जब (अध्ययन द्वारा उपासक) ऋक् को प्राप्त करता है, तब वह "ओम्" ऐसा कहकर ही बड़े आदर से उच्चारण करता है। ऐसे ही वह साम और यजुः को भी प्राप्त करता है। यह

किंच, **ते** कर्मण्यविनियुक्तैश्**छन्दोभिर्**मन्त्रैर्जपहोमादि कुर्वन्त आत्मानं कर्मान्तरेष्व**च्छादयं**श्छादितवन्तः। **यद्**यस्मा**देभिर्**मन्त्रै**रच्छादयंस्त**त्तस्मा**च्छन्दसां** मन्त्राणां छादना**च्छन्दस्त्वं** प्रसिद्धमेव।।२।।

तांस्तत्र देवान्कर्मपरान्**मृत्युर्यथा** लोके मत्स्यघातको **मत्स्यमुदके** नातिगम्भीरे परिपश्येद्बडिशोदकस्रावोपायसाध्यं मन्यमान **एवं पर्यपश्यद्**दृष्टवान्मृत्युः कर्मक्षयोपायेन साध्यान्देवान्मेने इत्यर्थः। क्वासौ देवान्ददर्शेत्युच्यते— **ऋचि साम्नि यजुषि।** ऋग्यजुःसामसंबन्धिकर्मणीत्यर्थः। **ते नु** देवा वैदिकेन कर्मणा संस्कृताः शुद्धात्मानः सन्तो मृत्योश्चिकीर्षितं विदितवन्तः। **विदित्वा** च त **ऊर्ध्वा** व्यावृत्ताः कर्मभ्य **ऋचः साम्नो** यजुष ऋग्यजुः सामसंबद्धात्कर्मणोऽभ्युत्थायेत्यर्थः। तेन कर्मणा मृत्युभयापगमं प्रति निराशास्तदपास्यामृताभयगुणमक्षरं **स्वरं** स्वरशब्दितं **प्राविशन्नेव** प्रविष्टवन्तः। ओंकारोपासनपराः संवृत्ताः। **एव**शब्दोऽवधारणार्थः सन्समुच्चयप्रतिषेधार्थः।।३।।

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येवं सामैवं यजुः। एष उ स्वरः।

उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता अभया अभवन्॥४॥

स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षरꣳ स्वरममृतमभयं प्रविशति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति॥५॥

इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः॥४॥

(अथ प्रथमाध्यायस्य, पञ्चमः खण्डः)

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ

जो अक्षर है, यही स्वर है, यह अमृत और अभय रूप है; इसमें प्रविष्ट हो देवता अमर और अभय हो गये हैं॥४॥

(उन देवताओं के समान ही दूसरा भी) वह जो इस प्रकार जानकर इस अक्षर की उपासना करता है, वह भी (उन देवताओं के समान ही) इस अमृत अभयरूप अक्षर में ही प्रवेश कर लेता है और उसमें प्रविष्ट हो जिस अमृतत्व से देव अमर हो गये थे, उसी अमृतत्व से युक्त हो यह भी अमर हो जाता है॥५॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

निस्सन्देह जो उद्गीथ है, वही ऋग्वेदियों का प्रणव है और जो प्रणव है, वही यहाँ पर उद्गीथ है। एवं यह आदित्य ही उद्गीथ है और यही प्रणव है, क्योंकि यह सूर्य

कोऽसौ, **यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य** यथागुणमेवा**मृता अभयाश्चाभवन्देवाः**॥४॥

स योऽन्योऽपि देववदे**वैतदक्षरमे**वममृताभयगुणं **विद्वान्प्रणौति** स्तौति। उपासनमेवात्र स्तुतिरभिप्रेता। स तथै**वैतदेवाक्षरं स्वरममृतमभयं प्रविशति**। **तत्प्रविश्य** च राजकुलं प्रविष्टानामिव राज्ञोऽन्तरङ्गबहिरङ्गतावन्न परस्य ब्रह्मणोऽन्तरङ्गबहिरङ्गताविशेषः। किं तर्हि **यदमृता देवा** येनामृतत्वेन यदमृता अभूवंस्तेनैवामृतत्वेन विशिष्टस्तदमृतो भवति न न्यूनता नाप्यधिकताऽमृतत्व इत्यर्थः॥५॥

इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः॥४॥

प्राणादित्यदृष्टिविशिष्टस्योद्गीथस्योपासनमुक्तमेवानूद्य प्रणवोद्गीथयोरेकत्वं कृत्वा तस्मिन्प्राणरश्मिभेदगुणविशिष्टदृष्ट्याऽक्षरस्योपासनमनेकपुत्रफलमिदानीं वक्तव्यमित्यारभ्यते—

इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति॥१॥

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच रश्मीꣳस्त्वं पर्यावर्तयाद्बहवो वै ते भविष्यन्तीत्यधिदैवतम्॥२॥

अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासीतोमिति

"ओम्" ऐसा उच्चारण करता हुआ ही जाता है (अतएव सविता की अनुज्ञा पाकर प्राणों की प्रवृत्ति होती है)।।१।।

रश्मि दृष्टि से सविता की व्यस्त उपासना का विधान

निस्सन्देह मैंने प्रमुखरूप से इसी का (आदित्य और उसकी रश्मियों का अभेद करके) गान किया। इसी से तू मेरा एक ही पुत्र है, ऐसा कौषीतकी ने अपने पुत्र से कहा। अतः तू सूर्य और रश्मियों का भेदरूप से चिन्तन कर, इससे निश्चय ही तुझे बहुत से पुत्र होंगे, यह अधिदैवत उपासना है।।२।।

मुख्य प्राण रूप से उद्गीथ की उपासना

इसके बाद अध्यात्म उपासना कही जाती है। यह जो प्रमुख प्राण है, उसकी उद्गीथ रूप

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो बह्वृचानां, **यश्च प्रणवस्तेषां स** एव च्छान्दोग्य **उद्गीथ**शब्दवाच्यः। **असौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणवः**। प्रणवशब्दवाच्योऽपि स एव बह्वृचानां नान्यः। उद्गीथ आदित्यः। कथम्? उद्गीथाख्यमक्षरमो**मित्येतदेष हि** यस्मात्**स्वरन्नु**च्चारयन्ननेकार्थत्वाद्धातूनाम्। अथवा स्वरन्गच्छन्ने**ति**। अतोऽसावुद्गीथः सविता।।१।।

त**मेतमु एवाहमभ्यगासिषमा**भिमुख्येन गीतवानस्म्यादित्यरश्म्यभेदं कृत्वा ध्यानं कृतवानस्मीत्यर्थः। यत**स्तस्मात्**कारणा**न्मम त्वमेकोऽसि** पुत्र इति **ह कौषीतकिः** कुषीतकस्यापत्यं कौषीतकिः **पुत्रमुवाचो**क्तवान्। अतो **रश्मीना**दित्यं च भेदेन **त्वं पर्यावर्तयात्**पर्यावर्तयेत्यर्थः। त्वंयोगात्। एवं **बहवो वै ते** तव पुत्रा **भविष्यन्तीत्यधिदैवतम्**।।२।।

अथानन्तर**मध्यात्ममु**च्यते। **य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासीते**त्यादि पूर्ववत्। तथो**मिति ह्येष** प्राणोऽपि **स्वरन्नेत्यो**मिति ह्यनुज्ञां कुर्वन्निव वागादि-प्रवृत्त्यर्थमेतीत्यर्थः। न हि मरणकाले मुमूर्षोः समीपस्थाः प्राणस्योंकरणं शृण्वन्तीति।

ह्येष स्वरन्नेति॥३॥ मुख्य प्राण की व्यस्त उपासना का फल

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच प्राणांस्त्वं भूमानमभिगायताद्बहवो वै मे भविष्यन्तीति॥४॥ प्रणव और उद्गीथ का एकत्व

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इति होतृषदनाद्धैवापि दुरुद्गीतमनुसमाहरतीत्यनुसमाहरतीति॥५॥ अनुसंधान संशोधन।

इति प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः॥५॥

से उपासना करे, क्योंकि (वागादि प्रवृत्ति के लिये) यह "ओम्" इस प्रकार अनुज्ञा करता हुआ जाता है॥३॥

मुख्य प्राण की व्यस्त उपासना का फल

मैंने प्रमुखरूप से केवल मुख्य प्राण का ही ध्यान किया था, इसीलिये तू अकेला ही मेरा पुत्र हुआ; ऐसा कौषीतकी ने अपने पुत्र से कहा। अतः मुझे बहुत से पुत्र होवें इस आशय से तू भेदगुण विशिष्ट प्राणों का चिन्तन कर॥४॥

प्रणव और उद्गीथ का एकत्व

निश्चय ही जो उद्गीथ है, वही प्रणव है और जो प्रणव है वही उद्गीथ है। ऐसा समझकर होतृ सदन (होता के शंसन कर्म करने योग्य स्थान) से उद्गाता हौत्र कर्म में किये हुए, दोषयुक्त उद्गान का अनुसंधान करता है, संशोधन करता है॥५॥

॥इति पञ्चमः खण्डः॥

एतत्सामान्यादादित्येऽप्योंकरणमनुज्ञामात्रं द्रष्टव्यम्॥३॥

एतमु एवाहमभ्यगासिषमित्यादि पूर्ववदेव। अतो वागादीन्मुख्यं च प्राणं भेदगुणविशिष्टमुद्गीथं पश्यन्भूमानं मनसाऽभिगायतात्। पूर्ववदावर्तयेत्यर्थः। बहवो **वै मे** मम पुत्रा **भविष्यन्ती**त्येवमभिप्रायः सन्नित्यर्थः। प्राणादित्यैकत्वोद्गीथदृष्टेरेकपुत्रत्व-फलदोषेणापोदितत्वाद्रश्मिप्राणभेददृष्टेः कर्तव्यता चोद्यतेऽस्मिन्काण्डे बहुपुत्रफलत्वार्थम्॥४॥

अथ खलु य उद्गीथ इत्यादिप्रणवोद्गीथैकत्वदर्शनमुक्तं तस्यैतत्फलमुच्यते— **होतृषदनाद्धो**ता यत्रस्थः शंसति, तत्स्थानं होतृषदनं हौत्रात्कर्मणः सम्यक्प्रयुक्तादित्यर्थः। न हि देशमात्रात्फलमाहर्तुं शक्यम्। किं **तद्धैवापि दुरुद्गीतं** दुष्टमुद्गीतमुद्गानं कृतमुद्गात्रा स्वकर्मणि क्षतं कृतमित्यर्थः। **तदनुसमाहरत्य**नुसंधत्त इत्यर्थः। चिकित्सयेव धातुवैषम्यसमीकरण**मिति**॥५॥

॥इति प्रथमाह्निकम्॥१॥

इति प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः॥५॥

उद्गीथ सम्बन्धी आधिदैविक उपासनाएं

(अथ प्रथमाध्यायस्य षष्ठ: खण्ड:)

इयमेवर्गग्निः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयत इयमेव साऽग्निरमस्तत्साम ॥१॥

अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयतेऽन्तरिक्षमेव सा वायुरमस्तत्साम ॥२॥

उद्गीथ संबन्धी आधिदैविक उपासनाएं

यह पृथिवी ही ऋक् है तथा अग्नि साम है, वह यह (अग्नि नामक) साम इस (पृथिवी संज्ञक) ऋक् में अधिष्ठित है। अत: (इस समय भी सामगायकों द्वारा) ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है। यह पृथिवी ही 'सा' है और अग्नि 'अम' है। अतएव ये (दोनों मिलकर) साम हैं॥१॥

अन्तरिक्षरूप ही ऋक् है और वायु ही साम है, वह यह (वायुरूप) साम इस (अन्तरिक्षरूप) ऋक् में अधिष्ठित है। अत: ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है। अन्तरिक्ष ही 'सा' है और वायु 'अम' है इस प्रकार ये दोनों साम कहे जाते हैं॥२॥

अथेदानीं सर्वफलसंपत्त्यर्थमुद्गीथस्योपासनान्तरं विधित्स्यते—

इयमेव पृथिव्यृ**क्**। ऋचि पृथिवीदृष्टि: कार्या। तथा**ऽग्निः** साम। साम्न्यग्निदृष्टि:। कथं पृथिव्यग्न्योर्ऋक्सामत्वमिति? उच्यते। **तदेतत्त**देतदग्न्याख्यं सामैतस्यां पृथिव्यामृच्यध्यूढमधिगतमुपरिभावेन स्थितमित्यर्थ:। ऋचीव **साम**। **तस्मादत** एव कारणादृच्यध्यूढमेव **साम गीयत** इदानीमपि सामगै:। यथा च ऋक्सामनी नात्यन्तं भिन्ने अन्योऽन्यं तथैतौ पृथिव्यग्नी। कथम्? इयमेव पृथिवी **सा** सामनामार्धशब्दवाच्या। इतरार्धशब्दवाच्यो**ऽग्निरम**स्तदेतत्पृथिव्यग्निद्वयं सामैकशब्दाभिधेयत्वमापन्नं **साम**। तस्मान्नान्योऽन्यं भिन्नं पृथिव्यग्निद्वयं नित्यसंश्लिष्टमृक्सामनी इव। तस्माच्च पृथिव्यग्न्योर्ऋक्सामत्वमित्यर्थ:। सामाक्षरयो: पृथिव्यग्निदृष्टिविधानार्थमियमेव **साऽग्निरम** इति केचित्॥१॥

द्यौरेवर्गादित्यः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते द्यौरेव साऽऽदित्योऽमस्तत्साम ।।३।।

नक्षत्राण्येवर्क्चन्द्रमाः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमा अमस्तत्साम ।।४।।

अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते ।।५।।

द्युलोक ही ऋक् है और आदित्य साम है, वह यह (आदित्यरूप) साम इस (द्यौरूप) ऋक में अधिष्ठित है। अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान (आज भी) किया जाता है। द्यौ ही 'सा' है और आदित्य 'अम' है, इस प्रकार (ये दोनों मिलकर) साम हैं।।३।।

नक्षत्र ही ऋक् है और चन्द्रमा साम है, वह यह (चन्द्रमारूप) साम इस (नक्षत्ररूप) ऋक् में अधिष्ठित है। अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का गान किया जाता है। नक्षत्र ही 'सा' है और चन्द्रमा 'अम' है इस प्रकार ये साम हैं।।४।।

और यह जो आदित्य की शुक्ल प्रभा है, वही ऋक् है एवं आदित्य में जो नील वर्ण अत्यन्त श्यामता है, वह साम है। वह यह नीलवर्ण रूप साम इस शुक्ल रूप दीप्ति में अधिष्ठित है। अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है।।५।।

अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः सामेत्यादि पूर्ववत्।।२।।३।।

नक्षत्राणामधिपति**श्चन्द्रमा** अतः स साम।।४।।

अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भाः शुक्ला दीप्तिः सैवर्क्। **अथ यदा**दित्ये **नीलं परः कृष्णं** परोऽतिशयेन कार्ष्ण्यं **तत्साम। तद्ध्**येकान्तसमाहितदृष्टेर्दृश्यते।।५।।

अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैव साऽथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्सामाथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ॥६॥

तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित,उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो

तथा यह जो आदित्य की शुक्ल प्रभा है, वही 'सा' है, और जो नीलवर्ण अत्यन्त कृष्णता है, वही 'अम' है। ये दोनों मिलकर साम हैं, एवं यह जो आदित्य के मध्य में सुवर्णमय के सदृश पुरुष दिखायी पड़ता है, जो सुवर्ण के समान दाढ़ी मूछों वाला और स्वर्ण के समान केशवाला है, एवं जिसका नख तक सभी अंग सुवर्ण सा है।।६।।

जैसे कप्यास (वानर की गुदा लाल) होती है, वैसे लाल वर्ण वाले कमल के समान अत्यन्त तेजस्वी उसके नेत्र हैं। ऐसे उस आदित्य मण्डलस्थ पुरुष का 'उत्' ऐसा नाम है क्योंकि वह सम्पूर्ण पापों (के सहित उनके कार्यों) से ऊपर उठा हुआ है। जो इस प्रकार जान लेता है,

---

ते एवैते **भाः** शुक्लकृष्णत्वे **सा** चामश्च **साम**। **अथ य एषोऽन्तरादित्य** आदित्यस्यान्तर्मध्ये **हिरण्मयो** हिरण्मय इव हिरण्मयः। न हि सुवर्णविकारत्वं देवस्य संभवति। ऋक्सामगेष्णत्वापहतपाप्मत्वासंभवात्। न हि सौवर्णेऽचेतने पाप्मादिप्राप्तिरस्ति येन प्रतिषिध्येत। चाक्षुषे चाग्रहणात्। अतो लुप्तोपम एव हिरण्मयशब्दोज्योतिर्मय इत्यर्थः। उत्तरेष्वपि समाना योजना। पुरुषः पुरि शयनात्पूरयति वा स्वेनाऽऽत्मना जगदिति दृश्यते निवृत्तचक्षुर्भिः समाहितचेतोभिर्ब्रह्मचर्यादिसाधनापेक्षैः। तेजस्विनोऽपि श्मश्रुकेशादयः कृष्णाः स्युरित्यतो विशिनष्टि— **हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश** इति। ज्योतिर्मयान्येवास्य श्मश्रूणि केशाश्चेत्यर्थः। **आप्रणखात्**प्रणखो नखाग्रं नखाग्रेण सह सर्वः **सुवर्ण** इव भारूप इत्यर्थः।।६।।

तस्यैवं सर्वतः सुवर्णवर्णस्याप्यक्ष्णोर्विशेषः। कथं? **तस्य यथा** कपेर्मर्कटस्याऽऽसः **कप्यासः**। आसेरुपवेशनार्थस्य करणे घञ्। कपिपृष्ठान्तो येनोपविशति। कप्यास इव **पुण्डरीकम**त्यन्ततेजस्व्येवमस्य देवस्**याक्षिणी**। उपमितोपमानत्वान्न हीनोपमा।

य एवं वेद ।।७।।

तस्यर्क्च साम च गेष्णौ तस्मादुद्गीथस्तस्मात्त्वेवोद्गातैतस्य हि गाता स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे देवकामानां चेत्यधिदैवतम् ।।८।।

इति प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः।।६।।

वह सम्पूर्ण पापों से ऊपर उठ ही जाता है।।७।।

उस देव के ऋक् और साम गेष्ण (पक्ष) हैं। इसीलिये वह देव उद्गीथ कहा गया है। अतएव उसका गायक उद्गाता कहा जाता है। क्योंकि वह इस (उत्) का ही गाने वाला है।। वह यह 'उत्' नामक देव जो इस (आदित्य लोक) से ऊपर लोक हैं और जो इन देवताओं की कामनाएं है; उन सभी का शासक है। बस! यह अधिदैवत उद्गीथ उपासना कही गयी है।।८।।

।।इति षष्ठः खण्डः।।

तस्यैवंगुणविशिष्टस्य गौणमिदं नामोदिति। कथं गौणत्वम्। **स एष** देवः **सर्वेभ्यः पाप्मभ्यः** पाप्मना सह तत्कार्येभ्य इत्यर्थः। य आत्माऽपहतपाप्मेत्यादि वक्ष्यति। **उदित** उद् इत उद्गत इत्यर्थः। अतोऽसावुन्नामा। तमेवंगुणसंपन्नमुन्नामानं यथोक्तेन प्रकारेण **यो वेद** सोऽप्येवमेवोदेत्युद्गच्छति सर्वेभ्यः पाप्मभ्यः। **ह वा** इत्यवधारणार्थो निपातौ। उदेत्येवेत्यर्थः।।७।।

तस्योद्गीथत्वं देवस्याऽऽदित्यादीनामिव विवक्षितत्वादाह— **तस्यर्क्च साम च गेष्णौ** पृथिव्याद्युक्तलक्षणे पर्वणी। सर्वात्मा हि देवः। परापरलोककामेशितृत्वादुपपद्यते पृथिव्यग्न्यृक्सामगेष्णत्वम्। सर्वयोनित्वाच्च। यत एवमुन्नामा चासावृक्सामगेष्णश्च तस्मादृक्साम गेष्णत्वप्राप्तमुद्गीथत्वमुच्यते परोक्षेण, परोक्षप्रियत्वाद्देवस्य तस्मादुद्गीथ इति। **तस्मात्त्वेव** हेतोरुदं गायतीत्युद्गाता। यस्माद्ध्येतस्य यथोक्तस्योन्नाम्नो गाताऽसावतो युक्तोद्गातेति नामप्रसिद्धिरुद्गातुः। **स एष** देव उन्नामा **ये चामुष्मा-**दादित्यात्**पराञ्चः** परागञ्चनादूर्ध्वा **लोकास्तेषां** लोकानां **चेष्टे** न केवलमीशितृत्वमेव चशब्दाद्धारयति च। ''स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्'' इत्यादिमन्त्रवर्णात्। किंच **देवकामानामीष्टे** इत्येतदधिदैवतं देवताविषयं देवस्योद्गीथस्य स्वरूपमुक्तम्।।८।।

इति प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः।।६।।

(अथ प्रथमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः)

अथाध्यात्मं वागेवर्क्प्राणः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते। वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥१॥

चक्षुरेवर्गात्मा साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते। चक्षुरेव साऽऽत्माऽमस्तत्साम ॥२॥

श्रोत्रमेवर्ङ्मनः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते। श्रोत्रमेव सा मनोऽमस्तत्साम ॥३॥

अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं

उद्गीथसंबन्धी अध्यात्म उपासनाएं

अब अध्यात्म उपासना का वर्णन किया जाता है। वाक् ही ऋक् है और प्राण साम है। इस प्रकार इस (वाक्रूप) ऋक् में प्राणरूप साम अधिष्ठित है। अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का (आज भी) गान किया जाता है। वाक् ही 'सा' है और प्राण ही 'अम' हैं, इस प्रकार ये साम हैं॥१॥

नेत्र ही ऋक् है और जीवात्मा साम है। इस प्रकार इस ऋक् में यह साम बैठा है। इसलिये ऋक् में अधिष्ठित साम का गान ही किया जाता है। चक्षु ही 'सा' है और जीवात्मा ही 'अम' है, एवं ये दोनों साम हैं॥२॥

श्रोत्र ही ऋक् है और मन साम है। इस प्रकार इस (श्रोत्ररूपी) ऋक् में यह (मनरूप) साम

अथाधुनाऽध्यात्ममुच्यते। वागेवर्क्प्राणः **साम।** अधरोपरिस्थानत्वसामान्यात्। प्राणो घ्राणमुच्यते सह वायुना, वागेव सा प्राणोऽम इत्यादि पूर्ववत्॥१॥

चक्षुरेवर्गात्मा साम। आत्मेति च्छायात्मा तत्स्थत्वात्**साम**॥२॥

श्रोत्रमेवर्ङ्मनः साम, श्रोत्रस्याधिष्ठातृत्वान्मनसः सामत्वम्॥३॥

अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्क्। **अथ यन्नीलं परः कृष्णमादित्य**

तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते। अथ यदेवैतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैव साऽथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्साम ॥४॥

अथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते सैवर्क्तत्साम तदुक्थं तद्यजुस्तद्ब्रह्म तस्यैतस्य तदेव रूपं यदमुष्य रूपं यावमुष्य

बैठा है। अतः ऋक् में अधिष्ठित ही साम का गान किया जाता है। श्रोत्र ही 'सा' है और मन ही 'अम' है। इस प्रकार ये दोनों साम हैं।।३।।

तथा यह जो नेत्रों की शुक्लप्रभा है वही ऋक् है और जो नीलवर्ण अत्यन्त श्यामता है, वह साम है। इस प्रकार इस ऋक् में यह साम स्थित है। अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है। तथा यह जो नेत्र की शुक्लदीप्ति है, वही 'सा' है और नीलवर्ण गहरी श्यामता है, वही 'अम' है। इस प्रकार ये दोनों साम हैं।।४।।

अध्यात्म एवं अधिदैव पुरुष की एकता

तथा यह जो नेत्रों के मध्य में पुरुष दीखता है वही ऋक् है, वही साम है, वही उक्थ है, वही यजुः है और वही ब्रह्म है। उस इस नेत्रस्थ पुरुष का वही रूप है, जो

इव दृक्शक्त्यधिष्ठानं **तत्साम**।।४।।

अथ य एषोऽन्तरक्षिणी पुरुषो दृश्यते। पूर्ववत्। **सैवर्ग**ध्यात्मं वागाद्या पृथिव्याद्या चाधिदैवतम्। प्रसिद्धा च ऋक्पादबद्धाक्षरात्मिका। तथा **साम**। उक्थसाहचर्याद्वा स्तोत्रं सामोक्थं शस्त्रमुक्थादन्यत्तथा **यजुः** स्वाहास्वधावषडादि सर्वमेव वाग्यजुस्तत्स एव। सर्वात्मकत्वात्सर्वयोनित्वाच्चेति ह्यवोचाम। ऋगादि-प्रकरणा**त्तद्ब्रह्मे**ति त्रयो वेदाः। **तस्यैतस्य** चाक्षुषस्य पुरुषस्य **तदेव रूपम**ति-दिश्यते। किं **तद्यदमुष्या**ऽऽदित्यपुरुषस्य। हिरण्मय इत्यादि **यद**धिदैवतमुक्तम्। **यावमुष्य गेष्णौ** पर्वणी तावेवास्यापि चाक्षुषस्य गेष्णौ। **यच्चा**मुष्य **नामो**दित्युद्गीथ इति च **तदे**वास्य **नाम**। स्थानभेदाद्रूपगुणनामातिदेशादीशितृत्वविषयभेदव्यप-देशाच्चाऽऽदित्यचाक्षुषोर्भेद इति चेत्। न। अमुनाऽनेनैवेत्येकस्योभयात्मप्राप्त्यनुपपत्तेः। द्विधाभावेनोपपद्यत इति चेत्। वक्ष्यति हि स एकधा भवति त्रिधा भवतीत्यादि। न। चेतनस्यैकस्य निरवयवत्वाद्द्विधाभावानुपपत्तेः। तस्मादध्यात्माधिदैवतयोरेकत्वमेव।

गेष्णौ तौ गेष्णौ यन्नाम तन्नाम ।।५।।

स एष ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे मनुष्यकामानां (णां) चेति तद्ये इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मात्ते धनसनयः ।।६।।

अथ य एतदेवं विद्वान्साम गायत्युभौ स गायति सोऽमुनैव स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्ताꣳश्चाऽऽप्नोति देवकामाꣳश्च ।।७।।

सूर्यमण्डलस्थ पुरुष का है और जो उसके पक्ष हैं, वे ही उसके भी पक्ष हैं; जो उसका नाम है, वही इसका भी नाम है।।५।।

वह यह नेत्रस्थ पुरुष इस (अध्यात्म आत्मा) से जो नीचे के लोक हैं, उनका तथा मनुष्य संबन्धी कामनाओं का शासन करता है। अत: जो ये गायक लोग वीणा में गाते हैं, वे उस ईश्वर का ही गान करते हैं। अतएव वे धनवान् हो जाते हैं ।।६।।

अभेददृष्टि से की गयी उक्त उपासना का फल

तथा जो दोनों की एकता समझ कर साम गान करता है वह (चाक्षुष आत्मा और आदित्य आत्मा) दोनों की स्तुति करता है, एवं वह उपासक उस आदित्य के ही द्वारा जो इससे भी ऊपर के लोक हैं और जो देवताओं के भोग हैं, उन्हें भी प्राप्त कर लेता है।।७।।

यत्तु रूपाद्यतिदेशो भेदकारणमवोचो, न तद्भेदावगमाय। किं तर्हि स्थानभेदाद्भेदाशङ्का मा भूदित्येवमर्थम्।।५।।

स एष चाक्षुषः पुरुषो **ये चैतस्मादा**ध्यात्मिकादात्मनो**ऽर्वाञ्चो**ऽर्वागगता **लोकास्तेषां चेष्टे मनुष्य**संबन्धिनां **च कामानाम्**। **तत्तस्माद्ये इमे वीणायां गायन्ति** गायकास्त **एतमेव गायन्ति**। यस्मादीश्वरं गायन्ति **तस्मात्ते धनसनयो** धनलाभयुक्ता धनवन्त इत्यर्थः।। ६।।

अथ य एतदेवं विद्वान्यथोक्तं देवमुद्गीथं विद्वान्**साम गायत्युभौ स गायति** चाक्षुषमादित्यं च। तस्यैवंविदः फलमुच्यते— **सोऽमुनैवा**ऽऽदित्येन **स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्तांश्चाऽऽप्नोति** आदित्यान्तर्गतदेवो भूत्वेत्यर्थो **देवकामांश्च**।।७।।

अथानेनैव ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्ताꣳश्चाऽऽप्नोति मनुष्यकामाꣳश्च तस्मादु हैवंविदुद्गाता ब्रूयात् ।।८।।

कं ते काममागायानीत्येष ह्येव कामागानस्येष्टे य एवं विद्वान्साम गायति साम गायति ।।९।।

इति प्रथमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।।७।।

(अथ प्रथमाध्यायस्याष्टमः खण्डः)

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः शिलकः शालावत्यश्चैकि-

तथा चाक्षुष पुरुष के द्वारा ही जो इससे नीचे के लोक हैं, उन्हें एवं मानुषी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। अतः इस प्रकार जानता हुआ उद्गाता (यजमान से इस प्रकार) कहे।।८।।

मैं तेरे लिए किन कामनाओं का आगान करूँ? क्योंकि यह उद्गाता इष्ट कामनाओं के आगान में समर्थ होता है। जो ऐसा जानता है, वह सामगान करता है।।९।।

।। इति सप्तमः खण्डः।।

अनेकधा दृष्टान्तों से उद्गीथ उपासना का उत्कर्ष प्रदर्शन

यह इतिहास प्रसिद्ध है कि शलावत का पुत्र शिलक, चिकितायन का पुत्र दाल्भ्य और जीवल का पुत्र प्रवाहण, ये तीनों ही उद्गीथ आदि के विज्ञान में कुशल थे। उन्होंने एक दूसरे

अथानेनैव चाक्षुषेणैव **ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तांश्चाऽऽप्नोति मनुष्यकामांश्च** चाक्षुषो भूत्वेत्यर्थः। **तस्मादु हैवंविदुद्गाता ब्रूया**द्यजमानं **कमिष्टं ते** तव **काममागायानीति**। **एष हि** यस्मादुद्गाता **कामागानस्यो**द्गानेन कामं संपादयितु**मीष्टे** समर्थ इत्यर्थः। कोऽसौ? **य एवं विद्वान्साम गायति साम गायति**। द्विरुक्ति-रुपासनसमाप्त्यर्था।।८।।९।।

इति प्रथमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः।।७।।

अनेकधोपास्यत्वादक्षरस्य प्रकारान्तरेण परोवरीयस्त्वगुणफलमुपासनान्तरमानिनाय। इतिहासस्तु सुखावबोधनार्थः। **त्रयस्त्रिसंख्याकाः**। **ह** इत्यैतिह्यार्थः। **उद्गीथ** उद्गीथज्ञानं

तायनो दाल्भ्यः प्रवाहणो जैवलिरिति ते होचुरुद्गीथे वै कुशलाः स्मो हन्तोद्गीथे कथां वदाम इति ।।१।।

तथेति ह समुपविविशुः स ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच भगवन्तावग्रे वदतां ब्राह्मणयोर्वदतोर्वाचꣳश्रोष्यामीति ।।२।।

से कहा- हम लोग उद्गीथ विद्या में कुशल हैं। अतः आप लोगों की सम्मति हो तो उद्गीथ विद्या के संबन्ध में परस्पर (पक्ष-प्रतिपक्ष के उपन्यासपूर्वक) विचार कहें।।१।।

फिर वे "बहुत अच्छा" ऐसा कहकर बैठ गये, फिर जीवल के पुत्र प्रवाहण ने शेष दोनों के प्रति कहा- (कि ब्राह्मण होने के नाते) पहले आप दोनों पूज्य महानुभाव अपना विचार कहें और मैं आप दोनों ब्राह्मणों की कही हुई वाणी का श्रवण करूँगा।।२।।

प्रति **कुशला** निपुणा **बभूवुः**। कस्मिंश्चिद्देशे काले च निमित्ते वा समेतानामित्यभिप्रायः। न हि सर्वस्मिञ्जगति त्रयाणामेव कौशलमुद्गीथादिविज्ञाने। श्रूयन्ते ह्युषस्तिजानश्रुतिकैकेयप्रभृतयः सर्वज्ञकल्पाः। के ते त्रय इत्याह— **शिलको** नामतः शलावतोऽपत्यं **शालावत्यः**। चिकितायनस्यापत्यं **चैकितायनः**। दल्भगोत्रो **दाल्भ्यो** द्व्यामुष्यायणो वा। **प्रवाहणो** नामतो जीवलस्यापत्यं **जैवलिरित्येते** त्रयस्ते **होचुरन्योऽन्यमुद्गीथे वै कुशला** निपुणा इति प्रसिद्धाः **स्मः**। अतो **हन्त** यद्यनुमतिर्भवतांमुद्गीथ उद्गीथज्ञाननिमित्तां कथां विचारणां पक्षप्रतिपक्षोपन्यासेन **वदामो** वादं कुर्म **इत्यर्थः**। तथा च तद्विद्यसंवादे विपरीतग्रहणनाशोऽपूर्वविज्ञानोपजनः संशयनिवृत्तिश्चेति। अतस्तद्विद्यसंयोगः कर्तव्यः इति चेतिहासप्रयोजनम्। दृश्यते हि शिलकादीनाम्।।१।।

तथेत्युक्त्वा ते **समुपविविशुर्ह**ोपविष्टवन्तः किल। तत्र राज्ञः प्रागल्भ्योपपत्तेः स ह प्रवाहणो **जैवलिरुवाचे**तरौ भगवन्तौ पूजावन्ता**वग्रे** पूर्वं **वदताम्**। ब्राह्मणयोरिति लिङ्गाद्राजाऽसौ युवयो**र्ब्राह्मणयोर्वदतोर्वाचं श्रोष्यामि**। अर्थरहितामित्यपरे वाचमिति विशेषणात्।।२।।

स ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच हन्त त्वा पृच्छानीति पृच्छेति होवाच ॥३॥

का साम्नो गतिरिति स्वर इति होवाच स्वरस्य का गतिरिति प्राण इति होवाच प्राणस्य का गतिरित्यन्नमिति होवाचान्नस्य का गतिरित्याप इति होवाच ॥४॥

अपां का गतिरित्यसौ लोक इति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरिति न स्वर्गं लोकमतिनयेदिति होवाच स्वर्गं वयं

तत्पश्चात् शिलक-शालावत्य ने चैकितायन-दाल्भ्य से कहा कि यदि तुम अनुमति दो तो मैं तुमसे कुछ पूछूँ। उसने कहा- "पूछो"।।३।।

उद्गीथरूप साम का आश्रय क्या है- इसके उत्तर में कहा कि "स्वर ही" उसका आश्रय है। स्वर की गति क्या है- इस प्रश्न के उत्तर में "प्राण" ऐसा कहा, क्योंकि स्वर प्राण से निष्पन्न होता है। प्राण की गति क्या है- ऐसा पूछने पर "अन्न" ऐसा उत्तर दिया और अन्न की गति क्या है- ऐसा पूछने पर दाल्भ्य ने "जल" है ऐसा कहा।।४।।

जल की गति क्या है- इस पर दाल्भ्य ने "वह लोक" ऐसा कहा, (क्योंकि उस लोक

उक्तयोः **स ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच—हन्त** यद्यनुमंस्यसे **त्वा** त्वां **पृच्छानी**त्युक्त इतरः **पृच्छेति होवाच**।।३।।

लब्धानुमतिराह— **का साम्नः**, प्रकृतत्वादुद्गीथस्य। उद्गीथो ह्यत्रोपास्यत्वेन प्रकृतः। "परोवरीयांसमुद्गीथम्" (छा. १.९.२) इति च वक्ष्यति। **गति**राश्रयः परायण**मि**त्येतत्। एवं पृष्टो दाल्भ्य उवाच— **स्वर इति**। स्वरात्मकत्वात्साम्नः। यो यदात्मकः स तद्गतिस्तदाश्रयश्च भवतीति युक्तं मृदाश्रय इव घटादिः। **स्वरस्य का गतिरिति, प्राण इति होवाच**। प्राणनिष्पाद्यो हि स्वरस्तस्मात्स्वरस्य प्राणो गतिः। **प्राणस्य का गतिरित्यन्नमिति होवाच**। अन्नावष्टम्भो हि प्राणः। "शुष्यति वै प्राण ऋतेऽन्नात्" (बृ. ५.१२.१) इति श्रुतेः। "अन्नं दाम" (बृ. २.२.१) इति च। **अन्नस्य का गतिरित्याप इति होवाच**। अप्संभवत्वादन्नस्य।।४।।

अपां का गतिरित्यसौ लोक इति होवाच। अमुष्माद्धि लोकाद्वृष्टिः संभवति।

लोकꣳ सामाभिसꣳस्थापयामः स्वर्गसꣳस्तावꣳ हि सामेति ।।५।।

तꣳ ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाचाप्रतिष्ठितं वै किल ते दाल्भ्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति ।।६।।

से ही वृष्टि होती है) उस लोक की गति क्या है- उसके उत्तर में कहा, स्वर्ग का अतिक्रमण साम को नहीं करना चाहिये। हम साम को स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित करते हैं, क्योंकि साम की स्वर्गरूप से संस्तुति की गयी है। अतः स्वर्ग ही साम है।।५।।

उस चैकितायन-दाल्भ्य से शालावत्य-शिलक ने कहा- हे दाल्भ्य! निश्चय ही तेरा साम परोवरीय रूप से असमाप्त गति वाला है। यदि इस समय कोई असहिष्णु सामवेत्ता अप्रतिष्ठित साम को प्रतिष्ठित कह दे कि "तेरा मस्तक पृथिवी पर गिर जाय" तो निस्सन्देह तेरा शिर गिर जायेगा।।६।।

अमुष्य लोकस्य का गतिरिति पृष्टो दाल्भ्य उवाच— **स्वर्गममुं लोकमतीत्या**श्रयान्तरं साम **न नयेत्कश्चिदिति होवाचाऽऽह**। अतो **वयमपि स्वर्गं लोकं सामाभिसंस्थापयामः**। स्वर्गलोकप्रतिष्ठं साम जानीमः इत्यर्थः। **स्वर्गसंस्तावं** स्वर्गत्वेन संस्तवनं संस्तावो यस्य तत्साम स्वर्गसंस्तावं **हि** यस्मात्स्वर्गो वै लोकः **साम वेद इति** श्रुतेः।।५।। ⊛ प्रतिष्ठा करते हैं!

तमितरः शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच— अप्रतिष्ठितमसंस्थितं परोवरीयस्त्वेनासमाप्तगति सामेत्यर्थः। वा इत्यागमं स्मारयति **किले**ति च, **दाल्भ्य ते** तव **साम। यस्त्व**सहिष्णुः सामविदे**तर्ह्ये**तस्मिन्काले **ब्रूयात्**कश्चिद्विपरीतविज्ञानमप्रतिष्ठितं साम प्रतिष्ठितमित्येवंवादापराधिनं **मूर्धा** शिरस्ते **विपतिष्यति** विस्पष्टं पतिष्यतीति। एवमुक्तस्यापराधिनस्तथैव तद्विपतेन्न संशयो न त्वहं ब्रवीमीत्यभिप्रायः। ननु मूर्धपातार्हं चेदपराधं कृतवानतः परेणानुक्तस्यापि पतेन्मूर्धा न चेदपराध्युक्तस्यापि नैव पतति। अन्यथाऽकृताभ्यागमः कृतनाशश्च स्याताम्। नैष दोषः। कृतस्य कर्मणः शुभाशुभस्य फलप्राप्तेर्देशकालनिमित्तापेक्षत्वात्। तत्रैवं सति मूर्धपातनिमित्तस्याप्यज्ञानस्य पराभिव्याहारनिमित्तापेक्षत्वमिति।।६।।

हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरित्ययं लोक इति होवाचास्य लोकस्य का गतिरिति न प्रतिष्ठां लोकमतिनयेदिति होवाच प्रतिष्ठां वयं लोकꣳ सामाभिसꣳस्थापयामः प्रतिष्ठासꣳस्तावꣳ हि सामेति ।।७।।

तꣳ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते शालावत्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाच ।।८।।

इति प्रथमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।।८।।

साम की इस प्रतिष्ठा को मैं आप से ही जानना चाहता हूँ। इस पर शालावत्य ने कहा- जान लो। तब उस लोक की गति क्या है, इसके उत्तर में शिलक ने कहा- "यह लोक", (क्योंकि यह लोक ही यागादि के द्वारा उस लोक का पोषक है) फिर इस लोक का आश्रय क्या है- ऐसा पूछने पर "सम्पूर्ण प्राणियों की प्रतिष्ठा", प्रत्यक्षसिद्ध पृथिवी लोक का अतिक्रमण साम को नहीं करना चाहिये। अतः हम प्रतिष्ठाभूत इस लोक में ही साम को भली प्रकार से स्थित कराते हैं, क्योंकि साम की प्रतिष्ठारूप से ही संस्तुति की गयी है।।७।।

तब शालावत्य से जैवलि-प्रवाहण ने कहा- हे शिलक! तुम्हारा साम निस्सन्देह नाशवान् है। अतः यदि कोई ऐसा कह दे, कि "तुम्हारा मस्तक गिर जायेगा" तो निश्चय ही तुम्हारा मस्तक गिर गया होता। शालावत्य ने कहा- मैं इसे आपसे जानना चाहता हूँ। तब प्रवाहण ने 'जान लो', ऐसा उत्तर दिया।।८।। ।।इत्यष्टमः खण्डः।।

एवमुक्तो दाल्भ्य आह— **हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानि** यत्प्रतिष्ठं सामेत्युक्तः प्रत्युवाच शालावत्यो **विद्धीति होवाच। अमुष्य लोकस्य का गतिरिति** पृष्टो दाल्भ्येन शालावत्योऽ**यं लोक इति होवाच**। अयं हि लोको यागदानहोमादिभिरमुं लोकं पुष्यधरणी प्रतिष्ठेति। अतः साम्नोऽप्ययं लोकः प्रतिष्ठैवेति युक्तम्। **अस्य लोकस्य का गतिरित्युक्तः** आह शालावत्यः। **न प्रतिष्ठामिमं लोकमतीत्य नयेत्साम** कश्चित्। अतो **वयं प्रतिष्ठां लोकं सामाभिसंस्थापयामः**। यस्मात्**प्रतिष्ठासंस्तावं हि** प्रतिष्ठात्वेन संस्तुतं **सामेत्यर्थः**। "इयं वै रथंतरम्" इति च श्रुतिः।।७।।

तमेवमुक्तवन्तं ह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते शालावत्य सामेत्यादि पूर्ववत्। ततः शालावत्यः आह— **हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाच**।।८।।

इति प्रथमाध्यायस्याष्टमः खण्डः।।८।।

(४) पृथिवी रथंतर शब्द वाच्य साम ही है।

(अथ प्रथमाध्यायस्य नवमः खण्डः)

अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम् ॥१॥

स एष परोवरीयानुद्‍गीथः स एषोऽनन्तः परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य एतदेवं विद्वान्परोवरीयाꣳसमुद्‍गीथमुपास्ते ॥२॥

प्रवाहण के मत में आकाश सबका आश्रय माना गया है

इस लोक का आश्रय क्या है, इस पर प्रवाहण ने कहा कि सर्वाभिन्न आकाशरूप परमात्मा ही आश्रय है, क्योंकि यह समस्त भूत आकाशरूप परमात्मा से उत्पन्न होते हैं। आकाश में ही लीन होते हैं और आकाश ही इनसे बड़ा है। अतएव आकाश ही इनका आश्रय है।।१।।

इस उद्‍गीथ की उत्कृष्टता और उपासना का परिणाम

वह यह उद्‍गीथ ही श्रेष्ठ से श्रेष्ठ है। अतः यह अनन्त भी है, जो इस प्रकार इसे जानकर इस परमात्मरूप अनन्त उद्‍गीथ की उपासना करता है, उस विद्वान् का (जीवन उत्तरोत्तर) उत्कृष्टतर हो जाता है और वह विद्वान् उत्तरोत्तर ब्रह्माकाश तथा विशिष्ट लोकों को जीत लेता है।।२।।

इतरोऽनुज्ञातः आह— **अस्य लोकस्य का गतिरिति। आकाश इति होवाच** प्रवाहणः। आकाश इति च पर आत्मा ''आकाशो वै नामेति'' श्रुतेः। तस्य हि कर्म सर्वभूतोत्पादकत्वम्। तस्मिन्नेव हि भूतप्रलयः। तत्तेजोऽसृजत। तेजः परस्यां देवतायामिति हि वक्ष्यति। **सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि** स्थावरजङ्गमान्या**काशादेव समुत्पद्यन्ते** तेजोबन्नादिक्रमेण सामर्थ्यात्। **आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति** प्रलयकाले तेनैव विपरीतक्रमेण **हि** यस्मा**दाकाश एवैभ्यः** सर्वेभ्यो भूतेभ्यो **ज्यायान्**महत्तरोऽतः स सर्वेषां भूतानां परमयनं **परायणं** प्रतिष्ठा त्रिष्वपि कालेष्वित्यर्थः।।१।।

यस्मात्परं परं वरीयो वरीयसोऽप्ये**ष** वरः परश्च वरीयांश्च **परोवरीयानुद्‍गीथः** परमात्मसंपन्न इत्यर्थः। अत एव **स एषोऽनन्तो**ऽविद्यमानान्तस्तमेतं परोवरीयांसं परमात्मभूतमनन्तमेवं विद्वान्परोवरीयांसमुद्‍गीथमुपास्ते। तस्यैत्फलमाह— **परोवरीयः** परं परं वरीयो विशिष्टतरं जीवनं **हास्य** विदुषो **भवति** दृष्टं फलमदृष्टं च **परोवरीयस** उत्तरोत्तरविशिष्टतरानेव ब्रह्माकाशान्ताँल्**लोकाञ्जयति य एतदेवं विद्वानुद्‍गीथमुपास्ते**।।२।।

तथ्ऽहैतमतिधन्वा शौनक उदरशाण्डिल्यायोक्त्वोवाच यावत्त एनं प्रजायामुद्गीथं वेदिष्यन्ते परोवरीयो हैभ्यस्तावदस्मिँल्लोके जीवनं भविष्यति ॥३॥

तथाऽमुष्मिँल्लोके लोक इति स य एतदेवं विद्वानुपास्ते परोवरीय एव हास्यास्मिँल्लोके जीवनं भवति तथाऽमुष्मिँल्लोके लोक इति लोके लोक इति ॥४॥

इति प्रथमाध्यायस्य नवमः खण्डः॥९॥

(इस उद्गीथ को जानने वाले) अतिधन्वा-शौनक ने इस उद्गीथ का उदर-शाण्डिल्य के प्रति निरूपण कर उससे कहा, जब तक तेरी प्रजा में से इस उद्गीथ को जानेंगे, तब तक इस लोक में उनका जीवन उत्तरोत्तर इन प्रसिद्ध लौकिक जीवनों की अपेक्षा उत्कृष्टतर होता जायेगा॥३॥

तथा उस (अदृष्ट) परलोक में भी उसे उत्कृष्टतर लोक की प्राप्ति होगी। जो इस प्रकार जानने वाला पुरुष उसकी उपासना करता है, उसका जीवन निश्चय ही इस लोक में उत्कृष्टतर होता है तथा परलोक में भी उसे विशिष्टतर लोक मिलता है। उसे (उत्तरोत्तर उत्कृष्ट) लोक प्राप्त होता है॥४॥

॥इति नवमः खण्डः॥

किं च तमेतमुद्गीथं विद्वा**नतिधन्वा** नामतः शुनकस्यापत्यं **शौनक उदरशाण्डिल्याय** शिष्यायैतदुद्गीथदर्शन**मुक्त्वोवाच**। **यावत्ते** तव प्रजायां प्रजासंततावित्यर्थः। **एनमुद्गीथं** त्वत्संततिजा **वेदिष्यन्ते** ज्ञास्यन्ति तावन्तं कालं **परोवरीयो हैभ्यः** प्रसिद्धेभ्यो लौकिकजीवनेभ्य उत्तरोत्तरविशिष्टतरं **जीवनं** तेभ्यो भविष्यति॥३॥

तथाऽदृष्टेऽपि परलोके**ऽमुष्मिन्प**रोवरीयाल्लोँको भविष्यतीत्युक्तवाञ्शाण्डिल्यायातिधन्वा शौनकः। स्यादेतत्फलं पूर्वेषां महाभाग्यानां नैदंयुगीनामित्याशङ्कानिवृत्तय आह— **स यः** कश्चिदे**तदेवं विद्वानु**द्गीथमेत**द्ध्युपास्ते** तस्याप्येवमेव **परोवरीय एव हास्यास्मिँल्लोके जीवनं भवति तथाऽमुष्मिँल्लोके लोक इति लोके लोक इति**॥४॥

इति प्रथमाध्यायस्य नवमः खण्डः॥९॥

(अथ प्रथमाध्यायस्य दशमः खण्डः)

मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास ।।१।।

स हेभ्यं कुल्माषान्खादन्तं बिभिक्षे तꣳ होवाच । नेतोऽन्ये विद्यन्ते यच्चये मे इमे उपनिहिता इति ।।२।।

उषस्ति चाक्रायण का आख्यान

वज्रपात से आहत कुरुदेश के महावतों के ग्राम में (सर्वथा स्तनादि स्त्रीजनोचित चिह्नादि से रहित अल्पवयस्क) पत्नी के साथ चक्र का पुत्र उषस्ति (दुर्भिक्ष हो जाने के कारण) दुरवस्था में रहता था।।१।।

उसने कुत्सित उड़द खाते हुए एक महावत से माँगा। तब महावत ने उषस्ति से कहा– इन जूठे उड़दों के सिवा मेरे पास और उड़द नहीं हैं। जो एकत्रित थे, वे सभी मेरे इन पात्रों में रखे हुए हैं। (अतः अब मैं क्या करूँ और आपकी माँग को कैसे पूरा करूँ)।।२।।

उद्गीथोपासनप्रसङ्गेन प्रस्तावप्रतिहारविषयमप्युपासनं कर्त(वक्त)व्यमितीदमारभ्यते। आख्यायिका तु सुखावबोधार्था। **मटचीहतेषु** मटच्योऽशनयस्ताभिर्हतेषु नाशितेषु कुरुषु कुरुदेशसस्येष्वित्यर्थः। ततो दुर्भिक्षे जाते **आटिक्या**ऽनुपजातपयोधरादिस्त्रीव्यञ्जनया **सह जाययोषस्तिर्ह** नामतश्चक्रस्यापत्यं चाक्रायणः। इभो हस्ती तमर्हतीतीभ्य ईश्वरो हस्त्यारोहो वा तस्य ग्राम इभ्यग्रामस्तस्मिन्**प्रद्राणको**ऽन्नालाभात्। द्रा कुत्सायां गतौ। कुत्सितां गतिं गतोऽन्त्यावस्थां प्राप्त इत्यर्थः। **उवासो**षितवान्कस्यचिद्गृहमाश्रित्य।।१।।

सोऽन्नार्थमटन्निभ्यं **कुल्माषान्**कुत्सितान्माषान्**खादन्तं** भक्षयन्तं यदृच्छयोपलभ्य **बिभिक्षे** याचितवान्। **तमु**षस्तिं होवाचेभ्यः। **नेतो**ऽस्मान्मया भक्ष्यमाणादुच्छिष्टराशेः कुल्माषा **अन्ये** न **विद्यन्ते**। यच्चये राशौ **मे** ममो**पनिहिताः** प्रक्षिप्ता इमे भाजने किं करोमीत्युक्तः प्रत्युवाचोषस्तिः।।२।।

एतेषां मे देहीति होवाच तानस्मै प्रददौ हन्तानुपानमित्युच्छिष्टं वै मे पीतꣳस्यादिति होवाच ॥३॥

न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा अजीविष्यमिमानखादन्निति होवाच कामो म उदपानमिति ॥४॥

स ह खादित्वाऽतिसेषाञ्जायाया आजहार साऽग्रे एव

उषस्ति ने कहा- तुम मुझे इन उड़दों को ही दे दो। तब महावत ने उषस्ति को उड़द दे दिये (और पास के जल को देखकर कहा कि भाई) 'यह अनुपान भी ले लो'। इस पर उषस्ति ने कहा, यदि मैं इस जल को पीऊँगा तो निश्चय ही मुझसे उच्छिष्ट जल पीना माना जायेगा।।३।।

महावत ने कहा, क्या ये उड़द जूठे नहीं हैं? यह सुनकर उषस्ति ने कहा कि भाई! इन उड़दों को खाये बिना जीवित नहीं रह सकता था, पर जलपान तो मुझे इच्छानुसार मिल ही जाता है। (अतः जीवनरक्षणार्थ उच्छिष्ट अन्न का भोजन दोषावह नहीं है)।।४।।

उषस्ति ने उन उड़दों को खाकर शेष अपनी आटिकी पत्नी के लिये ले आया, पर वह तो

एतेषामेतानित्यर्थः। **मे** मह्यं **देहीति होवाच**। **तान्**स इभ्योऽस्मा उषस्तये **प्रददौ** प्रदत्तवान् अनुपानीयं समीपस्थमुदकं हन्त गृहाणा**नुपानमि**त्युक्तः प्रत्युवाच। **उच्छिष्टं वै मे** ममेदमुदकं **पीतं स्याद्य**दि पास्यामीत्युक्तवन्तं प्रत्युवाचेतरः।।३।।

किं **न स्विदेते** कुल्माषा **अप्युच्छिष्टा** इत्युक्त आहोषस्ति**र्न वा अजीविष्यं** न जीविष्या**मीमान्**कुल्माषा**नखादन्**भक्षयन्**निति होवाच**। **काम** इच्छातो **मे** ममोदकपानं लभ्यत इत्यर्थः। अतश्चैतामवस्थां प्राप्तस्य विद्याधर्मयशोवतः स्वात्मपरोपकारसमर्थस्यैतदपि कर्म कुर्वतो नाऽऽगःस्पर्श इत्यभिप्रायः तस्यापि जीवितं प्रत्युपायान्तरेऽजुगुप्सिते सति जुगुप्सितमेतत्कर्म दोषाय। ज्ञानावलेपेन कुर्वतो नरकपातः स्यादेवेत्यभिप्रायः। प्रद्राणकशब्दश्रवणात्।।४।।

तांश्च **स खादित्वाऽतिशेषान**तिशिष्टाञ्जायायै कारुण्या**दाजहार**। **सा**ऽऽटिक्यग्रे

सुभिक्षा बभूव तान्प्रतिगृह्य निदधौ ।।५।।

स ह प्रातः संजिहानः उवाच यद्बतान्नस्य लभेमहि लभेमहि धनमात्राᳬं राजाऽसौ यक्ष्यते स मा सर्वैरार्त्विज्यैर्वृणीतेति ।।६।।

तं जायोवाच हन्त पते इमे एव कुल्माषा इति तान्खादित्वाऽमुं यज्ञं विततमेयाय ।।७।। विस्तारितमृत्विग्भिरेयाय.

२ झूठा, अपना एवं फीलवान का

उनके आने से पूर्व ही पर्याप्त अन्न प्राप्त कर चुकी थी (फिर भी पति के आदर के लिये) उन जूठे उड़दों को उनके हाथ से लेकर रख लिया ।।५।।

उषस्ति ने प्रातःकाल निद्रा त्यागने के अनन्तर (अपनी पत्नी को सुनाते हुए कहा) भूख से पीड़ित हमें थोड़ा अन्न मिल जाये, तो उसे खाकर समर्थ हो हम थोड़ा धन प्राप्त कर लेते, क्योंकि वह राजा यज्ञ करेगा और समस्त ऋत्विक् कर्मों के लिये मुझ विद्वान् का अवश्य वरण करेगा।।६।।

उषस्ति से उसकी पत्नी ने कहा- हे स्वामिन्! आपके दिये ये उड़द विद्यमान हैं उन्हें ही लीजिये। उषस्ति उन्हें खाकर राजा के उस विस्तृत यज्ञ में गया ।।७।।

एवं कुल्माषप्राप्तेः **सुभिक्षा** शोभनभिक्षा लब्धान्नेत्येतद्**बभूव** संवृत्ता। तथाऽपि स्त्रीस्वाभाव्यादनवज्ञाय तान्कुल्माषान्पत्युर्हस्तात्**प्रतिगृह्य निदधौ** निक्षिप्तवती।।५।।

स तस्याः कर्म जानन्**प्रातरु**षःकाले **संजिहानः** शयनं निद्रां वा परित्यजन्**नुवाच** पत्न्याः शृण्वत्या **यद्**यदि **बते**ति खिद्यमानो**ऽन्नस्य** स्तोकं **लभेमहि** तद्भुक्त्वाऽन्नं समर्थो गत्वा **लभेमहि धनमात्रां** धनस्याल्पम्। ततोऽस्माकं जीवनं भविष्यतीति। धनलाभे च कारणमाह— **राजाऽसौ** नातिदूरे स्थाने **यक्ष्य**ते।। यजमानत्वात्तस्याऽऽत्मनेपदम्। **स** च राजा **मा** मां पात्रमुपलभ्य **सर्वैरार्त्विज्यै**र्ऋत्विक्कर्मभिर्ऋत्विक्कर्मप्रयोजनायेत्यर्थो **वृणीतेति**।।६।।

एवमुक्तवन्तं **जायोवाच**— **हन्त** गृहाण हे **पते! इमे एव** ये मद्धस्ते विनिक्षिप्तास्त्वया **कुल्माषा इति**। **तान्खादित्वाऽमुं यज्ञं** राज्ञो **विततं** विस्तारितमृत्विग्भिरेयाय ।।७।।

तत्रोद्गातॄनास्तावे स्तोष्यमाणानुपोपविवेश स ह प्रस्तोतारमुवाच ॥८॥

प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥९॥

एवमेवोद्गातारमुवाचोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां

वहाँ जाकर आस्ताव (प्रस्तोतागण के स्तुति करने योग्य) स्थान में स्तुति करने वाले उद्गाताओं के समीप बैठ गया और प्रस्तोता से कहा।।८।।

हे प्रस्तोतः! जो देवता प्रस्तावभक्ति में अनुगत है, यदि तुम उसे जाने बिना उसका प्रस्तवन करोगे तो मस्तक गिर जायेगा। (भाव यह कि देवताज्ञानियों के समक्ष देव-अज्ञानी कर्म न करावे, उसके परोक्ष में कर्म करने का देवता के न जानने वालों का भी अधिकार है)।।९।।

ऐसे ही उषस्ति ने उद्गाता से भी कहा- हे उद्गातः! जो देवता उद्गीथ में अनुगत है, यदि

तत्र च गत्वोद्गातॄनुद्गातृपुरुषानागत्य स्तुवन्त्यस्मिन्नित्यास्तावस्तस्मिन्नास्तावे **स्तोष्यमाणानुपोपविवेश** समीप उपविष्टस्तेषामित्यर्थः।। उपविश्य **स ह प्रस्तोतारमुवाच**।।८।।

हे प्रस्तोतरित्यामन्त्र्याभिमुखीकरणाय। **या देवता प्रस्तावं** प्रस्तावभक्ति-मनुगताऽ**न्वायत्ता तां चेद्**देवतां प्रस्तावभक्ते**रविद्वान्सन्प्रस्तोष्यसि** विदुषो मम समीपे। तत्परोक्षेऽपि चेद्विपतेत्तस्य मूर्धा, कर्ममात्रविदामनधिकार एव कर्मणि स्यात्। तच्चानिष्टमविदुषामपि कर्मदर्शनात्, दक्षिणमार्गश्रुतेश्च। अनधिकारे चाविदुषामुत्तर एवैको मार्गः श्रूयेत। न च स्मार्तकर्मनिमित्त एव दक्षिणः पन्थाः। यज्ञेन दानेनेत्यादिश्रुतेः। तथोक्तस्य मयेति च विशेषणाद्विद्वत्समक्षमेव कर्मण्यनधिकारो न सर्वत्राग्नि-होत्रस्मार्तकर्माध्ययनादिषु च। अनुज्ञायास्तत्र तत्र दर्शनात्। कर्ममात्रविदामप्यधिकारः सिद्धः कर्मणीति **मूर्धा ते विपतिष्यतीति**।।९।।

एवमेवोद्गातारं प्रतिहर्तार**मुवाचे**त्यादि समानमन्यत्। ते प्रस्तोत्रादयः कर्मभ्यः

चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ।।१०।।

एवमेव प्रतिहर्तारमुवाच प्रतिहर्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ते ह समारतास्तूष्णीमासांचक्रिरे ।।११।।

इति प्रथमाध्यायस्य दशमः खण्डः।।१०।।

(अथ प्रथमाध्यायस्यैकादशः खण्डः)

अथ हैनं यजमान उवाच भगवन्तं वा अहं विविदिषाणीत्युषस्तिरस्मि चाक्रायण इति होवाच ।।१।।

तुम उसे जाने बिना उद्गान करोगे, तो तेरा मस्तक गिर जायेगा।।१०।।

ऐसे ही प्रतिहर्ता से कहा, हे प्रतिहर्तः! जो देवता प्रतिहार में अनुगत है, यदि तुम उसे जाने बिना प्रतिहरण करोगे, तो तेरा मस्तक गिर जायेगा। तब वे प्रस्तोतादि (मस्तक गिर जाने के भय से) अपने-अपने कर्मों से उपरत हो चुपचाप बैठ गये।।११।।

।।इति दशमः खण्डः।।

राजा और उषस्ति का संवाद

उसके बाद उस उषस्ति से यजमान राजा ने कहा- मैं भगवन् (आप) को जानना चाहता हूँ इस पर उषस्ति ने कहा- मैं चक्र का पुत्र उषस्ति हूँ।।१।।

समारता उपरताः सन्तो मूर्धपातभयात्**तूष्णीमासांचक्रिरे**ऽन्यच्चाकुर्वन्तः। अर्थित्वात्।।१०।।११।।

इति प्रथमाध्यायस्य दशमः खण्डः।।१०।।

अथानन्तरं **हैनमुषस्तिं यजमानो** राजोवाच। **भगवन्तं** वै पूजावन्तमहं **विविदिषाणि** वेदितुमिच्छामीत्युक्त **उषस्तिरस्मि चाक्रायण**स्तवापि श्रोत्रपथमागतो यदीति **होवाचो**क्तवान्।।१।।

स होवाच भगवन्तं वा अहमेभिः सर्वैरार्त्विज्यैः पर्यैषिषं भगवतो वा अहमवित्त्याऽन्यानवृषि ।।२।।

भगवाꣳस्त्वेव मे सर्वैरार्त्विज्यैरिति तथेत्यथ तर्ह्येत एव समतिसृष्टाः स्तुवतां यावत्त्वेभ्यो धनं दद्यास्तावन्मम दद्या इति तथेति ह यजमान उवाच ।।३।।

अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ।।४।।

उस पर यजमान ने कहा- मैंने सम्पूर्ण ऋत्विक कर्मों के लिये आपकी खोज की थी। पर आपको न प्राप्त कर ही मैंने दूसरे ऋत्विगों का वरण किया था।।२।।

अब भी सम्पूर्ण ऋत्विक् कर्मों के लिये श्रीमान् ही रहें। राजा की बात सुनकर उषस्ति ने कहा- 'ठीक है,' और फिर यह भी कहा कि वे ऋत्विक्गण मेरे द्वारा प्रसन्नता से आज्ञा प्राप्त कर स्तुति करें। याद रखो! इन सम्पूर्ण प्रस्तोता आदि को जितना धन दोगे, उतना ही धन मुझे देना। तब यजमान ने कहा- ऐसा ही होगा।।३।।

स ह यजमान **उवाच** सत्यमेवमहं **भगवन्तं** बहुगुणमश्रौषं सर्वैश्च ऋत्विक्कर्मभिरार्त्विज्यैः **पर्यैषिषं** पर्येषणं कृतवानस्मि। अन्विष्य **भगवतो वा अहमवित्त्या**ऽलाभेनान्यानिमान**वृषि** वृतवानस्मि।।२।।

अद्यापि **भगवांस्त्वेव मे** मम **सर्वैरार्त्विज्यै**र्ऋत्विक्कर्मार्थमस्त्वित्युक्त-**स्तथेत्या**होषस्तिः किंत्वथैवं **तर्ह्येत एव** त्वया पूर्वं वृता मया समतिसृष्टा मया सम्यक्प्रसन्नेनानुज्ञाताः सन्तः **स्तुवताम्**। त्वया त्वेतत्कार्यम्। **यावत्त्वेभ्यः** प्रस्तोत्रादिभ्यः सर्वेभ्यो **धनं दद्याः** प्रयच्छसि **तावन्मम दद्या** इत्युक्तस्**तथेति ह यजमान उवाच**।।३।।

अथ हैनमौषस्त्यं वचः श्रुत्वा **प्रस्तोतोपससादो**षस्तिं विनयेनोपजगाम। **प्रस्तोतर्या देवते**त्यादि **मा** मां **भगवानवोच**त्पूर्वम्। **कतमा सा देवता** या प्रस्ताव-भक्तिमन्वायत्तेति।।४।।



प्राण इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रास्तोष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ।।५।।

अथ हैनमुद्गातोपससादोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां

प्रस्ताव देवता के विषय में प्रस्तोता का प्रश्न

उसके बाद उषस्ति के पास विनम्र भाव से प्रस्तोता गया (और बोला) आपने जो मुझसे कहा था कि हे प्रस्तोत:! जो देवता प्रस्ताव में अनुगत है यदि तू उसे जाने बिना ही प्रस्तवन करेगा, तो तेरा मस्तक गिर जायेगा। अत: वह देवता कौन है? (जो प्रस्तावभक्ति में अनुगत है)।।४।।



प्रस्तवा में अनुगत देवता प्राण है।

"वह देवता प्राण है" ऐसा उषस्ति ने कहा, क्योंकि ये सभी चराचर भूत प्रलय काल में प्राण में ही प्रवेश कर जाते हैं और फिर प्राण से ही उत्पन्न होते हैं। अत: वह यह प्राण देवता ही प्रस्ताव में अनुगत है। यदि बिना जाने ही प्रस्ताव भक्ति करता तो मेरे इस प्रकार कहने पर तेरा मस्तक अवश्य गिर जाता।।५।।



उद्गाता का प्रश्न

तदनन्तर उषस्ति के समीप उद्गाता गया और कहा, मुझसे जो आपने कहा था कि हे

पृष्टः **प्राण इति होवाच**। युक्तं प्रस्तावस्य प्राणो देवतेति। कथं, **सर्वाणि** स्थावरजङ्गमानि **भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति** प्रलयकाले **प्राणमभि** लक्षयित्वा प्राणात्मनै**वोज्जिहते** प्राणादेवोद्गच्छन्तीत्यर्थ उत्पत्तिकाले। अतः **सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वांस्त्वं प्रास्तोष्यः** प्रस्तवनं प्रस्तावभक्तिं कृतवानसि यदि **मूर्धा** शिरस्ते व्यपतिष्यद्विपतितमभविष्य**त्तथोक्तस्य मया** तत्काले मूर्धा ते **विपतिष्यतीति**। अतस्त्वया साधु कृतम्। मया निषिद्धः कर्मणो यदुपरमम-कार्षीरित्यभिप्रायः।।५।।

तथोद्गाता पप्रच्छ **कतमा** सोद्गीथभक्तिमनुगताऽन्वायत्ता **देवतेति**।।६।।

चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ।।६।।

आदित्य इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यादित्यमुच्चैः सन्तं गायन्ति सैषा देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुदगास्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ।।७।।

अथ हैनं प्रतिहर्तोपससाद प्रतिहतर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ।।८।।

उद्गातः! जो देवता उद्गीथ में अनुगत है यदि उसे जाने बिना ही उसका उद्गान करेगा, तो तेरा मस्तक गिर जायेगा। (इस पर उद्गाता ने भी पूछा कि) वह देवता कौन है? ।।६।।

उद्गीथानुगत देवता आदित्य है

इस प्रकार पूछे जाने पर "वह देवता आदित्य है" ऐसा उषस्ति ने कहा, क्योंकि ये सभी चराचर प्राणी ऊपर विद्यमान आदित्य का ही गान करते हैं। वह यह आदित्य देवता ही उद्गीथ में अनुगत है। यदि तू उसे बिना जाने ही उद्गान करता, तो मेरे द्वारा उस प्रकार कहे जाने पर तेरा मस्तक गिरा जाता।।७।।

प्रतिहर्ता का प्रश्न

पुनः प्रतिहर्ता उषस्ति के पास गया (और कहा) आपने मुझसे जो कहा था, हे प्रतिहर्तः! जो प्रतिहार में अनुगत देवता है, यदि उसे जाने बिना ही तू प्रतिहरण करेगा, तो तेरा मस्तक गिर जायेगा। अतः वह प्रतिहार में अनुगत देवता कौन है?।।८।।

पृष्टः **आदित्य इति होवाच। सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यादित्यमुच्चै**रूर्ध्वं **सन्तं गायन्ति** शब्दयन्ति स्तुवन्तीत्यभिप्रायः। उच्छब्दसामान्यात्प्रशब्दसामान्यादिव प्राणोऽतः **सैषा देवते**त्यादि पूर्ववत्।।७।।

एवमे**वाथ हैनं प्रतिहर्तोपससाद** कतमा सा देवता **प्रतिहारमन्वायत्ते**ति।।८।।

अन्नमिति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यन्नमेव प्रतिहरमाणानि जीवन्ति सैषा देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रत्यहरिष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति तथोक्तस्य मयेति ।।९।।



इति प्रथमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।।११।।

(अथ प्रथमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः)

अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः

प्रतिहारानुगत देवता अन्न है

इस प्रकार पूछे जाने पर उषस्ति ने कहा– वह देवता अन्न है क्योंकि सम्पूर्ण चराचर प्राणी अपने लिये अन्न का ही हरण करते हुए जीवित रहते हैं। वह यह अन्न देवता प्रतिहार में अनुगत है। यदि तू उसे जाने बिना ही प्रतिहरण करता, तो मेरे द्वारा उक्त प्रकार से कहे जाने पर निश्चय ही तेरा मस्तक गिर जाता।।९।।



शौवसाम का उपाख्यान

उसके बाद अब अन्न प्राप्ति के लिये श्वानों द्वारा देखे गये उद्गीथ का आरम्भ किया जाता

पृष्टोऽ**न्नमिति होवाच। सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यन्नमेवा**ऽऽत्मानं प्रति सर्वतः **प्रतिहरमाणानि जीवन्ति। सैषा देवता** प्रतिशब्दसामान्यात्प्रतिहारभक्तिमनुगता। समानमन्य**त्तथोक्तस्य मयेति**। प्रस्तावोद्गीथप्रतिहारभक्तीः प्राणादित्यान्नदृष्ट्योपासीतेति समुदायार्थः प्राणाद्यापत्तिः कर्मसमृद्धिर्वा फलमिति।।९।।

इति प्रथमाध्यायस्यैकादशः खण्डः।।११।।

अतीते खण्डेऽन्नाप्राप्तिनिमित्ता कष्टावस्थोक्तोच्छिष्टोच्छिष्टपर्युषितभक्षणलक्षणा सा मा भूदित्यन्नलाभायाथानन्तरं **शौवः** श्वभिर्दृष्ट **उद्गीथ** उद्गानं सामातः प्रस्तूयते। **तत्तत्र ह** किल **बको** नामतो दल्भस्यापत्यं **दाल्भ्यो** वा नामतो मित्रायाश्चापत्यं मैत्रेयः। वाशब्दश्चार्थे। द्व्यामुष्यायणो ह्यसौ। वस्तुविषये क्रियास्विव विकल्पानुपपत्तेः। द्विनामा द्विगोत्र इत्यादि हि स्मृतिः। दृश्यते चोभयतः पिण्डभाक्त्वम्। उद्गीथे

स्वाध्यायमुद्वव्राज ॥१॥

तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव तमन्ये श्वानः उपसमेत्योचुरन्नं नो भगवानागायत्वशनायाम वा इति ॥२॥

तान्होवाचेहैव मा प्रातरुपसमीयातेति तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयांचकार ॥३॥

है। वहाँ प्रसिद्ध है, कि (पुराकाल में) दल्भ का पुत्र बक, या मित्रा का पुत्र ग्लाव स्वाध्याय करने के लिये (एकान्त देश में स्थित) जलाशय के समीप गया॥१॥

उस ऋषि के समीप (स्वाध्याय से संतुष्ट हो देवता या ऋषि) श्वेत कुत्ता बनकर प्रकट हुआ। उसके पास दूसरे कुत्तों ने आकर कहा- भगवन्! आप हमारे लिये अन्न का आगान करें, क्योंकि हम निश्चय भूखे हैं॥२॥

उन छोटे-छोटे कुत्तों से श्वेत कुत्ते ने कहा- तुम प्रातःकाल इसी स्थान पर मेरे पास आना। तब दाल्भ्य बक या मैत्रेय-ग्लाव नामक ऋषि उसी स्थान पर प्रतीक्षा करता रहा॥३॥

बद्धचित्तत्वादृषावनादराद्वा वाशब्दः स्वाध्यायार्थः। **स्वाध्यायं** कर्तुं ग्रामाद्बहि**रुद्वव्राजो**-द्गतवान्विविक्तदेशस्थोदकाभ्याशम्। उद्वव्राज प्रतिपालयांचकारेति चैकवचनाल्लिङ्गा-देकोऽसावृषिः। श्वोद्गीथकालाप्रतिपालनादृषेः स्वाध्यायकरणमन्नकामनयेति लक्ष्यतेऽभिप्रायतः॥१॥

स्वाध्यायेन तोषिता देवतर्षिर्वा श्वरूपं गृहीत्वा **श्वा श्वेतः** संस्तस्मा ऋषये तदनुग्रहार्थं **प्रादुर्बभूव** प्रादुश्चकार। **तमन्ये** शुक्लं श्वानं क्षुल्लकाः **श्वान उपसमेत्योचुरु**क्तवन्तो**ऽन्नं नो**ऽस्मभ्यं **भगवानागायत्वा**गानेन निष्पादयत्वित्यर्थः। मुख्यप्राणं वागादयो वा प्राणमन्वन्नभुजः स्वाध्यायपरितोषिताः सन्तोऽनुगृह्णीयुरेनं स्वरूपमादायेति युक्तमेवं प्रतिपत्तुम्। अशनायाम वै बुभुक्षिताः स्मो वा इति॥२॥

एवमुक्ते श्वा श्वेत **उवाच तान्**क्षुल्लाकाञ्शुन **इहैवा**स्मिन्नेव देशे **मा** मां प्रातः प्रातःकाल **उपसमीयातेति**। दैर्घ्यं छान्दसं समीयातेति प्रमादपाठो वा। प्रातःकालकरणं तत्काल एव 'कर्तव्यार्थम्। अन्नदस्य वा सवितुरपराह्णेऽनाभिमुख्यात्। **तत्त**त्रैव **ह बको दाल्भ्यो ग्लावो** वा मैत्रेय ऋषिः **प्रतिपालयांचकार** प्रतीक्षणं कृतवानित्यर्थः॥३॥

ते ह यथैवेह बहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः संरब्धाः सर्पन्तीत्येवमाससृपुस्ते ह समुपविश्य हिं चक्रुः ॥४॥

ओ३मदा३मों पिबा३मों३ देवो वरुणः प्रजापतिः सविता२ऽन्नमिहा२ऽऽहरदन्नपते३ऽन्नमिहा२ऽऽहरा२ऽऽहरो३मिति ॥५॥

इति प्रथमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः॥१२॥

उन कुत्तों ने (वहाँ ऋषि के सामने आकर) जैसे कर्म में बहिष्पवमान् स्तोत्र से स्तवन करने वाले उद्गाता लोग एक दूसरे से मिलकर चलते हैं, वैसे ही (मुँह से एक दूसरे की पूँछ पकड़ कर) भ्रमण किया और वहाँ बैठकर हिंकार किया।।४।।

श्वानों द्वारा किया गया हिंकार

ओं हम खाते हैं, ओं हम पीते हैं, ओं देवता, वरुण, प्रजापति, सूर्यदेव हमारे लिये यहाँ पर अन्न लावें। हे अन्नपते! (सम्पूर्ण अन्न का जनक होने से वही अन्नपति है) तुम हमारे लिये यहाँ अन्न लाओ। अन्न लाओ।।५।।

इति द्वादशः खण्डः

ते श्वानस्तत्रैवाऽऽगम्य ऋषेः समक्षं **यथैवेह** कर्मणि **बहिष्पवमानेन** स्तोत्रेण **स्तोष्यमाणा** उद्गातृपुरुषाः **संरब्धाः** संलग्ना अन्योऽन्यमेव मुखेनान्योन्यस्य पुच्छं गृहीत्वाऽऽ**ससृपुरा**सृप्तवन्तः परिभ्रमणं कृतवन्त इत्यर्थः। ते एवं संसृप्य समुपविश्योपविष्टाः सन्तो **हिं चक्रु**र्हिंकारं कृतवन्तः।।४।।

ओमदामों पिबामों देवो द्योतनात्। **वरुणो** वर्षणाज्जगतः। **प्रजापतिः** पालनात्प्रजानाम्। सविता प्रसवितृत्वात्सर्वस्याऽऽदित्य उच्यते एतैः पर्यायैः, स एवंभूत आदित्यो**ऽन्नम**स्मभ्य**मिहाऽऽहरदा**हरत्विति। ते एवं हिं कृत्वा पुनरप्यूचुः— स त्वं हे**ऽन्नपते**। स हि सर्वस्यान्नस्य प्रसवितृत्वात्पतिः। न हि तत्पाकेन विना प्रभूतमन्नमणुमात्रमपि जायते प्राणिनाम्। अतोऽन्नपतिः। हेऽन्नपतेऽन्नमस्मभ्य-**मिहाऽऽहरा**ऽऽहरेति।। अभ्यास आदरार्थः. ओमिति।।५।।

इति प्रथमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।।१२।।

(अथ प्रथमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः)

अयं वाव लोको हाउकारो वायुर्हाइकारश्चन्द्रमा अथकारः। आत्मेहकारोऽग्निरीकारः ॥१॥

आदित्य ऊकारो निहव एकारो विश्वे देवा औहोयिकारः प्रजापतिर्हिंकारः प्राणः स्वरोऽन्नं या वाग्विराट् ॥२॥

साम के अवयव स्तोभाक्षर की उपासना

यह लोक ही (रथन्तर साम में प्रसिद्ध) 'हा' उकार स्तोभ है। वायु 'हा' इकार है, चन्द्रमा अथकार है, आत्मा इहकार है, और अग्नि ईकार है।।१।।

आदित्य ऊकार है, निहव (आह्वान) एकार है, विश्वेदेव औहोयिकार है। प्रजापति हिंकार है, तथा प्राण स्वर है, अन्न या (स्तोभ) है एवं विराट् वाक् है अर्थात् या इस स्तोभ में अन्नदृष्टि और विराड् दृष्टि वाग् इस स्तोभ में करनी चाहिये।।२।।

भक्तिविषयोपासनं सामावयवसंबद्धमित्यतः सामावयवान्तरस्तोभाक्षरविषयाण्युपासनान्तराणि संहतान्युपदिश्यन्तेऽनन्तरं सामावयवसंबद्धत्वाविशेषात्— अयं **वावायमेव लोको हाउकारः** स्तोभो रथंतरे साम्नि प्रसिद्धः— इयं वै रथंतरमिति। अस्मात्संबन्धसामान्याद्धाउकारस्तोभोऽयं लोक इत्येवमुपासीत।। **वायुर्हाइकारः**। वामदेव्ये सामनि हाइकारः प्रसिद्धः। वाय्वप्संबन्धश्च वामदेव्यस्य साम्नो योनिरिति। अस्मात्सामान्याद्धाइकारं वायुदृष्ट्योपासीत। **चन्द्रमा अथकारः**। चन्द्रदृष्ट्याऽथकारमुपासीत। अन्ने हीदं स्थितम्। अन्नात्मा चन्द्रः। थकाराकारसामान्याच्च। आत्मेहकारः। इहेति स्तोभोऽप्रत्यक्षो ह्यात्मेहेति व्यपदिश्यते। इहेति च स्तोभः। तत्सामान्यात्। अग्निरीकारः। ईनिधानानि चाऽऽग्नेयानि सर्वाणि सामानीत्यतस्तत्सामान्यात्।।१।।

आदित्य ऊकारः। उच्चैरूर्ध्वं सन्तमादित्यं गायन्त्यूकारश्चायं स्तोभः। आदित्यदैवत्ये वा साम्नि स्तोभ **ऊ** इत्यादित्य **ऊकारः**। निहव इत्याह्वानमेकारः स्तोभः। एहीति चाऽऽह्वयन्तीति तत्सामान्यात्। **विश्वे देवा औहोयिकारो** वैश्वदेव्ये साम्नि स्तोभस्य दर्शनात्। **प्रजापतिर्हिंकारः**। अनिरुक्त्याद्धिंकारस्य चाव्यक्तत्वात्। **प्राणः स्वरः**। स्वर इति स्तोभः। प्राणस्य च स्वरहेतुत्वसामान्यात्। **अन्नं या** या इति स्तोभोऽन्नम्। अन्नेन हीदं यातीत्यतस्तत्सामान्यात्। **वागिति** स्तोभो **विराडन्नं** देवताविशेषो वा। वैराजे साम्नि स्तोभदर्शनात्।।२।।

अनिरुक्तस्त्रयोदशः स्तोभः संचरो हुंकारः ॥३॥

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतामेवꣳसाम्नामुपनिषदं वेदोपनिषदं वेद ॥४॥

॥ इति प्रथमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः॥

(अव्यक्त होने के कारण विशेषरूप से) जिसका निरूपण नहीं किया जा सकता और जो कार्य रूप से सञ्चार करने वाला है, वह तेरहवाँ स्तोभ हुंकार है।।३।।



उक्त उपासनाओं का फल

जो इस प्रकार सामावयव रूप स्तोभाक्षर संबन्धी उपनिषद् को जानता है, उसे वाणी, जो उस वाणी का फल है, उस फल को देती है, एवं वह अन्नवान् और अन्न भक्षण करने वाला होता है। 'उपनिषदं वेद' इस शब्द की आवृत्ति अध्याय समाप्ति के लिये की गयी है।।४।।

॥ इति त्रयोदशः खण्डः॥

इस प्रकार छान्दोग्योपनिषत् प्रथम अध्याय की श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीकैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्यमहामण्डलेश्वर श्रीमत्स्वामी विद्यानन्द गिरि जी कृत मिताक्षराहिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।१।।

अनिरुक्तोऽव्यक्तत्वादिदं वेदं वेति निर्वक्तुं न शक्यते इत्यतः **संचरो** विकल्प्यमानस्वरूपं इत्यर्थः। कोऽसावित्याह— त्रयोदशः स्तोभो **हुंकारः**। अव्यक्तो ह्ययमतोऽनिरुक्तविशेष एवोपास्य इत्यभिप्रायः।।३।।

स्तोभाक्षरोपासनाफलमाह—

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहमित्याद्युक्तार्थम्। **य एतामेवं** यथोक्तलक्षणां **साम्नां** सामावयव स्तोभाक्षरविषया**मुपनिषदं** दर्शनं **वेद** तस्यैतद्यथोक्तं फलमित्यर्थः। द्विरभ्यासोऽध्याय-परिसमाप्त्यर्थः। सामावयवविषयोपासनाविशेषपरिसमाप्त्यर्थो वेति।।४।।

॥ इति द्वितीयाह्निकम् ॥२॥

इति प्रथमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः॥१३॥

इति श्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यपरमहंसपरिव्राजकाचार्य-श्रीमच्छंकरभगवत्पादकृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे

प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥१॥

1st अध्याय = सामावयव उपासना, उद्गीत दृष्टि से प्राण का-उपासना
2nd अध्याय = समस्त सामोपासना
प्रतीकों में अन्तर = नर्मदेश्वर, ज्योतिर्लिंग : महापुरुष से स्थापित.
उद्गीत सामावयव, साम ही उपास्य ॐ है। अभ्युदय फलक उपासनायें ऐश्वर्य प्राप्ति कराने वाले.

द्वितीयोऽध्याय:

(अथ द्वितीयाध्यायस्य प्रथम: खण्ड:)

ॐ। समस्तस्य खलु साम्न उपासनꣳ साधु यत्खलु साधु तत्सामेत्याचक्षते यदसाधु तदसामेति ।।१।। (शोभन)

तदुताप्याहु: साम्नैनमुपागादिति साधुनैनमुपागादित्येव

Essence — **सर्वावयव विशिष्ट साम की साधु दृष्टि से उपासना**

ओं समस्त (पाञ्चभक्तिक और साप्तभक्तिक) साम की उपासना निश्चय ही साधु है। जो साधु है वही साम है और जो असाधु होता है वह साम नहीं है (अर्थात् समस्त साम में साधुता है अवयव में नहीं) ऐसा इसे साम रहस्यविद् कहते हैं।।१।।

इसी विषय में विवेक करके कहते हैं (जब यह कहा जाता है कि) वह राजा आदि के पास साम रूप से गया, तो लोग यही कहते हैं कि वह पुरुष राजा या सामन्त के पास साधु भाव से गया। (और जहाँ इसके विपरीत बन्धनादि असाधु कार्य देखते हैं, वहाँ ये ऐसा कहते

ओमित्येतदक्षरमित्यादिना सामावयवविषयमुपासनमनेकफलमुपदिष्टम्। अनन्तरं च स्तोभाक्षरविषयमुपासनमुक्तम्। सर्वथाऽपि सामैकदेशसंबद्धमेव तदिति। अथेदानीं समस्ते साम्नि समस्तसामविषयाण्युपासनानि वक्ष्यामीत्यारभते श्रुति:। युक्तं ह्येकदेशोपासनानन्तरमेकदेशिविषयमुपासनमुच्यत इति।

समस्तस्य सर्वावयवविशिष्टस्य पाञ्चभक्तिकस्य साप्तभक्तिकस्य चेत्यर्थ:। खल्विति वाक्यालंकारार्थ:। **साम्न उपासनं साधु**। समस्ते साम्नि साधुदृष्टि-विधिपरत्वान्न पूर्वोपासननिन्दार्थत्वं साधुशब्दस्य। ननु पूर्वत्राविद्यमानं साधुत्वं समस्ते साम्न्यभिधीयते? न। साधु सामेत्युपास्त इत्युपसंहारात्। साधुशब्द: शोभनवाची। कथमवगम्यत इत्याह— **यत्खलु** लोके **साधु** शोभनमनवद्यं प्रसिद्धं **तत्सामेत्याचक्षते** कुशला:। **यदसाधु** विपरीतं **तदसामेति**।।१।। (निरवद्यं ; निर्दोष)

तत्त्रैवं साध्वसाधुविवेककरणे **उताप्याहु:—साम्नैनं** राजानं सामन्तं **वोपागादु**पगतवान्। कोऽसौ? यतोऽसाधुत्वप्राप्त्याशङ्का स इत्यभिप्राय:। शोभनाभिप्रायेण

तदाहुरसाम्नैनमुपागादित्यसाधुनैनमुपागादित्येव तदाहुः ।।२।।

अथोताप्याहुः नो बतेति यत्साधु भवति साधु बतेत्येव तदाहुरसाम नो बतेति यदसाधु भवत्यसाधु बतेत्येव तदाहुः ।।३।।

स य एतदेवं विद्वान्साधु सामेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳ साधवो धर्मा आ च गच्छेयुरुप च नमेयुः ।।४।।

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः।।१।।

हैं) वह इसके पास असाम रूप से गया अर्थात् वह इसके यहाँ अशोभन अप्रिय रूप से गया।।२।।

इसके बाद ऐसा भी कहते हैं कि हमारा साम हुआ अर्थात् जो शुभ होता है तो अहा! यह साधु है, ऐसा कहा जाता है और ऐसा भी कहते हैं हमारा असाम हुआ। अर्थात् अशुभ होने पर ''अरे! बुरा हो गया'' ऐसा कहते हैं (अतः साम और साधु शब्द समानार्थक सिद्ध हुए)।।३।।

इसे इस प्रकार जानने वाला जो वह पुरुष ''साम साधु है'' ऐसी ही उपासना करता है, उसके पास शास्त्रसम्मत जो साधु धर्म हैं वे अतिशीघ्र आ जाते हैं और उसके प्रति विनम्र भाव भी आ जाते हैं।।४।।

।।इति प्रथमः खण्डः।।

साधुनैनमुपागादित्येव तत्त्राऽऽ**हु**र्लौकिका बन्धनाद्यसाधुकार्यमपश्यन्तः। यत्र पुनर्विपर्यये बन्धनाद्यसाधुकार्यं पश्यन्ति तत्र**साम्नैनमुपागादित्यसाधुनैनमुपागादित्येव तदाहुः**।।२।।

अथोताप्याहुः स्वसंवेद्यं साम **नो**ऽस्माकं **बतेत्य**नुकम्पयन्तः संवृत्तमित्याहुः। एतत्तैरुक्तं भवति **यत्साधु भवति साधु बतेत्येव तदाहुः**। विपर्यये जातेऽसाम **नो बतेति। यदसाधु भवत्यसाधु बतेत्येव तदाहुः**। तस्मात्सामसाधुशब्दयोरेकार्थत्वं सिद्धम्।।३।।

अतः **स यः** कश्चित्**साधु** सामेति साधुगुणवत्**सामेत्युपास्ते** समस्तं साम साधुगुणवद्विद्वांस्तस्यैतत्फल**मभ्याशो ह** क्षिप्रं ह **यदि**ति क्रियाविशेषणार्थ**मेन**मुपासकं **साधवः** शोभना **धर्माः** श्रुतिस्मृत्यविरुद्धा **आ च गच्छेयु**रागच्छेयुश्च न केवलमागच्छेयुरुप **च नमेयुरु**पनमेयुश्च भोग्यत्वेनोपतिष्ठेयुरित्यर्थः।।४।।

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।।१।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वितीय: खण्ड:)

लोकेषु पञ्चविधꣳ सामोपासीत पृथिवी हिंकार:। अग्नि: प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथ आदित्य: प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यूर्ध्वेषु ॥१॥

लोक दृष्टि से पञ्चविध साम की उपासना

लोक में पाँच प्रकार की साम की उपासना करे। पृथिवी हिंकार है, अग्नि प्रस्ताव है, अन्तरिक्ष उद्गीथ है, आदित्य प्रतिहार और द्युलोक निधन है। इस प्रकार ऊपर के लोकों में लोक दृष्टि की जाने वाली उपासना बतलायी गयी है।।१।।

कानि पुनस्तानि साधुदृष्टिविशिष्टानि समस्तानि सामान्युपास्यानीति। इमानि तान्युच्यन्ते लोकेषु पञ्चविधमित्यादीनि। ननु लोकादिदृष्ट्या तान्युपास्यानि साधुदृष्ट्या चेति विरुद्धम्। न। साध्वर्थस्य लोकादिकार्येषु कारणस्यानुगतत्वात्। मृदादिवद्घटादिविकारेषु। साधुशब्दवाच्योऽर्थो धर्मो ब्रह्म वा सर्वथाऽपि लोकादिकार्येष्वनुगतो यथा यत्र घटादिदृष्टिर्मृदादिदृष्ट्यनुगतैव सा। तथा साधुदृष्ट्यनुगतैव लोकादिदृष्टि:। धर्मादिकार्यत्वाल्लोकादीनाम्। यद्यपि कारणत्वमविशिष्टं ब्रह्मधर्मयो:। धर्म एव साधुशब्दवाच्य इति युक्तं साधुकारी साधुर्भवतीति धर्मविषये साधुशब्दप्रयोगात्। ननु लोकादिकार्येषु कारणस्यानुगतत्वादर्थप्राप्तैव तद्दृष्टिरिति साधु सामेत्युपास्त इति न वक्तव्यम्। न। शास्त्रगम्यत्वात्तद्दृष्टे:। सर्वत्र हि शास्त्रप्रापिता एव धर्मा उपास्या न विद्यमाना अप्यशास्त्रीया:।

लोकेषु पृथिव्यादिषु **पञ्चविधं** पञ्चभक्तिभेदेन पञ्चप्रकारं साधु समस्तं **सामोपासीत**। कथम्। **पृथिवी हिंकार:**। लोकेष्विति या सप्तमी तां प्रथमात्वेन विपरिणमय्य पृथिवीदृष्ट्या हिंकारे पृथिवी हिंकार इत्युपासीत। व्यत्यस्य वा सप्तमीश्रुतिं लोकविषयां हिंकारादिषु पृथिव्यादिदृष्टिं कृत्वोपासीत। तत्र पृथिवी हिंकार:। प्राथम्यसामान्यात्। **अग्नि: प्रस्ताव:**। अग्नौ हि कर्माणि प्रस्तूयन्ते। प्रस्तावश्च भक्ति:। **अन्तरिक्षमुद्गीथ:** अन्तरिक्षं हि गगनम् गकारविशिष्टश्चोद्गीथ:। **आदित्य: प्रतिहार:**। प्रतिप्राण्यभिमुखत्वान्मां प्रति मां प्रतीति। **द्यौर्निधनम्**। दिवि निधीयन्ते हीतो गता **इत्यूर्ध्वेषू**र्ध्वगतेषु लोकदृष्ट्या सामोपासनम्।।१।।

अथाऽऽवृत्तेषु द्यौर्हिंकार आदित्यः प्रस्तावोऽन्तरिक्ष-मुद्गीथोऽग्निः प्रतिहारः पृथिवी निधनम् ।।२।।

कल्पन्ते हास्मै लोका ऊर्ध्वाश्चावृत्ताश्च य एतदेवं विद्वाँल्लोकेषु पञ्चविधं सामोपास्ते ।।३।।

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।।२।।

अधोलोक दृष्टि से पाँच प्रकार की सामोपासना

इसके बाद अधोमुख लोकों में सामोपासना बतलायी जाती है। द्युलोक हिंकार है, आदित्य प्रस्ताव है, अन्तरिक्ष उद्गीथ है, अग्नि प्रतिहार है और पृथिवी निधन है।।२।।

जो इस उपासना को इस प्रकार जानता है वह जानने वाला पुरुष लोकों में पञ्चविध समस्त साम की उपासना करता है उसके प्रति ऊर्ध्व मुख और अधोमुख लोक भोग्य रूप से उपस्थित होते हैं।।३।।

।।इति द्वितीयः खण्डः।।

अथाऽऽवृत्तेष्ववाङ्मुखेषु पञ्चविधमुच्यते सामोपासनम्। गत्यागतिविशिष्टा हि लोकाः। यथा ते तथादृष्ट्यैव सामोपासनं विधीयते, यतोऽत आवृत्तेषु लोकेषु। **द्यौर्हिंकारः** प्राथम्यात्। **आदित्यः प्रस्तावः** उदिते ह्यादित्ये प्रस्तूयन्ते कर्माणि प्राणिनाम्। **अन्तरिक्षमुद्गीथः** पूर्ववत्। **अग्निः प्रतिहारः**। प्राणिभिः प्रतिहरणादग्नेः। **पृथिवी निधनम्**। तत आगतानामिह निधनात्।।२।।

उपासनफलं— **कल्पन्ते** समर्था भवन्ति **हास्मै लोका ऊर्ध्वाश्चाऽऽवृत्ताश्च** गत्यागतिविशिष्टा भोग्यत्वेन व्यवतिष्ठन्त इत्यर्थः। **य एतदेवं विद्वाँल्लोकेषु पञ्चविधं** समस्तं साधु **सामेत्युपास्त** इति सर्वत्र योजना पञ्चविधे सप्तविधे च।।३।।

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।।२।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः)

वृष्टौ पञ्चविधꣳ सामोपासीत पुरोवातो हिंकारो, मेघो जायते स प्रस्तावो, वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः ॥१॥

उद्गृह्णाति तन्निधनं वर्षति हास्मै वर्षयति ह य एतदेवं विद्वान्वृष्टौ पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

वृष्टि दृष्टि से पाँच प्रकार की साम उपासना

वृष्टि में पाँच प्रकार की साम की उपासना करे। पूर्व वायु हिंकार है और जो मेघ उत्पन्न होता है वही प्रस्ताव है। मेघ बरसता है यही श्रेष्ठता के कारण उद्गीथ है, बिजली कड़कती है यही प्रतिहार है।।१।।

बादल जल ग्रहण करता है यह निधन है, जो इस प्रकार जानने वाला पुरुष वृष्टि दृष्टि से पाँच प्रकार के साम की उपासना करता है, उसके लिये वर्षा होती है और वह स्वयं भी वर्षा करा लेता है।।२।।

।।इति तृतीयः खण्डः।।

वृष्टौ पञ्चविधं सामोपासीत। लोकस्थितेर्वृष्टिनिमित्तत्वादानन्तर्यम्। **पुरोवातो हिंकारः**। पुरोवाताद्युद्ग्रहणान्ता हि वृष्टिः। यथा साम हिंकारादिनिधनान्तम्। अतः पुरोवातो हिंकारः। प्राथम्यात्। **मेघो जायते स प्रस्तावः**। प्रावृषि मेघजनने वृष्टेः प्रस्ताव इति हि प्रसिद्धिः। **वर्षति स उद्गीथः** श्रैष्ठ्यात्। **विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः**। प्रतिहृतत्वात्।।१।।

उद्गृह्णाति तन्निधनम्। समाप्तिसामान्यात्। फलमुपासनस्य— **वर्षति** हास्मौ इच्छातः। तथा वर्षयति हासत्यामपि **वृष्टौ। य एतदि**त्यादि पूर्ववत्।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।।३।।

अप्रतीकार रोगे जले प्रविशेत्

(अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः)

सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳ सामोपासीत मेघो यत्संप्लवते स हिंकारो यद्वर्षति स प्रस्तावो याः प्राच्यः स्यन्दन्ते स उद्गीथो याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः समुद्रो निधनम् ॥१॥

न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

जलों में पाँच प्रकार की सामोपासना

सब प्रकार के जलों में पञ्चविध साम की उपासना करे। मेघ जो घनीभूत होता है वह हिंकार है, वह जो बरसता है, वह प्रस्ताव कहा गया है। जो नदियाँ पूर्व की ओर बहती हैं वह उद्गीथ है और जो पश्चिम की ओर बहती हैं वह प्रतिहार है तथा समुद्र इनका निधन है, (क्योंकि उसी में इनका विलय होता है) ॥१॥

जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष सभी जलों में पञ्चविध साम की उपासना करता है (वह इच्छा न करने पर) जल में नहीं मरता और जल से सम्पन्न हो जाता है॥२॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

सर्वास्वप्सु पञ्चविधं सामोपासीत। वृष्टिपूर्वकत्वात्सर्वासामपामानन्तर्यम्। **मेघो यत्संप्लवत** एकीभावेनेतरेतरं घनी भवति मेघो यदोन्नतस्तदा संप्लवत इत्युच्यते तदाऽपामारम्भः **स हिंकारः**। **यद्वर्षति स प्रस्तावः**। आपः सर्वतो व्याप्तुं प्रस्तुताः। **याः प्राच्यः स्यन्दन्ते स उद्गीथः**। श्रैष्ठ्यात्। **याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः** प्रतिशब्दसामान्यात्। **समुद्रो निधनम्**। तन्निधनत्वादपाम्॥१॥

न हाप्सु प्रैति। नेच्छति चेत्। **अप्सुमान्**म्मान्**भवति** फलम्॥२॥

इति द्वितीयध्यायस्य चतुर्थः खण्डः॥४॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः)

ऋतुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीत वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम् ।।१।।

कल्पन्ते हास्मा ऋतव ऋतुमान्भवति य एतदेवं विद्वानृतुषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।।५।।

ऋतु दृष्टि से पञ्चविध साम की उपासना

ऋतुओं में पाँच प्रकार के साम की उपासना करे। वसन्त हिंकार है, ग्रीष्म प्रस्ताव है, (क्योंकि वर्षा के लिये अन्न संग्रह का प्रस्ताव किया जाता है) प्रधानता के कारण वर्षा उद्गीथ है, शरत्प्रतिहार है और हेमन्त ऋतु निधन है ।।१।।

जो इसे इस प्रकार जानकर ऋतुओं में पञ्चविध साम की उपासना करता है उसे ऋतुएं अपने अनुरूप भोग देती हैं और वह ऋतु संबन्धी भोगों से सम्पन्न हो जाता है।।२।।

।। इति पञ्चमः खण्डः।।

ऋतुषु पञ्चविधं सामोपासीत। ऋतुव्यवस्थायाः यथोक्तान्निमित्तत्वादानन्तर्यम्। वसन्तो हिंकारः। प्राथम्यात्। **ग्रीष्मः प्रस्तावः**। यवादिसंग्रहः प्रस्तूयते हि प्रावृडर्थम्। **वर्षा उद्गीथः**। प्राधान्यात्। **शरत्प्रतिहारः**। रोगिणां मृतानां च प्रतिहरणात्। **हेमन्तो निधनम्**। निवाते निधनात्प्राणिनाम्।।१।।

फलं— **कल्पन्ते ह** ऋतुव्यवस्थानुरूपं भोग्यत्वेन**अस्मा** उपासकायर्तवः। **ऋतुमान्**आर्तवैर्भोगैश्च संपन्नो **भवती**त्यर्थः।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः।।५।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः)

पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीताजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनम् ॥१॥

भवन्ति हास्य पशवः पशुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

पशु दृष्टि से पञ्चविध साम की उपासना

पशुओं में पाँच प्रकार के साम की उपासना करे। बकरे हिंकार है, बकरे के सहचर होने से भेड़ें प्रस्ताव हैं और सर्वश्रेष्ठ गौवें उद्गीथ हैं, (वहन करने के कारण) अश्व प्रतिहार है और (आश्रय होने से) पुरुष निधन है॥१॥

जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष पशुओं में पञ्चविध साम की उपासना करता है, उसे पशु प्राप्त होता है और वह पशुप्राप्ति जन्य फल भोग एवं दानादि से युक्त हो जाता है॥२॥

॥ इति षष्ठः खण्डः॥

पशुषु पञ्चविधं सामोपासीत। सम्यग्वृत्तेष्वृतुषु पशव्यः काल इत्यानन्तर्यम्। **अजा हिंकारः**। प्राधान्यात्प्राथम्याद्वा। ''अजः पशूनां प्रथम'' इति श्रुतेः। **अवयः प्रस्तावः**। साहचर्यदर्शनादजावीनाम्। **गावः उद्गीथः**। श्रैष्ठ्यात्। **अश्वाः प्रतिहारः**। प्रतिहरणात्पुरुषाणाम्। **पुरुषो निधनम्**। पुरुषाश्रयत्वात्पशूनाम्॥१॥

फलं— **भवन्ति हास्य पशवः पशुमान्भवति**। पशुफलैश्च भोगत्यागादिभिर्युज्यत इत्यर्थः॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः॥६॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः)

प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपासीत प्राणो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारो मनो निधनं परोवरीयाꣳसि वा एतानि ॥१॥

परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य

प्राणदृष्टि से पञ्चविध साम की उपासना

प्राणों में पाँच प्रकार के परोवरीय (उत्तरोत्तर श्रेष्ठ गुणवान्, प्राण दृष्टि से विशिष्ट) साम की उपासना करे। उनमें घ्राणेन्द्रिय हिंकार है, वाणी प्रस्ताव है, (क्योंकि वाणी से सबका प्रस्ताव किया जाता है और वाणी प्राण से श्रेष्ठ है) चक्षु उद्गीथ है, (वाणी से भी अधिक विषय के प्रकाशक होने से चक्षु वाणी से श्रेष्ठ है) श्रोत्र प्रतिहार है, (क्योंकि सभी ओर से शब्द श्रवण होने के कारण नेत्र की अपेक्षा श्रवण उत्कृष्ट है) मन निधन है (क्योंकि इन्द्रियों द्वारा उपस्थित विषय मन में रखे जाते हैं)। ये उपासनाएं निश्चय ही उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर हैं।।१।।

जो पुरुष इस प्राण दृष्टि से विशिष्ट परोवरीय साम को जानने वाला प्राणों में पाँच प्रकार के उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर साम की उपासना करता है उसका जीवन निश्चय ही उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर

प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपासीत। परंपरं वरीयस्त्वगुणवत्प्राणदृष्टि-विशिष्टं सामोपासीतेत्यर्थः। **प्राणो** घ्राणं **हिंकारः**। उत्तरोत्तरवरीयसां प्राथम्यात्। **वाक्प्रस्तावः**। वाचा हि प्रस्तूयते सर्वम्। वाग्वरीयसी प्राणात्। अप्राप्तमप्युच्यते वाचा प्राप्तस्यैव तु गन्धस्य ग्राहकः प्राणः। चक्षुरुद्गीथः। वाचो बहुतरविषयं प्रकाशयति, चक्षुरतो वरीयो वाच उद्गीथः। श्रैष्ठ्यात्। **श्रोत्रं प्रतिहारः**। प्रतिहृतत्वात्। वरीयश्चक्षुषः सर्वतः श्रवणात्। **मनो निधनम्**। मनसि हि निधीयन्ते पुरुषस्य भोग्यत्वेन सर्वेन्द्रियाहृता विषयाः। वरीयस्त्वं च श्रोत्रान्मनसः। सर्वेन्द्रियविषयव्यापकत्वात्। अतीन्द्रियविषयोऽपि मनसो गोचर एवेति। यथोक्तहेतुभ्यः **परोवरीयांसि** प्राणादीनि **वा एतानि**।।१।।

एतद्दृष्ट्या विशिष्टं यः **परोवरीयः** सामोपास्ते परोवरीयो **हास्य** जीवनं **भवती**त्युक्तार्थमिति तु पञ्चविधस्य साम्न उपासनमुक्तमिति सप्तविधे वक्ष्य-

एतदेवं विद्वान्प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपास्ते इति तु पञ्चविधस्य ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः)

अथ सप्तविधस्य, वाचि सप्तविधꣳ सामोपासीत यत्किंच वाचो हुमिति स हिंकारो, यत्प्रेति स प्रस्तावो, यदेति स आदिः ॥१॥

होता जाता है और वह परोवरीय लोकों को जीत लेता है। यह पाँच प्रकार की सामोपासना का निरूपण किया गया॥२॥

॥इति सप्तमः खण्डः॥

वाणी दृष्टि से सप्तविध साम की उपासना

इसके बाद सप्तविध साम की उपासना आरम्भ की जाती है। वाक् दृष्टि से विशिष्ट सात प्रकार के साम की उपासना करनी चाहिये। वाणी में जो कुछ "हुम्" ऐसा स्वरूप है, वह हिंकार है, (क्योंकि हुम् और हिंकार में हकार की समानता है) जो कुछ "प्र" ऐसा शब्द स्वरूप है, वह प्रस्ताव है, (क्योंकि उन दोनों में "प्र" शब्द की समानता है) तथा जो कुछ "आ" ऐसा शब्द स्वरूप है, वह आकार में समानता के कारण आदि (ओंकार) है॥१॥

माणविषये बुद्धिसमाधानार्थम्। निरपेक्षो हि पञ्चविधे वक्ष्यमाणे बुद्धिं समाधित्सति॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः॥७॥

अथानन्तरं सप्तविधस्य समस्तस्य साम्न उपासनं साध्विदमारभ्यते। **वाचीति** सप्तमी पूर्ववत्। वाग्दृष्टिविशिष्टं **सप्तविधं सामोपासीते**त्यर्थः। **यत्किंच वाचः** शब्दस्य **हुमिति** यो विशेषः **स हिंकारो** हकारसामान्यात्। **यत्प्रेति** शब्दरूपं **स प्रस्तावः** प्रसामान्यात्। यत्—आ, इति स आदिः। आकारसामान्यात्। **आदि**रित्योंकारः। सर्वादित्वात्॥१॥

यदुदिति स उद्गीथो यत्प्रतीति स प्रतिहारो यदुपेति स उपद्रवो यन्नीति तन्निधनम् ॥२॥

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो, दोहोऽन्नवानन्नादो भवति, य एतदेवं विद्वान्वाचि सप्तविधꣳ सामोपास्ते ॥३॥

इति द्वितीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥८॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्य नवमः खण्डः)

अथ खल्वमुमादित्यꣳ सप्तविधꣳ सामोपासीत सर्वदा

जो कुछ "उत्" ऐसा शब्द है, वह उद्गीथ है, जो कुछ "प्रति" ऐसा शब्द है, वह प्रतिहार है। जो कुछ "उप" ऐसा शब्द है, वह उपद्रव है और जो कुछ "नि" ऐसा शब्द स्वरूप है, वह निधन है (इन सबकी समानता स्पष्ट है)।।२।।

जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष वाणी में सप्तविध साम की उपासना करता है तो जो कुछ वाणी का सार है, उसे वाणी उस उपासक को दे देती है तथा वह प्रचुर अन्न से सम्पन्न और अन्न का भोक्ता हो जाता है।।३।।

।। इत्यष्टमः खण्डः।।

आदित्य दृष्टि से सप्तविध साम की उपासना

इसके बाद अब निश्चय ही आदित्य दृष्टि से विशिष्ट इस सात प्रकार के साम की उपासना करनी चाहिए। (वृद्धि और क्षय से रहित होने के कारण) आदित्य सर्वदा सम है इसी कारण

यदुदिति स उद्गीथः उत्पूर्वत्वादुद्गीथस्य। **यत्प्रतीति स प्रतिहारः।** प्रतिसामान्यात्। **यदुपेति स उपद्रव** उपोपक्रमत्वादुपद्रवस्य। **यन्नीति तन्निधनम्।** निशब्दसामान्यात्।।२।।

दुग्धेऽस्मा इत्याद्युक्तार्थम्।।३।।

इति द्वितीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः।।८।।

अवयवमात्रे साम्न्यादित्यदृष्टिः पञ्चविधेषूक्ता प्रथमे चाध्याये। अथेदानीं **खल्वमुमादित्यं** समस्ते साम्न्यवयवविभागशोऽध्यस्य **सप्तविधं सामोपासीत**। कथं

समस्तेन साम मां प्रति मां प्रतीति सर्वेण समस्तेन साम ॥१॥

तस्मिन्निमानि सर्वाणि भूतान्यन्वायत्तानीति विद्यात्तस्य यत्पुरोदयात्स हिंकारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिं कुर्वन्ति हिंकारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥२॥

अथ यत्प्रथमोदिते स प्रस्तावस्तदस्य मनुष्या अन्वायत्ता-

से यह साम है। मेरे प्रति इस प्रकार वह सब में समान बुद्धि उत्पन्न करता है, (क्योंकि सभी प्राणी उसे सन्मुख देखते हैं) अतः इसी समता के कारण वह साम है।।१।।

उस आदित्य में ये सभी भूत अनुगत हैं, ऐसा जानो। उस आदित्य के उदय से पूर्ववर्ती जो धर्मरूप है वह हिंकार है, सूर्य के उसी हिंकार रूप में पशु अनुगत है, इसीलिये वे पशु सूर्योदय से पूर्व हिंकार शब्द करते हैं। अतः वे पशु इस आदित्य नामक साम के (सेवन में तत्पर हुए) हिंकार पात्र हैं।।२।।

तथा सूर्य के प्रथम उदय होने पर जो रूप होता है, वह प्रस्ताव है, इसके उस रूप के

पुनः सामत्वमादित्यस्येति। उच्यते। उद्गीथत्वे हेतुवदादित्यस्य सामत्वे हेतुः। कोऽसौ, **सर्वदा** समो वृद्धिक्षयाभावात्तेन हेतुना **सामाऽऽदित्यो मां प्रति मां प्रतीति** तुल्यां बुद्धिमुत्पादयति। अतः **सर्वेण** समोऽतः **साम** समत्वादित्यर्थः।। उद्गीथभक्तिसामान्यवचनादेव लोकादिषूक्तसामान्याद्धिंकारादित्वं गम्यत इति हिंकारादित्वे कारणं नोक्तम्। सामत्वे पुनः सवितुरनुक्तं कारणं न सुबोधमिति समत्व-मुक्तम्।।१।।

तस्मिन्नादित्येऽवयवविभागश **इमानि** वक्ष्यमाणानि **सर्वाणि भूतान्यन्वाय-त्तान्य**नुगतान्यादित्यमुपजीव्यत्वे**नेति विद्यात्**। कथं, **तस्या**ऽऽदित्यस्य **यत्पुरोदया-द्ध**र्मरूपं **स हिंकारो** भक्तिस्तत्रेदं सामान्यं यत्तस्य हिंकारभक्तिरूपं **तद-स्या**ऽऽदित्यस्य साम्नः **पशवो** गवादयो**ऽन्वायत्ता** अनुगतास्तद्भक्तिरूपमुपजीव-न्तीत्यर्थः। यस्मादेवं **तस्मात्ते हिं— कुर्वन्ति** पशवः प्रागुदयात्। तस्माद्धिं**कारभाजिनो ह्येतस्या**ऽऽदित्याख्यस्य **साम्नस्त**द्भक्तिभजनशीलत्वाद्धि ते एवं वर्तन्ते।।२।।

अथ यत्प्रथमोदिते सवितृरूपं तदस्याऽऽदित्याख्यस्य साम्नः **स प्रस्तावस्त-**

स्तस्मात्ते प्रस्तुतिकामाः प्रशꣳसाकामाः प्रस्तावभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥३॥

प्रत्यक्ष परोक्ष स्तुति
स्तुति प्रशंसा

अथ यत्संगववेलायाꣳ स आदिस्तदस्य वयाꣳस्यन्वायत्तानि तस्मात्तान्यन्तरिक्षेऽनारम्बणान्यादायाऽऽत्मानं परिपतन्त्यादिभाजीनि ह्येतस्य साम्नः ॥४॥

अथ यत्संप्रति मध्यंदिने स उद्गीथस्तदस्य देवा

अनुगामी मनुष्य हैं। इसलिये वे प्रस्तुति (प्रत्यक्ष स्तुति) और प्रशंसा (परोक्ष स्तुति) की कामना करते हैं, क्योंकि वे इस साम के प्रस्ताव का भजन करने वाले हैं।।३।।

तदनन्तर आदित्य के संगम वेला (सूर्योदय के तीन मुहूर्त के बाद) में जो रूप रहता है, वह आदिका (ओंकार) है। आदित्य के उस रूप के अनुगामी पक्षीगण हैं, क्योंकि वे इस साम के आदि रूप के भक्त हैं। इसीलिये वे अन्तरिक्ष में अपने को बिना आश्रय के ही सब ओर ले जाते हैं।।४।।

अब मध्याह्न में आदित्य का जो रूप होता है, वह उद्गीथ है, इसके बाद उस रूप के अनुगामी देवता लोग हैं, इसीलिये वे प्रजापति के पुत्रों में विशिष्टतम हैं, क्योंकि वे इस साम की

दस्य मनुष्या अन्वायत्ताः पूर्ववत्। **तस्मात्ते** प्रस्तुतिं प्रशंसां कामयन्ते। यस्मात्**प्रस्तावभाजिनो ह्येतस्य साम्नः**।।३।।

अथ यत्संगववेलायां गवां रश्मीनां संगमनं संगमो यस्यां वेलायां गवां वा वत्सैः, सा संगववेला, तस्मिन्काले यत्सावित्रं रूपं स आदिर्भक्तिविशेष ओंकारस्तदस्य **वयांसि**पक्षिणो**ऽन्वायत्तानि**। यत एवं **तस्मात्तानि** वयांस्य**न्तरिक्षेऽनारम्बणान्य**नालम्बनान्यात्मानमादाया**ऽऽत्मानमे**वाऽऽलम्बनत्वेन गृहीत्वा **परिपतन्ति** गच्छन्त्यत आकारसामान्या**दादि**भक्ति**भाजीनि ह्येतस्य साम्नः**।।४।।

अथ यत्संप्रति मध्यंदिने ऋजुमध्यंदिने इत्यर्थः। **स** उद्गीथभक्ति**स्तदस्य देवा अन्वायत्ताः**। द्योतनातिशयात्तत्काले। **तस्मात्ते सत्तमा** विशिष्टतमाः **प्राजापत्यानां**

अन्वायत्तास्तस्मात्ते सत्तमाः प्राजापत्यानामुद्गीथभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥५॥

अथ यदूर्ध्वं मध्यंदिनात्प्रागपराह्णात्स प्रतिहारस्तदस्य गर्भा अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रतिहृता नावपद्यन्ते प्रतिहारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥६॥

अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स उपद्रवस्तदस्याऽऽरण्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते पुरुषं दृष्ट्वा कक्षꣳ श्वभ्रमित्युपद्रवन्त्युपद्रवभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥७॥

उद्गीथ भक्ति के भाजन हैं।।५।।

और आदित्य का जो रूप मध्याह्न के पश्चात् और अपराह्ण से पूर्व होता है, वह प्रतिहार है, इसके उस रूप के अनुगामी गर्भ हैं। अतः वे सूर्य की प्रतिहार भक्तिरूप से और ऊपर आकृष्ट किये जाने पर नीचे नहीं गिरते, क्योंकि गर्भ इस साम की प्रतिहार भक्ति के भाजन हैं।। ६।।

तथा अपराह्ण के पश्चात् सूर्यास्त से पूर्व आदित्य का जो रूप होता है, वह उपद्रव है, इसके उस रूप के अनुगामी वन्य पशु हैं। इसीलिये पुरुष को देखकर वे भयभीत हो वन में या गुहा में भाग जाते हैं। क्योंकि वे इस साम की उपद्रव भक्ति के भाजन हैं।।७।।

प्रजापत्यपत्यानाम**मुद्गीथभाजिनो ह्येतस्य साम्नः**।।५।।

अथ यदूर्ध्वं मध्यंदिनात्प्रागपराह्णाद्यद्रूपं सवितुः, स **प्रतिहारस्तदस्य गर्भा अन्वायत्ताः**। अतस्ते सवितुः प्रतिहारभक्तिरूपेणोर्ध्वं **प्रतिहृताः** सन्तो **नावपद्यन्ते** नाधः पतन्ति तद्द्वारे सत्यपीत्यर्थः। यतः **प्रतिहारभाजिनो ह्येतस्य साम्नो** गर्भाः।।६।।

अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स उपद्रवस्तदस्याऽऽरण्याः पशवो**ऽन्वायत्ताः**। **तस्मात्ते पुरुषं** दृष्ट्वा भीताः **कक्ष**मरण्यं **श्वभ्रं** भयशून्य**मित्युपद्रवन्ति**उपगच्छन्ति दृष्ट्वोपद्रवणा**दुपद्रवभाजिनो ह्येतस्य साम्नः**।।७।।

अथ यत्प्रथमास्तमिते तन्निधनं तदस्य पितरोऽन्वायत्ता-स्तस्मात्तान्निदधति निधनभाजिनो ह्येतस्य साम्न एवं खल्वमुमादित्यꣳ सप्तविधꣳ सामोपास्ते ।।८।।

इति द्वितीयाध्यायस्य नवमः खण्डः ।।९।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः)

अथ खल्वात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधꣳसामोपासीत हिंकार

और जो सूर्यास्त से पूर्व आदित्य का रूप होता है वह निधन है। इसके बाद उस रूप के अनुगामी पितृगण हैं, इसीलिये ये (श्राद्ध काल में) उन्हें (पितृपितामहादि रूप से दर्भों पर) स्थापित करते हैं, क्योंकि वे पितृगण निश्चय ही इस साम की निधन भक्ति के भागी हैं। इस प्रकार इस आदित्य दृष्टि से विशिष्ट सप्तविध साम की उपासना जो करता है (उसे आदित्य रूपता की प्राप्ति होती है)।।८।।

।।इति नवमः खण्डः।।

मृत्यु से अतीत सप्तविध सामोपासना

अब निश्चय ही यह बतलाना उचित है कि अपने समान अक्षरों वाले मृत्यु से पारगामी

अथ **यत्प्रथमास्तमिते**ऽदर्शनं जिगमिषति सवितरि **तन्निधनं तदस्य पितरो-ऽन्वायत्तास्तस्मात्तान्निदधति** पितृपितामहप्रपितामहरूपेण दर्भेषु निक्षिपन्ति तांस्तदर्थं पिण्डान्वा स्थापयन्ति। निधनसंबन्धान्निधनभाजिनो **ह्येतस्य साम्नः** पितरः। **एवम**वयवशः सप्तधा विभक्तं **खल्वमुमादित्यं सप्तविधं सामोपास्ते** यस्तस्य तदापत्तिः फलमिति वाक्यशेषः।।८।।

इति द्वितीयाध्यायस्य नवमः खण्डः।।९।।

मृत्युरादित्यः। अहोरात्रादिकालेन जगतः प्रमापयितृत्वात्। तस्माददतितरणायेदं सामोपासनम्— उपदिश्यते -

अथ खल्वनन्तरम्। आदित्यमृत्युविषयसामोपासनस्याऽऽ**त्मसंमितं** स्वावयवतुल्यतया मितं परमात्मतुल्यतया वा संमित**मतिमृत्यु** मृत्व्यत्ययहेतुत्वात्। यथा प्रथमेऽध्याय उद्गीथभक्तिनामाक्षराण्युद्गीथः इत्युपास्यत्वेनोक्तानि, तथेह साम्नः सप्तविधभक्तिनामाक्षराणि

इति त्र्यक्षरं प्रस्ताव इति त्र्यक्षरं तत्समम् ।।१।।

आदिरिति द्व्यक्षरं प्रतिहार इति चतुरक्षरं तत इहैकं तत्समम् ।।२।।

उद्‌गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुरक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षरमतिशिष्यते त्र्यक्षरं तत्समम् ।।३।।

सप्तविध साम की उपासना करे। उनमें "हिंकार" यह तीन. अक्षरों वाला है और (प्रस्ताव) यह भी तीन अक्षरों वाला है। अत: यह पहले नाम के समान है।।१।।

"आदि" यह दो अक्षरों वाला नाम है, (क्योंकि सात प्रकार के नाम की संख्या पूर्ति में ओंकार को आदि वाला कहा गया है) तथा "प्रतिहार" यह चार अक्षरों वाला नाम है, इसमें से एक अक्षर निकाल कर आदि के दो अक्षरों में मिला दें, तो दोनों नाम समान अक्षर वाले हो जाते हैं।।२।।

"उद्‌गीथ" यह तीन अक्षरों वाला नाम है और "उपद्रव" यह चार अक्षरों का नाम है। ये दोनों तीन-तीन अक्षरों में समान हैं, किन्तु एक अक्षर बढ़ता है। (अत:) विषमता को दूर करनेके लिये) वह एक होने पर भी "अक्षर" है। इसलिये वह नाम भी तीन अक्षरों वाला ही है, ऐसा अर्थ कर लेने पर वह भी उन्हीं के समान है।।३।।

समाहृत्य त्रिभिस्त्रिभिः समतया सामत्वं परिकल्प्योपास्यत्वेनोच्यन्ते। तदुपासनेन मृत्युगोचराक्षरसंख्यासामान्येन तं मृत्युं प्राप्य तदतिरिक्ताक्षरेण तस्याऽऽदित्यस्य मृत्योरतिक्रमणायैव संक्रमणं कल्पयति। अतिमृत्यु **सप्तविधं सामोपासीत** मृत्युमतिक्रान्तमतिरिक्ताक्षरसंख्ययेत्यतिमृत्यु साम। तस्य प्रथमभक्तिनामाक्षराणि **हिंकार इत्येतत्त्र्यक्षरं** भक्तिनाम **प्रस्ताव इति** च भक्तेस्**त्र्यक्षरमे**व नाम **तत्पूर्वेण समम्** ।।१।।

आदिरिति द्व्यक्षरं सप्तविधस्य साम्नः संख्यापूरणे ओंकार आदिरित्युच्यते। **प्रतिहार इति चतुरक्षरम्। तत इहैकम**क्षरमवच्छिद्याऽऽद्याक्षरयोः प्रक्षिप्यते। तेन **तत्सममे**व भवति।।२।।

उद्‌गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुरक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षर-मतिशिष्यतेऽतिरिच्यते। तेन वैषम्ये प्राप्ते साम्नः समत्वकरणायाऽऽह— तदेकमपि सदक्षरमिति **त्र्यक्षरमेव** भवति। अतस्**तत्समम्**।।३।।

निधनमिति त्र्यक्षरं तत्सममेव भवति तानि ह वा एतानि द्वाविꣳशतिरक्षराणि ॥४॥

एकविꣳशत्याऽऽदित्यमाप्नोत्येकविꣳशो वा इतोऽसावादित्यो द्वाविꣳशेन परमादित्याज्जयति तन्नाकं तद्विशोकम् ॥५॥

आप्नोति हाऽऽदित्यस्य जयं परो हास्याऽऽदित्यजयाज्जयो

"निधन" यह तीन अक्षरों वाला नाम है। अतः यह उनके समान ही है (इस प्रकार तीन-तीन अक्षरों में समानता होने से उनमें सामत्व है और अक्षरों की गणना से). वे ही ये सात भक्तियों के बाईस अक्षर हैं।।४।।

वहाँ इक्कीस अक्षरों द्वारा साधक आदित्य लोक रूप मृत्यु को प्राप्त करता है, (क्योंकि बारह महीने, पाँच ऋतु, तीन लोक और इक्कीसवाँ यह आदित्य लोक, इस श्रुति में) इस लोक से आदित्य निश्चय ही इक्कीसवाँ है। शेष बाईसवें अक्षर द्वारा वह मृत्यु मुख आदित्य लोक से परे दुःख एवं शोक रहित लोक को प्राप्त कर लेते हैं।।५।।

(वह पुरुष इक्कीस अक्षरों द्वारा) आदित्य लोक की जय प्राप्त करता है और बाईसवें अक्षर से उसे आदित्य जय की अपेक्षा भी उत्कृष्ट जय प्राप्त होती है। जो इसे इस प्रकार जानने

निधनमिति त्र्यक्षरं तत्सममेव भवति एवं त्र्यक्षरसमतया सामत्वं संपाद्य यथाप्राप्तान्येवाक्षराणि संख्यायन्ते— **तानि ह वा एतानि** सप्तभक्तिनामा**क्षराणि द्वाविंशतिः**।।४।।

त**त्रैकविंशत्य**क्षरसंख्य**याऽऽदित्यमाप्नोति** मृत्युम्। यस्मा**देकविंश इतो**ऽस्माल्लोका-दसावादित्यः संख्यया। द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविꣳश इति श्रुतेरतिशिष्टेन **द्वाविंशे**नाक्षरेण **परं** मृत्यो**रादित्याज्जयत्या**प्नोतीत्यर्थः। यच्च तदादित्यात्परं किं **तत् नाकं** कमिति सुखं तस्य प्रतिषेधोऽकं तन्न भवतीति नाकं कमेवेत्यर्थः। मृत्युविषयत्वाद्दुःखस्य **विशोकं** च **तद्वि**गतशोकं मानसदुःखरहितमित्यर्थः। तदाप्नोतीति।।५।।

उक्तस्यैव पिण्डितार्थमाह— एकविंशतिसंख्ययाऽऽदित्यस्य **जयमा**प्नोति। **परो हास्यै**वंविद **आदित्यजया**न्मृत्युगोचरात्परो **जयो भवति** द्वाविंशत्यक्षरसंख्ययेत्यर्थः। **य एतदेवं**

भवति य एतदेवं विद्वानात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधꣳसामोपास्ते सामोपास्ते ।।६।।

इति द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ।।१०।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः)

सामावयव में मनो दृष्टि करे।

मनो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारः प्राणो निधनमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतम् ।।१।।

स य एवमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्राणी भवति

वाला पुरुष अपने समान अक्षर वाले और मृत्यु से अतीत सप्तविध साम की उपासना करता है, सप्तविध साम की उपासना करता है।।६।।

।। इति दशमः खण्डः।।

गायत्र नामक साम की उपासना

(सम्पूर्ण इन्द्रियों में प्रथम होने से) मन हिंकार है (उसके पश्चाद्वर्ती) वाक् प्रस्ताव है, चक्षु उद्गीथ है, श्रोत्र प्रतिहार है तथा प्राण निधन है। (क्योंकि सुषुप्ति में पूर्वोक्त इन्द्रियादि प्राण में लीन होते हैं) यह गायत्रसंज्ञक साम प्राणों में प्रतिष्ठित है। (क्योंकि गायत्री की प्राण रूप से स्तुति की गयी है)।।१।।

वह जो इस प्रकार गायत्र संज्ञक साम को प्राण में प्रतिष्ठित जानता है, वह अविकल इन्द्रियवान् होता है, पूर्ण आयु (सौ वर्ष) उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा

विद्वानित्याद्युक्तार्थम्। तस्यैतद्यथोक्तं फलमिति द्विरभ्यासः साप्तविध्यसमाप्त्यर्थः।। ६।।

इति द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः।।१०।।

विना नामग्रहणं पञ्चविधस्य सप्तविधस्य च साम्न उपासनमुक्तम्। अथेदानीं गायत्रादिनामग्रहणपूर्वकं विशिष्टफलानि सामोपासनान्तराण्युच्यन्ते। यथाक्रमं गायत्रादीनां कर्मणि प्रयोगस्तथैव **मनो हिंकार** मनसः सर्वकरणवृत्तीनां प्राथम्यात्। तदानन्तर्या**द्वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः** श्रैष्ठ्यात्। **श्रोत्रं प्रतिहारः** प्रतिहृतत्वात्। **प्राणो निधनं** यथोक्तानां प्राणे निधनात्स्वापकाले। **एतद्गायत्रं** साम **प्राणेषु प्रोतम्**। गायत्र्याः प्राणसंस्तुतत्वात्।। १।।

स य एवमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्राणीभवति। अविकलकरणो

सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या महामनाः स्यात्तद्व्रतम् ।। २।।

इति द्वितीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।।११।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः)

अभिमन्थति स हिंकारो धूमो जायते स प्रस्तावो ज्वलति स उद्गीथोऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार उपशाम्यति तन्निधनꣳ सꣳशाम्यति तन्निधनमेतद्रथंतरमग्नौ प्रोतम् ।। १।।

और पशुओं से महान् होता है और कीर्ति के कारण भी महान् होता है। वह उदार हृदय वाला होवे; यही उसका व्रत है।।२।।

।।इत्येकादशः खण्डः।।

रथन्तर सामोपासना

(सर्व प्रथम होने के कारण जो अग्नि का) अभिमंथन करता है, वह हिंकार है। धूम उत्पन्न होता है, वह प्रस्ताव है। अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, वह उद्गीथ है। अंगार होते हैं, वह प्रतिहार है। (क्योंकि अंगारों का प्रतिहरण किया जाता है) और शान्त होने लगता है, वह निधन है। तथा सर्वथा शान्त हो जाता है, यह भी निधन है। यह रथन्तर साम अग्नि में ओतप्रोत है। (क्योंकि अग्निमन्थन में यह गाया जाता है)।।१।।

भवतीत्येतत्। **सर्वमायुरेति**। शतं वर्षाणि सर्वमायुः पुरुषस्येति श्रुतेः। **ज्योग्**ज्ज्वलः सन् **जीवति**। **महान्भवति** प्रजादिभिर्महांश्च **कीर्त्या**। गायत्रोपासकस्यै**तद्व्रतं** भवति यन्महामना अक्षुद्रचित्तः स्यादित्यर्थः।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः।।११।।

अभिमन्थति स हिंकारः, प्राथम्यात्। अग्ने**र्धूमो जायते**, स **प्रस्ताव**, आनन्तर्यात्। **ज्वलति स उद्गीथो**, हविः संबन्धाच्छ्रैष्ठ्यं ज्वलनस्य। **अङ्गारा भवन्ति स प्रतिहारो**ऽङ्गाराणां प्रतिहृतत्वात्। उपशमः सावशेषत्वादग्नेः संशमो निःशेषोपशमः समाप्तिसामान्यान्नि**धनमेतद्रथंतरमग्नौ प्रोतम्**। मन्थने ह्यग्नेर्गीयते।। १।।

स य एवमेतद्रथंतरमग्नौ प्रोतं वेद ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न प्रत्यङ्ङग्निमाचामेन्न निष्ठीवेत्तद्व्रतम् ।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ।।१२।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः)

उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीं सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ।। १।।

वह जो इस प्रकार इस रथन्तर साम को अग्नि में व्याप्त जानता है, वह ब्रह्मतेज से सम्पन्न और अन्न का भोक्ता होता है, पूर्ण जीवन का उपभोग करता है। उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है। प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है। अग्नि की ओर मुख करके कुछ भी भक्षण न करे और न कफ का ही त्याग करे; यह व्रत है।।२।।

।।इति द्वादशः खण्डः ।।

वामदेव्य सामोपासना

(अवाच्य कर्म में प्रवृत्त उत्तराधर अरणी स्थानीय स्त्री पुरुष के मन्थन सामान्य दृष्टि विधान के अनन्तर मैथुन दृष्टि का विधान किया गया है। पुरुष जो स्त्री को) संकेत करता है, वह हिंकार है। वस्त्राभूषण से प्रसन्न करता है, वह प्रस्ताव है। एक शय्या पर गमन करता है, वह उद्गीथ है। स्त्री के सन्मुख होता है, वह प्रतिहार है और मैथुन के द्वारा कामना को प्राप्त करता है, वह निधन है। यह वामदेव्य साम मिथुन में अनुस्यूत है, क्योंकि वायु और जल से परस्पर वामदेव्य की उत्पत्ति कही गयी है।।१।।

स य इत्यादि पूर्ववत्। **ब्रह्मवर्चसी** वृत्तस्वाध्यायनिमित्तं तेजो ब्रह्मवर्चसम्। तेजस्तु केवलं त्विड्भावः। **अन्नादो** दीप्ताग्निः। न **प्रत्यङ्ङग्नि**मग्नेरभिमुखो **नाऽऽचामेन्न** भक्षयेत्किंचिन्न **निष्ठीवे**च्छ्लेष्मनिरसनं च न कुर्या**त्तद्व्रतम्**।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खण्ड।।१२।।

उपमन्त्रयते संकेतं करोति प्राथम्यात्स **हिंकारः**। **ज्ञपयते** तोषयति **स प्रस्तावः**। **सह**शयनमेकपर्यङ्कगमनं **स उद्गीथः** श्रैष्ठ्यात्। **प्रति स्त्रीं** शयनं स्त्रिया अभिमुखीभावः **स प्रतिहारः**। **कालं गच्छति** मैथुनेन पारं समाप्तिं गच्छति **तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम्**। वाय्वम्बुमिथुनसंबन्धात्।।१।।

स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनी भवति मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न कांचन परिहरेत्तद्व्रतम् ।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।।१३।।



(अथ द्वितीयाध्यास्य चतुर्दशः खण्डः)

उद्यन्हिंकार, उदितः प्रस्तावो, मध्यंदिन उद्गीथोऽपराह्णः प्रतिहारोऽस्तं यन्निधनमेतद्बृहदादित्ये प्रोतम् ।। १।।

वह जो इस वामदेव्य साम को मिथुन में प्रतिष्ठित जानता है, वह कभी विधुर नहीं होता और अमोघरेत वाला होता है, पूर्ण आयु जीता है। उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है। प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है और कीर्ति के कारण भी महान् होता है, (क्योंकि समागमार्थी आयी हुई) किसी भी स्त्री का परित्याग न करे; यह उसका व्रत है।।२।।

।।इति त्रयोदशः खण्डः।।



आदित्य में बृहत्सामोपासना

उदित होता हुआ सूर्य हिंकार है, (क्योंकि उसका दर्शन सर्वप्रथम होता है। कर्मों के प्रस्तवन का हेतु होने से) उदित हुआ सूर्य प्रस्ताव है। मध्याह्नकालीन सूर्य उत्कृष्ट होने से उद्गीथ है। (पशु आदि को अपने निवास की ओर ले जाने के कारण) अपराह्न का सूर्य प्रतिहार है और जो अस्त होने वाला सूर्य है, वह निधन है, (क्योंकि वह सभी प्राणियों को अपने घरों में निहित करता है) यह बृहत्साम सूर्य में स्थित है (क्योंकि इसका देवता सूर्य है)।।१।।

स य इत्यादि पूर्ववत्। **मिथुनी भवत्य**विधुरो भवतीत्यर्थः। **मिथुनान्मिथुनात्प्रजायत** इत्यमोघरेतस्त्वमुच्यते। न कांचन कांचिदपि स्त्रियं स्वात्मतल्पप्राप्तां न परिहरेत्समागमार्थिनीम्। वामदेव्यसामोपासनाङ्गत्वेन विधानात् एतस्मादन्यत्र प्रतिषेधस्मृतयः वचनप्रामाण्याच्च धर्मावगतेर्न प्रतिषेधशास्त्रेणास्य विरोधः।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः।।१३।।

उद्यन्सविता स **हिंकारः** प्राथम्याद्दर्शनस्य। **उदितः प्रस्तावः** प्रस्तवनहेतुत्वात्कर्मणाम्। **मध्यंदिनः उद्गीथः**, श्रैष्ठ्यात्। **अपराह्णः प्रतिहारः**, पश्वादीनां गृहान्प्रति हरणात्। **यदस्तं यंस्तन्निधनं**, रात्रौ गृहे निधानात्प्राणिनाम्। **एतद्-बृहदादित्ये प्रोतं**, बृहतः आदित्यदै(दे)वत्यत्वात्।।१।।

स य एवमेतद्बृहदादित्ये प्रोतं वेद तेजस्व्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या तपन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ।।१४।।



(अथ द्वितीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः)

अभ्राणि संप्लवन्ते, स हिंकारो, मेघो जायते, स प्रस्तावो, वर्षति स उद्गीथो, विद्योतते स्तनयति स प्रतिहार, उद्गृह्णाति तन्निधनमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतम् ।।१।।

वह जो पुरुष बृहत्साम को इस प्रकार सूर्य में स्थित जानता है, वह तेजस्वी और अन्न का भोक्ता होता है, पूर्ण आयु वाला होता है। उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है, एवं कीर्ति के कारण भी महान् होता है, तपते हुए सूर्य की निन्दा न करे; यह बृहत्सामोपासक के लिये व्रत है।। २।।

।। इति चतुर्दशः खण्डः ।।



मेघ में वैरूप सामोपासना

जल बरसाने के लिये जो बादल एकत्रित होते हैं वे हिंकार हैं, मेघ उत्पन्न होता है, वह प्रस्ताव है। जल बरसता है, वह उद्गीथ है। बिजली चमकती और कड़कती है, वह प्रतिहार है तथा वृष्टि का उपसंहार ही निधन है। यह वैरूप साम मेघ में व्याप्त है।। १।।

स य इत्यादि पूर्ववत्। **तपन्तं न निन्देत्तद्व्रतम्**।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।।१४।।

अभ्राण्यभ्भरणान्मेघ उदकसेक्तृत्वात्। उक्तार्थमन्यत्। **एतद्वैरूपं** नाम साम **पर्जन्ये प्रोतम्**। अनेकरूपत्वात्। अभ्रादिभिः पर्जन्यस्य वैरूप्यम्।।१।।

स य एवमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतं वेद, विरूपाꣳश्च सुरूपाꣳश्च पशूनवरुन्धे, सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या वर्षन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥)



(अथ द्वितीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः)

वसन्तो हिंकार ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्‌गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम् ॥१॥

स य एवमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद, विराजति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया

वह जो पुरुष इस प्रकार इस वैरूप साम को मेघ में व्याप्त जानता है, वह विरूप और सुरूप पशुओं का अवरोध (प्राप्त) करता है। पूर्ण आयु को प्राप्त करता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है, प्रजा और पशुओं के तथा कीर्ति के कारण महान् होता है, बरसते हुए मेघ की निन्दा न करे; यह उसका व्रत है॥२॥

॥इति पञ्चदशः खण्डः॥



वैराज सामोपासना

सर्व प्रथम होने के कारण वसन्त हिंकार है, ग्रीष्म प्रस्ताव है, वर्षा उद्‌गीथ है, शरद् प्रतिहार है और हेमन्त निधन है। यह वैराज साम ऋतुओं में ओत-प्रोत है॥१॥

वह जो पुरुष इस वैराज साम को ऋतुओं में व्याप्त देखता है, वह प्रजा, पशु और ब्रह्मतेज के कारण सुशोभित होता है, वह पूर्ण आयु वाला होता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है, प्रजा और

विरूपांश्च सुरूपांश्चाजाविप्रभृतीन्**पशूनवरुन्धे** प्राप्नोतीत्यर्थः। **वर्षन्तं न निन्देत्तद्व्रतम्**॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः॥१५॥

वसन्तो हिंकारः, प्राथम्यात्। **ग्रीष्मः प्रस्ताव** इत्यादि पूर्ववत्॥१॥

एतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद विराजति ऋतुवद्यथर्तव, आर्तवैर्धर्मैर्विराजन्त एवं

पशुभिर्भवति महान्कीर्त्यर्तून्न निन्देत्तद्व्रतम् ।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः ।।१६।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः)

पृथिवी हिंकारोऽन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो दिशः प्रतिहार समुद्रो निधनमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोताः ।। १।।

स य एवमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोता वेद लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या लोकान्न निन्देत्तद्व्रतम् ।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ।।१७।।

पशुओं के कारण महान् होता है और कीर्ति के कारण भी महान् होता है। ऋतुओं की निन्दा न करे; यह उसका व्रत है।।२।।

।।इति षोडशः खण्डः।।



शक्वरी सामोपासना

पृथिवी हिंकार है, अन्तरिक्ष प्रस्ताव है, द्युलोक उद्गीथ है, दिशाएं प्रतिहार हैं और समुद्र निधन है। ये शक्वरी साम लोकों में व्याप्त हैं।।१।।

वह जो पुरुष इस प्रकार इस शक्वरी साम को लोकों में व्याप्त जानता है, वह लोकवान् होता है, सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है। उज्ज्वल जीवन बिताता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है। लोकों की निन्दा न करे; (यह शक्वरी सामोपासना के लिये) व्रत है।।२।।

।।इति सप्तदशः खण्डः।।

प्रजादिभिर्विद्वानित्युक्तमन्यत्। **ऋतून्न निन्देत्तद्व्रतम्**।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः।।१६।।

पृथिवी हिंकार इत्यादि पूर्ववत्। **शक्वर्य** इति नित्यं बहुवचनं रेवत्य इव। **लोकेषु प्रोताः**।।१।।

लोकी भवति लोकफलेन युज्यते इत्यर्थः। **लोकान्न निन्देत्तद्व्रतम्**।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः।।१७।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः)

अजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनमेता रेवत्यः पशुषु प्रोताः ॥१॥

स य एवमेता रेवत्यः पशुषु प्रोता वेद पशुमान्भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या पशून्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २॥

इति द्वितीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥१८॥

पशुओं में रेवती सामोपासना

बकरी हिंकार है, भेड़ें प्रस्ताव हैं, गौएं उद्गीथ हैं, घोड़े प्रतिहार हैं, पुरुष निधन है। यह रेवती साम पशुओं में ओत-प्रोत है॥१॥

वह जो पुरुष इस प्रकार साम को पशुओं में व्याप्त जानता है, वह पशुमान् होता है, पूर्ण आयुष्मान् होता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है। प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है, तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है, पशुओं की निन्दा न करे; (यह रेवती सामोपासक के लिये) व्रत है॥२॥

॥इत्यष्टादशः खण्डः ॥

अजा हिंकार इत्यादि पूर्ववत्। **पशुषु प्रोताः**॥१॥

पशून्न निन्देत्तद्व्रतम्॥२॥

इति तृतीयाह्निकम्॥३॥

इति द्वितीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः॥१८॥

कुणी = A cripple without withered arm; a person without beard & moustaches.

(अथ द्वितीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः)

लोम हिंकारस्त्वक्प्रस्तावो माꣳसमुद्गीथोऽस्थि प्रतिहारो मज्जा निधनमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतम् ॥१॥

स य एवमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतं वेदाङ्गीभवति नाङ्गेन विहूर्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या संवत्सरं मज्ज्ञो नाश्नीयात्तद्व्रतं मज्ज्ञो नाश्नीयादिति वा ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥१९॥

यज्ञायज्ञीय सामोपासना

लोम हिंकार है, त्वचा प्रस्ताव है, मांस उद्गीथ है, अस्ति प्रतिहार है और मज्जा निधन है। यह यज्ञा यज्ञींय साम देह के अवयवों में व्याप्त है।। १।।

वह जो पुरुष इस प्रकार यज्ञायज्ञीय साम को अङ्गों में व्याप्त जानता है, वह पूर्णाङ्ग होता है, वह अङ्ग के कारण कुटिल नहीं होता। अर्थात् लंगड़ा या दाढ़ी-मूँछ रहित नहीं होता। पूर्ण आयुष्मान होता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है, प्रजा, पशुओं के कारण महान् होता है और कीर्ति के कारण भी महान् होता है। एक वर्ष तक मांस मत्स्य का भक्षण न करे; यह व्रत है, या सर्वदा मांसादि भक्षण न करे।। २।।

।। इत्येकोनविंशः खण्डः।।

लोम हिंकारो देहावयवानां प्राथम्यात्। **त्वक्प्रस्ताव** आनन्तर्यात्। **मांसमुद्गीथः** श्रैष्ठ्यात्। **अस्थि प्रतिहारः** प्रतिहृतत्वात्। **मज्जा निधनम**न्त्यात्। **एतद्यज्ञायज्ञीयं** नाम साम, देहावयवेषु **प्रोतम्**।।१।।

अङ्गीभवति समग्राङ्गो भवतीत्यर्थो **नाङ्गेन** हस्तपादादिना **विहूर्छति** न कुटिली भवति पङ्गुः कुणी वेत्यर्थः। **संवत्सरं** संवत्सरमात्रं **मज्ज्ञो** मांसानि **नाश्नीयान्न** भक्षयेत्। बहुवचनं मत्स्योपलक्षणार्थम्। **मज्ज्ञो** नाश्नीयात्सर्वदैव **नाश्नीयादिति वा**, तद्व्रतम्।।२।।

इति द्वितीयाध्यास्यैकोनविंशः खण्डः।।१९।।



(अथ द्वितीयाध्यायस्य विंशः खण्डः)

अग्निर्हिंकारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्राजनं देवतासु प्रोतम् ।।१।।

स य एवमेतद्राजनं देवतासु प्रोतं वेदैतासामेव देवतानाꣳ सलोकताꣳ सार्ष्टिताꣳ सायुज्यं गच्छतिसर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या ब्राह्मणान्न निन्देत्तद्व्रतम् ।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य विंशः खण्डः ।।२०।।



राजन सामोपासना

सर्व प्रथम होने से अग्नि हिंकार है, वायु प्रस्ताव है, आदित्य उद्गीथ है, नक्षत्र प्रतिहार है, चन्द्रमा निधन है, (क्योंकि उसी में कर्मकाण्डियों का निधन होता है) यह राजन साम देवताओं में ओत-प्रोत है।।१।।

वह जो पुरुष इस प्रकार साम को देवताओं में व्याप्त जानता है, उन्हीं देवताओं के सालोक्य, समान ऐश्वर्य रूप सार्ष्टित्व और परस्पर मेलन रूप सायुज्य को प्राप्त होता है। वह पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है, तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है। ब्राह्मणों की निन्दा न करे; यह उसके लिये नियम व्रत है।।२।।

।।इति विंशः खण्डः।।

अग्निर्हिंकारः, प्रथमस्थानत्वात्। **वायुः प्रस्ताव**, आनन्तर्यसामान्यात्। **आदित्य उद्गीथः**, श्रैष्ठ्यात् **नक्षत्राणि प्रतिहारः**, प्रतिहृतत्वात्। **चन्द्रमा निधनं**, कर्मिणां तन्निधनात्। **एतद्राजनं देवतासु प्रोतं** देवतानां, दीप्तिमत्त्वात्।।१।।

विद्वत्फलम्— एता**सामेव**ाग्न्यादीनां **देवतानां** समानलोकतां **सार्ष्टितां** समानर्द्धित्वं **सायुज्यं** सयुग्भावमेकदेहदेहित्वमित्येतत्। वाशब्दोऽत्र लुप्तो द्रष्टव्यः। सलोकतां वेत्यादि। भावनाविशेषतःफलविशेषोपपत्तेः। **गच्छति** प्राप्नोति। समुच्चयानुपपत्तेश्च। **ब्राह्मणान्न निन्देत्तद्व्रतम्**। "एते वै देवाः प्रत्यक्षं यद्ब्राह्मणा" इति श्रुतेर्ब्राह्मणनिन्दा देवतानिन्दैवेति।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य विंशः खण्डः।।२०।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्यैकविंशः खण्डः)

त्रयी विद्या हिंकारस्त्रय इमे लोकाः स प्रस्तावोऽग्निर्वायुरादित्यः स उद्गीथो नक्षत्राणि वयाꣳसि मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः पितरस्तन्निधनमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतम् ॥१॥

सर्वरूप साम उपासना — सर्वरूपता, सर्वज्ञता, एवं सर्वैश्वर्य प्राप्ति-फल.

स य एवमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतं वेद सर्वꣳ ह भवति ॥२॥

सभी में साम उपासना

(सम्पूर्ण कर्मों के आरम्भ में होने के कारण) त्रयी विद्या हिंकार है, (इनके कार्य होने से) ये तीन लोक प्रस्ताव हैं। अग्नि, वायु और आदित्य ये (उत्कृष्टता के कारण) उद्गीथ हैं; नक्षत्र, पक्षी, किरणें- ये प्रतिहार हैं, विषधर सर्प, गन्धर्व और पितृगण- ये निधन हैं। यह सामोपासना (किसी नाम विशेष के अभाव से) सब में ओत-प्रोत हैं॥१॥



सर्व विषयक सामोपासना का फल

जो इस प्रकार सब में व्याप्त इस साम को जानता है, वह सर्वस्वरूप हो जाता है॥२॥

त्रयी विद्या हिंकारः। अग्न्यादिसाम्न आनन्तर्यं त्रयीविद्याया अग्न्यादिकार्यत्वश्रुतेः। हिंकारः प्राथम्यात्सर्वकर्तव्यानाम्। **त्रय इमे** लोकास्तत्कार्यत्वादनन्तरा इति **प्रस्तावः** अग्न्यादीनामुद्गीथत्वं श्रैष्ठ्यात्। नक्षत्रादीनां प्रतिहृतत्वात्प्रतिहारत्वम्। सर्पादीनां धकारसामान्यान्निधनत्वमेतत्साम नामविशेषाभावात्सामसमुदायः सामशब्दः **सर्वस्मिन्प्रोतम्**। त्रयीविद्यादि हि सर्वम्। त्रयीविद्यादिदृष्ट्या हिंकारादिसामभक्तय उपास्याः। अतीतेष्वपि सामोपासनेषु येषु येषु प्रोतं यद्यत्साम तद्दृष्ट्या तदुपास्यमिति। कर्माङ्गानां (णां) दृष्टिविशेषेणाज्यस्येव संस्कार्यत्वात्॥१॥

सर्वविषयसामविदः फलं— **सर्वं ह भवति** सर्वेश्वरो भवतीत्यर्थः। निरुपचरितसर्वभावे हि दिक्स्थेभ्यो बलिप्राप्त्यनुपपत्तिः॥२॥

तदेष श्लोको यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो न ज्यायः परमन्यदस्ति ॥३॥

यस्तद्वेद स वेद सर्वꣳ सर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति सर्वमस्मीत्युपासीत तद्व्रतं तद्व्रतम् ॥४॥

इति द्वितीयाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ॥२१॥

इस सामोपासना का उत्कर्ष

इस विषय में यह मन्त्र भी है, जो पाँच प्रकार के तीन-तीन कहे गये हैं, उन पाँच त्रिकों की अपेक्षा महान् इनसे भिन्न कोई नहीं है (अर्थात्, इन्हीं में सम्पूर्ण वस्तुओं का अन्तर्भाव है)॥३॥

जो पुरुष इस सर्वात्मक साम को जानता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है। सम्पूर्ण दिशाओं में स्थित पुरुष इस उपासक को भेंट उपस्थित करते हैं। "मैं सब कुछ हूँ" इस प्रकार इस साम की उपासना करे; (उपासक के लिए) यह नियम है, यह नियम है ॥४॥

॥इति एकविंशः खण्डः॥

तदेतस्मिन्नर्थ **एष श्लोको** मन्त्रोऽप्यस्ति। **यानि पञ्चधा** पञ्चप्रकारेण हिंकारादिविभागैः प्रोक्तानि **त्रीणि** त्रयीविद्यादीनि **तेभ्यः** पञ्चत्रिकेभ्यो ज्यायो महत्तरं व्यतिरिक्तमन्यद्वस्त्वन्तरं नास्ति न विद्यत इत्यर्थः। तत्रैव हि सर्वस्यान्तर्भावः॥३॥

यस्तद्यथोक्तं सर्वात्मकं साम वेद **स वेद सर्वं** स सर्वज्ञो भवतीत्यर्थः। **सर्वा दिशः** सर्वदिक्स्था अस्मा एवंविदे **बलिं** भोगं **हरन्ति** प्रापयन्तीत्यर्थः। **सर्वमस्मि** भवामीत्येवमेतत्साम**ोपासीत** तस्यै**तदेव व्रतम्**। द्विरुक्तिः सामोपासनसमाप्त्यर्था॥४॥

इति द्वितीयाध्यायस्यैकविंशः खण्डः॥२१॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः)

विनर्दि साम्नो वृणे पशव्यमित्यग्नेरुद्गीथोऽनिरुक्तः प्रजापतेर्निरुक्तः सोमस्य मृदु श्लक्ष्णं वायोः श्लक्ष्णं बलवदिन्द्रस्य क्रौञ्चं बृहस्पतेरपध्वान्तं वरुणस्य तान्सर्वानेवोपसेवेत वारुणं त्वेव वर्जयेत् ।।१।।

विनर्दि–गुणयुक्त सामोपासना

साम के (बैल के शब्द के समान) विनर्दि नामक गान का वरण करता है, वह पशुओं के लिए हितकर है और अग्निदेवता संबन्धी उद्गीथ है। प्रजापति संबन्धी उद्गीथ विशेष रूप से विपरीत नहीं किया जा सकता है। सोम देवता सम्बन्धी उदगीथ स्पष्ट है। वायु का मृदुल और श्लक्षण (उच्चारण करने में सरल) है। इन्द्र का श्लक्षण और (अधिक प्रयत्न सापेक्ष होने से) बलवान् है। बृहस्पति का क्रौञ्च (क्रौञ्च पक्षी के शब्द के समान) है और वरुण का अपध्वान्त (फूटे हुए काँसे के स्वर के समान) है। इन सभी गान का प्रयोग करें; केवल वरुण संबन्धी गान का परित्याग करे।।१।।

सामोपासनप्रसङ्गेन गानविशेषादिसंपदुद्गातुरुपदिश्यते। फलविशेषसंबन्धात्। विनर्दि विशिष्टो नर्दः स्वरविशेष ऋषभकूजितसमोऽस्यास्तीति विनर्दि गानमिति वाक्यशेषः। तच्च साम्नः संबन्धि पशुभ्यो हितं **पशव्यमग्नेरग्निदेवत्यं चोद्गीथ** उद्गानम्। तदहमेवं विशिष्टं वृणे प्रार्थय इति कश्चिद्यजमान उद्गाता वा मन्यते। **अनिरुक्तो**ऽमुकसम इत्यविशेषितः। **प्रजापतेः** प्रजापतिदेवत्यः स गानविशेषः। आनिरुक्त्यात्प्रजापतेर्निरुक्तः स्पष्टः। **सोमस्य** सोमदेवत्यः स उद्गीथ इत्यर्थः। **मृदु श्लक्ष्णं** च गानं **वायो**र्वायुदेवत्यं तत्। **श्लक्ष्णं बलवच्च** प्रयत्नाधिक्योपेतं **चेन्द्रस्यैन्द्रं** तद्गानम्। **क्रौञ्चं** क्रौञ्चपक्षिनिनादसमं **बृहस्पते**र्बार्हस्पत्यं तत्। **अपध्वान्तं** भिन्नकांस्यस्वरसमं **वरुणस्यैत**द्गानम्। **तान्सर्वानेवोपसेवेत**, प्रयुञ्जीत, **वारुणं त्वेवैकं वर्जयेत्**।।१।।

अमृतत्वं देवेभ्य आगायानीत्यागायेत्स्वधां पितृभ्य, आशां मनुष्येभ्यस्तृणोदकं पशुभ्यः, स्वर्गं लोकं यजमानायान्नमात्मने आगायानीत्येतानि मनसा ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीत ॥२॥

सर्वे स्वरा इन्द्रस्याऽऽत्मानः, सर्व ऊष्माणः प्रजापतेरात्मानः, सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मानस्तं यदि स्वरेषूपालभेतेन्द्रꣳ शरणं प्रपन्नोऽभूवं, स त्वा प्रति वक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥३॥

स्तुति के समय में ध्यान विधि

मैं देवताओं के लिये अमृतत्व का आगान करूँ, (इस प्रकार चिन्तन करते हुए) आगान करे। पितरों के लिये स्वधा का (आगान करूँ) मनुष्यों के लिये प्रार्थित वस्तु का, पशुओं के लिये तृणोदक का, यजमान के लिये स्वर्ग लोक का और अपने लिए अन्न का आगान करूँ। इस प्रकार इन्हें मन से चिन्तन करते हुए (स्वर, ऊष्म और व्यञ्जनादि के उच्चारण में) प्रमाद रहित होकर स्तुति करे।।२।।

स्वरादि वर्णों की देवरूपता

अकारादि सभी स्वर इन्द्र (प्राण) की आत्मा हैं, सभी ऊष्म वर्ण प्रजापति की आत्मा हैं। सभी स्पर्श वर्ण मृत्यु की आत्मा हैं। (इस प्रकार जानने वाले) उद्गाता को यदि कोई स्वरों के उच्चारण में (तूने दोषयुक्त स्वर का प्रयोग किया है इस प्रकार) उपालम्भ दे, तो वह उसे उत्तर देवे कि मैं इन्द्र के शरणापन्न हूँ, वही तुझे उत्तर देगा।।३।।

अमृतत्वं देवेभ्य आगायानि, साधयानि। स्वधां पितृभ्य आगायान्याशां **मनुष्येभ्य** आशां प्रार्थनां प्रार्थितमित्येतत्। **तृणोदकं पशुभ्यः स्वर्गं लोकं यजमानायान्नमात्मने** मह्यमागायानीत्येतानि **मनसा** चिन्तयन्**ध्यायन्नप्रमत्तः** स्वरोष्मव्यञ्जनादिभ्यः **स्तुवीत**।।२।।

सर्वे स्वरा अकारादय **इन्द्रस्य** बलकर्मणः प्राणस्याऽऽ**त्मानो** देहावयवस्थानीयाः। **सर्व उष्माणः** शषसहादयः **प्रजापते**र्विराजः कश्यपस्य वाऽऽ**त्मानः**। **सर्वे स्पर्शाः** कादयो व्यञ्जनानि **मृत्योरात्मानस्तमे**वंविदमुद्गातारं **यदि** कश्चित्**स्वरेषूपालभेत** स्वरस्त्वया दुष्टः प्रयुक्त इत्येवमुपालब्ध इन्द्रं प्राणमीश्वरं **शरणमा**श्रयं **प्रपन्नोऽभूवं** स्वरान्प्रयुञ्जानोऽहं **स** इन्द्रो यत्तव वक्तव्यं त्वा त्वां **प्रति वक्ष्यति**, स एव देव उत्तरं दास्यतीत्**येनं** ब्रूयात्।।३।।

अथ यद्येनमूष्मसूपालभेत, प्रजापतिꣳ शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति पेक्ष्यतीत्येनं ब्रूयादथ यद्येनꣳ स्पर्शेषूपालभेत, मृत्युꣳ शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति धक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ।।४।।

सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या इन्द्रे बलं ददानीति सर्वे ऊष्माणोऽग्रस्ता अनिरस्ता विवृता वक्तव्याः, प्रजापतेरात्मानं परिददानीति, सर्वे स्पर्शा लेशेनाभिनिहिता वक्तव्या, मृत्योरात्मानं परिहराणीति ।।५।।

इति द्वितीयाध्यास्य द्वाविंशः खण्डः ।।२२।।

और यदि कोई पुरुष इसे ऊष्म वर्णों के उच्चारण में दोष दिखलावे, तो वह उससे कहे– कि मैं प्रजापति के शरणापन्न हूँ, वही तुझे पीसेगा और यदि कोई इसे स्पर्श वर्णों के उच्चारण में उलाहना दे, तो उससे कहे कि मैं मृत्यु के शरणापन्न हूँ, वही तुझे जला डालेगी।।४।।

वर्णों के उच्चारण काल में चिन्तनीय वस्तु

सभी स्वर घोषयुक्त और बलयुक्त बोलने चाहिए। अतः (उनका उच्चारण करते समय) मैं इन्द्र में बल का आधान करूँ। ऐसा (चिन्तन करना चाहिये, ऐसा ही) समस्त ऊष्म वर्ण बिना भीतर प्रवेश किये, बिना बाहर निकले और विस्तृत प्रयत्न से युक्त उच्चारण करना चाहिये। (और उनका उच्चारण करते समय ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि) मैं प्रजापति को आत्मदान करूँ तथा सम्पूर्ण स्पर्श वर्ण को एक दूसरे से थोड़ा भी न मिलाकर बोलना चाहिये और ''मैं मृत्यु से अपने को हटाऊँ'' (उस समय ऐसा चिन्तन करना चाहिये)।।५।।

।। इति द्वाविंशः खण्डः।।

अथ यद्येनमूष्मसु तथैवो**पालभेत प्रजापतिं शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति पेक्ष्यति** संचूर्णयिष्यती**त्येनं ब्रूयात्। अथ यद्येनं स्पर्शेषूपालभेत मृत्युं शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रतिधक्ष्यति** भस्मीकरिष्यती**त्येनं ब्रूयात्**।।४।।

यत इन्द्राद्यात्मानः स्वरादयोऽतः **सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्याः**। तथाऽह**मिन्द्रे बलं ददानि** बलमादधानीति। तथा **सर्वे** ऊष्माणोऽग्रस्ता अन्तरप्रवेशिता **अनिरस्ता** बहिरप्रक्षिप्ता **विवृता** विवृतप्रयत्नोपेताः **प्रजापतेरात्मानं परिददानि** प्रयच्छानी**ति**। **सर्वे स्पर्शा लेशेन** शनकैरन**भिनिहिता** अनभिनिक्षिप्ता **वक्तव्या मृत्योरात्मानं**. बालानिव शनकैः परिहरन् **मृत्योरात्मानं परिहराणी**ति।।५।।

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः।।२२।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः)

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति, ब्रह्मसꣳस्थोऽमृतत्वमेति ॥१॥

धर्म के तीन स्कन्ध हैं

धर्म के आधार स्तम्भ तीन हैं। अग्निहोत्रादि यज्ञ, (नियमपूर्वक ऋग्वेदादि का अभ्यास रूप) अध्ययन और (वेदी के बाहर यथाशक्ति द्रव्य प्रदान रूप) दान, यह पहला स्कन्ध है (यानी ये गृहस्थों से अनुष्ठेय हैं)। कृच्छ्रचान्द्रायणादि तप ही दूसरा धर्म स्कन्ध है (जो केवल आश्रम धर्म में स्थित परिव्राजक के लिये अनुष्ठेय है)। आचार्य कुल में रहने वाला ब्रह्मचारी है, जो आचार्य कुल में ही अपने शरीर को नियम-व्रतादि से अत्यन्त क्षीण कर देता है, वह तीसरा धर्म स्कन्ध है। ये सभी पुण्यलोक के भागी होते हैं। (चतुर्थ परिव्राजक तो) ब्रह्म में सम्यक् प्रकार से स्थित हो अमृतत्व को प्राप्त करता है॥१॥

ओंकारस्योपासनविध्यर्थं **त्रयो धर्मस्कन्धा** इत्याद्यारभ्यते। नैवं मन्तव्यं सामावयवभूतस्यैवोद्गीथादिलक्षणस्योंकारस्योपासनात्फलं प्राप्यत इति। किं तर्हि यत्सर्वैरपि सामोपासनैः कर्मभिश्चाप्राप्यं तत्फलममृतत्वं केवलादोंकारोपासनात्प्राप्यते इति। तत्स्तुत्यर्थं सामप्रकरणे तदुपन्यासः। **त्रय**स्त्रिसंख्याका धर्मस्य स्कन्धा **धर्मस्कन्धा**, धर्मप्रविभागा इत्यर्थः। के त इत्याह— **यज्ञो**ऽग्निहोत्रादिः। **अध्ययनं** सनियमस्य ऋगादेरभ्यासः। **दानं** बहिर्वेदि यथाशक्तिद्रव्यसंविभागो भिक्षमाणेभ्यः। **इत्येष प्रथमो** धर्म स्कन्धः गृहस्थसमवेतत्वात्तन्निर्वर्तकेन गृहस्थेन निर्दिश्यते प्रथम एक इत्यर्थो द्वितीयतृतीयश्रवणान्नाऽऽद्यार्थः। **तप एव द्वितीयस्**तप इति कृच्छ्रचान्द्रायणादि तद्वांस्तापसः परिव्राड्वा न ब्रह्मसंस्थ, आश्रमधर्ममात्रसंस्थो, ब्रह्मसंस्थस्य त्वमृतत्वश्रवणात्। द्वितीयो धर्मस्कन्धः। **ब्रह्मचार्या**चार्यकुले वस्तुं शीलमस्येत्**याचार्यकुलवासी**। **अत्यन्तं** यावज्जीव**मात्मानं** नियमै**राचार्यकुलेऽवसादयन्**क्षपयन्देहं **तृतीयो** धर्मस्कन्धः। अत्यन्तमित्यादिविशेषणान्नैष्ठिक इति गम्यते। उपकुर्वाणस्य स्वाध्यायग्रहणार्थत्वान्न

पुण्यलोकत्वं ब्रह्मचर्येण। **सर्व एते** त्रयोऽप्याश्रमिणो यथोक्तैर्धर्मैः **पुण्यलोका भवन्ति**। पुण्यो लोको येषां ते इमे पुण्यलोका आश्रमिणो **भवन्ति**। अवशिष्टस्त्वनुक्तः परिव्राड्**ब्रह्मसंस्थो** ब्रह्मणि सम्यक्स्थितः सोऽ**मृतत्वं** पुण्यलोकविलक्षणम्-मरणभावमात्यन्तिक**मेति**, नाऽऽपेक्षिकं देवाद्यमृतत्ववत्। पुण्यलोकात्पृथगमृतत्वस्य विभागकरणात्।

यदि च पुण्यलोकातिशयमात्रममृतत्वमभविष्यत्ततः पुण्यलोकत्वाद्विभक्तं नावक्ष्यत्। विभक्तोपदेशाच्चाऽऽत्यन्तिकममृतत्वमिति गम्यते। अत्र चाऽऽश्रमधर्मफलोपन्यासः प्रणवसेवास्तुत्यर्थः न तत्फलविध्यर्थम्। स्तुतये च प्रणवसेवाया आश्रमधर्मफलविधये चेति हि भिद्येत वाक्यम्। तस्मात्स्मृतिसिद्धाश्रमफलानुवादेन प्रणवसेवाफलममृतत्वं ब्रुवन्प्रणवसेवां स्तौति। यथा पूर्णवर्मणः सेवा भक्तपरिधानमात्रफला राजवर्मणस्तु सेवा राज्यतुल्यफलेति तद्वत्। प्रणवश्च तत्सत्यं परं ब्रह्म, तत्प्रतीकत्वात्। ''एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परमि'' त्याद्याम्नानात्काठके युक्तं तत्सेवातोऽमृतत्वम्

अत्राऽऽहुः केचिच्चतुर्णामाश्रमिणामविशेषेण स्वकर्मानुष्ठानात्पुण्यलोकतेहोक्ता ज्ञानवर्जितानां सर्व एते पुण्यलोका भवन्तीति। नात्र परिव्राडवशेषितः। परिव्राजकस्यापि ज्ञानं यमा नियमाश्च तप एवेति। **तप एव द्वितीय** इत्यत्र तपःशब्देन परिव्राट्तापसौ गृहीतौ। अतस्तेषामेव चतुर्णां यो ब्रह्मसंस्थः प्रणवसेवकः सोऽमृतत्वमेतीति। चतुर्णामधिकृतत्वाविशेषात् ब्रह्मसंस्थत्वेऽप्रतिषेधाच्च। स्वकर्मच्छिद्रे च ब्रह्मसंस्थतायां सामर्थ्योपपत्तेः। न च यववराहादिशब्दवद्ब्रह्मसंस्थशब्दः परिव्राजके रूढः। ब्रह्मणि संस्थितिनिमित्तमुपादाय प्रवृत्तत्वात्। न हि रूढिशब्दा निमित्तमुपाददते। सर्वेषां च ब्रह्मणि स्थितिरुपपद्यते। यत्र यत्र निमित्तमस्ति ब्रह्मणि संस्थितिस्तस्य तस्य निमित्तवतो वाचकं सन्तं ब्रह्मसंस्थशब्दं परिव्राडेकविषये संकोचे कारणाभावान्निरोद्धुमयुक्तम्।

न च पारिव्राज्याश्रमधर्ममात्रेणामृतत्वम्। ज्ञानानर्थक्यप्रसङ्गात्। पारिव्राज्यधर्मयुक्तमेव ज्ञानममृतत्वसाधनमिति चेन्न। आश्रमधर्मत्वाविशेषात्। धर्मो वा ज्ञानविशिष्टोऽ-मृतत्वसाधनमित्येतदपि सर्वाश्रमधर्माणामविशिष्टम्। न च वचनमस्ति परिव्राजकस्यैव ब्रह्मसंस्थस्य मोक्षो नान्येषामिति। ज्ञानान्मोक्ष इति च सर्वोपनिषदां सिद्धान्तः। तस्माद्यः एवं ब्रह्मसंस्थः स्वाश्रमविहितकर्मवतां सोऽमृतत्वमेतीति।

निर्व्यापारस्य

न। कर्मनिमित्तविद्याप्रत्यययोर्विरोधात्। कर्त्रादिकारकक्रियाफलभेदप्रत्ययवत्त्वं हि निमित्तमुपादायेदं कुर्विदं मा कार्षीरिति कर्मविधयः प्रवृत्ताः। तच्च निमित्तं न शास्त्रकृतम्। सर्वप्राणिषु दर्शनात्। "सदेकमेवाद्वितीयमात्मैवेदं सर्वं ब्रह्मैवेदं सर्वमिति" शास्त्रजन्यः प्रत्ययो विद्यारूपः स्वाभाविकं क्रियाकारकफलभेदप्रत्ययं कर्मविधिनिमित्तमनुपमृद्य न जायते। भेदाभेदप्रत्यययोर्विरोधात्। न हि तैमिरिकद्विचन्द्रादिभेदप्रत्ययमनुपमृद्य तिमिरापगमे चन्द्राद्येकत्वप्रत्ययःउपजायते। विद्याऽविद्याप्रत्यययोर्विरोधात्। तत्रैवं सति यं भेदप्रत्ययमुपादाय कर्मविधयः प्रवृत्ताः स यस्योपमर्दितः सदेकमेवाद्वितीयं तत्सत्यं विकारभेदोऽनृतमित्येतद्वाक्यप्रमाणजनितेनैकत्वप्रत्ययेन स सर्वकर्मभ्यो, निवृत्तो निमित्तनिवृत्तेः, स च निवृत्तकर्मा ब्रह्मसंस्थ उच्यते, स च परिव्राडेव अन्यस्यासंभवात्। अन्यो ह्यनिवृत्तभेदप्रत्ययः सोऽन्यत्पश्यञ्शृण्वन्मन्वानो विजानन्निदं कृत्वेदं प्राप्नुयामिति हि मन्यते। तस्यैवं कुर्वतो न ब्रह्मसंस्थता। वाचारम्भणमात्रविकारानृताभिसंधिप्रत्ययवत्वात्। न चासत्यमित्युपमर्दिते भेदप्रत्यये सत्यमिदमनेन कर्तव्यं मयेति प्रमाणप्रमेयबुद्धिरुपपद्यते। आकाश इव तलमलबुद्धिर्विवेकिनः। उपमर्दितेऽपि भेदप्रत्यये कर्मभ्यो न निवर्तते चेत्प्रागिव भेदप्रत्ययोपमर्दनादेकत्वप्रत्ययविधायकं वाक्यमप्रमाणीकृतं स्यात्। अभक्ष्यभक्षणादिप्रतिषेधवाक्यानां प्रामाण्यवद्युक्तमेकत्ववाक्यस्यापि प्रामाण्यम्। सर्वोपनिषदां तत्परत्वात्।

कर्मविधीनामप्रामाण्यप्रसङ्ग इति चेत्। न। अनुपमर्दितभेदप्रत्ययवत्पुरुषविषये प्रामाण्योपपत्तेः स्वप्नादिप्रत्यय इव प्राक्प्रबोधात्। विवेकिनामकरणात्कर्मविधिप्रामाण्योच्छेद इति चेन्न। काम्यविध्यनुच्छेददर्शनात्। न हि काम्यात्मता न प्रशस्तेत्येवंविज्ञानवद्भिः काम्यानि कर्माणि नानुष्ठीयन्त इति काम्यकर्मविधय उच्छिद्यन्तेऽनुष्ठीयन्त एव कामिभिरिति। तथा ब्रह्मसंस्थैर्ब्रह्मविद्भिर्नानुष्ठीयन्ते कर्माणीति न तद्विधय उच्छिद्यन्तेऽब्रह्मविद्भिरनुष्ठीयन्त एवेति।

परिव्राजकानां भिक्षाचरणादिवदुत्पन्नैकत्वप्रत्ययानामपि गृहस्थादीनामग्निहोत्रादिकर्मानिवृत्तिरिति चेन्न। प्रामाण्यचिन्तायां पुरुषप्रवृत्तेरदृष्टान्तत्वात्। न हि नाभिचरेदिति प्रतिषिद्धमप्यभिचरणं कश्चित्कुर्वन्दृष्ट इति शत्रौ द्वेषरहितेनापि विवेकिनाऽभिचरणं

क्रियते। न च कर्मविधिप्रवृत्तिनिमित्ते भेदप्रत्यये बाधितेऽग्निहोत्रादौ प्रवर्तकं निमित्तमस्ति, परिव्राजकस्येव भिक्षाचरणादौ बुभुक्षादि प्रवर्तकम्।

इहाप्यकरणे प्रत्यवायभयं प्रवर्तकमिति चेत्। न भेदप्रत्ययवतोऽधिकृतत्वात्। भेदप्रत्ययवानुपमर्दितभेदबुद्धिर्विद्यया यः स कर्मण्यधिकृत इत्यवोचाम। यो ह्यधिकृतः कर्मणि तस्य तदकरणे प्रत्यवायो, न निवृत्ताधिकारस्य गृहस्थस्येव ब्रह्मचारिणो विशेषधर्माननुष्ठाने। एवं तर्हि सर्वः स्वाश्रमस्य उत्पन्नैकत्वप्रत्ययः परिव्राडिति चेत्। न। स्वस्वामित्वभेदबुद्ध्यनिवृत्तेः। कर्मार्थत्वाच्चेतराश्रमाणाम्। ''अथ कर्म कुर्वीय'' (बृ. १.४.१७) इति श्रुतेः। तस्मात्स्वस्वामित्वाभावाद्भिक्षुरेक एव परिव्राट्। न गृहस्थादिः।

एकत्वप्रत्ययविधिजनितेन प्रत्ययेन विधिनिमित्तभेदप्रत्ययस्योपमर्दितत्वाद्यमनियमाद्यानुपत्तिः परिव्राजकस्येति चेत्? न, बुभुक्षादिनैकत्वप्रत्ययात्प्रच्यावितस्योपपत्तेर्निवृत्त्यर्थत्वात्। न च प्रतिषिद्धसेवाप्राप्तिः? एकत्वप्रत्ययोत्पत्तेः प्रागेव प्रतिषिद्धत्वात्। न हि रात्रौ कूपे कण्टके वा पतितः, उदितेऽपि सवितरि पतति तस्मिन्नेव। तस्मात्सिद्धं निवृत्तकर्मा भिक्षुकः एव ब्रह्मसंस्थ इति।

यत्पुनरुक्तं सर्वेषां ज्ञानवर्जितानां पुण्यलोकतेति। सत्यमेतत्। यच्चोक्तं तपःशब्देन परिव्राडप्युक्त इति। एतदसत्। कस्मात्। परिव्राजकस्यैव ब्रह्मसंस्थतासंभवात्। स एव ह्यवशेषित इत्यवोचाम। एकत्वविज्ञानवतोऽग्निहोत्रादिवत्तपोनिवृत्तेश्च भेदबुद्धिमतः एव हि तपःकर्तव्यता स्यात्। एतेन कर्मच्छिद्रे ब्रह्मसंस्थतासामर्थ्यम्। अप्रतिषेधश्च प्रत्युक्तः। तथा ज्ञानवानेव निवृत्तकर्मा परिव्राडिति ज्ञानवैयर्थ्यं प्रत्युक्तम्।

यत्पुनरुक्तं यववराहादिशब्दवत्परिव्राजके न रूढो ब्रह्मसंस्थशब्द इति तत्परिहृतम्। तस्यैव ब्रह्मसंस्थतासंभवान्नान्यस्येति। यत्पुनरुक्तं रूढशब्दा निमित्तं नोपाददते इति। तन्न। गृहस्थतक्षपरिव्राजकादिशब्ददर्शनात्। गृहस्थितिप्रव्रज्यातक्षणादिनिमित्तोपादाना अपि गृहस्थपरिव्राजकावाश्रमिविशेषे विशिष्टजातिमति च तक्षेति रूढा दृश्यन्ते शब्दाः। न यत्र यत्र तानि निमित्तानि तत्र तत्र वर्तन्ते। प्रसिद्ध्यभावात्। तथेहापि ब्रह्मसंस्थशब्दो निवृत्तसर्वकर्मतत्साधनपरिव्राडेकविषयेऽत्याश्रमिणि परमहंसाख्येवृत्ते इह भवितुमर्हति। मुख्यामृतत्वफलश्रवणात्। अतश्चेदमेवैकं वेदोक्तं पारिव्राज्यम्। न यज्ञोपवीतत्रिदण्ड-

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या संप्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति ॥२॥

त्रयीविद्या और व्याहृतियों का प्रादुर्भाव

प्रजापति ने लोकों के (सार ग्रहण की इच्छा से) ध्यानरूप तप विया, उन अभितप्त लोकों से उनकी सारभूता त्रयीविद्या प्रतिभान हुई और उस अभितप्त त्रयीविद्या से भूर्भुवः स्वः (ये व्याहृति रूप अक्षर प्रादुर्भूत हुए)।। २।।

कमण्डल्वादिपरिग्रह इति 'मुण्डोऽपरिग्रहोऽसङ्ग' इति च

श्रुतिः "अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रम्" इत्यादि च श्वेताश्वतरीये। "निस्तुतिर्निर्नमस्कार" इत्यादिस्मृतिभ्यश्च। 'तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः। तस्मादलिङ्गो धर्मज्ञोऽव्यक्तलिङ्गः' इत्यादिस्मृतिभ्यश्च।

यत्तु सांख्यैः कर्मत्यागोऽभ्युपगम्यते, क्रियाकारकफलभेदबुद्धेः सत्यत्वाभ्युपगमात्। तन्मृषा। यच्च बौद्धैः शून्यताभ्युपगमादकर्तृत्वमभ्युपगम्यते। तदप्यसत्। तदभ्युपगन्तुः सत्त्वाभ्युपगमात्। यच्चाज्ञैरलसतयाऽकर्तृत्वाभ्युपगमः सोऽप्यसन्। कारकबुद्धेरनिवर्तितत्वात्प्रमाणेन। तस्माद्वेदान्तप्रमाणजनितैकत्वप्रत्ययवत एव कर्मनिवृत्तिलक्षणं पारिव्राज्यं ब्रह्मसंस्थत्वं चेति सिद्धम्। एतेन गृहस्थस्यैकत्वविज्ञाने सति पारिवाज्यमर्थसिद्धम्।

नन्वग्न्युत्सादनदोषभाक्स्यात्परिव्रजन्। "वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुद्वासयते" इति श्रुतेः? न। दैवोत्सादितत्वादुत्सन्न एव हि स एकत्वदर्शने जाते। "अपागादग्नेरग्नित्वम्" इति श्रुतेः। अतो न दोषभाग्गृहस्थः परिव्रजन्निति।।१।।

यत्संस्थोऽमृतत्वमेति तन्निरूपणार्थमाह— **प्रजापति**र्विराट् कश्यपो वा **लोकान**ुद्दिश्य तेषु सारजिघृक्षया**ऽभ्यतपद**भितापं कृतवान्ध्यानं तपः कृतवानित्यर्थः। तेभ्योऽभितप्तेभ्यः सारभूता **त्रयी विद्या संप्रास्रवत्**प्रजापतेर्मनसि प्रत्यभादित्यर्थः। **तामभ्यतपत्**। पूर्ववत्। **तस्या** अभितप्ताया **एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति** व्याहृतयः।।२।।

तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ॐकारः संप्रास्रवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णान्येवमोंकारेण सर्वा वाक्संतृण्णोंकार एवेदꣳ सर्वमोंकार एवेदꣳ सर्वम् ।।३।।

प्रर्णनालेन नसों जाओं



इति द्वितीयाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ।।२३।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः)

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद्वसूनां प्रातःसवनꣳ रुद्राणां माध्यंदिनꣳ

सवनं = Time of Extraction, oblation & consumption of Soma Juice during some Sacrifice (सोमयाग)



ॐकार का प्रादुर्भाव

(फिर प्रजापति ने) इन व्याहृतियों की आलोचना की, उन अभितप्त व्याहृतियों से ओंकार प्रादुर्भूत हुआ। जिस प्रकार पत्ते की नसों से सम्पूर्ण पत्ते व्याप्त रहते हैं, उसी प्रकार परमात्मा के प्रतीक रूप ओंकार से सम्पूर्ण वाक् व्याप्त है। ओंकार ही यह सब है, ओंकार ही यह सब कुछ है।। ३।।

।। इति त्रयोविंशः खण्डः ।।



सवनों के अधिष्ठाता देवता

ब्रह्मवादी लोग कहते हैं कि प्रातः सवन वसुदेवों का है। मध्याह्न सवन रुद्रों का है तथा तृतीय सवन आदित्य और विश्वेदेवों का है। (इन्हीं अधिष्ठातृ देवताओं के द्वारा भूर्लोक और

तान्यक्षराण्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ॐकारः संप्रास्रवत्तद्ब्रह्म, कीदृशमित्याह- **तद्यथा शङ्कुना** पर्णनालेन **सर्वाणि पर्णानि** पत्रावयवजातानि संतृण्णानि विद्धानि व्याप्तानीत्यर्थः। **एवमोंकारेण** ब्रह्मणा परमात्मनः प्रतीकभूतेन **सर्वा वाक्**शब्दजातं व्याप्ता **संतृण्णा**। "अकारो वै सर्वा वाक्" इत्यादिश्रुतेः। परमात्मविकारश्च नामधेयमात्रमित्यत **ओंकार एवेदꣳ सर्वम**िति। द्विरभ्यास आदरार्थः। लोकादिनिष्पादनकथनमोंकारस्तुत्यर्थमिति।।३।।

इति द्वितीयाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः।।२३।।

सामोपासनप्रसङ्गेन कर्मगुणभूतत्वान्निवर्त्योंकारं परमात्मप्रतीकत्वादमृत्वहेतुत्वेन महीकृत्य प्रकृतस्यैव यज्ञस्याङ्गभूतानि सामहोममन्त्रोत्थानान्युपदिदिक्षन्नाह-

सवनमादित्यानां च विश्वेषां च देवानां तृतीयसवनम् ॥१॥

क्व तर्हि यजमानस्य लोक इति, स यस्तं न विद्यात्कथं कुर्यादथ विद्वान्कुर्यात् ॥२॥

पुरा प्रातरनुवाकस्योपाकरणाज्जघनेन, गार्हपत्यस्योदङ्मुख उपविश्य, स वासवꣳ सामाभिगायति ॥३॥

स्वर्लोक के ऊपर यजमान विजय प्राप्त करता है)॥१॥

साम आदि का ज्ञाता ही यज्ञ का अधिकारी है

तो फिर यजमान का लोक कहाँ है? (जिसके लिए वह यज्ञानुष्ठान करता है) जो यजमान उस लोक को नहीं जानता, वह अज्ञानी किस प्रकार यज्ञ अनुष्ठान कर सकेगा? अतः आगे बतलाये जाने वाले सामादि उपायों का ज्ञाता होकर ही कर्म करे ॥२॥

प्रातः सवन में वसुदेव संबन्धी साम गान

प्रातःकाल में पढ़ने योग्य अनुवाक (शस्त्र नामक स्तोत्र पाठ) से पूर्व वह यजमान गार्हपत्याग्नि के पीछे की ओर उत्तराभिमुख बैठकर वसुदेवता संबन्धी साम का गान करता है॥३॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यत्प्रातःसवनं प्रसिद्धं **तद्वसूनाम्**। तैश्च प्रातःसवनसंबद्धोऽयं लोको वशीकृतः सवनेशानैः। तथा रुद्रैर्माध्यंदिनसवनेशानैरन्तरिक्षलोकः। आदित्यैश्च विश्वैर्देवैश्च तृतीयसवनेशानैस्तृतीयो लोको वशीकृतः इति यजमानस्य लोकोऽन्यः परिशिष्टो न विद्यते॥१॥

अतः **क्व तर्हि यजमानस्य लोको** यदर्थं यजते। क्वचिल्लोकोऽस्तीत्यभिप्रायः। ''लोकाय वै यजते यो यजते'' इति श्रुतेः। लोकाभावे च स **यो** यजमान**स्तं** लोकस्वीकरणोपायं सामहोममन्त्रोत्थानलक्षणं **न विद्यान्न** विजानीयात्सोऽज्ञः **कथं कुर्या**द्यज्ञं न कथंचन तस्य कर्तृत्वमुपपद्यते इत्यर्थः। सामादिविज्ञानस्तुतिपरत्वान्नाविदुषः कर्तृत्वं कर्ममात्रविदः प्रतिषिध्यते। स्तुतये च सामादिविज्ञानस्याविद्वत्कर्तृत्वप्रतिषेधाय चेति हि भिद्येत वाक्यम्। आद्ये चौषस्त्ये काण्डेऽविदुषोऽपि कर्मास्तीति हेतुमवोचाम। **अथै**तद्वक्ष्यमाणं सामाद्युपायं **विद्वान्कुर्यात्**॥२॥

किं तद्वेद्यमित्याह— **पुरा** पूर्वं **प्रातरनुवाकस्य** शस्त्रस्य प्रारम्भा**ज्जघनेन गार्हपत्यस्य** पश्चा**दुदङ्मुखः** स**न्नुपविश्य स वासवं** वसुदैवत्यं **सामाभिगायति**॥३॥

लो३कद्वारमपावा३र्णू ३३ पश्येम त्वा वयछं रा ३ ३ ३ ३ ३ हु ३ म् आ ३ ३ ज्या ३ यो ३ आ ३ २ १ १ १ इति ।।४।।

अथ जुहोति नमोऽग्नये पृथिवीक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एताऽस्मि ।।५।।

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहाऽपजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति, तस्मै वसवः प्रातःसवनछं संप्रयच्छन्ति ।।६।।

हे अग्ने! तुम इस पृथ्वी लोक की प्राप्ति के लिये इसका द्वार खोल दो, जिससे कि हम उस द्वार से राज्य प्राप्ति के लिये तुम्हारा दर्शन कर सकें।।४।।

उसके बाद (यजमान इस मन्त्र से) हवन करता है। पृथिवी लोक में रहने वाले पृथिवी लोक निवासी अग्निदेव को हम नमस्कार करते हैं। मुझ यजमान को तुम पुण्यलोक की प्राप्ति कराओ। यह निश्चय ही यजमान का लोक है और मैं इसे प्राप्त करने वाला हूँ।।५।।

इस लोक में यजमान ''मैं आयु समाप्त होने पर (पुण्यलोक को प्राप्त करूँगा) स्वाहा'' ऐसा बोलकर हवन करता है। तुम लोक द्वार की अर्गला को दूर करो, इस मन्त्र को कहकर उत्थान करता है। इसके बाद वसुगण उस यजमान को प्रातः सवन प्रदान करते हैं।।६।।

लोकद्वारमस्य पृथिवीलोकस्य प्राप्तये द्वारमपावृणु, हेऽग्ने! तेन द्वारेण पश्येम त्वा त्वां राज्यायेति।।४।।

अथानन्तरं **जुहोत्य**नेन मन्त्रेण **नमोऽग्नये** प्रह्वीभूतास्तुभ्यं वयं **पृथिवीक्षिते** पृथिवीनिवासाय **लोकक्षिते** पृथिवीलोकनिवासायेत्यर्थः। **लोकं मे** मह्यं **यजमानाय विन्द** लभस्व। **एष वै** मम **यजमानस्य लोक एता** गन्ताऽ**स्मि**।।५।।

अत्रास्मिँल्लोके **यजमानो**ऽह**मायुषः परस्ता**दूर्ध्वं मृतः सन्नित्यर्थः। **स्वाहे**ति जुहोति। **अपजह्य**पनय **परिघं** लोकद्वारार्गलमित्येवं मन्त्र**मुक्त्वोत्तिष्ठति**। एवमेतैर्वसुभ्यः प्रातःसवनसंबद्धो लोको निष्क्रीतः स्यात्ततस्ते **प्रातःसवनं वसवो** यजमानाय **संप्रयच्छन्ति**।।६।।

पुरा माध्यंदिनस्य सवनस्योपाकरणाज्जघनेनाऽऽग्नीध्रीय-
स्योदङ्मुख उपविश्य, स रौद्रꣳ सामाभिगायति ।।७।।

लो३कद्वारमपावा३र्णू३ ३पश्येम त्वा वयं वैरा३ ३ ३ ३ ३
हु ३ म् आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति ।।८।।

अथ जुहोति नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकक्षिते लोकं मे
यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एताऽस्मि ।।९।।

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहाऽपजहि परिघमित्युक्त्वो-
त्तिष्ठति तस्मै रुद्रा माध्यंदिनꣳ सवनꣳ संप्रयच्छन्ति ।।१०।।

मध्याह्न सवन में रौद्र साम गान

मध्याह्न सवन का आरम्भ करने से पहले यजमान दक्षिणाग्नि के पीछे की ओर उत्तराभिमुख बैठकर वैराज्य पद की प्राप्ति के लिये रुद्र देवता संबन्धी गान करता है।।७।।

हे वायो! तुम अन्तरिक्ष लोक का द्वार खोल दो जिससे कि हम उस द्वार से वैराज्य पद प्राप्ति के लिये तुम्हारा दर्शन कर सकें।।८।।

उसके पश्चात् (यजमान इस मन्त्र से) होम करता है, अन्तरिक्ष में रहने वाले अन्तरिक्षलोक निवासी वायुदेव को नमस्कार है। मुझ यजमान को उस लोक की प्राप्ति कराओ। निश्चय ही यह अन्तरिक्ष लोक यजमान का है, मैं इसे प्राप्त करने वाला हूँ।।९।।

यहाँ पर यजमान ''मैं मरने पर (अन्तरिक्ष लोक को प्राप्त करूँगा) स्वाहा'' ऐसा बोलकर हवन करता है और लोकद्वार की अर्गला को दूर करो, ऐसा कहकर उत्थान करता है। तब वे रुद्रगण उस यजमान को मध्याह्न सवन प्रदान करते हैं ।।१०।।

तथाऽऽग्नीध्रीयस्य दक्षिणाग्नेर्जघनेनोदङ्मुख उपविश्य स रौद्रं सामाभिगायति यजमानो रुद्रदैवत्यं वैराज्याय।।७।।८।।

अन्तरिक्षक्षितः इत्यादि समानम्।।९।।१०।।

पुरा तृतीयसवनस्योपाकरणाज्जघनेनाऽऽहवनीयस्योदङ्मुख उपविश्य, स आदित्यꣳ, स वैश्वदेवꣳ सामाभिगायति ॥११॥

लो३कद्वारमपावा३र्णू३ ३पश्येम त्वा वयꣳस्वारा३ ३ ३ ३ ३-हु३म् आ३ ३ज्या ३ यो ३ आ ३ २ १ १ १ इति ॥१२॥

आदित्यमथ वैश्वदेवं लो३कद्वारमपावार्णू३ ३ ३ पश्येम त्वा वयꣳ साम्ना ३ ३ ३ ३ ३हु३म् आ ३३ ज्या ३ यो ३आ ३२१११ इति ॥१३॥

अथ जुहोति नम आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्यो दिविक्षिद्भ्यो लोकक्षिद्भ्यो लोकं मे यजमानाय विन्दत ॥१४॥

तृतीय सवन संबन्धी देवता के साम गान

तृतीय सवन का आरम्भ करने से पूर्व यजमान आहवनीयाग्नि के पीछे की ओर उत्तराभिमुख बैठकर (स्वाराज्य और साम्राज्य प्राप्ति के लिये क्रमशः) आदित्य और विश्वेदेव संबन्धी साम का गान करता है ॥११॥

हे देव! तुम लोक का द्वार खोल दो जिससे हम स्वाराज्य प्राप्ति के लिये तुम्हें पा सकें ॥१२॥

यह आदित्य साम है, इसके बाद विश्वेदेव साम कहते हैं। लोक का द्वार खोल दो जिससे कि हम साम्राज्य प्राप्ति के लिये तुम्हारा दर्शन कर सकें ॥१३॥

तदनन्तर (यजमान इस मन्त्र द्वारा) हवन करता है। स्वर्ग में रहने वाले द्युलोक निवासी आदित्यों को तथा विश्वेदेवों को नमस्कार है। तुम मुझ यजमान को पुण्य लोक प्राप्त कराओ ॥१४॥

तथाऽऽहवनीयस्योदङ्मुख उपविश्य स आदित्यदैवत्यमादित्यं वैश्वदेवं च सामाभिगायति क्रमेण स्वाराज्याय साम्राज्याय॥११॥१२॥१३॥

दिविक्षिद्भ्य इत्येवमादि समानमन्यत्। विन्दतापहतेति बहुवचनमात्रं विशेषः।

एष वै यजमानस्य लोक एताऽस्म्यत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहाऽपहतपरिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति ।।१५।।

तस्मा आदित्याश्च विश्वे च देवास्तृतीयसवनꣳ संप्रयच्छन्त्येष ह वै यज्ञस्य मात्रां वेद य एवं वेद य एवं वेद ।।१६।।

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ।। २४।।

इति च्छान्दोग्योपनिषद्ब्राह्मणे द्वितीयोऽध्यायः ।। २।।

निश्चय ही यह यजमान का लोक है। मैं इसे प्राप्त करने वाला हूँ। यहाँ पर यजमान "आयु समाप्त होने पर (मैं स्वर्ग लोक को प्राप्त करूँगा) स्वाहा" ऐसा कहकर हवन करता है और संबन्धित लोक द्वार की अर्गला को हटाओ— ऐसा कहकर उत्थान करता है ।।१५।।

उस यजमान को आदित्य और विश्वेदेव तृतीय सवन देते हैं। जो इस प्रकार जानता है, वह निश्चय ही यज्ञ के पूर्वोक्त स्वरूप को जानता है। द्विरुक्ति अध्याय समाप्ति के लिये है ।।१६।।

।। इति द्वितीयाध्यायः, चतुर्विंशः खण्डः ।।

इस प्रकार छान्दोग्योपनिषत् द्वितीय अध्याय की श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीकैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर श्रीमत्स्वामी विद्यानन्द गिरि जी कृत मिताक्षराहिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।१।।

याजमानं त्वेतत्। एताऽस्म्यत्र यजमान इत्यादिलिङ्गात्।।१४।।१५।।

एष ह **वै** यजमान एवंवित् यथोक्तस्य सामादेर्विद्वान्**यज्ञस्य मात्रां** यज्ञयाथात्म्यं **वेद** यथोक्तम्।**य एवं वेद** य एवं **वेद**ेति द्विरुक्तिरध्यायपरिसमाप्त्यर्था।।१६।।

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः।।२४।।

।। इति चतुर्थाह्निकम्।।४।।

इति श्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यपरमहंसपरिव्राजकाचार्य-श्रीमच्छंकरभगवत्पादकृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

ॐ

तृतीयोऽध्यायः

(अथ तृतीयोऽध्यायस्य प्रथमः खण्डः)

ॐ । असौ वा आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवꣳशोऽन्तरिक्षमपूपो मरीचयः पुत्राः ।।१।।

तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्राच्यो मधुनाड्यः।

आदित्यादि में मधु आदि दृष्टि

ओं वह आदित्य निश्चय ही (देवताओं को प्रसन्न करने वाला होने से) देवताओं का मधु है। द्युलोक ही उसका तिरछा बाँस है, (क्योंकि वह तिरछा दिखायी पड़ता है) वह (लटक रहा) अन्तरिक्ष मधु का छत्ता है और किरणें (उस छत्ते में रहने वाले मक्खियों के) बच्चे हैं ।।१।।

आदित्य की पूर्व दिग्वर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि

उस आदित्य रूप मधु की जो पूर्व दिग्वर्ती किरणें हैं वे ही इस अन्तरिक्षरूप छत्ते के पूर्व

असौ वा आदित्य इत्याद्यध्यायारम्भे संबन्धः अतीतानन्तराध्यायान्ते उक्तं यज्ञस्य मात्रां वेदेति यज्ञविषयाणि च सामहोममन्त्रोत्थानि विशिष्टफलप्राप्तये यज्ञाङ्गभूतान्युपदिष्टानि। सर्वयज्ञानां च कार्यनिर्वृत्तिरूपः सविता महत्या श्रिया दीप्यते। स एष सर्वप्राणिकर्म-फलभूतः प्रत्यक्षं सर्वैरुपजीव्यते। अतो यज्ञव्यपदेशानन्तरं तत्कार्यभूतसवितृविषयमुपासनं सर्वपुरुषार्थेभ्यः श्रेष्ठतमफलं विधास्यामीत्येवमारभते श्रुतिः—

असौ वा आदित्यो देवमध्वित्यादि। देवानां मोदनान्मध्विव मध्वसावादित्यः। वस्वादीनां च मोदनहेतुत्वं वक्ष्यति सर्वयज्ञफलरूपत्वादादित्यस्य। कथं मधुत्व-मित्याह— **तस्य** मधुनो **द्यौरेव** भ्रामरस्येव मधुनस्तिरश्चीनश्चासौ वंशश्चेति **तिरश्चीनवंशः**। तिर्यग्गतेव हि द्यौर्लक्ष्यते। **अन्तरिक्षं** च मध्व**पूपो** द्युवंशे लग्नः सल्लँम्बते इवातो मध्वपूपसामान्यादन्तरिक्षं मध्वपूपो मधुनः सवितुराश्रयत्वाच्च। **मरीचयो** रश्मयो रश्मिस्था आपो भौमाः सवित्राकृष्टाः। एता वा आपः स्वराजो यन्मरीचय इति हि विज्ञायन्ते। ता अन्तरिक्षमध्वपूपस्थरश्म्यन्तर्गतत्वाद्भ्रमरबीजभूताः **पुत्रा** इव हिता लक्ष्यन्त इति पुत्रा इव पुत्रा मध्वपूपनाड्यन्तर्गता हि भ्रमरपुत्राः।।१।।

तस्य सवितुर्मध्वाश्रयस्य मधुनो **ये प्राञ्चः** प्राच्यां दिशि गता **रश्मयस्ता**

ऋच एव मधुकृत ऋग्वेद एव पुष्पं, ता अमृता आपस्ता वा एता ऋचः ।।२।।

एतमृग्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज, इन्द्रियं, वीर्यमन्नाद्यꣳ, रसोऽजायत ।।३।।

वाली मधु नाड़ियाँ (छिद्र) हैं, ऋचाएं मधुकर हैं, ऋग्वेद ही पुष्प हैं, (अग्नि में प्रक्षिप्त) वे सोमादि अमृत ही जल है ।।२।।

उन इन ऋग्रूप मधुकरों ने ही इस ऋग्वेदरूप पुष्प का अभिताप किया। उस अभितप्त ऋग्वेद से (यागादि रूप कर्मों के कारण) ख्याति, देह गत दीप्ति, समर्थ, इन्द्रियाँ, बल और अन्नाद्य रूप रस उत्पन्न हुए।।३।।

एवास्य प्राच्यः प्रागञ्चनान्मधुनो **नाड्यो** मधुनाड्य इव मध्वाधारच्छिद्राणीत्यर्थः। तत्र ऋच **एव मधुकृतो** लोहितरूपं सवित्राश्रयं मधु कुर्वन्तीति मधुकृतो भ्रमरा इव यतो रसानादाय मधु कुर्वन्ति। तत्पुष्पमिव **पुष्पमृग्वेद एव** तत्र। ऋग्ब्राह्मणसमुदायस्यर्ग्वेदाख्यत्वाच्छब्दमात्राच्च भोग्यरूपरसनिस्रावासंभवादृग्वेदशब्देनात्र ऋग्वेदविहितं कर्म। ततो हि कर्मफलभूतमधुरसनिस्रावसंभवात्। मधुकरैरिव पुष्पस्थानीयादृग्वेदविहितात्कर्मणोऽप आदाय ऋग्भिर्मधु निर्वर्त्यते। कास्ता आप इत्याह— **ताः** कर्मणि प्रयुक्ताः सोमाज्यपयोरूपा अग्नौ प्रक्षिप्तास्तत्पाकाभिनिर्वृत्ता **अमृता** अमृतार्थत्वादत्यन्तरसवत्य **आपो** भवन्ति। तद्रसानादाय ता **वा एता ऋचः** पुष्पेभ्यो रसमाददाना इव भ्रमरा ऋचः।।२।।

एतमृग्वेदविहितं कर्म पुष्पस्थानीय**मभ्यतपन्न**भितापं कृतवत्य इवैता ऋचः कर्मणि प्रयुक्ताः। ऋग्भिर्हि मन्त्रैः शस्त्राद्यङ्गभावमुपगतैः क्रियमाणं कर्म मधुनिर्वर्तकं रसं मुञ्चतीत्युपपद्यते पुष्पाणीव भ्रमरैराचूष्यमाणानि। तदेतदाह— **तस्यर्ग्वेदस्याभितप्तस्य**। कोऽसौ रसो य ऋङ्मधुकराभितापनिःसृत इत्युच्यते। **यशो** विश्रुतत्वं **तेजो** देहगता दीप्तिरि**न्द्रियं** सामर्थ्योपेतैरिन्द्रियैरवैकल्यं, वीर्यं सामर्थ्यं बलमित्यर्थः। **अन्नाद्यमन्नं** च तदाद्यं च येनोपयुज्यमानेनाहन्यहनि देवानां स्थितिः स्यात्तदन्नाद्यमेष **रसोऽजायत** यागादिलक्षणात्कर्मणः।।३।।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य रोहितꣳ रूपम् ।।४।।

इति तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।।१।।

(अथ तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः)

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवास्य दक्षिणा मधुनाड्यो यजूꣳष्येव मधुकृतो यजुर्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ।।१।।

वह (यश से लेकर अन्नाद्य पर्यन्त) रस विशेष रूप से गया (और जाकर) उसने आदित्य के पूर्वभाग में आश्रय लिया। यह जो (उदित हुए) आदित्य का लाल रूप है, निश्चयही वही यह रस है।।४।।

।। इति प्रथमः खण्डः ।।

आदित्य के दक्षिणवर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि

और इसकी जो दक्षिण दिशा में किरणें हैं, वे ही इस आदित्यरूप मधु की दक्षिण दिशा वाली मधुनाड़ियाँ हैं। यजुर्वेद विहित कर्म ही पुष्प हैं तथा वे सोमादि रूप अमृत ही जल है।।१।।

यश आद्यन्नाद्यपर्यन्तं **तद्व्यक्षरद्वि**शेषेणाक्षरदगमत्। गत्वा च **तदादित्यमभितः** पार्श्वतः पूर्वभागं सवितु**रश्रयदा**श्रितवदित्यर्थः। अमुष्मिन्नादित्ये संचितं कर्मफलाख्यं मधु भोक्ष्यामह इत्येवं हि यशआदिलक्षणफलप्राप्तये कर्माणि क्रियन्ते मनुष्यैः केदारनिष्पादनमिव कर्षकैः। तत्प्रत्यक्षं प्रदर्श्यते श्रद्धाहेतोस्**तद्वा एतत्**। किं **तद्यदेतदादित्यस्यो**द्यतो दृश्यते **रोहितं रूपम्**।।४।।

इति तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः।।१।।

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मय इत्यादि समानम्। **यजूंष्येव मधुकृतो** यजुर्वेदविहिते कर्मणि प्रयुक्तानि। पूर्ववन्मधुकृत इव। यजुर्वेदविहितं कर्म पुष्पस्थानीयं पुष्पमित्युच्यते। ता एव सोमाद्या अमृता आपः।।१।।

तानि वा एतानि यजूꣳष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ॥२॥ कर्मणि प्रयुक्ता:

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य शुक्लꣳ रूपम् ॥३॥ दक्षिणभाग

इति तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

(अथ तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः)

पश्चिम- अथ येऽस्य प्रत्यञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्रतीच्यो मधुनाड्यः सामान्येव मधुकृतः, सामवेद एव पुष्पं, ता अमृता आपः ॥१॥ उक्तकर्म

उन इन यजुः श्रुतियों ने यजुर्वेद को अभितप्त किया। उसी अभितप्त यजुर्वेद से यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्य रूप रस उत्पन्न हुआ।। २।।

उस रस ने विशेष रूप से गमन किया और आदित्य के दक्षिण भाग में आश्रय लिया। यह जो आदित्य का शुक्ल रूप दीखता है, वही यह मधु है।। ३।।

।। इति द्वितीयः खण्डः।।

आदित्य की पश्चिम दिग्वर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि

और ये जो आदित्य की पश्चिम दिग्वर्ती किरणें हैं, वे ही इस सूर्य कि पश्चिम वाली मधु नाड़ियाँ हैं। सामवेद की श्रुतियाँ ही मधुकर हैं। सामवेदोक्त कर्म ही पुष्प है तथा वह (सोमादि रूप) अमृत ही जल है ।।१।।

तानि वा एतानि यजूष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपन्नित्येवमादि सर्व समानम्। मध्वे-तदादित्यस्य दृश्यते शुक्लं रूपम्।।२।।३।।

इति तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।।२।।

अथ येऽस्य प्रत्यञ्चो रश्मय इत्यादि समानम्। तथा साम्नां मधु। एतदादित्यस्य

तानि वा एतानि सामान्येतथ्ठं सामवेदमभ्यतपथ्ठंस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यथ्ठं रसोऽजायत ।।२।।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य कृष्णथ्ठं रूपम् ।।३।।

।। इति तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।।३।।

(अथ तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः)

अथ येऽस्योदञ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो मधुनाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः ।।१।।

उन इन साम श्रुतियों ने ही इस सामवेद विहित कर्म को अभितप्त किया। उस अभितप्त सामवेद से ही यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्य रूप रस उत्पन्न हुआ।। २।।

वह रस विशेष रूप से गया और आदित्य के पश्चिम भाग में आश्रित हुआ। यह जो आदित्य का कृष्ण तेज है, वही यह रस है।। ३।।

।। इति तृतीयः खण्डः ।।

आदित्य की उत्तर दिग्वर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि

और जो आदित्य की उत्तर दिकु सम्बन्धी किरणें हैं; वे ही इस आदित्य की उत्तर दिशा वाली मधु नाड़ियाँ हैं। अथर्वाङ्गिरस मन्त्र ही मधुकर है, इतिहास पुराण ही पुष्प है, (क्योंकि अश्वमेध यज्ञ के पारिप्लव रात्रियों में इन कथाओं का क्रमाङ्गरूप से विनियोग किया गया है) तथा वह सोमादि रूप ही अमृत जल है।। १।।

कृष्णं रूपम् ।।१।।२।।३।।

इति तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।।३।।

अथ येऽस्योदञ्चो रश्मय इत्यादि समानम्। **अथर्वाङ्गिरसो**ऽथर्वणाऽङ्गिरसा च दृष्टा मन्त्रा अथर्वाङ्गिरसः कर्मणि प्रयुक्ता **मधुकृतः। इतिहासपुराणं पुष्पम्।**

ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ॥२॥

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य परं कृष्णꣳ रूपम् ॥३॥

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

(अथ तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः)

अथ येऽस्योर्ध्वा रश्मयस्ता एवास्योर्ध्वा मधुनाड्यो गुह्या एवाऽऽदेशा मधुकृतो ब्रह्मैव पुष्पं ता अमृता आपः ॥१॥

इन अथर्वाङ्गिरस श्रुतियों ने इस इतिहास पुराण को अभितप्त किया। उस अभितप्त (इतिहास पुराण रूप पुष्प) से ही यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस की उत्पत्ति हुई ॥२॥

वह रस विशेष रूप से गया और आदित्य के उत्तर भाग में आश्रित हुआ। यह जो आदित्य का अतिशय कृष्ण रूप है, वह यह रस है ॥३॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

आदित्य की ऊर्ध्व दिग्वर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि

और इस आदित्य की जो ऊपर की ओर जाने वाली किरणें हैं, वही इसकी ऊर्ध्व दिग्वर्ती मधुनाड़ियाँ हैं। गुह्य आदेश (लोक के द्वार खोलने की प्रार्थना) ही मधुकर है, प्रणव रूप ब्रह्म ही पुष्प है तथा वह सोमादि रूप अमृत ही जल है॥१॥

तयोश्चेतिहासपुराणयोरश्वमेधे पारिप्लवासु रात्रिषु कर्माङ्गत्वेन विनियोगः सिद्धः। मध्वे**तदादित्यस्य परं कृष्णं रूपम**तिशयेन कृष्णमित्यर्थः॥१॥२॥३॥

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः॥४॥

अथ येऽस्योर्ध्वा रश्मय इत्यादि पूर्ववत्। **गुह्या** गोप्या रहस्या **एवाऽऽदेशा** लोकद्वारीयादिविधय उपासनानि च कर्माङ्गविषयाणि **मधुकृतो ब्रह्मैव**

ते वा एते गुह्या आदेशा एतद्ब्रह्माभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ॥२॥

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव ॥३॥

ते वा एते रसानाꣳ रसा वेदा हि रसास्तेषामेते रसास्तानि वा एतान्यमृतानाममृतानि वेदा ह्यमृतास्तेषामेतान्यमृतानि ॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

उन इन गोपनीय आदेशों ने ही प्रणव नामक ब्रह्म को अभितप्त किया, उस अभितप्त ब्रह्म से ही यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस उत्पन्न हुआ॥ २॥

वह रस विशेष रूप से गया और वह आदित्य के ऊपर वाले भाग में आश्रित हुआ। यह जो आदित्य के मध्य में सञ्चालित सा दीखता है, यही वह मधु है॥ ३॥

वे ये (पूर्वोक्त रोहितादि रूप विशेष) ही रसों के रस हैं, (लोकों के सारभूत होने के कारण) वेद ही रस हैं और ये उनके भी रस हैं, वे ही ये अमृतों के अमृत हैं, क्योंकि नित्य होने के कारण वेद ही अमृत हैं, उनके भी रोहितादि रूप अमृत माने गये हैं॥ ४॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः॥

शब्दाधिकारात्प्रणवाख्यं **पुष्पम्**। समानमन्यत्। मध्वे**तदादित्यस्य मध्ये क्षोभते इव** समाहितदृष्टेर्दृश्यते संचलतीव॥१॥२॥३॥

ते वा एते यथोक्ता रोहितादिरूपविशेषा रसानां रसाः। केषां रसानामित्याह— वेदा हि यस्माल्लोकनिष्यन्दत्वात्सारा इति रसास्तेषां रसानां कर्मभावमापन्नानामप्येते रोहितादिविशेषा रसा अत्यन्तसारभूता इत्यर्थः। तथाऽमृतानाममृतानि, वेदा ह्यमृता, नित्यत्वात्तेषामेतानि रोहितादीनि रूपाण्यमृतानि। रसानां रसा इत्यादि कर्मस्तुतिरेषा। यस्यैवंविशिष्टान्यमृतानि फलमिति॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः॥५॥

(अथ तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः)

तद्यत्प्रथममममृतं तद्वसव उपजीवन्त्यग्निना मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥१॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥२॥

वसुओं के उपजीवन रूप प्रथम अमृत की उपासना

इनमें जो (रोहित रूप वाला) पहला अमृत है, वसुगण अग्नि प्रधान होकर उसके उपजीवी होते हैं। देवता न खाते हैं और न पीते ही हैं, वे इस (रोहित रूप) अमृत को समस्त इन्द्रियों से अनुभव कर ही तृप्त हो जाते हैं।।१।।

वे देवगण इस रूप को ही लक्षित कर उदासीन हो जाते हैं। (कि अभी हमारे भोग का अवसर नहीं आया है और जब समस्त भोग का अवसर आता है तो) फिर अमृत भोग के लिये इस रूप से ही उत्साहित हो जाते हैं।।२।।

तत्तत्र यत्प्रथमममृतं रोहितरूपलक्षणं **तद्वसवः** प्रातःसवनेशाना **उपजीवन्त्यग्निना मुखेना**ग्निना प्रधानभूतेनाग्निप्रधानाः सन्त उपजीवन्तीत्यर्थः। अन्नाद्यं रसोऽजायतेतिवचनात्कवलग्राहमश्नन्तीति प्राप्तं तत्प्रतिषिध्यते— **न वै देवा** अश्नन्ति न **पिबन्तीति**। कथं तर्ह्युपजीवन्तीत्युच्यते— **एतदेव** हि यथोक्त**ममृतं** रोहितं रूपं दृष्ट्वोपलभ्य सर्वकरणैरनुभूय **तृप्यन्ति**। दृशेः सर्वकरणद्वारोपलब्ध्यर्थत्वात्। ननु रोहितं रूपं दृष्ट्वेत्युक्तं कथमन्येन्द्रियविषयत्वं रूपस्येति। न। यशआदीनां श्रोत्रादिगम्यत्वात्। श्रोत्रग्राह्यं यशः। तेजोरूपं चाक्षुषम्। इन्द्रियं विषयग्रहणकार्यानुमेयं करणसामर्थ्यम्। वीर्यं बलं देहगत उत्साहः प्राणवत्ता। अन्नाद्यं प्रत्यहमुपजीव्यमानं शरीरस्थितिकरं यद्भवति। रसो ह्येवमात्मकः सर्वः। यं दृष्ट्वा तृप्यन्ति देवा दृष्ट्वा तृप्यन्त्येतत्सर्वं स्वकरणैरनुभूय तृप्यन्तीत्यर्थः। आदित्यसंश्रयाः सन्तो वैगन्ध्यादिदेहकरणदोषरहिताश्च।।१ ।।

किं ते निरुद्यमा अमृतमुपजीवन्ति? न। कथं तर्हि; **एतदेव रूपम**भिलक्ष्याधुना भोगावसरो नास्माकमिति बुद्ध्वाऽभि**संविशन्त्यु**दासते। यदा वै तस्यामृतस्य भोगावसरो भवेत्तदैतस्मादमृतादमृतभोगनिमित्तमित्यर्थः। **एतस्माद्रूपादुद्यन्त्यु**त्साहवन्तो भवन्तीत्यर्थः। न ह्यनुत्साहवतामननुतिष्ठतामलसानां भोगप्राप्तिर्लोके दृष्टा।।२।।

स य एतदेवममृतं वेद वसूनामेवैको भूत्वाऽग्निनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभि संविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ।।३।।

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता वसूनामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ।।४।।

इति तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।।६।।

वह जो कोई इस प्रकार इस यथोक्त अमृत को जानता है, वह वसुओं में ही प्रधान होकर अग्नि मुख से ही इस अमृत को देखकर तृप्त हो जाता है। पूर्वोक्त रीति से इस रूप को लक्षित करके ही उदासीन होता है और इस रूप से ही उत्साहित भी होता है।।३।।

जितने समय में आदित्य पूर्व की ओर उदित होत है और पश्चिम की ओर अस्त होता है, उतना ही वसुओं का भोग काल है। अर्थात् उतनी देर तक वह विद्वान् वसुओं के आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त हो जाता है।।४।।

।।इति षष्ठः खण्डः।।

स यः कश्चि**देतदेव** यथोदितमृङ्मधुकरतापरसक्षरणमृग्वेदविहतकर्मपुष्पात्तस्य चाऽऽदित्यसंश्रयणं रोहितरूपत्वं चामृतस्य प्राचीदिग्गतरश्मिनाडीसंस्थतां वसुदेवभोग्यतां तद्विदश्च वसुभिः सहैकतां गत्वाऽग्निना **मुखेनो**पजीवनं दर्शनमात्रेण तृप्तिं स्वभोगावसर उद्यमनं तत्कालापाये च संवेशनं वेद सोऽपि वसुवत्सर्वं तथैवानुभवति।।३।।

कियन्तं कालं विद्वांस्तदमृतमुपजीवतीत्युच्यते— **स** विद्वान्**यावदादित्यः पुरस्ता**त्प्राच्यां दिश्**युदेता पश्चात्**प्रतीच्या**मस्तमेता** तावद्**वसूनां** भोगकालस्**तावन्त**मेव कालं वसूना**माधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता** परितो गन्ता भवतीत्यर्थः। न यथा चन्द्रमण्डलस्थः केवलकर्मी परतन्त्रो देवानामन्नभूतः। किं तर्ह्ययमाधिपत्यं स्वराड्भावं चाधिगच्छति।।४।।

इति तृतीयाध्यास्य षष्ठः खण्डः।।६।।

(अथ तृतीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः)

अथ यद्द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥१॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥२॥

स य एतदेवममृतं वेद रुद्राणामेवैको भूत्वेन्द्रेणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥३॥

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावद्दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता रुद्राणामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

रुद्रों के उपजीवन रूप द्वितीय अमृत की उपासना

अब जो द्वितीय अमृत है, रुद्रगण इन्द्र प्रधान होकर उसके उपजीवी होते हैं। देवगण न खाते हैं और न पीते हैं, वे इस अमृत को देखकर ही तृप्त हो जाते हैं ॥१॥

(भोग का काल न जानकर) वे देवगण इस रूप को लक्षित करके ही उदासीन हो जाते हैं और पुनः इसी से (भोग काल उपस्थित जानकर) उद्यमशील होते हैं ॥२॥

वह जो पुरुष इस प्रकार इस अमृत को जानता है, वह रुद्रों में से ही प्रमुख होकर इस अमृत को देख करके ही उदासीन हो जाता है और इस रूप से ही उद्यमशील हो जाता है॥३॥

जितने समय में सूर्य पूर्व से उदित होता है और पश्चिम में अस्त होता है, उससे दुगने समय में वह दक्षिण से उदित होता है और उत्तर में अस्त होता है। बस! इतने काल वह रुद्रों के ही आधिपत्य व स्वाराज्य को प्राप्त होता है॥४॥

॥इति सप्तमः खण्डः॥

अथ यद्द्वितीयममृतं, तद्रुद्रा उपजीवन्तीत्यादि समानम्॥१॥२॥३॥

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावत्ततो द्विगुणं कालं दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता **रुद्राणां तावद्भो**गकालः॥४॥

इति तृतीताध्यायस्य सप्तमः खण्डः॥७॥

(अथ तृतीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः)

अथ यत्तृतीयममृतं तदादित्या उपजीवन्ति वरुणेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥१॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥२॥

स य एतदेवममृतं वेदाऽऽदित्यानामेवैको भूत्वा वरुणेनैव

आदित्यों के उपजीवन रूप तृतीय अमृत की उपासना

अब जो तीसरा अमृत है, आदित्यगण वरुण प्रधान होकर उसके आश्रित हो जीते हैं। देवगण न खाते हैं और न पीते हैं, वे इस अमृत को सभी इन्द्रियों से अनुभव करके तृप्त होते रहते हैं ॥१॥

पूर्वोक्त रीति से वे इस रूप को ही लक्ष्य बनाकर उदासीन हो जाते हैं (भोग का अवसर देखकर) इसी से प्रयत्नशील हो जाते हैं॥२॥

वह जो कोई उस अमृत को जानता है, आदित्यों में से ही प्रधान बनकर, वरुण को प्रमुख

तथा पश्चादुत्तरत ऊर्ध्वमुदेता विपर्ययेणास्तमेता। पूर्वस्मात्पूर्वस्माद्द्विगुणोत्तरोत्तरेण कालेनेत्यपौराणं दर्शनम्। सवितुश्चतुर्दिशमिन्द्रयमवरुणसोमपुरीषूदयास्तमयकालस्य तुल्यत्वं हि पौराणिकैरुक्तम्। मानसोत्तरस्य मूर्धनि मेरोः प्रदक्षिणावृत्तेस्तुल्यत्वादिति।

अत्रोक्तः परिहार आचार्यैः। अमरावत्यादीनां पुरीणां द्विगुणोत्तरोत्तरेण कालेनोद्वासः स्यात्। उदयश्च नाम सवितुस्तन्निवासिनां प्राणिनां चक्षुर्गोचरापत्तिस्तदत्ययश्चास्तमनं न परमार्थत उदयास्तमने स्तः। तन्निवासिनां च प्राणिनामभावे तान्प्रति तेनैव मार्गेण गच्छन्नपि नैवोदेता नास्तमेतेति चक्षुर्गोचरापत्तेस्तदत्ययस्य चाभावात्।

तथाऽमरावत्याः सकाशाद्द्विगुणं कालं संयमिनी पुरी वसत्यतस्तन्निवासिनः प्राणिनः प्रति दक्षिणत इवोदेत्युत्तरतोऽस्तमेतीत्युच्यतेऽस्मद्बुद्धिं चापेक्ष्य। तथोत्तरास्वपि पुरीषु योजना।

मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ।।३।।

स यावदादित्यो दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता द्विस्तावत्पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेताऽऽदित्यानामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ।।४।।

इति तृतीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।।८।।

बनाकर वह इस अमृत को देखकर तृप्त हो जाता है। वह इस रूप से ही उदासीन होता है और इससे ही उद्योगशील होता है।।३।।

वह सूर्य जितने समय में दक्षिण से उदित होता है और उत्तर में अस्त होता है, उसकी अपेक्षा दूने काल में पश्चिम से उदित होता है और पूर्व में अस्त होता है, इतने समय में वह आदित्यों के ही आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त होता है।।४।।

।।इत्यष्टमः खण्डः।।

सर्वेषां च मेरुरुत्तरतो भवति। यदाऽमरावत्यां मध्याह्नगतः, सविता तदा संयमन्यामुद्यन्दृश्यते तत्र मध्याह्नगतो वारुण्यामुद्यन्दृश्यते, तथोत्तरस्यां, प्रदक्षिणावृत्तेस्तुल्यत्वात्।

इलावृतवासिनां सर्वतः पर्वतप्राकारनिवारितादित्यरश्मीनां सवितोर्ध्व इवोदेताऽर्वागस्तमेता दृश्यते। पर्वतोर्ध्वच्छिद्रप्रवेशात्सवितृप्रकाशस्य।

तथर्गाद्यमृतोपजीविनाममृतानां च द्विगुणोत्तरोत्तरवीर्यवत्त्वमनुमीयते भोगकालद्वैगुण्यलिङ्गेन। उद्यमनसंवेशनादि देवानां रुद्रादीनां विदुषश्च समानम्।।१।। २।।३।।४।।

इति तृतीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः।।८।।

(अथ तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः)

अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ।।१।।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ।।२।।

स य एतदेवममृतं वेद मरुतामेवैको भूत्वा सोमेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ।।३।।

स यावदादित्यः पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेता द्विस्तावदुत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता मरुतामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ।।४।।

इति तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः)

मरुतों के उपजीवन रूप चतुर्थ अमृत की उपासना

अब जो चतुर्थ अमृत है, मरुद्गण सोम की प्रमुखता से उसके उपजीवी हैं। देवगण न खाते हैं न पीते हैं, वे केवल इस अमृत को देखकर तृप्त हो जाते हैं ।।१।।

वे इस रूप को लक्षित करके उदासीन हो जाते हैं और इसी से प्रयत्नशील भी होते हैं ।।२।।

वह जो इस अमृत की उपासना करता है, वह मरुतों में प्रमुख होकर सोम की प्रधानता से ही इस अमृत को देखकर ही तृप्त होता है (भोग का अवसर न जानकर) इस रूप से ही उदासीन होता है और (भोग का अवसर जान कर) इस रूप से ही उत्साहित होता है ।।३।।

वह आदित्य जितने समय में पश्चिम से उदित होता है और पूर्व में अस्त होता है, उसकी अपेक्षा दूने काल में उत्तर से उदित होता और दक्षिण में अस्त होता है। बस! इतने काल तक वह उपासक मरुद्गण के ही आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त करता है ।।४।।

।। इति नवमः खण्डः।।

।।१।।२।।३।।४।।

इति तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः।। ९।।

(अथ तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः)

अथ यत्पञ्चमममृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ।।१।।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ।।२।।

स य एतदेवममृतं वेद साध्यानामेवैको भूत्वा ब्रह्मणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ।।३।।

स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता द्विस्तावदूर्ध्व उदेताऽर्वागस्तमेता साध्यानामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ।।४।।

इति तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ।।१०।।

साध्यों के उपजीवन रूप पञ्चम अमृत की उपासना

अब जो पञ्चम अमृत है, साध्यगण ब्रह्म की प्रमुखता से उसी के आश्रित जीते हैं, देवगण न तो खाते हैं न पीते हैं, वे केवल इस अमृत को देखकर तृप्त हो जाते हैं।।१।।

वे इस अमृत रूप की (पूर्वोक्त रीति से) लक्षित करके ही उदासीन होते हैं और इसी से उद्यमशील होते हैं ।।२।।

वह जो इस प्रकार इस अमृत की उपासना करता है, साध्यगणों में से ही एक होकर ब्रह्म के ही प्रमुखता से ही इस अमृत को देखकर तृप्त होता है, वह इस रूप को लक्ष्य करके उदासीन होता है और उसी रूप से उत्साहित होता है ।।३।।

वह आदित्य जितने समय में उत्तर से उदित होता और दक्षिण में अस्त होता है, उसकी अपेक्षा दूने समय तक ऊपर की ओर उदित होता है और नीचे की ओर अस्त होता है। बस! इतने समय तक ही वह उपासक साध्यों के ही आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त हो जाता है ।।४।।

।।इति दशमः खण्डः।।

।।१।।२।।३।।४।।

इति तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः।।१०।।

(अथ तृतीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः)

अथ तत ऊर्ध्व उदेत्य नैवोदेता नास्तमेतैकल एव मध्ये स्थाता तदेष श्लोकः ॥१॥

न वै तत्र न निम्लोच नोदियाय कदाचन। देवास्तेनाहꣳ

भोग क्षय के बाद आदित्य रूप ब्रह्म में प्रतिष्ठा

(इस प्रकार उदय और अस्त द्वारा प्राणियों को स्वकर्म फल भोग में अनुग्रह कर) भोग क्षय के बाद वह ऊर्ध्वगत हो उदित होने पर पुनः न तो उदित होता है और न अस्त ही होगा; बल्कि अकेला (निरवयव होकर ही) अपने में स्थित रहेगा। उस विषय में यह श्लोक है।। १।।।

ब्रह्मलोक विषयक विद्वान् का अनुभव

(जिस ब्रह्मलोक से मैं आया हूँ) निश्चय ही उसमें न कभी सूर्य का अस्त होता है और

कृत्वैवमुदयास्तमनेन प्राणिनां स्वकर्मफलभोगनिमित्तमनुग्रहं तत्कर्मफलोपभोगक्षये तानि प्राणिजातान्यात्मनि संहृत्याथ ततस्तस्मादनन्तरं प्राण्यनुग्रहकालाद**ूर्ध्वः** सन्नात्मन्यु**देत्यो**द्गम्य यान्प्रत्युदेति तेषां प्राणिनामभावात्स्वात्मस्थो **नैवोदेता नास्तमेतैकलो**ऽद्वितीयोऽनवयवो **मध्ये** स्वात्मन्**येव स्थाता**। तत्र कश्चिद्विद्वान्वस्वादिसमाचरणो रोहिताद्यमृतभोगभागी यथोक्तक्रमेण स्वमात्मानं सवितारमात्मत्वेनोपेत्य समाहितः सन्नेतं मन्त्रं दृष्ट्वोत्थितोऽन्यस्मै पृष्टवते जगाद। यतस्त्वमागतो ब्रह्मलोकात्किं तत्राप्यहोरात्राभ्यां परिवर्तमानः सविता प्राणिनामायुः क्षपयति यथेहास्माकमित्येवं पृष्टः प्रत्याह। तत्त्र यथा पृष्टे यथोक्ते चार्थ एष **श्लोको** भवति तेनोक्तो योगिनेति श्रुतेर्वचनमिदम्।।१।।

न वै तत्र यतोऽहं ब्रह्मलोकादागतस्तस्मिन्न वै तत्रैतदस्ति यत्पृच्छसि। न हि तत्र **निम्लोचा**स्तमगमत्सविता न **चोदियायो**द्गतः कुतश्चित्**कदाचन** कस्मिंश्चिदपि काल इति। उदयास्तमयवर्जितो ब्रह्मलोक इत्यनुपपन्नमित्युक्तः शपथमिव प्रतिपेदे। हे देवाः साक्षिणो यूयं शृणुत यथा मयोक्तं सत्यं वचस्तेन **सत्येना**हं ब्रह्मणा

सत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति ॥२॥

न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिवा हैवास्मै भवति य एतामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद ॥३॥

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः

न कभी उदय होता है। हे देवताओ! उस सत्य के द्वारा मैं ब्रह्म के स्वरूप से विरुद्ध न होऊँ अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति मुझे अवश्य हो।। २।।



मधुविद्या का फल

उपर्युक्त ब्रह्मवेत्ता के लिये न सूर्य उदित होता है और न अस्त होता है; जो इस प्रकार इस औपनिषद ब्रह्म को जानता है।। ३।।



सम्प्रदाय परम्परा का वर्णन

हिरण्यगर्भ ने विराट् प्रजापति को पूर्वोक्त इस मधुविद्या को सुनाया था। इसे प्रजापति ने भी मनु को सुनाया और मनु ने इक्ष्वाकु आदि अपने संतति वर्ग को सुनाया और यही ब्रह्मविज्ञान

ब्रह्मस्वरूपेण **मा विराधिषि** मा विरुध्येयम(या) प्राप्तिर्ब्र**ह्मणो** मम मा भूदित्यर्थः।।२।।

सत्यं तेनोक्तमित्याह श्रुतिः—

न ह वा अस्मै। यथोक्तब्रह्मविदे नोदेति **न निम्लोचति** नास्तमेति किं तु ब्रह्मविदेऽ**स्मै सकृद्दिवा हैव** सदैवाह**र्भवति** स्वयंज्योतिष्ट्वाद्य **एतां** यथोक्तां **ब्रह्मोपनिषदं** वेद गुह्यं **वेद**। एवं तन्त्रेण वंशादित्रयं प्रत्यमृतसंबन्धं च यच्चान्यदवोचामैवं जानातीत्यर्थः। विद्वानुदयास्तमयकालापरिच्छेद्यं नित्यमजं ब्रह्म भवतीत्यर्थः।।३।।



तद्धैतन्मधुज्ञानं **ब्रह्मा** हिरण्यगर्भो विराजे **प्रजापतय उवाच**। सोऽपि **मनवे**। **मनु**रिक्ष्वाक्वाद्याभ्यः प्रजाभ्यः प्रोवाचेति विद्यां स्तौति ब्रह्मादिविशिष्टक्रमागतेति। किं च

प्रजाभ्यस्तद्धैतदुद्दालकायाऽऽरुणये ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच ॥४॥

इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात्प्रणाय्याय वाऽन्तेवासिने ॥५॥

नान्यस्मै कस्मैचन यद्यप्यस्मा इमामद्भिः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां दद्यादेतदेव ततो भूय इत्येतदेव ततो भूय इति ॥६॥

इति तृतीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

पिता ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अरुण की संतान उद्दालक को सुनाया था॥४॥

(अतः अन्य विद्वान् भी) इस ब्रह्मविज्ञान का उपदेश पिता अपने ज्येष्ठ पुत्र या सुयोग्य शिष्य को ही करे॥५॥

किसी और को इसका उपदेश न करे (इस विद्या संप्रदान का योग्य पात्र ज्येष्ठ पुत्र या योग्य शिष्य को ही श्रुति बतला रही है।) यद्यपि इस ब्रह्मविद्या के आचार्य को समुद्र से घिरी हुई धनादि सामग्रियों से परिपूर्ण सारी पृथिवी भी दे (तो भी वह इसका बदला नहीं चुका सकता है, क्योंकि) उस दान से भी मधुविद्या का दान अधिक फल देने वाला है, यही अधिकतर फल देने वाला है॥६॥

॥इत्येकादशः खण्डः॥

तद्धैतन्मधुज्ञान**मुद्दालकायाऽऽरुणये पिता ब्रह्म**विज्ञानं **ज्येष्ठाय पुत्राय प्रोवाच**॥४॥

इदं वाव तद्यथोक्तमन्योऽपि **ज्येष्ठाय पुत्राय** सर्वप्रियार्हाय **ब्रह्म प्रब्रूयात्**। प्रणाय्याय **वा** योग्यायान्**तेवासिने** शिष्याय॥५॥

नान्यस्मै कस्मैचन प्रब्रूयात्तीर्थद्वयमनुज्ञातमनेकेषां प्राप्तानां तीर्थानामाचार्यादीनाम्। कस्मात्पुनस्तीर्थसंकोचनं विद्यायाः कृतमित्याह— **यद्यप्यस्मा** आचार्या**येमां** कश्चित्पृथिवी**मद्भिः परिगृहीतां** समुद्रपरिवेष्टितां समस्तामपि **दद्याद**स्या विद्याया निष्क्रयार्थमाचार्याय **धनस्य पूर्णां** संपन्नां भोगोपकरणैर्नासावस्य निष्क्रयो यस्मात्**ततो**ऽपि दाना**देतदेव** यन्मधुविद्यादानं **भूयो** बहुतरफलमित्यर्थः। द्विरभ्यास आदरार्थः॥६॥

इति तृतीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः॥११॥

(अथ तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः)

गायत्री वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किंच वाग्वै गायत्री वाग्वा इदꣳ सर्वं भूतं गायति च त्रायते च ॥१॥

या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथिव्यस्याꣳ हीदꣳ

गायत्री द्वारा ब्रह्मोपासना

निश्चय ही ये सब स्थावर जंगम प्राणीवर्ग गायत्री ही हैं। वाणी रूप गायत्री (सबका नामोच्चारण करती है और भयादि से) भूतों की रक्षा भी करती है।।१।।

उक्त लक्षण वाली जो वह गायत्री है वह यही है जो कि यह पृथिवी है। क्योंकि इस पृथ्वी

यत एवमतिशयफलैषा ब्रह्मविद्या, अतः सा प्रकारान्तरेणापि वक्तव्येति **गायत्री वा** इत्याद्यारभ्यते। गायत्रीद्वारेण चोच्यते ब्रह्म। ब्रह्मणः सर्वविशेषरहितस्य नेति नेतीत्यादिविशेषप्रतिषेधगम्यस्य दुर्बोधत्वात्। सत्स्वनेकेषु च्छन्दःसु गायत्र्या एव ब्रह्मज्ञानद्वारतयोपादानं प्राधान्यात्। सोमाहरणादितरच्छन्दोऽक्षराहरणेनेतरच्छन्दोव्याप्त्या च सर्वसवनव्यापकत्वाच्च यज्ञे प्राधान्यं गायत्र्याः। गायत्रीसारत्वाच्च ब्राह्मणस्य मातरमिव हित्वा गुरुतरां गायत्रीं ततोऽन्यद्गुरुतरं न प्रतिपद्यते यथोक्तं ब्रह्मापीति। तस्यामत्यन्तगौरवस्य प्रसिद्धत्वात्। अतो गायत्रीमुखेनैव ब्रह्मोच्यते।

गायत्री वा इत्यवधारणार्थो वैशब्दः। **इदं सर्वं भूतं** प्राणिजातं **यत्किंच** स्थावरं जङ्गमं वा तत्सर्वं गायत्र्येव। तस्याश्छन्दोमात्रायाः सर्वभूतत्वमनुपपन्नमिति गायत्रीकारणं वाचं शब्दरूपामापादयति गायत्रीं **वाग्वै गायत्रीति**। **वाग्वा इदं सर्वं** भूतम्। यस्माद्वाक्शब्दरूपा सती सर्वं भूतं **गायति** शब्दयत्यसौ गौरसावश्व इति **त्रायते च** रक्षत्यमुष्मान्मा भैषीः किं ते भयमुत्थितमित्यादिना सर्वतो भयान्निवर्त्यमानो वाचा त्रातः स्यात्। यद्वाग्भूतं गायति च त्रायते च गायत्र्येव तद्गायति च त्रायते च वाचोऽनन्यत्वाद्गायत्र्याः। गानात्त्राणाच्च गायत्र्या गायत्रीत्वम्।।१।।

या वै सैवंलक्षणा सर्वभूतरूपा **गायत्री, इयं वाव सा येयं पृथिवी**। कथं

सर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते ॥२॥

या वै सा पृथिवीयं वाव सा यदिदमस्मिन्पुरुषे शरीरमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥३॥

यद्वै तत्पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तःपुरुषे हृदयमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥४॥

में ही ये सभी चराचर प्राणी स्थित हैं और वे इस पृथिवी का कभी भी अतिक्रमण नहीं कर सकते॥२॥

जो भी यह पृथिवी रूप गायत्री है, वह यही है; जो भूत और इन्द्रियों के सजीव संघात में शरीर है क्योंकि इसी संघात में 'भूत' पद वाच्य ये प्राण प्रतिष्ठित हैं और इसी संघात का वे प्राण अतिक्रमण नहीं करते॥३॥

जो भी इस पुरुष में शरीर रूप गायत्री है, वह यही है कि जो इस पुरुष के मध्यवर्ती हृदय कमल हैं, क्योंकि इसी में ये प्राण प्रतिष्ठित हैं और प्राण इसी का अतिक्रमण नहीं करते॥४॥

पुनरियं पृथिवी गायत्रीति, उच्यते— सर्वभूतसंबन्धात्। कथं सर्वभूतसंबन्धः, अस्यां पृथिव्यां **हि** यस्मात्सर्वं स्थावरं जङ्गमं च **भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव** पृथिवीं **नातिशीयते** नातिवर्तत इत्येतत्। यथा गानत्राणाभ्यां भूतसंबन्धो गायत्र्या एवं भूतप्रतिष्ठानाद्भूतसंबद्धा पृथिव्यतो गायत्री पृथिवी॥२॥

या वै सा पृथिवी गायत्रीयं **वाव** सेदमेव तत्किं, यदिदमस्मिन्पुरुषे कार्यकरणसंघाते जीवति **शरीरं** पार्थिवत्वाच्छरीरस्य। कथं शरीरस्य गायत्रीत्वमिति। उच्यते— **अस्मिन्हीमे प्राणा** भूतशब्दवाच्याः **प्रतिष्ठिताः**। अतः पृथिवीवद्भूतशब्दवाच्यप्राणप्रतिष्ठानाच्छरीरं गायत्री। **एतदेव** यस्माच्छरीरं **नातिशीयन्ते** प्राणाः॥३॥

यद्वै तत्पुरुषे शरीरं गायत्रीदं **वाव तत्**। **यदिदमस्मिन्नन्त**र्मध्ये **पुरुषे हृदयं** पुण्डरीकाख्यमेतद्गायत्री। कथमित्याह—**अस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिताः**। अतः शरीरवद्गायत्री हृदयम्। **एतदेव** च **नातिशीयन्ते** प्राणाः। "प्राणो ह पिता। प्राणो माता।" (इति) "अहिंसन्सर्वभूतानि" इति च श्रुतेर्भूतशब्दवाच्याः प्राणाः॥४॥

सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाऽभ्यनूक्तम् ।।५।।

तावानस्य महिमा, ततो ज्यायाꣳश्च पूरुषः। पादोऽस्य सर्वा भूतानि, त्रिपादस्यामृतं दिवीति ।।६।।

यद्वै तद्ब्रह्मेतीदं वाव तद्योऽयं बहिर्धा पुरुषादाकाशो यो

वह यह चार चरणों वाली गायत्री है, जिसके एक-एक चरण में छः छः अक्षर हैं, वह गायत्री संज्ञक ब्रह्म ऋचाओं से भी प्रकाशित किया गया है।।५।।

कार्य और शुद्ध ब्रह्म का स्वरूप

(पहले जो कुछ भी कह आये हैं) इस गायत्री संज्ञक ब्रह्म की उतनी ही विभूति का विस्तार है और शुद्ध ब्रह्म इससे भी महत्तर है। पृथिव्यादि सम्पूर्ण भूत भौतिक जगत् तथा स्थावर जंगम प्राणी उस इस पुरुष का एक पाद है और समस्त गायत्री रूप पुरुष का तीन पाद द्युलोक में प्रकाश स्वरूप आत्मा अमृत प्रकाशमय है।।६।।

भूत, देह और हृदय में एक ही आकाश परिपूर्ण है

जो भी (गायत्री द्वारा कहा हुआ त्रिपात अमृत रूप) वह ब्रह्म है, वह यही है, वह यही है।

सैषा चतुष्पदा षडक्षरपादा छन्दोरूपा सती भवति गायत्री **षड्विधा वाग्भूतपृथिवीशरीरहृदयप्राणरूपा स**ती षड्विधा भवति। वाक्प्राणयोरन्यार्थनिर्दिष्टयोरपि गायत्रीप्रकारत्वम्। अन्यथा षड्विधसंख्यापूरणानुपपत्तेः। तत् तस्मिन्नर्थ एतद्गायत्र्याख्यं ब्रह्म गायत्र्यनुगतं **गायत्री**मुखेनो(णो)क्त**मृचा**ऽपि मन्त्रेणाभ्यनूक्तं प्रकाशितम्।।५।।

तावानस्य गायत्र्याख्यस्य ब्रह्मणः समस्तस्य **महिमा** विभूतिविस्तारः यावांश्चतुष्पात्षड्विधश्च ब्रह्मणो विकारः **पादो** गायत्रीति व्याख्यातः। अतस्तस्माद्विकारलक्षणाद्गायत्र्याख्याद्वाचारम्भणमात्रा**त्ततो ज्याया**न्महत्तरश्च परमार्थसत्यरूपोऽविकारः **पूरुषः** पुरुषः सर्वपूरणात्पुरिशयनाच्च। तस्या**स्य पादः सर्वा** सर्वाणि **भूतानि** तेजोऽबन्नादीनि सस्थावरजङ्गमानि। **त्रिपात्त्रयः** पादा **अस्य** सोऽयं त्रिपात्। त्रिपा**दमृतं** पुरुषाख्यं समस्तस्य गायत्र्यात्मनो **दिवि** द्योतनवति स्वात्मन्यवस्थितमित्यर्थ **इति**।।६।।

यद्वै तत्त्रिपादमृतं गायत्रीमुखेनो (णो)क्तं **ब्रह्मेतीदं वाव** तदिदमेव **तद्योयं** प्रसिद्धो

वै स बहिर्धा पुरुषादाकाशः ।।७।।

अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुष आकाशो यो वै सोऽन्तः पुरुष आकाशः ।।८।।

अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदय आकाशस्तदेत्पूर्णमप्रवर्ति

जो यह पुरुष से बाहर प्रसिद्ध आकाश है तथा जो भी यह पुरुष के बाहर आकाश है, वह यही है, वह यही है।।७।।

जो शरीर के भीतर आकाश है और जो भी यह शरीर के भीतर आकाश है, वह यही है।।८।।

जोकि हृदय के भीतर आकाश है, वह हृदयाकाशस्थ आत्मा पूर्ण है और अविनाशी है। जो

बहिर्धा बहिः **पुरुषादाकाशो** भौतिको **यो वै स बहिर्धा पुरुषादाकाश** उक्तः।।७।। **अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुषे** शरीर **आकाशो यो वै सोऽन्तः पुरुष आकाशः**।।८।।

अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदये हृदयपुण्डरीक **आकाशः**। कथमेकस्य सत आकाशस्य त्रिधा भेद इति? उच्यते— बाह्येन्द्रियविषये जागरितस्थाने नभसि दुःखबाहुल्यं दृश्यते। ततोऽन्तःशरीरे स्वप्नस्थानभूते मन्दतरं दुःखं भवति स्वप्नान्पश्यतो, हृदयस्थे पुनर्नभसि न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति। अतः सर्वदुःखनिवृत्तिरूपमाकाशं सुषुप्तस्थानम्। अतो युक्तमेकस्यापि त्रिधा भेदान्वाख्यानम्। बहिर्धा पुरुषादारभ्याऽऽकाशस्य हृदये संकोचकरणं चेतः समाधानस्थानस्तुतये। यथा "त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते। अर्धतस्तु कुरुक्षेत्रमर्धतस्तु पृथूदकम्" इति तद्वत्। तदेतद्धार्दाकाशाख्यं ब्रह्म पूर्णं सर्वगतं न हृदयमात्रपरिच्छिन्नमिति मन्तव्यम्। यद्यपि हृदयाकाशे चेतः समाधीयते**ऽप्रवर्ति** न कुतश्चित्क्वचित्प्रवर्तितुं शीलमस्येत्यप्रवर्ति तदनुच्छित्तिधर्मकम्। यथाऽन्यानि भूतानि

पूर्णामप्रवर्तिनीᳬं श्रियं लभते य एवं वेद ॥९॥
अविनाशी / विभूति

इति तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

(अथ तृतीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः)

तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्च देवसुषयः, स योऽस्य प्राङ्सुषिः, स प्राणस्तच्चक्षुः, स आदित्यस्तदेतत्तेजोऽ-

पुरुष इस प्रकार उक्त पूर्ण और अविनाशी गुण विशिष्ट ब्रह्म को जानता है, वह पूर्ण और कभी नष्ट न होने वाली विभूति को प्राप्त कर लेता है॥९॥

॥इति द्वादशः खण्डः ॥

हृदयस्थ पूर्व छिद्र रूप प्राण की उपासना

उस इस प्रसिद्ध हृदय के (भीतर विद्यमान स्वर्ग लोक प्राप्ति के) द्वारभूत पाँच छिद्र हैं। इस स्वर्गलोग रूप भवन का पूर्व दिशा संबंधी जो द्वार है वह प्राण है, वह चक्षु है, वही यह तेज और अन्नाद्य है। इस प्रकार स्वर्ग के द्वारभूत प्राण की उपासना करे। जो इस प्रकार उपासना

परिच्छिन्नान्युच्छित्तिधर्मकाणि न तथा हार्दं नभः **पूर्णामप्रवर्तिनी**मनुच्छेदात्मिकां **श्रियं** विभूतिं गुणफलं **लभते** दृष्टं **य एवं** यथोक्तं पूर्णाप्रवर्तिगुणं ब्रह्म **वेद** जानातीहैव जीवंस्तद्भावं प्रतिपद्यत इत्यर्थः॥९॥

इति तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः॥१२॥

तस्य ह वा इत्यादिना गायत्र्याख्यस्य ब्रह्मण उपासनाङ्गत्वेन द्वारपालादि-गुणविधानार्थमारभ्यते। यथा लोके द्वारपाला राज्ञ उपासनेन वशीकृता राजप्राप्त्यर्था भवन्ति, तथेहापीति। तस्येति प्रकृतस्य **हृदयस्ये**त्यर्थः। एतस्यानन्तरनिर्दिष्टस्य **पञ्च** पञ्चसंख्याका देवानां सुषयो **देवसुषयः** स्वर्गलोकप्राप्तिद्वारच्छिद्राणि देवैः प्राणादित्यादिभी रक्ष्यमाणानीत्यतो देवसुषयस्तस्य स्वर्गलोकभवनस्य हृदयस्यास्य **यः प्राङ्सुषिः** पूर्वाभिमुखस्य प्राग्गतं यच्छिद्रं द्वारं स प्राणस्तत्स्थस्तेन द्वारेण यः सञ्चरति

न्नाद्यमित्युपासीत तेजस्व्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥१॥

अथ योऽस्य दक्षिणः सुषिः स व्यानस्तच्छ्रोत्रꣳ स चन्द्रमास्तदेतच्छ्रीश्च यशश्चेत्युपासीत श्रीमान्यशस्वी भवति य एवं वेद ॥२॥

करता है, वह आदित्य रूप से तथा अन्नाद्य रूप से सविता का तेज प्राप्त कर तेजस्वी और अन्न का भोक्ता होता है॥१॥

हृदयस्थ दक्षिण छिद्र रूप व्यान की उपासना

और इस हृदय का जो दक्षिण छिद्र है, उसमें स्थित वह व्यान वायु विशेष है, वह श्रोत्र है, वह चन्द्रमा है, वही यह श्री एवं यश है। जो कोई श्री एवं प्रसिद्धि इन दो गुणों से युक्त व्यान की उपासना करता है, वह निश्चय ही विभूतिमान् और यशस्वी होता है॥२॥

वायुविशेषः **स** प्रागनितीति **प्राणः**। तेनैव संबद्धमव्यतिरिक्तं तच्चक्षुस्तथैव **स आदित्यः** ''आदित्यो ह वै बाह्यप्राणः'' इति श्रुतेश्चक्षूरूपप्रतिष्ठाक्रमेण हृदि स्थितः। ''स आदित्यः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति चक्षुषि'' (बृ. ३.९.२०) इत्यादि हि वाजसनेयके। प्राणवायुदेवतैव ह्येका चक्षुरादित्यश्च सहाऽऽश्रयेण। वक्ष्यति च—प्राणाय स्वाहेति हुतं हविः सर्वमेतत्तर्पयतीति। तदेतत्प्राणाख्यं स्वर्गलोकद्वारपालत्वाद्ब्रह्म। स्वर्गलोकं प्रतिपित्सुस्तेजस्व्येतच्चक्षुरादित्यस्वरूपेणान्नदत्वाच्च सवितुस्**तेजोऽन्नाद्यमित्याभ्यां** गुणाभ्या**मुपासीत**। ततस्**तेजस्व्यन्नाद**श्चाऽऽमयावित्वरहितो **भवति य एवं वेद** तस्यैतद्गुणफलम्। उपासनेन वशीकृतो द्वारपः स्वर्गलोकप्राप्तिहेतुर्भवतीति मुख्यं च फलम्॥१॥

अथ योऽस्य दक्षिणः सुषिस्तत्स्थो वायुविशेषः, स वीर्यवत्कर्म कुर्वन्विगृह्य वा प्राणापानौ नाना वाऽनितीति व्यानस्तत्संबद्धमेव च तच्छ्रोत्रमिन्द्रियं तथा स चन्द्रमाः। श्रोत्रेण सृष्टा दिशश्च चन्द्रमाश्चेति श्रुतेः। सहाश्रयौ पूर्ववत्**तदेतच्छ्रीश्च** विभूतिः श्रोत्रचन्द्रमसोर्ज्ञानान्नहेतुत्वमतस्ताभ्यां श्रीत्वम्। ज्ञानान्नवतश्च **यशः** ख्यातिर्भवतीति यशोहेतुत्वाद्यशस्त्वमतस्ताभ्यां गुणाभ्यामुपासीतेत्यादि समानम्॥२॥

अथ योऽस्य प्रत्यङ्सुषिः सोऽपानः, सा वाक्सोऽग्निस्तदेतद्-ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यमित्युपासीत ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भवति य एवं वेद ।।३।।

अथ योऽस्योदङ्सुषिः स समानस्तन्मनः स पर्जन्यस्तदेत-त्कीर्तिश्च व्युष्टिश्चेत्युपासीत कीर्तिमान्व्युष्टिमान्भवति य एवं वेद ।।४।।

हृदयस्थ पश्चिम छिद्र रूप अपान की उपासना

तथा इस हृदय का पश्चिमवर्ती छिद्र है, वह अपान वायु विशेष है। वह वाणी है, वह अग्नि है और वही यह (सदाचार और स्वाध्याय के कारण होने वाला) ब्रह्मतेज एवं अन्नाद्य है। इस प्रकार उस अपान की जो उपासना करता है, वह ब्रह्म तेज वाला और अन्न का भोक्ता होता है।।३।।

हृदयस्थ उत्तर दिग्वर्ती छिद्र रूप समान की उपासना

और इस हृदय का जो उत्तरवर्ती छिद्र है, उसमें स्थित वह समान वायु विशेष है। वह मन है। वह वृष्टि है, वही यह समान संज्ञक ब्रह्म कीर्ति एवं कान्ति है। इन दो गुणों से विशिष्ट समान रूप ब्रह्म की इसी प्रकार उपासना करे। जो इस प्रकार जानता है वह कीर्तिमान् और कान्तिमान् होता है।।४।।

अथ योऽस्य प्रत्यङ्सुषिः पश्चिमस्तत्स्थो वायुविशेषः स मूत्रपुरीषाद्य-पनयन्नधोऽनितीत्यपानः **सा** तथा **वाक्**। तत्संबन्धात्तथा**ऽग्निस्तदेतद्ब्रह्मवर्चस**ं, वृत्तस्वाध्यायनिमित्तं तेजो ब्रह्मवर्चसम्। अग्निसंबन्धाद्वृत्तस्वाध्यायस्य। अन्नग्रसन-हेतुत्वादपानस्यान्नाद्यत्वम्। समानमन्यत्।।३।।

अथ योऽस्योदङ्सुषिरुदग्गतः सुषिस्तत्स्थो वायुविशेषः **सो**ऽशितपीते **समं** नयतीति **समानः**। तत्संबद्धं **मनो**ऽन्तःकरणं **स पर्जन्यो** वृष्ट्यात्मको देवः पर्जन्यनिमित्ताश्चाऽऽप इति। "मनसा सृष्टा आपश्च वरुणश्च" इति श्रुतेः। **तदेत्कीर्तिश्च**। मनसो ज्ञानस्य कीर्तिहेतुत्वात्। आत्मपरोक्षं विश्रुतत्वं कीर्तिर्यशः। स्वकरणसंवेद्यं विश्रुतत्वं **व्युष्टिः** कान्तिर्देहगतं लावण्यम्। ततश्च कीर्तिसंभवात्कीर्तिश्चेति। समानमन्यत्।।४।।

अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदानः स वायुः स आकाशस्त-देतदोजश्च महश्चेत्युपासीतौजस्वी महस्वान्भवति य एवं वेद ॥५॥

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गं लोकं य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेद ॥६॥

हृदयस्थ ऊर्ध्व दिग्वर्ती छिद्र रूप उदान की उपासना

और जो इस हृदय का ऊर्ध्व दिग्वर्ती छिद्र है, वह उदान वायु विशेष है। वह वायु है, वह आकाश है और वही यह ओज है एवं महत्ता के कारण 'महः' भी है। जो इस प्रकार उदान संज्ञक ब्रह्म की उपासना करता है, वह बलवान् और तेजस्वी होता है।।५।।

उक्त प्राणादि द्वारपालकों की उपासना का फल

वे ये प्रसिद्ध हृदयस्थ ब्रह्म के पाँच पुरुष स्वर्गलोक के पाँच द्वारपाल हैं। वह जो कोई भी उपासक स्वर्ग के द्वारपालों इन पाँच ब्रह्म पुरुषों की उपासना करता है, उसके कुल में वीर पुत्र उत्पन्न होता है। जो कोई स्वर्गलोक के द्वारपाल इन चक्षुरादि पाँच पुरुषों की इस प्रकार उपासना करता है, वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।। ६।।

अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदान आ पादतलादारभ्योर्ध्वमुत्क्रमणादुत्कर्षार्थं च कर्म कुर्वन्ननितीत्युदानः **स वायु**स्तदाधारश्चा**ऽऽकाशस्तदेतद्वा**य्वाकाश-योरोजोहेतुत्वाद**ोजो** बलं महत्त्वाच्च **मह** इति। समानमन्यत्।।५।।

ते वा एते यथोक्ताः पञ्चसुषिसंबन्धात्पञ्च ब्रह्मणो हार्दस्य पुरुषा राजपुरुषा इव द्वारस्थाः **स्वर्गस्य** हार्दस्य **लोकस्य द्वारपा** द्वारपालाः। एतैर्हि चक्षुःश्रोत्रवाङ्मनः-प्राणैर्बहिर्मुखप्रवृत्तैर्ब्रह्मणो हार्दस्य प्राप्तिद्वाराणि निरुद्धानि। प्रत्यक्षं ह्येतदजितकरणतया बाह्यविषयासङ्गानृतप्रत्यूढत्वान्न हार्दे ब्रह्मणि मनस्तिष्ठति। तस्मात्सत्यमुक्तमेते **पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपा** इति। अतः स **य एतानेवं** यथोक्तगुणविशिष्टा-**न्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेद**ोपास्त उपासनया वशीकरोति स राजद्वारपालानिवोपासनेन वशीकृत्य तैरनिवारितः प्रतिपद्यते स्वर्गं लोकं राजानमिव हार्दं ब्रह्म। किंचा**स्य** विदुषः **कुले वीरः** पुत्रो **जायते** वीरपुरुषसेवनात्। तस्य चर्णापाकरणेन ब्रह्मोपासनप्रवृत्तिहेतुत्वम्। ततश्च स्वर्गलोकप्रतिपत्तये पारम्पर्येण भवतीति स्वर्गलोकप्रतिपत्तिरेवैकं फलम्।।६।।

अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे ज्योतिस्तस्यैषा दृष्टिर्यत्रैतदस्मिञ्छरीरे सꣳस्पर्शेनोष्णिमानं

हृदयस्थ मुख्य ब्रह्म की उपासना

और इस द्युलोक से परे जो नित्य प्रकाश होने से परम ज्योति विश्व के पृष्ठ पर अर्थात् सबके ऊपर सर्वोत्तम, उत्तम लोकों में भासमान हो रही है, वह निश्चय यही है जो कि इस पुरुष के भीतर ज्योति है; जो चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा बाहर निकलती रहती है। ७॥

हृदयस्थ परम ज्योति का ज्ञापक लिङ्ग

उस इस हृदयस्थ पुरुष के दर्शन का उपाय यही है- जब मनुष्य इस देश में हाथ से स्पर्श द्वारा उष्णता को जानता है। तथा यही उसके श्रवण का उपाय है- जिस समय यह कर्ण छिद्रों को बन्द करके रथ के घोष को, बैल के डकारने के शब्द के समान और जलते हुए अग्नि के शब्द के समान शब्द को सुनता है। वह यह ज्योति दृष्ट और श्रुतलिङ्ग से युक्त होने के कारण

अथ यदसौ विद्वान्स्वर्गं लोकं वीरपुरुषसेवनात्प्रतिपद्यते। यच्चोक्तं त्रिपादस्यामृतं दिवीति तदिदं लिङ्गेन चक्षुःश्रोत्रेन्द्रियगोचरमापादयितव्यम्, यथाऽग्न्यादि धूमादिलिङ्गेन। तथा ह्येवमेवेदमिति यथोक्तेऽर्थे दृढा प्रतीतिः स्यात्। अनन्यत्वेन च निश्चय इति। अत आह— यदतोऽमुष्मा**द्दिवो** द्युलोकात्**परः** परमिति लिङ्गव्यत्ययेन **ज्योतिर्दीप्यते**। स्वयंप्रभं सदाप्रकाशत्वाद्दीप्यत इव दीप्यत इत्युच्यते। अग्न्यादिवज्ज्वलनलक्षणाया दीप्तेरसंभवात्।

विश्वतः पृष्ठेष्वित्येतस्य व्याख्यानं **सर्वतः पृष्ठेष्वि**ति। संसारादुपरीत्यर्थः। संसार एव हि सर्वः। असंसारिण एकत्वान्निर्भेदत्वाच्च। **अनुत्तमेषु** तत्पुरुषसमासाशङ्कानिवृत्तय आहो**त्तमेषु** लोकेष्विति सत्यलोकादिषु हिरण्यगर्भादिकार्यस्थपरस्येश्वरस्याऽऽसन्नात्वादुच्यत **उत्तमेषु लोकेष्विति**। **इदं वावे**दमेव **तद्यदिदमस्मिन्पुरुषे**ऽन्तर्मध्ये **ज्योतिश्च**क्षुःश्रोत्रग्राह्येण लिङ्गेनोष्णिम्ना शब्देन चावगम्यते। यत्त्वचा स्पर्शरूपेण गृह्यते तच्चक्षुषैव। दृढप्रतीतिकरत्वात्त्वचः। अविनाभूतत्वाच्च रूपस्पर्शयोः।

विजानाति तस्यैषा श्रुतिर्यत्रैतत्कर्णावपिगृह्य निनदमिव नदथुरिवाग्नेरिव ज्वलत उपशृणोति तदेतद्दृष्टं च श्रुतं चेत्युपासीत चक्षुष्यः श्रुतो भवति य एवं वेद य एवं वेद ।।७।।

इति तृतीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।।१३।।

दृष्ट एवं श्रुत है। इस प्रकार इस परम ज्योति की उपासना करे। जो उपासक इस प्रकार उपासना करता है, वह दर्शनीय और विख्यात हो जाता है 'य एवं वेद' इस वाक्य की द्विरुक्ति आदरार्थ है।।७।।

।। इति त्रयोदशः खण्डः ।।

कथं पुनस्तस्य ज्योतिषो लिङ्गं त्वग्दृष्टिगोचरत्वमापद्यत इति, आह— यत्र यस्मिन्काले। **एतदिति** क्रियाविशेषणम्। **अस्मिञ्शरीरे** हस्तेनाऽऽलभ्य **संस्पर्शेनोष्णिमानं** रूपसहभाविनमुष्णस्पर्शभावं **विजानाति**। स ह्युष्णिमा नामरूपव्याकरणाय देहमनुप्रविष्टस्य चैतन्यात्मज्योतिषो लिङ्गमव्यभिचारात्। न हि जीवन्तमात्मानमुष्णिमा व्यभिचरति उष्ण एव जीविष्यञ्शीतो मरिष्यन्निति हि विज्ञायते। मरणकाले च तेजः परस्यां देवतायामिति परेणाविभागत्वोपगमात्। अतोऽसाधारणं लिङ्गमौष्ण्यमग्नेरिव धूमः। अतस्तस्य परस्यैषा दृष्टिः साक्षादिव दर्शनं दर्शनोपाय इत्यर्थः।

तथा **तस्य** ज्योतिष **एषा श्रुतिः** श्रवणं श्रवणोपायोऽप्युच्यमानः। यत्र यदा पुरुषो ज्योतिषी लिङ्गं (शुश्रूषति) श्रोतुमिच्छति **तदैतत्कर्णावपिगृह्यै**तच्छब्दः क्रियाविशेषणम्। अपिगृह्यापिधायेत्यर्थोऽङ्गुलिभ्यां प्रोर्णुत्य **निनदमिव** रथस्येव घोषो निनदस्तमिव शृणोति **नदथुरिव** ऋषभकूजितमिव शब्दो यथा **चाग्नेर्बहिर्ज्वलत** एवं शब्दमन्तःशरीर **उपशृणोति तदेत**ज्ज्योतिर्दृष्टश्रुतलिङ्गत्वा**द्दृष्टं च श्रुतं चेत्युपासीत**। तथोपासनाच्**चक्षुष्यो** दर्शनीयः **श्रुतो** विश्रुतश्च। यत्स्पर्शगुणोपासननिमित्तं फलं तद्रूपे संपादयति चक्षुष्य इति। रूपस्पर्शयोः सहभावित्वात्। इष्टत्वाच्च दर्शनीयतायाः। एवं च विद्यायाः फलमुपपन्नं स्यान्न तु मृदुत्वादिस्पर्शवत्त्वे। **य एवं** यथोक्तौ गुणौ **वेद**। स्वर्गलोकप्रतिपत्तिस्तूक्तमदृष्टं फलम्। द्विरभ्यास आदरार्थः।।७।।

।। इति पञ्चमाह्निकम्।।५।।

इति तृतीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः।।१३।।

(अथ तृतीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः)

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य

शाण्डिल्य विद्यान्तर्गत सर्वदृष्टि से ब्रह्मोपासना

यह (प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषयभूत नामरूपात्मक) सम्पूर्ण जगत् निश्चय ब्रह्मरूप है, यह उस ब्रह्म से (अग्नि जलादि क्रम से) उत्पन्न होने वाला, उसके विपरीत क्रम से उसी में लीन होने वाला और (स्थिति के समय) उसी में चेष्टा करने वाला है। अतः रागद्वेषादि से रहित संयत

पुनस्तस्यैव त्रिपादमृतस्य ब्रह्मणोऽनन्तगुणवतोऽनन्तशक्तेरनेकभेदोपास्यस्य विशिष्ट-गुणशक्तिमत्त्वेनोपासनं विधित्सन्नाह—

सर्वं समस्तं **खल्विति** वाक्यालंकारार्थो निपातः। इदं जगन्नामरूपविकृतं प्रत्यक्षादिविषयं ब्रह्म कारणं वृद्धतमत्वाद्ब्रह्म। कथं सर्वस्य ब्रह्मत्वमित्यत आह—**तज्जलानिति**। तस्माद् ब्रह्मणो जातं तेजोबन्नादिक्रमेण सर्वम्। अतस्तज्जम्। तथा तेनैव जननक्रमेण प्रतिलोमतया तस्मिन्नेव ब्रह्मणि लीयते तदात्मतया श्लिष्यत इति तल्लम्। तथा तस्मिन्नेव स्थितिकालेऽनिति प्राणिति चेष्टते इति। एवं ब्रह्मात्मतया त्रिषु कालेष्वविशिष्टं तद्व्यतिरेकेणाग्रहणात्। अतस्तदेवेदं जगत्। यथा चेदं तदेवैकमद्वितीयं तथा षष्ठे विस्तरेण वक्ष्यामः। यस्माच्च सर्वमिदं ब्रह्म। अतः **शान्तो** रागद्वेषादिदोषरहितः संयतः सन्यत्तत्सर्वं ब्रह्म तद्वक्ष्यमाणैर्गुणै**रुपासीत**।

कथमुपासीत? क्रतुं कुर्वीत क्रतुर्निश्चयोऽध्यवसाय एवमेव नान्यथेत्यविचलः प्रत्ययस्तं क्रतुं कुर्वीतोपासीतेत्यनेन व्यवहितेन संबन्धः। किं पुनः क्रतुकरणेन कर्तव्यं प्रयोजनम्। कथं वा क्रतुः कर्तव्यः। क्रतुकरणं चाभिप्रेतार्थसिद्धिसाधनं कथमित्यस्यार्थस्य प्रतिपादनार्थमथेत्यादिग्रन्थः। अथ खल्विति हेत्वर्थः। यस्मात्**क्रतुमयः** क्रतुप्रायोऽध्यवसायात्मकः **पुरुषो** जीवः **यथा क्रतु**र्यादृशः क्रतुरस्य सोऽयं यथा क्रतुर्यथाध्यवसायो यादृङ्निश्चयो**ऽस्मिँल्लोके** जीवन्निह **पुरुषो भवति तथेतो**ऽस्माद्देहात्**प्रेत्य** मृत्वा **भवति**। क्रत्वनुरूपफलात्मको भवतीत्यर्थः। एवं ह्येतच्छास्त्रतो दृष्टम्। "यं यं वाऽपि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्" (गी. ८.६) इत्यादि। यत एवं व्यवस्था

भवति स क्रतुं कुर्वीत ।।१।।

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्या-

इन्द्रिय होकर उपासन करे, क्योंकि पुरुष निश्च्य ही निश्चयात्मक है। इस लोक में जैसा निश्चय वाला पुरुष होता है; वैसा ही इस देह से मर कर होता है। इसलिये उस साधक को निश्चय करना चाहिये (क्योंकि शास्त्र प्रामाण्य से निश्चयानुरूप फल मिलना कहा गया है) ।।१।।

ब्रह्म में समग्र आरोपित चिन्तनीय गुण

(वह ब्रह्म विषयों में प्रवृत्ति के हेतुभूत मन के कारण) मनोमय है। प्राण, शरीर, चैतन्य स्वरूप, सत्य संकल्प, (सर्वव्यापकत्व, सूक्ष्मत्व रूपादि-हीनत्वादि आकाश के तुल्य होने से) आकाशात्मा, सर्वकर्मा, (दोष रहित) सम्पूर्ण काम वाला, सुखप्रद, सम्पूर्ण गन्ध वाला, सम्पूर्ण

शास्त्रदृष्टा, अतः **स** एवं जानन्क्रतुं कुर्वीत यादृशं क्रतुं वक्ष्यामस्तम्। यत एवं शास्त्रप्रामाण्यादुपपद्यते क्रत्वनुरूपं फलमतः स कर्तव्यः क्रतुः।।१।।

कथम्। **मनोमयो** मनःप्रायः मनुतेऽनेनेति मनस्तत्स्ववृत्त्या विषयेषु प्रवृत्तं भवति तेन मनसा तन्मयः। तथा प्रवृत्त इव तत्प्रायो निवृत्त इव च। अत एव **प्राणशरीरः** प्राणो लिङ्गात्मा विज्ञानक्रियाशक्तिद्वयसंमूर्छितः। "यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः" (कौ.उ. ३.३) इति श्रुतेः। स शरीरं यस्य स प्राणशरीरः। "मनोमयः प्राणशरीरनेता" (मु. २.२.७) इति च श्रुत्यन्तरात्। भारूपः। भा दीप्तिश्चैतन्यलक्षणा रूपं यस्य स भारूपः। सत्यसंकल्पः। सत्या अवितथाः संकल्पा यस्य सोऽयं सत्यसंकल्पः। न यथा संसारिण इवानैकान्तिकफलः संकल्प ईश्वरस्येत्यर्थः। अनृतेन मिथ्याफलत्वहेतुना प्रत्यूढत्वात्संकल्पस्य मिथ्याफलत्वम्। वक्ष्यत्यनृतेन हि प्रत्यूढा इति। **आकाशात्मा**। आकाश इवाऽऽत्मा स्वरूपं यस्य स आकाशात्मा। सर्वगतत्वं सूक्ष्मत्वं रूपादिहीनत्वं चाऽऽकाशतुल्यतेश्वरस्य। सर्वकर्मा। सर्वं विश्वं तेनेश्वरेण क्रियते इति जगत्सर्वं कर्मास्य स सर्वकर्मा। "स हि सर्वस्य कर्ता" (बृ. ४.४.१३) इति श्रुतेः। **सर्वकामः**। सर्वे कामा दोषरहिता अस्येति सर्वकामः। "धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि" (गी. ७.११) इति स्मृतेः।

त्तोऽवाक्यनादरः ॥२॥

एष म आत्माऽन्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा

रस वाला, सम्पूर्ण जगत् को सभी ओर से व्याप्त कर लेने वाला, वाणी रहित, आप्त काम होने से आग्रह शून्य है॥२॥

ब्रह्म अणु से अणु है और महान् से महान् है

यह मेरा आत्मा हृदय कमल के भीतर धान से, यव से, सरसों से, श्यामक से अथवा

ननु कामोऽस्मीति वचनादिह बहुव्रीहिर्न संभवति सर्वकामः इति। न, कामस्य कर्तव्यत्वाच्छब्दादिवत्पारार्थ्यप्रसङ्गाच्च देवस्य। तस्माद्यथेह सर्वकाम इति बहुव्रीहिस्तथा कामोऽस्मीतिस्मृत्यर्थो वाच्यः।

सर्वगन्धः। सर्वेगन्धाः सुखकरा अस्य सोऽयं सर्वगन्धः। "पुण्यो गन्धः पृथिव्याम्" (गी. ७.९) इति स्मृतेः। तथा रसा अपि विज्ञेयाः। अपुण्यगन्धरसग्रहणस्य पाप्मसंबन्धनिमित्तत्वश्रवणात्। "तस्मात्तेनोभयं जिघ्रति सुरभि च दुर्गन्धि च। पाप्मना ह्येष विद्धः" (छा. १.२.२) इति श्रुतेः। न च पाप्मसंसर्ग ईश्वरस्य। अविद्यादिदोषस्यानुपपत्तेः।

सर्वमिदं जग**दभ्यात्तो**ऽभिव्याप्तः अततेर्व्याप्त्यर्थस्य कर्तरि निष्ठा। तथाऽवाक्युच्यतेऽनयेति वाग्वागेव वाक्ः। यद्वा वचेर्घञन्तस्य करणो वाकः। स यस्य विद्यते स वाकी न वाक**यवाकी**। वाक्प्रतिषेधश्चात्रोपलक्षणार्थः। गन्धरसादिश्रवणादीश्वरस्य प्राप्तानि घ्राणादीनि करणानि गन्धादिग्रहणाय। अतो वाक्प्रतिषेधेन प्रतिषिध्यन्ते तानि। "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः" (श्वे.३.१९) इत्यादिमन्त्रवर्णात्। अनादरोऽसंभ्रमः। अप्राप्तप्राप्तौ हि संभ्रमः स्यादनाप्तकामस्य। न त्वाप्तकामत्वान्नित्यतृप्तस्येश्वरस्य संभ्रमोऽस्ति क्वचित्॥२॥

एष यथोक्तगुणो **मे** ममा**ऽऽत्माऽन्तर्हृदये** हृदयपुण्डरीकस्यान्तर्मध्येऽणीयानणुतरो **व्रीहेर्वा यवाद्वे**त्याद्यत्यन्तसूक्ष्मत्वप्रदर्शनार्थम्। **श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वे**ति परिच्छिन्नपरिमाणादणीयानित्युक्तेऽणुपरिमाणत्वं प्राप्तमाशङ्क्यातस्तत्प्रतिषेधायाऽऽरभते— **एष**

श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वैष म आत्माऽन्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः ।।३।।

सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एष म आत्माऽन्र्हृदय एतद्ब्रह्मैतमितः

श्यामक तण्डुल से भी सूक्ष्म है और हृदय कमल के भीतर यह मेरा आत्मा पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक या इन सभी लोकों की अपेक्षा श्रेष्ठ है।।३।।

हृदयस्थ ब्रह्म और परब्रह्म का अभेद

जो सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस और इस सम्पूर्ण जगत् को सभी ओर से व्याप्त करने वाला, वाणी रहित और आग्रह रहित है। वही मेरा आत्मा हृदयकमलवर्ती है और यही ब्रह्म है। इस देह से मरकर या गमन करने पर मैं इसी ब्रह्म को प्राप्त होऊँगा; ऐसा जिसका निश्चय

म आत्माऽन्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्याः इत्यादिना। ज्यायःपरिमाणाच्च ज्यायस्त्वं दर्शयन्ननन्तपरिमाणत्वं दर्शयति।।३।।

मनोमय इत्यादिना ज्यायानेभ्यो लोकेभ्य इत्यन्तेन यथोक्तगुणलक्षणः ईश्वरो ध्येयो न तु तद्गुणविशिष्टः एव। यथा राजपुरुषमानय, चित्रगुं वेत्युक्ते न विशेषणस्याप्यानयने व्याप्रियते, तद्वदिहापि प्राप्तमतस्तन्निवृत्त्यर्थं **सर्वकर्मे**त्यादि पुनर्वचनम्। तस्मान्मनोमयत्वादिगुण विशिष्टः एवेश्वरो ध्येयः।. अत एव षष्ठसप्तमयोरिव "तत्त्वमसि" (छा. ६.८.१६) "आत्मैवेदं सर्वम्" (छा. ७.२५.२) इति नेह स्वाराज्येऽभिषिञ्चत्येष मे आत्**मैतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मीति** लिङ्गान्न त्वात्मशब्देन प्रत्यगात्मैवोच्यते। ममेति षष्ठ्याः संबन्धार्थप्रत्यायकत्वादेतमभिसंभवितास्मीति च कर्मकर्तृत्वनिर्देशात्।

ननु षष्ठेऽप्यथ संपत्स्ये इति सत्संपत्तेः कालान्तरितत्वं दर्शयति। न, आरब्धसंस्कारशेषस्थित्यर्थपरत्वात्, न कालान्तरितार्थता, अन्यथा तत्त्वमसीत्येतस्यार्थस्य बाधप्रसङ्गात्। यद्यप्यात्मशब्दस्य प्रत्यगर्थत्वं सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति च प्रकृतमेष म आत्माऽन्तर्हृदय एतद्ब्रह्मेत्युच्यते, तथाऽप्यन्तर्धानमीषदपरित्यज्यैवैतमात्मानमितोऽस्माच्छरीरात्प्रेत्याभिसंभवितास्मीत्युक्तम्।

प्रेत्याभिसंभवितास्मीति यस्य स्यादद्धा न विचिकित्साऽस्तीति ह स्माऽऽह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः ॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

(अथ तृतीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः)

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुध्नो न जीर्यति दिशो ह्यस्य स्रक्तयो द्यौरस्योत्तरं बिलꣳ स एष कोशो वसुधानस्त-

है और जिसे इस विषय में किंचित् भी सन्देह नहीं है (उसे अवश्यमेव ईश्वर की प्राप्ति होती है) ऐसा शाण्डिल्य ने कहा है।।४।।

।। इति चतुर्दशः खण्डः ।।

विराट् कोश की उपासना

अन्तरिक्ष उदर वाला (धर्माधर्म का आश्रयभूत) वह कोश पृथिवी रूप मूल वाला है (त्रैलोक्य स्वरूप होने से) वह कभी नष्ट नहीं होता। दिशाएं इसके सभी कोण हैं, द्युलोक इसके

यथाक्रतुरूपस्याऽऽत्मनः प्रतिपत्ताऽस्मीति यस्यैवंविदः स्याद्भवेदद्धा सत्यमेवं स्यामहं प्रेत्यैवं न स्यामिति **न** च **विचिकित्साऽस्तीत्ये**तस्मिन्नर्थे क्रतुफलसंबन्धे स तथैवेश्वरभावं प्रतिपद्यते विद्वानित्येतदाह **स्मो**क्तवान्किल **शाण्डिल्यो** नामर्षिः। द्विरभ्यास आदरार्थः।।४।।

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।। १४।।

अस्य कुले वीरो जायते इत्युक्तम्। न वीरजन्ममात्रं पितुस्त्राणाय। "तस्मात्पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुः" इति श्रुत्यन्तरात्। अतस्तद्दीर्घायुष्ट्वं कथं स्यादित्येवमर्थं कोशविज्ञानारम्भः। अभ्यर्हितविज्ञानव्यासङ्गादनन्तरमेव नोक्तं तदिदानीमेवाऽरभ्यते—

स्मिन्विश्वमिदथ्ं श्रितम् ।।१।।

तस्य प्राची दिग्जुहूर्नाम सहमाना नाम दक्षिणा राज्ञी नाम प्रतीची सुभूता नामोदीची तासां वायुर्वत्सः स य एतमेवं वायुं

ऊपर वाले बिल हैं। वह यह कोश कर्म फल रूप वसु का आधान स्थान है, उसी में यह सारा संसार स्थित है।।१।।

उस कोश की पूर्व दिशा 'जुहू' नाम वाली है, (क्योंकि कर्मी लोग पूर्वाभिमुख होकर होमादि करते हैं। दक्षिण दिशा में स्थित यमलोक में जीव अपने पाप कर्मों का फल भोगता है) अतः दक्षिण दिशा 'सहमाना' नाम वाली है। (सायंकालिक लालिमा से युक्त होने के कारण)पश्चिमदिशा 'राज्ञी' नाम वाली है और उत्तरदिशा (विभूति सम्पन्न) देवताओं से अधिष्ठित होने के कारण 'सुभूता' नाम की है। दिशाओं से उत्पन्न होने के कारण वायु इनका वत्स है। वह कोई भी पुरुष इस प्रकार पूर्वोक्त गुण विशिष्ट दिशाओं के वत्सा रूप से वायु की उपासना करता है, वह पुत्र के निमित्त से रोदन नहीं करता। वह मैं इस प्रकार इस वायु को वत्सा रूपा

अन्तरिक्षमुदरमन्तःसुषिरं यस्य सोऽयम**न्तरिक्षोदरः कोशः** कोश इवानेकधर्मसादृश्यात्कोशः। स च **भूमिबुध्नो** भूमिर्बुध्नो मूलं यस्य स भूमिबुध्नो **न जीर्यति** न विनश्यति त्रैलोक्यात्मकत्वात्। सहस्रयुगकालावस्थायी हि सः। **दिशो ह्यस्य** सर्वाः **स्रक्तयः** कोणाः। **द्यौरस्य** कोशस्यो**त्तर**मूर्ध्वं **बिलं स एष** यथोक्तगुणः **कोशो वसुधानो** वसु धीयतेऽस्मिन्प्राणिनां कर्मफलाख्यमतो वसुधानः। **तस्मिन्नन्तर्विश्वं** समस्तं प्राणिकर्मफलं सह तत्साधनै**रिदं** यद्गृह्यते प्रत्यक्षादिप्रमाणैः **श्रितमा**श्रितं स्थितमित्यर्थः।।१।।

तस्यास्य **प्राची दिग्**प्राग्गतो भागो **जुहूर्नाम** जुह्वत्यस्यां दिशि कर्मिणः प्राङ्मुखाः सन्त इति जुहूर्नाम। **सहमाना नाम** सहन्तेऽस्यां पापकर्मफलानि यमपुर्यां प्राणिनः इति सहमाना नाम **दक्षिणा** दिक्। तथा **राज्ञी नाम प्रतीची** पश्चिमा दिग्राज्ञी राज्ञा वरुणेनाधिष्ठिता संध्यारागयोगाद्वा। **सुभूता नाम** भूतिमद्भिरीश्वरकुबेरादिभिरधिष्ठितत्वात्सुभूता **नामोदीची**। तासां दिशां **वायुर्वत्सो** दिग्जत्वाद्वायोः। पुरोवात इत्यादिदर्शनात्। **स यः** कश्चित्पुत्रदीर्घजीवितार्थ्येवं यथोक्तगुणं **वायुं दिशां वत्सम**मृतं **वेद स न पुत्ररोदं** पुत्रनिमित्तं रोदनं न **रोदिति** पुत्रो न म्रियत इत्यर्थः। यत एवं विशिष्टं

दिशां वत्सं वेद, न पुत्ररोदᳬं रोदिति, सोऽहमेतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद, मा पुत्ररोदᳬं रुदम् ।।२।।

अरिष्टं कोशं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना प्राणं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भूः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना

भुवः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना स्वः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना ।।३।।

स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति प्राणो वा इदᳬं सर्वं भूतं यदिदं किंच तमेव तत्प्रापत्सि ।।४।।

से जानता हूँ। अतः मैं पुत्र मरण निमित्त से होने वाला रोदन न करूँ अर्थात् मुझे पुत्र के लिये रोने का प्रसंग न आवे।।२।।

(पुत्र की दीर्घायुष्य के लिए) मैं पूर्वोक्त अमुक-अमुक-अमुक के सहित अविनाशी कोश की शरण हूँ, अमुक-अमुक-अमुक के सहित प्राण की शरण हूँ, अमुक ३ के सहित भूः की शरण हूँ, अमुक ३ के सहित मैं भुवः की शरण हूँ और अमुक ३ के सहित मैं स्वः की शरण हूँ (मन्त्र में पढ़े अमुक शब्द के स्थान में सर्वत्र पुत्र के नाम का उच्चारण करे अर्थात् तीन-तीन बार अपने पुत्र का नाम लेवे)।।३।।

और मैंने जो कहा कि मैं प्राणकी शरण हूँ, सो यह सम्पूर्ण भूत समुदाय प्राण ही है, उसी विराट् की मैं शरण हूँ।।४।।

कोशदिग्वत्सविषयं विज्ञानमतः सोऽहं पुत्रजीवितार्थ्येवमेतं वायुं दिशां वत्सं वेद जाने। अतो मा **पुत्ररोदं रुदं** मा रुदं पुत्रमरणनिमित्तम्। पुत्ररोदो मम मा भूदित्यर्थः।।२।।

अरिष्टम्विनाशिनं **कोशं** यथोक्तं **प्रपद्ये** प्रपन्नोऽस्मि पुत्रायुषे। **अमुना-ऽमुनाऽमुनेति** त्रिर्नाम गृह्णाति पुत्रस्य। तथा **प्राणं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भूः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भुवः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना स्वः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना,** सर्वत्र प्रपद्ये इति त्रिर्नाम गृह्णाति पुनः पुनः।।३।।

स यदवोचं प्राणं प्रपद्ये इति व्याख्यानार्थमुपन्यासः। **प्राणो वा इदᳬं सर्वं भूतं यदिदं** जगत्। यथा वाऽरा नाभाविति वक्ष्यति। अतस्**तमेव** सर्वं **तत्**तेन प्राणप्रतिपादनेन **प्रापत्सि** प्रपन्नोऽभूवम्।।४।।

अथ यदवोचं भूः प्रपद्य इति पृथिवीं प्रपद्येऽन्तरिक्षं प्रपद्ये दिवं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥५॥

अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इत्यग्निं प्रपद्ये वायुं प्रपद्य आदित्यं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥६॥

अथ यदवोचꣳ स्वः प्रपद्य इत्यृग्वेदं प्रपद्ये यजुर्वेदं प्रपद्ये सामवेदं प्रपद्य इत्येव तदवोचं तदवोचम् ॥७॥

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

और मैंने जो कहा कि मैं भूः की शरण हूँ इससे मैंने इतना ही कहा है कि मैं पृथ्वी की शरण हूँ, अन्तरिक्ष की शरण हूँ, द्युलोक की शरण हूँ।।५।।

पुनः मैंने जो कहा कि मैं भुवः की शरण हूँ, इससे यही कहा है कि मैं अग्नि की शरण हूँ, वायु की शरण हूँ तथा आदित्य की शरण हूँ।।६।।

और मैंने जो कहा कि मैं ''स्वः'' की शरण हूँ, इससे मैंने यही कहा कि मैं ऋग्वेद की शरण हूँ और यजुर्वेद की शरण हूँ और सामवेद की शरण हूँ। (इसके बाद उक्त अविनाशी कोश का दिशाओं के वत्स के सहित भली प्रकार से ध्यान कर ऊपर के मन्त्रों का जप करे।।७।।

।।इति पंचदशः खण्डः ।।

तथा **भूः प्रपद्य** इति त्रीँल्लोकान्भूरादीन्प्रपद्ये इति **तदवोचम्**।।५।।
अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इत्यग्न्यादीन्**प्रपद्ये** इति **तदवोचम्**।।६।।
अथ यदवोचं स्वः प्रपद्य इत्यृग्वेदादीन्प्रपद्ये **इत्येव तदवोचम्**इति। 'उपरिष्टान्मन्त्राञ्जपेत्ततः पूर्वोक्तमजरं कोशं सदिग्वत्सं यथावद्ध्यात्वा। द्विर्वचनमादरार्थम्।।७।।

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः।।१५।।

(अथ तृतीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः)

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंꣳशतिवर्षाणि तत्प्रातःसवनं चतुर्विंꣳशत्यक्षरा गायत्री, गायत्रं प्रातःसवनं, तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव, एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति ।।१।।

आत्म यज्ञ का संपादन

निश्चय ही पुरुष यज्ञ है, उस (पुरुष की आयु) के जो चौबीस वर्ष हैं, वे (पुरुष संज्ञक यज्ञ के) प्रातः सवन हैं, क्योंकि गायत्री छन्द चौबीस अक्षर वाला है और विधि यज्ञ का प्रातः सवन भी गायत्री छन्द वाला है। (अतः पुरुष प्रातः सवन रूप से संपन्न हुई चौबीस वर्ष की आयु से युक्त होने के कारण यज्ञ स्वरूप है)। उस इस प्रातः सवन के वसुदेवता सर्वत्र अनुगत है। वागादि इन्द्रियाँ और प्राणादि वायु वसु हैं, क्योंकि ये ही इस पुरुषादि सभी प्राणियों को बसाये हुए हैं।।१।।

पुत्रायुषे उपासनमुक्तं जपश्च। अथेदानीमात्मनो दीर्घजीवनायेदमुपासनं जपं च विदधदाह। जीवन्हि स्वयं पुत्रादिफलेन युज्यते नान्यथा। इत्यत आत्मानं यज्ञं संपादयति—

पुरुषः पुरुषो जीवनविशिष्टः कार्यकरणसंघातो यथाप्रसिद्ध एव। वाव-शब्दोऽवधारणार्थः। पुरुष एव **यज्ञ** इत्यर्थः।

तथा हि सामान्यैः संपादयति यज्ञत्वम्। कथम्। तस्य पुरुषस्य यानि **चतुर्विंशतिवर्षाण्या**युषस्**तत्प्रातःसवनं** पुरुषाख्यस्य यज्ञस्य। केन सामान्येनेत्याह— **चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री** छन्दो **गायत्रं** गायत्रीछन्दस्कं हि विधियज्ञस्य **प्रातःसवनम्**। अतः प्रातःसवनसंपन्नेन चतुर्विंशतिवर्षायुषा युक्तः पुरुषः। अतो विधियज्ञसादृश्याद्यज्ञः। तथोत्तरयोरप्यायुषोः सवनद्वयसंपत्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यक्षरसंख्यासामान्यतो वाच्या।

किंच तदस्य पुरुषयज्ञस्य प्रातःसवनं विधियज्ञस्येव **वसवो** देवा **अन्वायत्ता** अनुगताः। सवनदेवतात्वेन स्वामिनः इत्यर्थः। पुरुषयज्ञेऽपि विधियज्ञ इवाग्न्यादयो वसवो देवाः प्राप्ता इत्यतो विशिनष्टि— **प्राणा वाव वसवो** वागादयो वायवश्च। ते **हि** यस्मादिदं पुरुषादिप्राणिजातमेते वासयन्ति। प्राणेषु हि देहे वसत्सु **सर्वमिदं** वसति, नान्यथा। इत्यतो वसनाद्वासनाच्च वसवः।।१।।

तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यंदिनꣳ सवनमनुसंतनुतेति माऽहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥२॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यंदिनꣳ सवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप्त्रैष्टुभं माध्यंदिनꣳ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳ सर्वꣳ रोदयन्ति ॥३॥

यदि इस प्रातः सवन रूप से सम्पन्न हुई आयु में उसे कोई व्याधि आदि कष्ट पहुँचावे तो वह (यज्ञ सम्पादन करने वाला पुरुष अपने को यज्ञ मानता हुआ) कहे- हे प्राणरूप वसुगण! मेरे इस प्रातःसवन को माध्यंदिन सवन आयु के साथ एकरूप कर दो। यज्ञस्वरूप मैं (प्रातः सवन के अधिष्ठाता) प्राणरूप वसुओं के मध्य में नष्ट न होऊँ (उस जप और ध्यान के द्वारा) उसके बाद कष्ट से मुक्त हो वह नीरोग हो जाता है।।२।।

इसके बाद पुरुष की आयु जो चौवालीस वर्ष है, वह माध्यंदिन सवन है। त्रिष्टुप् छन्द चौवालीस अक्षरों वाला है और माध्यंदिन सवन त्रिष्टुप छन्द से सम्बद्ध है। उसके रुद्रगण देवता सर्वत्र अनुगत हैं। निश्चय प्राण ही रुद्र है, क्योंकि ये प्राणरूप रुद्र ही प्राणी समुदाय को रुलाते हैं।।३।।

तं चेद्यज्ञसंपादित**मेतस्मिन्**प्रातःसवनसंपन्ने **वयसि किंचिद्**व्याध्यादिमरणाशङ्काकारण**मुपतपेद्**दुःखमुत्पादयेत्**स** तदा यज्ञसंपादी पुरुषः आत्मानं यज्ञं मन्यमानो **ब्रूयाज्**जपेदित्यर्थ इमं मन्त्रं, हे प्राणा! वसव **इदं मे प्रातःसवनं** मम यज्ञस्य वर्तते तन्**माध्यंदिनं सवनमनुसंतनुतेति** माध्यंदिनेन सवनेनाऽऽयुषा सहितमेकीभूतं संततं कुरुतेत्यर्थः। **माऽहं** यज्ञो युष्माकं **प्राणानां वसूनां** प्रातः सवनेशानां **मध्ये विलोप्सीय** विलुप्येय विच्छिद्येयेत्यर्थः। **इतिशब्दो** मन्त्रपरिसमाप्त्यर्थः। स तेन जपेन ध्यानेन च **तत**स्तस्मादुपतापादुदेत्युद्गच्छति। उद्गम्य विमुक्तः सन्न**गदो** हानुपतापो **भवत्येव**।।२।।

अथ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणीत्यादि समानम्। रुदन्ति रोदयन्तीति प्राणा रुद्राः। क्रूरा हि ते मध्यमे वयस्यतो रुद्राः।।३।।

तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यंदिनꣳ सवनं तृतीयसवनमनुसंतनुतेति माऽहं प्राणानाꣳ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥४॥

अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारिꣳशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्याऽऽदित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावाऽऽदित्या एते हीदꣳसर्वमाददते ॥५॥

तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसंतनुतेति माऽहं प्राणानामादित्यानां मध्ये

यदि उस यज्ञकर्ता को (इस चौवालीस) वर्ष की अवस्था में कोई रोगादि संतप्त करें तो वह कहे- हे प्राणरूप रुद्रगण! मेरे इस मध्याह्नकालिक सवन को तृतीय सवन के साथ एकीभूत कर दो। यज्ञस्वरूप मैं प्राणरूप रुद्रों के भीतर कभी विच्छिन्न न होऊँ, इतना कहने मात्र से वह व्याधि आदि कष्ट से छूट जाता है।।४।।

इसके अनन्तर पुरुष की जो अड़तालीस वर्ष शेष आयु के हैं, वे उस पुरुष यज्ञ के तृतीय सवन हैं। जगती छन्द भी अड़तालीस अक्षरों वाला है। तृतीय सवन जगती छन्द से सम्बद्ध है। इस तृतीय सवन के आदित्य देवता सर्वत्र अनुगत हैं। प्राण ही आदित्य है क्योंकि ये शब्दादि विषय समूह का आदान करते हैं।।५।।

यदि इस आयु में उस उपासक को कोई रोगादि दुःखी करें; तो वह इस प्रकार कहे- हे प्राणरूप आदित्यगण! मेरे इस तृतीय सवन को आयु रूप से (एक सौ सोलह वर्ष तक) पूर्ण

तथाऽऽ**दित्याः प्राणाः**। ते **हीदं** शब्दादिजातमाददते, अत **आदित्यास्तृतीयसवनमायुः** षोडशोत्तरवर्षशतं समापयता**नुसंतनुत** यज्ञं समापयतेत्यर्थः।

यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ॥६॥

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः स किं म एतदुपतपसि, योऽहमनेन न प्रेष्यामीति स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्प्र ह षोडशं वर्षशतं जीवति य एवं वेद ॥७॥

इति तृतीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

करो। यज्ञस्वरूप मैं प्राणरूप आदित्य के मध्य में विच्छिन्न न होऊँ। ऐसा कहने से वह उस व्याधि आदि कष्ट से मुक्त होकर रोगरहित हो जाता है।।६।।

इसे प्रसिद्ध यज्ञ दर्शन को जानने वाला इतरा के पुत्र महिदास ने कहा था। हे रोग! तू मुझे यह संताप क्यों देता है? क्योंकि जो यज्ञस्वरूप मैं तेरे इस संताप से नहीं मर सकूँगा (अतः तेरा परिश्रम व्यर्थ है) ऐसा निश्चय कर वह एक सौ सोलह वर्ष जीवित रहा। जो अन्य कोई भी इस प्रकार उपासना करता है, वह एक सौ सोलह वर्ष जीवित रहता है।।७।।

।।इति षोडशः खण्डः ।।

समानमन्यत्।।५।।६।।

निश्चिता हि विद्या फलायेत्येतद्दर्शयन्नुदाहरति—

एतद्यज्ञदर्शनं ह **स्म वै** किल तद्विद्वानाह **महिदासो** नामतः। इतराया अपत्य**मैतरेयः**। **किं** कस्मान्**मे** ममैतदुपतपन**मुपतपसि** स त्वं, हे रोग! **योऽहं** यज्ञो**ऽनेन** त्वत्कृतेनोपतापेन **न प्रेष्यामि** न मरिष्याम्यतो वृथा तव श्रम इत्यर्थः। इत्येवमाह स्मेति पूर्वेण संबन्धः। **स** एवंनिश्चयः सन्**षोडशं वर्षशतमजीवत्**। अन्योऽप्येवंनिश्चयः **षोडशं वर्षशतं प्रजीवति य एवं** यथोक्तं यज्ञसंपादनं **वेद** जानाति स इत्यर्थः।।७।।

इति तृतीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः।।१६।।

(अथ तृतीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः)

स यदशिशिषति यत्पिपासति यन्न रमते ता अस्य दीक्षाः ॥१॥

अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते तदुपसदैरेति ॥२॥

अथ यद्धसति यज्जक्षति यन्मैथुनं चरति स्तुतशस्त्रैरेव तदेति ॥३॥

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिꣳसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः ॥४॥

अक्षयादिफलप्रद आत्मयज्ञोपासना

वह जो पुरुष भोजन करना चाहता है, जो जल पीना चाहता है, तथा जो (इष्ट वस्तु के अभाव में) प्रसन्न नहीं होता; वे ही (दुःख सादृश्य होने के कारण विधियज्ञीय दीक्षा के समान) इसकी दीक्षा है।।१।।

और जो खाता है, जो पीता है तथा (इष्ट वस्तु की प्राप्ति से) जो रति का अनुभव करता है। वह उपसदों के (पयोव्रत से होने वाले सुख की) सदृश्यता को प्राप्त होता है।।२।।

और वह जो हँसता है, जो भक्षण करता है तथा जो मैथुन करता है, वह सब स्तुत शस्त्र की ही समानता को प्राप्त करता है, (क्योंकि शब्द युक्त होना दोनों में समान है)।।३।।

तथा जो तप, दान, सरलता, अहिंसा और सत्य भाषण है, वे ही इसकी दक्षिणा हैं (क्योंकि दक्षिणा के समान ये भी धर्म के पोषक हैं)।।४।।

स यदशिशिषतीत्यादियज्ञसामान्यनिर्देशः पुरुषस्य पूर्वेणैव संबध्यते। यदशिशिषत्यशितुमिच्छति। तथा **पिपासति** पातुमिच्छति। **यन्न रमत** इष्टाद्यप्राप्तिनिमित्तं यदेवंजातीयकं दुःखमनुभवति **ता अस्य दीक्षाः**। दुःखसामान्याद्विधियज्ञस्येव।।१।।

अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते रतिं चानुभवतीष्टादिसंयोगा**त्तदुपसदैः** समानतामे**ति**। उपसदां च पयोव्रतत्वनिमित्तं सुखमस्ति। अल्पभोजनीयानि चाहान्यासन्नानीति प्रश्वासोऽतोऽशनादीनामुपसदां च सामान्यम्।।२।।

अथ यद्धसति यज्जक्षति भक्षयति **यन्मैथुनं चरति स्तुतशस्त्रैरेव त**त्समानतामेति। शब्दवत्त्वसामान्यात्।।३।।

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः। धर्मपुष्टिकरत्वसामान्यात्।।४।।

तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति पुनरुत्पादनमेवास्य तन्मरणमेवावभृथः ॥५॥

तद्धैतद्घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव, सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसꣳशितमसीति, तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः ॥६॥

अतः (प्रसव होने वाली स्त्री के विषय में लोग) कहते हैं कि प्रसूता होगी (और बच्चे के जन्म के बाद) प्रसूता हुई, ऐसा कहते हैं, वही इसका पुनर्जन्म है तथा मरण ही (इस पुरुषयज्ञ का) अवभृथ स्नान है॥५॥

(जिस विद्या के प्रभाव से देवकीपुत्र कृष्ण अन्य विद्याओं के विषय में) तृष्णा हीन हो गया था, उसे आंगिरस गोत्र में उत्पन्न घोर नामा ऋषि ने अपने शिष्य देवकीपुत्र कृष्ण को सुनाकर कहा कि उसे अन्तकाल में इन तीन मन्त्रों का जप करना चाहिये। १-तू अक्षय है। २- तू अविनाशी है। ३- तू अति सूक्ष्म प्राण वाला है। इन्हीं तीन यजुः के विषय में नीचे के ये दो मन्त्र हैं॥६॥

यस्माच्च यज्ञः पुरुषस्**तस्मात्तं** जनयिष्यति माता, यदा तदाऽऽहुरन्ये **सोष्यती**ति तस्य मातरं यदा च प्रसूता भवति तदाऽसोष्ट पूर्णिकेति विधियज्ञ इव सोष्यति सोमं देवदत्तोऽसोष्ट, सोमं यज्ञदत्त इति। अतः शब्दसामान्याद्वा पुरुषो यज्ञः। **पुनरुत्पादनमेवास्य** तत्पुरुषाख्यस्य यज्ञस्य यत्**सोष्यत्यसोष्टेति** शब्दसंबन्धित्वं विधियज्ञस्येव। किंच तन्मरणमेवास्य पुरुषयज्ञस्यावभृथः समाप्तिसामान्यात्॥५॥

तद्धैतद्यज्ञदर्शनं **घोरो** नामत **आङ्गिरसो** गोत्रतः **कृष्णाय देवकीपुत्राय** शिष्या-**योक्त्वोवाच** तदेतत्त्रयमित्यादिव्यवहितेन संबन्धः। **स** चैतद्दर्शनं श्रुत्वा**ऽपिपास एवा**न्याभ्यो विद्याभ्यो **बभूव**। इत्थं च विशिष्टेयं विद्या यत्कृष्णस्य देवकीपुत्रस्यान्यां विद्यां प्रति तृड्विच्छेदकरीति, पुरुषयज्ञविद्यां स्तौति। घोर आङ्गिरसः कृष्णायोक्त्वेमां विद्यां किमुवाचेति, तदाह— **स** एवं यथोक्तयज्ञविदन्तवेलायां मरणकाल **एतन्मन्त्रत्रयं प्रतिपद्ये**त जपेदित्यर्थः। किं **तदक्षितम**क्षीणमक्षतं वाऽसीत्येकं यजुः। सामर्थ्यादादित्यस्थं प्राणं चैकीकृत्याऽऽह। तथा तमेवाऽऽहा**च्युतं** स्वरूपादप्रच्युतम**सीति** द्वितीयं यजुः। **प्राणसंशितं** प्राणश्च स संशितं सम्यक्तनूकृतं च सूक्ष्मं तत्त्वमसीति तृतीयं यजुः। **तत्रै**तस्मिन्नर्थे विद्यास्तुतिपरे **द्वे ऋचौ** मन्त्रौ **भवतो**, न जपार्थे। त्रयं प्रतिपद्येतेति त्रित्वसंख्याबाधनात्। पञ्चसंख्या हि तदा स्यात्॥६॥

आदित्प्रत्नस्य रेतसः। उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरꣳ स्वः पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तममिति ज्योतिरुत्तममिति ।।७।।

इति तृतीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ।।१७।।

(इन दोनों मन्त्रों की) इस प्रकार से योजना करनी चाहिये। आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्। परो यदिध्यते दिवि। दूसरी योजनाः- उद्वयं तमसस्परि, इत्यादि है। जिनका अर्थ यह है, विषयों से निवृत्तचित्त वाले ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म में स्थित परम देदीप्यमान तेज को सब ओर व्याप्त देखते हैं। पुरातन कारण का प्रकाश वे ब्रह्मचारी सर्वत्र देखते हैं, अज्ञान रूप अन्धकार से परे उत्कृष्ट ज्योति को देखते हुए तथा आत्मीय सर्वोत्तम तेज को देखते हुए (ऐसा समझते हैं कि) हम सम्पूर्ण देवों में प्रकाशमान सर्वोत्तम ज्योतिस्वरूप सूर्य को प्राप्त हो गये हैं। 'ज्योतिरुत्तमम्'' इस शब्द की द्विरुक्ति यज्ञ कल्पना की समाप्ति का सूचक है।।७।।

।।इति सप्तदशः खण्डः ।।

आदिदित्यत्राऽऽकारस्यानुबन्धस्तकारोऽनर्थक इच्छब्दश्च। **प्रत्नस्य** चिरंतनस्य पुराणस्येत्यर्थः। **रेतसः** कारणस्य बीजभूतस्य जगतः सदाख्यस्य ज्योतिः प्रकाशं पश्यन्ति। आशब्द उत्सृष्टानुबन्धः पश्यन्तीत्यनेन संबध्यते। किं तज्ज्योतिः पश्यन्ति। वासरमहरहरिव तत्सर्वतो व्याप्तं ब्रह्मणो ज्योतिः। निवृत्तचक्षुषो ब्रह्मविदो ब्रह्मचर्यादिनिवृत्तिसाधनैः शुद्धान्तकरणा आ समन्तो ज्योतिः पश्यन्तीत्यर्थः।

परः परमिति लिङ्गव्यत्ययेन, ज्योतिष्परत्वात्। यदिध्यते दीप्यते दिविद्योतनवति परस्मिन्ब्रह्मणि वर्तमानम्। येन ज्योतिषेद्धः सविता तपति चन्द्रमा भाति विद्युद्विद्योतते ग्रहतारागणा विभासन्ते।

किंचान्यो मन्त्रदृगाह यथोक्तं ज्योतिः पश्यन्। **उद्वयं तमसो**ऽज्ञान-लक्षणात्परिपरस्तादिति शेषः। तमसो वाऽपनेतृ यज्ज्योतिरुत्तरमादित्यस्थं परिपश्यन्तो वयमुदगन्मेति व्यवहितेन संबन्धः तज्ज्योतिः **स्वः** स्वमात्मीयमस्मद्धृदि स्थितम्। आदित्यस्थं च तदेकं ज्योतिः। यदुत्तरमुत्कृष्टतरमूर्ध्वतरं वाऽपरं ज्योतिरपेक्ष्य पश्यन्त उदगन्म वयम्। कमुदगन्मेत्याह। **देवं** द्योतनवन्तं **देवत्रा** देवेषु सर्वेषु **सूर्यं** रसानां रश्मीनां प्राणानां च जगत ईरणात्सूर्यस्तमु**दगन्म** गतवन्तो **ज्योतिरुत्तमं** सर्वज्योतिर्भ्य उत्कृष्टतममहो प्राप्ता वयमित्यर्थः। इदं तज्ज्योतिर्यदृग्भ्यां स्तुतं यद्यजुस्त्रयेण प्रकाशितम्। द्विरभ्यासो यज्ञकल्पनापरिसमाप्त्यर्थः।।७।।

इति तृतीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्ड।।१७।।

(अथ तृतीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः)

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्ममथाधिदैवतमाकाशो ब्रह्मेत्युभयमादिष्टं भवत्यध्यात्मं चाधिदैवतं च ॥१॥

तदेतच्चतुष्पाद्ब्रह्म वाक्पादः प्राणः पादश्चक्षुः पादः श्रोत्रं पाद इत्यध्यात्ममथाधिदैवतमग्निः पादो वायुः पाद आदित्यः

मन आदि प्रतीकों में अध्यात्म और अधिदैव दृष्टि से ब्रह्म की उपासना

'मन ब्रह्म है' ऐसी उपासना करे, यह आत्मविषयक दर्शन है। इसके बाद अब देवताविषयक दर्शन कहते हैं। आकाश ब्रह्म है (ऐसी उपासना करे) इस प्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनों प्रकार की ब्रह्म दृष्टि के विषय में उपदेश किया गया। (मन से ब्रह्म उपलब्ध होता है तथा आकाश सर्वव्यापक सूक्ष्म और उपाधि हीन है, इसीलिये ये दोनों ही ब्रह्म दृष्टि के योग्य हैं)॥१॥

वह यह (मनः संज्ञक) ब्रह्म चार पाद वाला है; वाक् पाद है, प्राण पाद है, नेत्र पाद है और श्रोत्र पाद है। यह अध्यात्म दृष्टि है। अब अधिदैव दृष्टि कहते हैं- अग्नि पाद है, वायु पाद

मनोमय ईश्वर उक्त, आकाशात्मेति च ब्रह्मणो गुणैकदेशत्वेन। अथेदानीं मनआकाशयोः समस्तब्रह्मदृष्टिविधानार्थः आरम्भो, **मनो ब्रह्मे**त्यादि। मनो मनुतेऽनेनेत्यन्तःकरणं तद्ब्रह्म परमि**त्युपासीतेति** एतदात्मविषयं दर्शनम**ध्यात्मम्**। **अथा-धिदैवतं** देवताविषयमिदं वक्ष्यामः। आकाशोब्रह्मेत्युपासीत। एव**मुभयमध्यात्म**मधिदैवतं चोभयं ब्रह्मदृष्टिविषय**मादिष्टमु**पदिष्टं **भवति**। आकाशमनसोः सूक्ष्मत्वात्। मनसोपलभ्यत्वाच्च ब्रह्मणो योग्यं मनो ब्रह्मदृष्टेः। आकाशश्च सर्वगतत्वात्सूक्ष्मत्वादुपाधिहीनत्वाच्च॥१॥

तदेतन्मनआख्यं चतुष्पाद्ब्रह्म, चत्वारः पादा अस्येति। कथं चतुष्पात्त्वं मनसो ब्रह्मण, इत्याह— **वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमि**त्येते पादा **इत्यध्यात्मम्**। **अथाधिदैवतमा**काशस्य ब्रह्मणो**ऽग्निर्वायुरादित्यो दिश इत्ये**ते। एव**मुभयमेव** चतुष्पाद्ब्रह्माऽऽ**दिष्टं भवत्यध्यात्मं चैवाधिदैवतं च**। तत्र वाग्, मनसो ब्रह्मणः पादः।

पादो दिशः पाद इत्युभयमेवाऽऽदिष्टं भवत्यध्यात्मं चैवाधिदैवतं च ॥२॥

वागेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः, सोऽग्निना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥३॥

है, आदित्य पाद है और दिशाएं पाद हैं। इस प्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनों प्रकार के चतुष्पाद ब्रह्म का उपदेश किया गया है॥२॥

वाणी ही मन रूप ब्रह्म का चतुर्थ पाद है, वह अग्नि रूप ज्योति से प्रदीप्त होता और उष्णता भी करता है। जो इस प्रकार से इनकी उपासना करता है; वह कीर्ति, यश और ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता है और तपता भी है॥३॥

प्राण ही मन रूप ब्रह्म का चतुर्थ पाद है, वह वायु रूप ज्योति से गन्ध को ग्रहण के लिये प्रकाशित होता है और उत्साहित भी होता है। जो ऐसी उपासना करता है, वह कीर्ति (प्रत्यक्ष

वाचा हि पादेनेव गवादि वक्तव्यविषयं प्रति तिष्ठति। अतो मनसः पाद इव वाक्। तथा प्राणो घ्राणः पादः। तेनापि गन्धविषयं प्रति च क्रामति। तथा चक्षुः पादः श्रोत्रं पाद इत्येवमध्यात्मं चतुष्पात्त्वं मनसो ब्रह्मणः। अथाधि-दैवतमग्निवाय्वादित्यदिश आकाशस्य ब्रह्मण उदरे इव गोः पादा विलग्ना उपलभ्यन्ते। तेन तस्याऽऽकाशस्याग्न्यादयः पादा उच्यन्ते। एवमुभयमध्यात्मं चैवाधिदैवतं च चतुष्पादादिष्टं भवति॥२॥

तत्र **वागेव** मनसो **ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः**। **सोऽग्निना**ऽधिदैवतेन **ज्योतिषा भाति च** दीप्यते **तपति च** संतापं चौष्ण्यं करोति। अथवा तैलघृताद्याग्नेयाशनेनेद्धा वाग्भाति च तपति च वदनायोत्साहवती स्यादित्यर्थः। विद्वत्फलं **भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं** यथोक्तं **वेद**॥३॥

तथा **प्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः**। **स वायुना** गन्धाय **भाति च तपति**

सोचिय यति प्रपञ्च रती - विगत विवेक विराग,
वाङ्वरतु बिनु श्रद्धा विचारु वसन बिनु भूषण भाग.

प्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः, स वायुना ज्योतिषा भाति च तपति च, भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ।।४।।

चक्षुरेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स आदित्येन ज्योतिषा भाति च तपति च, भाति च तपति च, कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ।।५।।

श्रोत्रमेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः, स दिग्भिर्ज्योतिषा भाति च तपति च, भाति च तपति च, कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद य एवं वेद।।६।।

इति तृतीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः।।१८।।

प्रशंसा) और ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता है और तपता भी है।।४।।

मन नामक ब्रह्म का चतुर्थ पाद नेत्र ही है। वह आदित्यरूप ज्योति से रूप ग्रहण के लिये प्रकाशित होता है और उत्साहित होता है। जो इस प्रकार जानता है, वह कीर्ति, यश तथा ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता है और तपता भी है।।५।।

मनोरूप ब्रह्म का श्रोत ही चतुर्थ पाद है, वह दिशारूप तेज से शब्द ग्रहण के लिये प्रकाशित होता है और उत्साहित भी होता है। जो ऐसी उपासना करता है वह कीर्ति, यश व ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता और तपता भी है। द्विरुक्ति विद्या की समाप्ति का सूचक है।।६।।

।। इत्यष्टादशः खण्डः ।।

च। तथा **चक्षुरादित्येन** रूपग्रहणाय, श्रोत्रं दिग्भिः शब्दग्रहणाय। विद्याफलं समानं सर्वत्र ब्रह्मसंपत्तिरदृष्टं फलं, **य एवं वेद**। द्विरुक्तिर्दर्शनसमाप्त्यर्था।।४।।५।।६।।

इति तृतीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः।।१८।।

* (अथ तृतीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः)

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानमसदेवेदमग्र आसीत्। तत्सदासीत्तत्समभवत्तदाण्डं निरवर्तत तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत तन्निरभिद्यत ते आण्डकपाले रजतं च सुवर्णं चाभवताम् ॥१॥

आदित्य और अण्ड दृष्टि से अध्यात्म तथा आधिदैविक उपासना

'आदित्य ब्रह्म है' ऐसा आदेश है; उसी की व्याख्या की जाती है। (उत्पत्ति से पूर्व यह नामरूपात्मक) जगत् असत् ही था, वह सत् यानी कार्याभिमुख हुआ। वह अंकुरित (हुए बीज के समान) हो गया। क्रमशः स्थूल होता हुआ जल से अण्डे के रूप में परिणत हो गया। वह एक वर्ष तक वैसा ही पड़ा रहा। तत्पश्चात् (वह पक्षियों के अण्डे के समान) फूट गया। वे दोनों अण्डों के खण्ड रजत तथा स्वर्ण रूप हो गये ॥१॥

आदित्यो ब्रह्मणः पाद उक्त इति तस्मिन्सकलब्रह्मदृष्ट्यर्थमिदमारभ्यते—

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेश उपदेशस्**तस्योपव्याख्यानं** क्रियते स्तुत्यर्थम्। **असद**व्याकृतनामरूप**मिदं** जगदशेष**मग्रे** प्रागवस्थायामुत्पत्ते**रासीन्न** त्वसदेव। कथमसतः सज्जायेतेत्यसत्कार्यत्वस्य प्रतिषेधात्। नन्विहासदेवेति विधानाद्विकल्पः स्यात्। न, क्रियास्विव वस्तुनि विकल्पानुपपत्तेः। कथं तर्हीदमसदेवेति। नन्ववोचामाव्याकृतनामरूपत्वादसदिवासदिति। नन्वेवशब्दोऽवधारणार्थः। सत्यमेवं, न तु सत्त्वाभावमवधारयति। किं तर्हि नामरूपव्याकृतविषये सच्छब्दप्रयोगो दृष्टः। तच्च नामरूपव्याकरणमादित्यायत्तं प्रायशो जगतः। तदभावे ह्यन्धं तम इदं न प्रज्ञायेत किंचनेत्यतस्तत्स्तुतिपरे वाक्ये सदपीदं प्रागुत्पत्तेर्जगदसदेवेत्यादित्यं स्तौति ब्रह्मदृष्ट्यर्हत्वाय। आदित्यनिमित्तो हि लोके सदिति व्यवहारः। यथाऽसदेवेदं राजकुलं सर्वगुणसंपन्ने पूर्णवर्मणि राजन्यसतीति तद्वत्। न च सत्त्वमसत्त्वं वेह जगतः प्रतिपिपादयिषितमादित्यो ब्रह्मेत्यादेशपरत्वात्। उपसंहरिष्यत्यन्ते आदित्यं ब्रह्मेत्युपास्त इति।

तत्सदासीत्तदसच्छब्दवाच्यं प्रागुत्पत्तेः स्तिमितमनिस्पन्दमसदिव सत्कार्याभिमुखमीषदुपजातप्रवृत्ति सदासीत्ततो लब्धपरिस्पन्दं **तत्समभवद**ल्पतरनामरूपव्याकरणेनाङ्कुरीभूतमिव बीजम्। ततोऽपि क्रमेण स्थूलीभव**त्तद**द्भ्य **आण्डं** समवर्तत संवृत्तम्। आण्डमिति दैर्घ्यं छान्दसम्। **तद**ण्डं **संवत्सरस्य** कालस्य प्रसिद्धस्य **मात्रां** परिमाणमभिन्नस्वरूपमेवा**शयत** स्थितं बभूव। ततः संवत्सरपरिमाणात्कालादूर्ध्वं **निरभिद्यत** निर्भिन्नं वयसामिवाण्डम्। तस्य निर्भिन्नस्**याण्डस्य कपाले** द्वे **रजतं च सुवर्णं चाभवतां** संवृत्ते ॥१॥

तद्यद्रजतꣳ सेयं पृथिवी यत्सुवर्णꣳ सा द्यौर्यज्जरायु ते पर्वता यदुल्बꣳ समेघो नीहारो या धमनयस्ता नद्यो यद्वास्तेयमुदकꣳ स समुद्रः॥२॥

अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्त्सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामास्तस्मात्तस्योदयं प्रति प्रत्यायनं प्रति घोषा उलूलवोऽनूत्तिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः॥३॥

उनमें जो रजतमय खण्ड था, वही वह पृथिवी (रूप से उपलक्षित नीचे का भाग) है और जो स्वर्णमय खण्ड था, वह द्युलोक है। उस अण्डे का जो स्थूल गर्भ वेष्टन था, वह पर्वत समूह हुआ। जो सूक्ष्म गर्भ वेष्टन था, वह मेघों के सहित कुहरा हुआ। जो उत्पन्न हुए गर्भस्थ शरीर में रक्त वाहिनी नाड़ियाँ थीं, वे नदियाँ हुईं और जो उसके मूत्राशय में जल था, वह समुद्र हुआ॥ २॥

फिर गर्भ से जो उत्पन्न हुआ, वह यह आदित्य है। उस आदित्य के उत्पन्न होने पर सुदूर व्यापी शब्द उत्पन्न हुआ तथा उसी से सभी स्थावर जंगम जीव और उसके अन्न-वस्त्रादि विषय भोग उत्पन्न हुए। इसीलिये आज भी सूर्यदेव उदय और अस्त होने पर (सम्पूर्ण भूत और सारे भोग) घोष शब्द युक्त उत्पन्न होते हैं॥ ३॥

तत्तयोः कपालयो**र्यद्रजतं** कपालमासीत्**सेयं पृथिवी** पृथिव्युपलक्षितमधोऽण्डकपालमित्यर्थः। यत्सुवर्णं कपालं **सा द्यौर्द्यु**लोकोपलक्षितमूर्ध्वं कपालमित्यर्थः। **यज्जरायु** गर्भपरिवेष्टनं स्थूलमण्डस्य द्विशकलीभावकाले आसीत्ते **पर्वता** बभूवुः। **यदुल्बं** गर्भपरिवेष्टनं तत्सह मेघैः समेघो नीहारोऽवश्यायो बभूवेत्यर्थः। **या** गर्भस्य जातस्य देहे **धमनयः** शिरास्ता **नद्यो बभूवुः**। यत्तस्य वस्तौ भवं **वास्तेयमुदकं स समुद्रः**॥२॥

अथ यत्तदजायत गर्भरूपं तस्मिन्नण्डे **सोऽसावादित्यस्त**मादित्यं **जायमान**मनुघोषाः शब्दा उलूलव उरूरवो विस्तीर्णरवा उदतिष्ठन्नुत्थितवन्त, ईश्वरस्येवेह प्रथमपुत्रजन्मनि **सर्वाणि च** स्थावरजङ्गमानि **भूतानि सर्वे च** तेषां भूतानां **कामाः** काम्यन्त इति विषयाः स्त्रीवस्त्रान्नादयः यस्मादादित्यजन्मनिमित्ता भूतकामोत्पत्ति**स्तस्माद**द्यत्वेऽपि **तस्या**ऽऽदित्यस्यो**दयं प्रति प्रत्यायनं** प्रत्यस्तगमनं च प्रत्यथवा पुनः पुनः प्रत्यागमनं प्रत्यायनं तत्प्रति तन्निमित्तीकृत्येत्यर्थः। सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा घोषा उलूलवश्चानूत्तिष्ठन्ति। प्रसिद्धं ह्येतदुदयादौ सवितुः॥३॥

स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳ साधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन् ।।४।।

इति तृतीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ।।१९।।

इति च्छान्दोग्योपनिषद्ब्राह्मणे तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।।३।।

वह जो भी कोई ऐसे महिमा वाले आदित्य को इस प्रकार जानने वाला ब्रह्म समझकर उपासना करता है (वह उस उपासना से आदित्य स्वरूप ही हो जाता है तथा) उस उपासक के समीप शीघ्र ही सुन्दर घोष आ जाते हैं और उसे सुख भी देते हैं। द्विरुक्ति अध्याय समाप्ति और आदर के लिये है।।४।।

इस प्रकार छान्दोग्योपनिषत् तृतीय अध्याय की श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीकैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्यमहामण्डलेश्वर श्रीमत्स्वामी विद्यानन्द गिरि जी कृत मिताक्षराहिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।१।।

।। इति तृतीयाध्यायः एकोनविंशः खण्डः ।।

स यः कश्चि**देतमेवं** यथोक्तमहिमानं विद्वान्सन्नादित्यं ब्रह्मेत्युपास्ते स तद्भावं प्रतिपद्यते इत्यर्थः। किंच दृष्टं फलम**भ्याशः** क्षिप्रं तद्विदो यदिति क्रियाविशेषणमेनमेवंविदं **साधवः** शोभना **घोषाः**। साधुत्वं घोषादीनां यदुपभोगे पापानुबन्धाभावः। **आ च गच्छेयु**रागच्छेयुश्**चोप** च **निम्रेडेरन्नु**प**निम्रेडेरं**श्च न केवलमागमनमात्रं घोषाणामुपसुखयेयुश्चोपसुखं च कुर्युरित्यर्थः। द्विरभ्यासोऽध्यायपरिसमाप्त्यर्थः आदरार्थश्च।।४।।

।। इति षष्ठाह्निकम्।।६।।

इति तृतीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः।।१९।।

इति श्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे तृतीयोऽध्यायः सम्पाप्तः।।३।।

चतुर्थोऽध्याय:

(अथ चतुर्थाध्यायस्य प्रथम: खण्ड:)

ॐ। जानश्रुतिर्ह पौत्रायण: श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस स ह सर्वत आवसथान्मापयाञ्चक्रे सर्वत एव मेऽत्स्यन्तीति ।।१।।

अथ ह हꣳसा निशायामतिपेतुस्तद्धैवꣳ हꣳसो हꣳसम-

राजा जानश्रुति और रैक्व की कथा

जनश्रुत के कुल में उत्पन्न उसका पोता ब्राह्मणों को श्रद्धापूर्वक देने वाला बहुत दानी स्वभाव और भोजनार्थियों के लिये बहुत सा अन्न पकाने वाला प्रसिद्ध राजा था। सभी स्थानों पर लोग मेरा ही अन्न खायेंगे, इस अभिप्राय से जानश्रुति राजा ने सभी दिशाओं में अनेक धर्मशालाएं बनवा रखी थीं।।१।।

उसी समय रात्रि में उधर से हंस उड़ गये (अर्थात् उसके अन्न दान से संतुष्ट हो देवता लोग हंस रूप धारण कर राजा के दृष्टिगोचर हुए)। उनमें से एक हंस ने उड़ते हुए दूसरे हंस से कहा-

---

वायुप्राणयोर्ब्रह्मण: पाददृष्ट्यध्यास: पुरस्ताद्वर्णित:। अथेदानीं तयो: साक्षाद्ब्रह्मत्वेनोपास्यत्वायोत्तरमारभ्यते। सुखावबोधार्थाऽऽख्यायिका विद्यादानग्रहणविधिप्रदर्शनार्था च। श्रद्धान्नदानानुद्धतत्वादीनां च विद्याप्राप्तिसाधनत्वं प्रदर्श्यते आख्यायिकया—

जानश्रुतिर्जनश्रुतस्यापत्यम्। **ह** ऐतिह्यार्थ:। पुत्रस्य पौत्र: **पौत्रायण:** स एव **श्रद्धादेय:** श्रद्धापुर:सरमेव ब्राह्मणादिभ्यो देयमस्येति श्रद्धादेय:। **बहुदायी** प्रभूतं दातुं शीलमस्येति बहुदायी। **बहुपाक्यो** बहु पक्तव्यमहन्यहनि गृहे यस्यासौ बहुपाक्य:। भोजनार्थिभ्यो बह्वस्य गृहेऽन्नं पच्यते इत्यर्थ:। एवंगुणसंपन्नोऽसौ जानश्रुति: पौत्रायणो विशिष्टे देशे काले च कस्मिंश्चि**दास** बभूव। **स ह सर्वत:** सर्वासु दिक्षु ग्रामेषु नगरेषु चा**ऽऽवसथाने**त्य वसन्ति येष्वित्यावसथास्तान्**मापयांचक्रे** कारितवानित्यर्थ:। **सर्वत एव मे** ममान्नं तेष्वावसथेषु वसन्तो**ऽत्स्यन्ति** भोक्ष्यन्ते इत्येवमभिप्राय:।।१।।

तत्रैवं सति राजनि तस्मिन्घर्मकाले हर्म्यतलस्थे**ऽथ ह हंसा निशायां** रात्रा**वतिपेतु:**। ऋषयो देवता वा राज्ञोऽन्नदानगुणैस्तोषिता: सन्तो हंसरूपा भूत्वा

भ्युवाद हो होऽयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवाज्योतिराततं तन्मा प्रसाङ्क्षीस्तत्त्वा मा प्रधाक्षीरिति ।।२।।

तमु ह परः प्रत्युवाच कम्वर एनमेतत्सन्तꣳसयुग्वानमिव रैक्वमात्थेति यो नु कथꣳ सयुग्वा रैक्व इति ।।३।।

अरे ओ भल्लाक्ष! जानश्रुति पौत्रायण की अन्नदान जनित प्रभाव से उत्पन्न हुई कान्ति द्युलोक में समान फैली हुई है। तू उसका स्पर्श न कर, कदाचित् वह ज्योति तुझे भस्म न कर डाले।।२।।

आगे चलने वाले दूसरे हंस ने उस हंस से कहा- तू किस महत्त्व से युक्त रहने वाले इस राजा के प्रति इस प्रकार सम्मानित वचन कह रहा है। यह बेचारा राजा तो अत्यन्त तुच्छ है, ऐसा कह कर उसका अनादर करता है) क्या तू इसे गाड़ी वाले रैक्व के समान बतलाता है। ऐसा कहने वाले उस भल्लाक्ष से पिछले हंस ने पूछा- जिसके विषय में तुम कह रहे हो वह गाड़ी वाला रैक्व कैसा है?।।३।।

राज्ञो दर्शनगोचरेऽतिपेतुः पतितवन्तः। **तत्त**स्मिन्काले तेषां पततां हंसानामेकः पृष्ठतः पतन्नग्रतः पतन्तं **हंसमभ्युवादा**भ्युक्तवान्**हो होऽयी**ति भो भो इति संबोध्य **भल्लाक्ष भल्लाक्षे**त्यादरं दर्शयन्यथा पश्य पश्याऽऽश्चर्यमिति तद्वत्। भल्लाक्षेति मन्ददृष्टित्वं सूचयन्नाह। अथवा सम्यग्ब्रह्मदर्शनाभिमानवत्त्वात्तस्यासकृदुपालब्धस्तेन पीड्यमानोऽमर्षितया तत्सूचयति भल्लाक्षेति। जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं तुल्यं **दिवा** द्युलोकेन **ज्योतिः** प्रभास्वरमन्नदानादिजनितप्रभावज**माततं** व्याप्तं द्युलोकस्पृगित्यर्थः। दिवाऽह्ना वा समं ज्योतिरित्येतत्। **तन्मा प्रसाङ्क्षीः** सञ्जनं सक्तिं तेन ज्योतिषा संबन्धं मा कार्षीरित्यर्थः। तत्प्रसञ्जनेन **तज्ज्योतिस्त्वा** त्वां **मा प्रधाक्षी**र्मा दहत्वित्यर्थः। पुरुषव्यत्ययेन मा प्रधाक्षी**दिति**।।२।।

तमेवमुक्तवन्तं **पर** इतरोऽग्रगामी **प्रत्युवाचा**रे निकृष्टोऽयं राजा वराकस्तं **कमु एनं सन्तं** केन माहात्म्येन युक्तं सन्तमिति कुत्सयत्येनमेवं सबहुमानमेतद्वचनमात्थ रैक्व**मिव सयुग्वानं** सह युग्वना गन्त्र्या वर्तत इति **सयुग्वा रैक्वः**। तमिवाऽऽत्थैनम्। अननुरूपमस्मिन्नयुक्तमीदृशं वक्तुं रैक्व इवेत्यभिप्रायः। इतरश्चाऽऽह। **यो नु कथं** त्वयोच्यते **सयुग्वा रैक्व** इत्युक्तवन्तं भल्लाक्ष आह शृणु यथा स रैक्वः।।३।।

यथा कृताय विजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳ सर्वं तदभिसमैति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥४॥

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव स ह संजिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारे ह सयुग्वानमिव रैक्वमात्थेति यो नु कथꣳ

जिस प्रकार (लोक में द्यूतक्रीडा के समय) कृतनामक पासे से विजय प्राप्त करने वाले पुरुष के अधीन शेष तीन पासे हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रजा जो कुछ भी सत्कर्म करती है वह सब उस कृत स्थानीय उस रैक्व को प्राप्त हो जाता है। वह रैक्व जिस बात को जानता है उसे जो कोई भी जानता है उसके विषय में भी मैंने फल बतला दिया- (अर्थात् रैक्व के समान ही वह भी कृतनामक पासे के सदृश हो जाता है) ।।४।।

महल के ऊपर भाग में बैठा हुआ जानश्रुति पौत्रायण ने (अपनी निन्दा रूप और रैक्व आदि की प्रशंसा रूप) इस बात को सुन लिया। हंस की इस बात का स्मरण करते हुए दूसरे दिन

यथा लोके कृतायः कृतो नामायो द्यूतसमये प्रसिद्धश्चतुरङ्कः स यदा जयति द्यूते प्रवृत्तानां तस्मै विजिताय तदर्थमितरे त्रिद्व्येकाङ्का **अधरेया**-स्त्रेताद्वापरकलिनामानः **संयन्ति** संगच्छन्तेऽन्तर्भवन्ति। चतुरङ्के कृताये त्रिद्व्येकाङ्कानां विद्यमानत्वात्तदन्तर्भवन्तीत्यर्थः। यथाऽयं दृष्टान्त एवमेनं रैक्वं कृतायस्थानीयं त्रेताद्ययस्थानीयं **सर्वं तदभिसमैत्य**न्तर्भवति रैक्वे। किं तद्**यत्किंच** लोके सर्वाः **प्रजाः साधु** शोभनं धर्मजातं **कुर्वन्ति** तत्सर्वं रैक्वस्य धर्मेऽन्तर्भवति। तस्य च फले सर्वप्राणिधर्मफलमन्तर्भवतीत्यर्थः। तथाऽन्योऽपि कश्चि**द्यस्तद्वे**द्यं **वेद**। किं **तद्य**द्वेद्यं **स** रैक्वो **वेद**। तद्वेद्यमन्योऽपि यो वेद तमपि सर्वप्राणिधर्मजातं च रैक्वमिवाभिसमैतीत्यनुवर्तते। स एवंभूतो मया विद्वा**नेतदुक्त** एवमुक्तो, रैक्ववत्स एव कृतायस्थानीयो भवतीत्यभिप्रायः।।४।।

तदु ह तदेतदीदृशं हंसवाक्यमात्मनः कुत्सारूपमन्यस्य विदुषो रैक्वादेः प्रशंसारूपमुपशुश्राव श्रुतवान्हर्म्यतलस्थो राजा **जानश्रुतिः पौत्रायणः**। तच्च हंसवाक्यं

सयुग्वा रैक्व इति ॥५॥ धरती में रहने वाले सभी का पुण्य मिलता .

पाशा का चार पहलू होता है **यथा कृताय विजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳ सर्वं तदभिसमैति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥६॥**

स ह क्षत्ताऽन्विष्य नाविदमिति प्रत्येयाय तꣳ होवाच यत्रारे ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमर्छेति ॥७॥ ब्रह्मविद: एकान्ते, नदीपुलीने, विविक्ते देशे

प्रातःकाल) निद्रा से उठते ही राजा ने सेवक से कहा- अरे भाई! तू मुझे गाड़ी वाले रैक्व के समान बतला रहा है (रैक्व को जानने की आकांक्षा राजा के मन में है ऐसा समझकर सेवक ने कहा) जो गाड़ी वाला रैक्व है वह कैसा है।।५।।६।।

वह सेवक उस रैक्व की खोज करने के बाद ''मैंने रैक्व को नहीं जाना, नहीं पहिचाना' ऐसा कहता हुआ वापिस लौटा। तब राजा ने सेवक से कहा- अरे! जिस निर्जन स्थान में ब्रह्मवेत्ताओं की खोज की जाती है, वहां इस रैक्व के पास जा और उसे पूछ।।७।।

स्मरन्नेव पौनःपुन्येन रात्रिशेषमतिवाहयामास। ततः **स** बन्दिभी राजा स्तुतियुक्ताभिर्वाग्भिः प्रतिबोध्यमान **उवाच क्षत्तारं संजिहान एव** शयनं निद्रां वा परित्यजन्नेव। हेऽङ्ग वत्सारे **ह सयुग्वानमिव रैक्वमात्थ** किं माम्? स एव स्तुत्यर्हो नाहमित्यभिप्रायः। अथवा सयुग्वानं रैक्वमात्थ गत्वा मम तद्दिदृक्षां, तदेवशब्दोऽवधारणार्थोऽनर्थको वा वाच्यः। स च क्षत्ता प्रत्युवाच रैक्वानयनकामो राज्ञोऽभिप्रायज्ञो **यो नु कथं सयुग्वा रैक्व इति**, राज्ञैवं चोक्त आनेतुं तच्चिह्नं ज्ञातुमिच्छन्यो नु कथं सयुग्वा रैक्व इत्यवोचत्। स च भल्लाक्षवचनमेवावोचत्।।५।।६।।

तस्य स्मरन्**स ह क्षत्ता** नगरं ग्रामं वा गत्वा**ऽन्विष्य** रैक्वं **नाविदं** न व्यज्ञासिष**मिति प्रत्येयाय** प्रत्यागतवान्। **तं होवाच** क्षत्तारमरे **यत्र ब्राह्मणस्य** ब्रह्मविदः एकान्तेऽरण्ये नदीपुलिनादौ विविक्ते देशे**ऽन्वेषणा**ऽनुमार्गणं भवति, **तत्त्रैनं** रैक्व**मर्छ** ऋच्छ गच्छ तत्र मार्गणं कुर्वित्यर्थः।।७।।

सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कषमाणमुपोपविवेश तꣳ हाभ्युवाद त्वं नु भगवः सयुग्वा रैक्व इत्यहꣳ ह्यरा ३ इति ह प्रतिजज्ञे स ह क्षत्ताऽविदमिति प्रत्येयाय ।।८।।

इति चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।।१।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः)

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायणः षट्शतानि गवां निष्कमश्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे तꣳ हाभ्युवाद ।।१।।

सेवक ने एक गाड़ी के नीचे खाज खुजलाते हुए रैक्व को देखा और वह उसके पास नम्रतापूर्वक बैठ गया। बोला- हे भगवान्! क्या गाड़ी वाले रैक्व आप ही हैं? उस पर रैक्व ने कहा- अरे हाँ! मैं ही हूँ। तब सेवक यह समझ कर लौट आया कि अब मैंने रैक्व को पहिचान लिया।।८।।

।।इति प्रथमः खण्डः ।।

रैक्व के पास विधिपूर्वक जानश्रुति की उपसत्ति

तब वह पौत्रायण जानश्रुति राजा (उनके अभिप्राय को जानकर) छः सौ गौएं, एक गले का हार और दो खच्चरियों से जुता हुआ एक रथ लेकर उन रैक्व के पास आया एवं उनसे कहा।।१।।

इत्युक्तः क्षत्ताऽन्विष्य तं विजने देशे**ऽधस्ताच्छकटस्य** गन्त्र्याः **पामानं** खर्जूं **कषमाणं** कण्डूयमानं दृष्ट्वाऽयं नूनं सयुग्वा रैक्व इत्यु**प** समीप **उपविवेश** विनयेनोपविष्टवान्। **तं** च रैक्वं **हाभ्युवादो**क्तवान्। **त्व**मसि **हे भगवो**, भगव**न्सयुग्वा रैक्व इति**। एवं पृष्टोऽहमस्मि **ह्यरा ३** अरे इति हानादरे एव **प्रतिजज्ञे**ऽभ्युपगतवान्। **स** तं विज्ञाया**विदं** विज्ञातवानस्मीति **प्रत्येयाय** प्रत्यागत इत्यर्थः।।८।।

इति चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः खण्डः।।१।।

तत्तत्र ऋषेर्गार्हस्थ्यं प्रत्यभिप्रायं बुद्ध्वा धनार्थितां **चो ह**, एव **जानश्रुतिः पौत्रायणः षट्शतानि गवां निष्कं** कण्ठहार**मश्वतरीरथम**श्वतरीभ्यां युक्तं रथं **तदादाय** धनं गृहीत्वा **प्रतिचक्रमे** रैक्वं प्रतिगतवान्। **तं** च गत्वा**ऽभ्युवाद** हाभ्युक्तवान्।।१।।

रैक्वेमानि षट्शतानि गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथोऽनु एतां भगवो देवताꣳ शाधि यां देवतामुपास्स इति ।।२।।

तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र तवैव सह गोभिरस्त्विति तदु ह पुनरेव जानश्रुतिः पौत्रायणः सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं, तदादाय प्रतिचक्रमे ।।३।।

हे रैक्व! मैं (आपके लिये) ये छः सौ गौएं यह हार और खच्चरियों से जुता हुआ रथ भी लाया हूँ। (इस धन को आप स्वीकार करें और) हे भगवन्! मुझे उस देवता का उपदेश करें जिसकी आप स्वयं उपासना करते हैं।। २।।

उस राजा से रैक्व ने कहा- हे शूद्र! गौओं के सहित यह हार और रथ तेरे पास ही रहे- (अर्थात् मेरी आवश्यकता के लिये यह पर्याप्त नहीं है) तत्पश्चात् फिर से वह जानश्रुति पौत्रायण एक सहस्र गौएं, एक हार, खच्चरियों से जुता हुआ रथ तथा (ऋषि की अभीष्ट पत्नीरूप अपनी एक) कन्या लेकर उस रैक्व के पास गया।। ३।।

हे रैक्व गवां षट् शतानीमानि तुभ्यं मयाऽऽनीतान्ययं निष्कोऽश्वतरीरथश्चायमेतद्धनमादत्स्व **भगवोऽनुशाधि** च मे **मामेतां यां च देवतां** त्व**मुपास्से** तद्देवतोपदेशेन मामनुशाधीत्यर्थः।।२।।

तमेवमुक्तवन्तं राजानं **प्रत्युवाच** परो रैक्वः। **अहे**त्ययं निपातो विनिग्रहार्थीयोऽन्यत्रेह त्वनर्थकः। एवशब्दस्य पृथक्प्रयोगात्। हारेत्वा हारेण युक्ता गन्त्री सेयं हारेत्वा **गोभिः सह तवैवास्तु तवैव** तिष्ठतु न ममापर्याप्तेन कर्मार्थमनेन प्रयोजनमित्यभिप्रायो हे **शूद्रे**ति। ननु राजाऽसौ क्षत्तृसंबन्धात्स ह क्षत्तारमुवाचेत्युक्तम्। विद्याग्रहणाय च ब्राह्मणसमीपोपगमाच्छूद्रस्य चानधिकारात्कथमिदमननुरूपं रैक्वेणोच्यते, हे शूद्रेति! तत्राऽऽहुराचार्याः— हंसवचनश्रवणाच्छुगेनमाविवेश। तेनासौ शुचा श्रुत्वा रैक्वस्य महिमानं वा द्रवतीति ऋषिरात्मनः परोक्षज्ञतां दर्शयञ्शूद्रेत्याहेति। शूद्रवद्वा धनेनैवैनं विद्याग्रहणायोपजगाम न च शुश्रूषया। न तु जात्यैव शूद्र इति। अपरे पुनराहुरल्पं धनमाहृतमिति रुषैवैनमुक्तवाञ्छूद्रेति। लिङ्गं च बह्वाहरण उपादानं धनस्येति। **तदु** हर्षेर्मतं ज्ञात्वा **पुनरेव जानश्रुतिः पौत्रायणो गवां सहस्रम**धिकं जायां चर्षेरभिमतां **दुहितरमा**त्मन**स्तदादाय प्रतिचक्रमे** क्रान्तवान्।।३।।

तꣳ हाभ्युवाद रैक्वेदꣳ सहस्रं गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथ इयं जायाऽयं ग्रामो यस्मिन्नास्सेऽन्वेव मा भगवः शाधीति ।।४।।

तस्या ह मुखमुपोद्गृहणन्नुवाचाऽऽजहारेमाः शूद्रानेनैव मुखेनाऽऽलापयिष्यथा इति ते हैते रैक्वपर्णा नाम महावृषेषु यत्रास्मा उवास तस्मै होवाच ।।५।।

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।।२।।

यह हार और यह खच्चरियों से युक्त रथ, यह आपकी भार्या होने के लिये अपनी कन्या और यह ग्राम जिसमें आप रहते हैं; इन सबको आप स्वीकार करें और हे भगवन्! मुझे अवश्य ही उपदेश करें।।४।।

तब रैक्व ने उस विद्या के ग्रहण करने के मुख (विद्या ग्रहण द्वार) को समझते हुए कहा- अरे शूद्र! तू जो ये गौएं आदि लाया है (वह उचित ही है) इस विद्या ग्रहण माध्यम से तू मुझसे सम्भाषण कराता है, वे ये रैक्व पर्ण नाम से प्रसिद्ध ग्राम महावृषदेश में है जहाँ वह रैक्व रहा करता था। इस प्रकार भेंट स्वीकार कर उस राजा को रैक्व ने उपदेश किया।।५।।

।।इति द्वितीयः खण्डः ।।

रैक्वेदं गवां सहस्रमयं निष्कोऽयमश्वतरीरथ इयं जायार्थं मम दुहिताऽऽनीताऽ**यं** च **ग्रामो यस्मिन्नास्से** तिष्ठसि स च त्वदर्थे मया कल्पितः। तदेतत्सर्वमादायानुशाध्येव **मा** मां हे **भगव** इत्युक्तस्तस्या जायार्थमानीताया राज्ञो दुहितुर्हैव मुखं द्वारं विद्याया दाने तीर्थमुपोद्गृहणञ्जानन्नित्यर्थः।

''**ब्रह्मचारी, धनदायी, मेधावी, श्रोत्रियः, प्रियः।**
'विद्यया वा विद्यां प्राह तानि तीर्थानि षण्मम''।। ६

इति विद्याया वचनं विज्ञायते हि। एवं जानन्**नुपोद्गृहणन्नुवाचो**क्तवान्। **आजहारा**ऽऽहृतवान्भवान्य**दिमा** गा यच्चान्यद्धनं तत्साध्विति वाक्यशेषः। शूद्रेति पूर्वोक्तानुकृतिमात्रं न तु कारणान्तरापेक्षया पूर्ववत्। **अनेनैव मुखेन** विद्याग्रहणतीर्थेना**ऽऽलापयिष्यथा** आलापयसीति मां भाणयसीत्यर्थः। **ते हैते** ग्रामा **रैक्वपर्णा नाम** विख्याता **महावृषेषु** देशेषु **यत्र** येषु ग्रामेषूवासोषितवान्रैक्वस्तानसौ ग्रामानदादस्मै रैक्वाय राजा। **तस्मै** राज्ञे धनं दत्तवते **ह** किलो**वाच** विद्यां स रैक्वः।।४।।५।।

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।।२।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खण्डः)

वायुर्वाव संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति यदा चन्द्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति ।।१।।

यदाऽऽप उच्छुष्यन्ति वायुमेवापियन्ति वायुर्ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इत्यधिदैवतम् ।।२।।

संवर्ग विद्या का उपदेश

वह बाह्य वायु ही संवर्ग है, क्योंकि जब अग्नि बुझता है तो वायु में ही लीन होता है, तथा जब सूर्य अस्त होता है तब वायु में लीन होता है और चब चन्द्रमा अस्त होता है तब वायु में ही लीन होता है (चन्द्र-सूर्यादि ग्रह वायु से ही गति शील होकर अस्त होते हैं। इसलिये इनका वायु में विलय माना गया है)।। १।।

जब जल सूखता है तो वह वायु में ही लीन होता है और वायु ही इन अग्नि आदि महाशक्ति शाली तत्त्वों को अपने में लीन करता है। (अतः संवर्ग गुण दृष्टि से वायु की उपासना करनी चाहिये) इस प्रकार देवताओं में संवर्ग दृष्टि कही गयी।। २।।

वायुर्वाव संवर्गो वायुर्बाह्यो वावेत्यवधारणार्थः संवर्गः संवर्जनात्संग्रहणात्संग्रसनाद्वा संवर्गः। वक्ष्यमाणा अग्न्याद्या देवता आत्मभावमापादयतीत्यतः संवर्गः। संवर्जनाख्यो गुणो ध्येयो वायुवत्। कृतायान्तर्भावदृष्टान्तात्। कथं संवर्गत्वं वायोरित्याह। यदा यस्मिन्काले **वा अग्निरुद्वायत्**युद्वासनं प्राप्नोत्युपशाम्यति, तदाऽसावग्नि**र्वायुमेवाप्येति वायुस्वाभाव्यमपिगच्छति। तथा यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति। यदा चद्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति**। ननु कथं सूर्याचन्द्रमसोः स्वरूपावस्थितयोर्वायावपिगमनम्। नैष दोषः। अस्तमनेऽदर्शनप्राप्तेर्वायुनिमित्तत्वात्। वायुना ह्यस्तं नीयते सूर्यः। चलनस्य वायुकार्यत्वात्। अथवा प्रलये सूर्याचन्द्रमसोः स्वरूपभ्रंशे तेजोरूपयोर्वायावेवापिगमनं स्यात्।।१।।

तथा **यदाऽऽप उच्छुष्यन्त्यु**च्छोषमाप्नुवन्ति तदा **वायुमेवापियन्ति**। **वायुर्हि** यस्मा**देवैतान**ग्न्याद्यान्महाबला**न्संवृङ्क्ते**। अतो वायुः संवर्गगुण उपास्य इत्यर्थः। **इत्यधिदैव**तं देवतासु संवर्गदर्शनमुक्तम्।। २।।

अथाध्यात्मं प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणꣳ श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इति ।।३।।

तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्राणेषु ।।४।।

अथ ह शौनकं च कापेयमभिप्रतारिणं च काक्षसेनिं परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी बिभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः ।।५।।

अब शरीर में संवर्ग कहा जाता है। मुख्य प्राण ही संवर्ग है क्योंकि यह पुरुष जब सोता है तो वागिन्द्रिय प्राण में लीन हो जाती हैं तथा चक्षु प्राण को ही श्रोत्र प्राण को ही और मन भी प्राण को ही प्राप्त हो जाता है, क्योंकि प्राण ही वागादि सभी को अपने में लीन करता है।।३।।

वे ये दो ही (संवर्जन गुण वाले होने से) संवर्ग हैं। देवताओं में वायु है और वागादि इन्द्रियों में प्राण है।।४।।

संवर्ग विद्या की स्तुति के लिये आख्यान

एक बार कपि गोत्र में उत्पन्न शुनक का पुत्र शौनक और कक्षसेन का पुत्र काक्षसेनी अभिप्रतारीसे भोजन परोसने के समय ही एक ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मचारी ने भिक्षा माँगी। किन्तु (उसके ब्रह्मज्ञान के अभिमान को जानकर) उन्होंने उसे भिक्षा न दी।।५।।

अथानन्तर**मध्यात्मम**ात्मनि संवर्गदर्शनमिदमुच्यते। **प्राणो** मुख्यो **वाव संवर्गः**। **स** पुरुषो **यदा** यस्मिन्काले **स्वपिति प्राणमेव वागप्येति** वायुमिवाग्निः **प्राणं चक्षुः प्राणं श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो हि** यस्माद**ेवैतान्**वागादीन्**सर्वान्संवृङ्क्त इति**।।३।।

तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ संवर्जनगुणौ **वायुरेव देवेषु** संवर्गः। **प्राणः प्राणेषु** वागादिषु मुख्यः।।४।।

अथैतयोः स्तुत्यर्थमियमाख्यायिकाऽऽरभ्यते। **ह**ेत्यैतिह्यार्थः। **शौनकं च** शुनकस्यापत्यं शौनकं **कापेयं** कपिगोत्र**मभिप्रतारिणं च** नामतः कक्षसेनस्यापत्यं **काक्षसेनिं** भोजनायोपविष्टौ **परिविष्यमाणौ** सूपकारै**र्ब्रह्मचारी** ब्रह्मविच्छौण्डो **बिभिक्षे** भिक्षितवान्। ब्रह्मचारिणो ब्रह्मविन्मानितां बुद्ध्वा तं जिज्ञासमानौ तस्मा **उ** भिक्षां **न ददतु**र्न दत्तवन्तौ **ह** किमयं वक्ष्यतीति।।५।।

स होवाच महात्मनश्चतुरो देव एकः, कः स जगार, भुवनस्य गोपास्तं कापेय नाभिपश्यन्ति मर्त्या अभिप्रतारिन्बहुधा वसन्तं यस्मै वा एतदन्नं तस्मा एतन्न दत्तमिति ।।६।।

तदु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायाऽऽत्मा देवानां जनिता प्रजानाꣳ हिरण्यदꣳष्ट्रो बभसोऽनसूरिर्महान्तमस्य

उस ब्रह्मचारी ने कहा- भूरादि समस्त लोकों के रक्षक उस एक ही देव प्रजापति ने चार महात्माओंको ग्रस लिया (अर्थात् वायु ने अग्नि आदि को और प्राण ने वागादि को ग्रस लिया) हे कापेय! हे अभिप्रतारिन्! मनुष्य (अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत भेद से) अनेक प्रकार से वास करते हुए उस देव को अविवेकी पुरुष नहीं देखते। अतएव जिसके भक्षण के लिये अन्न का संस्कार किया जाता है, उस प्रजापति को ही अन्न नहीं दिया गया ।।६।।

कपि गोत्र में उत्पन्न शौनक ने उस ब्रह्मचारी के वाक्य का मनन कर उसके पास जाकर कहा (जिसके विषय में तुमने कहा कि मर्त्यगण उसे नहीं देखते), जो देवताओं का आत्मा, चराचर प्रजाओं का उत्पत्तिकर्ता, अविनाशी दाढ़ों वाला, भक्षण शील और मेधावी है,जिसकी

स होवाच ब्रह्मचारी **महात्मनश्चतुर** इति द्वितीयाबहुवचनम्। **देव एको**ऽग्न्यादीन्वायुर्वागादीन्प्राणः। **कः स** प्रजापति**र्जगार** ग्रसितवान्। कः स जगारेति प्रश्नमेके। **भुवनस्य** भवन्त्यस्मिन्भूतानीति भुवनं भूरादिः सर्वो लोकस्तस्य **गोपा** गोपायिता रक्षिता गोप्तेत्यर्थः। **तं** कं प्रजापतिं हे **कापेय नाभिपश्यन्ति** न जानन्ति **मर्त्या** मरणधर्माणोऽविवेकिनो वा, हे**ऽभिप्रतारिन्बहुधा**ऽध्यात्माधिदैवताधिभूतप्रकारै**र्वसन्तम्**। **यस्मै वा एतद**हन्यहन्य**न्नम**दनायाऽऽह्रियते संस्क्रियते च तस्मै प्रजापतय **एतदन्नं** न **दत्तमिति**।।६।।

तदु ह ब्रह्मचारिणो वचनं **शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानो** मनसाऽऽलोचयन्ब्रह्मचारिणं **प्रत्येयाया**ऽऽजगाम। गत्वा चाऽऽह यं त्वमवोचो न पश्यन्ति मर्त्या इति तं वयं पश्यामः। कथम्। **आत्मा** सर्वस्य स्थावरजङ्गमस्य। किंच **देवाना**मग्न्यादीनामात्मनि संहृत्य ग्रसित्वा पुनर्जनितोत्पादयिता वायुरूपेणाधिदैवतमग्न्यादीनाम्। अध्यात्मं च प्राणरूपेण वागादीनां **प्रजानां** च **जनिता**। अथ-

महिमानमाहुरनद्यमानो यदनन्नमत्तीति वै वयं ब्रह्मचारिन्नेदमुपास्महे दत्तास्मै भिक्षामिति ॥७॥

तस्मा उ ह ददुस्ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दश सन्तस्तत्कृतं तस्मात्सर्वासु दिक्ष्वन्नमेव दश कृतꣳ सैषा

महती महिमा बतलायी गयी है। जोस्वयं दूसरों से न खाया जाने वाला तथा जो वस्तु अग्न्यादि देवताओं का अन्न नहीं है, (क्योंकि वह देव) उनको भी खा जाता है। हे ब्रह्मचारिन्! हम उसी की उपासना करते हैं। (फिर उसने सेवकों से कहा कि) इस ब्रह्मचारी को भिक्षा दे दो।।७।।

तब उन्होने उसे भिक्षा दे दी। वे ये (अग्न्यादि और वायु, वागादि) पाँच से अन्य हैं और इनसे (वागादि तथा प्राण) ये पाँच अन्य हैं। इस प्रकार ये सभी दश होते हैं, ये दश होने के कारण कृत (चार अङ्कों वाले कृत नामक पाशे से उपलक्षित द्यूत) हैं। अतः सम्पूर्ण दिशाओं में (अग्न्यादि और वागादि एक-एक को छोड़कर) शेष ये अन्न हैं और ये दश होने के कारण

वाऽऽत्मा देवानामग्निवागादीनां, जनिता प्रजानां स्थावरजङ्गमानाम्। **हिरण्यदंष्ट्रो**ऽमृतदंष्ट्रोऽभग्नदंष्ट्र इति यावत्। **बभसो** भक्षणशीलः। **अनसूरिः** सूरिर्मेधावी न सूरिरसूरिस्तत्प्रतिषेधोऽनसूरिः सूरिरेवेत्यर्थः। **महान्तम**तिप्रमाणमप्रमेयम**स्य** प्रजापतेर्म**हिमानं** विभूति**माहु**र्ब्रह्मविदः। यस्मात्स्वयमन्यै**रनद्यमानो**ऽभक्ष्यमाणो यदनन्नमग्निवागादिदेवतारूप**मत्ति** भक्षयतीति। **वा** इति निरर्थकः। वयं हे **ब्रह्मचारिन्**, आ, **इदमे**वं यथोक्तलक्षणं ब्रह्म वयमा **उपास्महे**। वयमिति व्यवहितेन संबन्धः। अन्ये न वयमिदमुपास्महे। किं तर्हि परमेव ब्रह्मोपास्महे इति वर्णयन्ति। **दत्तास्मै भिक्षामि**त्यवोचद्भृत्यान्।।७।।

तस्मा उ ह ददुस्ते हि भिक्षाम्। ते वै ये ग्रस्यन्तेऽग्न्यादयो यश्च तेषां ग्रसिता वायुः **पञ्चान्ये** वागादिभ्यः, तथाऽन्ये तेभ्यः पञ्चाध्यात्मं वागादयः प्राणश्च, ते सर्वे दश भवन्ति संख्यया, **दश सन्तस्तत्कृतं** भवति ते, चतुरङ्क एकाय एवं चत्वारस्त्र्यङ्काय एवं त्रयोऽपरे द्व्यङ्काय एवं द्वावन्यावेकाङ्काय एवमेकोऽन्य इत्येवं दश सन्तस्तत्कृतं भवति। यत एवं **तस्मात्सर्वासु दिक्षु** दशस्वप्यग्न्याद्या वागाद्याश्च दशसंख्यासामान्या**दन्नमेव** दशाक्षरा विराड् "विराडन्नमि" ति हि श्रुतिः। अतोऽन्नमेव दशसंख्यत्वात्। तत एव **दश कृतं** कृतेऽन्तर्भावाच्चतुराङ्कायत्वेनेत्यवोचाम।

विराडन्नादी तयेदꣳ सर्वं दृष्टꣳ सर्वमस्येदं दृष्टं भवत्यन्नादो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥८॥

इति चतुर्थाऽध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

(अथ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः)

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयांचक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किंगोत्रो न्वहमस्मीति ॥१॥

ही कृत हैं। यह विराट ही अन्न भक्षण करने वाला है। उसके द्वारा यह सब देखा जाता है। जो इस प्रकार जानता है, उस विद्वान् के द्वारा ये सम्पूर्ण जगत् उपलब्ध कर लिया जाता है और वह अन्न भक्षण करने वाला होता है। द्विरुक्ति उपासना की समाप्ति का सूचक है।।८।।

।। इति तृतीयः खण्डः ।।

जबाला के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता जबाला को संबोधित करके निवेदन किया- हे मात! मैं स्वाध्याय ग्रहण के लिये ब्रह्मचर्यपूर्वक आचार्य कुल में निवास करना चाहता हूँ। अतः आप बतलायें कि मैं किस गोत्र वाला हूँ।।१।।

सैषा विराड्दशसंख्या सत्यन्नं चान्नादिनी च कृतत्वेन। कृते हि दशसंख्याऽन्तर्भूताऽतोऽन्नमन्नादिनी च सा। तथा विद्वान्दशदेवतात्मभूतः सन्विराट्त्वेन दशसंख्ययाऽन्नं कृतसंख्ययाऽ**न्नादी** च तयाऽन्नादिन्**येदं सर्वं** जगद्दशदिक्संस्थं **दृष्टं** कृतसंख्याभूतयोपलब्धम्। एवंविदोऽस्य सर्वं कृतसंख्याभूतस्य दशदिक्संबद्धं **दृष्टमु**पलब्धं **भवति**। किंचा**न्नादश्च भवति य एवं वेद** यथोक्तदर्शी। द्विरभ्यास उपासनासमाप्त्यर्थः।। ८।।

इति चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।। ३।।

सर्वं वागाद्यग्न्यादि चान्नान्नादत्वसंस्तुतं जगदेकीकृत्य षोडशधा प्रविभज्य तस्मिन्ब्रह्मदृष्टिर्विधातव्येत्यारभ्यते। श्रद्धातपसोर्ब्रह्मोपासनाङ्गत्वप्रदर्शनायाऽऽख्यायिका। **सत्यकामो** ह नामतो हशब्द ऐतिह्यार्थो जबालाया अपत्यं **जाबालो जबालां** स्वां **मातरमामन्त्रयांचक्र** आमन्त्रितवान्। **ब्रह्मचर्यं** स्वाध्यायग्रहणाय, हे **भवति विवत्स्याम्या**चार्यकुले, **किंगोत्रो**ऽहं किमस्य मम गोत्रं सोऽहं किंगोत्रो **न्वहमस्मीति**।। १।।

सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साऽहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति ॥२॥

स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ॥३॥

जबाला ने सत्यकाम से कहा- हे तात! जिस गोत्र वाला तू है, मैं उस तेरे गोत्र को नहीं जानती हूँ, तरुणावस्था में जब मैं पति के घर में आये हुए अभ्यागतों की परिचर्या में लगी रहती थी उस समय में मैंने तुझे प्राप्त किया था। (उसी समय तेरे पिता का देहावसान हो गया। अतः अनाथ) मैं जबाला नाम वाली हूँ और तू सत्यकाम नाम वाला है। अतः आचार्य के पूछने पर तू अपने को सत्यकाम जाबाल मैं हूँ, ऐसा कह देना।। २।।

उस हारिद्रुमत गौतम के पास जाकर कहा- मैं पूज्य श्रीमान् के यहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करूँगा। इसलिये आपकी सन्निधि में शिष्य भाव से आया हूँ। उस सत्यकाम से गौतम ने कहा हे सोम्य! तू किस गोत्र वाला है। उसने कहा- भगवन्! मैं जिस गोत्र वाला हूँ उसे मैं नहीं

एवं पृष्टा जबाला **सा हैनं** पुत्र**मुवाच— नाहमेतत्**त्व गोत्रं **वेद**, हे **तात यद्गोत्रस्त्वमसि**। कस्मान्न वेत्सीत्युक्ताऽऽह— **बहु** भर्तृगृहे परिचर्याजातमतिथ्यभ्यागतादि **चरन्त्यहं परिचारिणी** परिचरन्ती परिचरणचित्ततया गोत्रादिस्मरणे मम मनो नाभूत् **यौवने** च तत्काले **त्वामलभे** लब्धवत्यस्मि। तदैव ते पितोपरतः। अतोऽनाथाऽहं **साऽहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि। जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स** त्वं **सत्यकाम एवाहं जाबालो**ऽस्मीत्याचार्याय ब्रुवीथाः। यद्याचार्येण पृष्ट इत्यभिप्रायः।। २।।

स ह सत्यकामो **हारिद्रुमतं** हरिद्रुमतोऽपत्यं हारिद्रुमतं **गौतमं** गोत्रत **एत्य** गत्वो**वाच ब्रह्मचर्यं भगवति पूजावति** त्वयि **वत्स्याम्य**त **उपेयामु**पगच्छेयं शिष्यतया **भगवन्तमि**त्युक्तवन्तं **तं होवाच** गौतमः। **किंगोत्रो नु सोम्यासीति** विज्ञातकुलगोत्रः

तꣳ होवाच किंगोत्रो नु सोम्यासीति, स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरꣳ सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साऽहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहꣳ सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥४॥

तꣳ होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधꣳ सोम्याऽऽहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय

जानता, मैंने अपनी माता से पूछा था तो उसने मुझे यही उत्तर दिया कि युवावस्था में मैं बहुत कार्य में व्यस्त हुई (तुम्हारे पिता के घर अतिथियों की) सेवा में लगी रहती थी, उस समय तुझे प्राप्त किया। इसलिये मैं नहीं जानती कि तू किस गोत्र वाला है। जबाला नाम वाली मैं हूँ और सत्यकाम नाम वाला तू है। अतः हे गुरुदेव! मैं सत्यकाम जाबाल हूँ।।३।।४।।

उस सत्यकाम से गौतम ने कहा- ऐसा सरल एवं स्पष्ट भाषण ब्राह्मणेतर कोई नहीं कर सकता, (ब्राह्मण जाति के सत्यता तथा सरलता से तू भ्रष्ट नहीं हुआ) अतः हे सोम्य! संस्कारार्थ होम के लिये) समिधा ले आ, मैं तुझे ब्राह्मण का उपनयन कर दूँगा, क्योंकि तूने सत्य का त्याग

शिष्यं उपनेतव्य इति पृष्टः प्रत्याह सत्यकामः। **स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्मि**। किं त्वपृच्छं पृष्टवानस्मि **मातरम्**। सा मया पृष्टा मां **प्रत्यब्रवीन्**माता। **बह्वहं चरन्ती**त्यादि पूर्ववत्। तस्या अहं वचः स्मरामि सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति।।३।।४।।

तं होवाच गौतमो **नैतद्**वचो**ऽब्राह्मणो** विशेषेण वक्तुमर्हत्यार्जवार्थसंयुक्तम्। ऋजवो हि ब्राह्मणा नेतरे स्वभावतः। यस्मान्न सत्याद्ब्राह्मणजातिधर्मादगा नापेतवानसि। अतो ब्राह्मणं त्वामुपनेष्ये। अतः संस्कारार्थं होमाय समिधं सोम्याऽऽहरेत्युक्त्वा **तमुपनीय कृशानामबलानां** गोयूथान्निराकृत्यापकृष्य **चतुःशता** चत्वारि शतानि गवा**मुवाचेमा** गाः **सोम्यानुसंव्रजा**नुगच्छ। इत्युक्त**स्ता** अरण्यं **प्रत्यभिप्रस्थापयन्नुवाच— नासहस्रेणा**पूर्णेन सहस्रेण नाऽऽवर्तेय न प्रत्यागच्छेयम्। स एवमुक्त्वा गा अरण्यं

कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानुसंव्रजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणाऽऽवर्तेयेति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्रꣳ संपेदुः ।।५।।

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।।४।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः)

अथ हैनमृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव प्राप्ताः सोम्य सहस्रꣳ स्मः प्रापय न आचार्यकुलम् ।।१।।

नहीं किया। ऐसा कह सत्यकाम का उपनयन कर चार सौ कृश और दुर्बल गौएँ (गो समूह से) पृथक् करके सत्यकाम से कहा- हे प्यारे! तू इन गौओं के पीछे-पीछे अच्छी प्रकार से जा। उन्हें ले जाते हुए सत्यकाम ने कहा- कि इनकी एक सहस्रसंख्या पूरी हुए बिना मैं नहीं लौटूँगा। जब तक वे गौएं एक सहस्र संख्या में हुईं, वह सत्यकाम अनेक वर्षों तक वन में ही रहा।।५।।

।।इति चतुर्थः खण्डः ।।

सत्यकाम को ब्रह्म के प्रथम पाद का उपदेश साँड ने किया

तब सत्यकाम से हे सत्यकाम! ऐसा साँड ने कहा। उसे सत्यकाम ने ''भगवन्'' ऐसा कहकर उत्तर दिया, साँड ने कहा- हे सोम्य! हम एक सहस्र हो गये हैं (तेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी है। अतः) अब तू हमें गुरुकुल में पहुँचा दे।।१।।

तृणोदकबहुलं द्वंद्वरहितं प्रवेश्य **स ह वर्षगणं** दीर्घं **प्रोवास** प्रोषितवान्। **ताः** सम्यग्गावो रक्षिता **यदा** यस्मिन्काले **सहस्रं संपेदुः** संपन्ना बभूवुः।।५।।

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः।।४।।

तमेनं श्रद्धातपोभ्यां सिद्धं वायुदेवता दिक्संबन्धिनी तुष्टा सत्यृषभमनुप्रविश्यर्षभापन्नाऽनुग्रहाय**ाथ हैनमृषभोऽभ्युवाद**ाभ्युक्तवान्**सत्यकाम ३ इति** संबोध्य, तमसौ सत्यकामो **भगव इति ह प्रतिशुश्राव** प्रतिवचनं ददौ। **प्राप्ताः सहस्रं स्मः** पूर्णा तव प्रतिज्ञा, अतः **प्रापय** नोऽस्मान**ाचार्यकुलम्**।।१।।

ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम ।।२।।

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवानस्मिँल्लोके भवति प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते ।।३।।

इति चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।।५।।

मैं तुझसे परब्रह्म का एक पाद बतलाऊँगा। ऐसा कहे जाने पर सत्यकाम ने कहा भगवन्! मुझे अवश्यमेव बतलावें। तब साँड ने उससे कहा– पूर्व दिक्कला, पश्चिम दिक्कला, दक्षिण दिक्कला और उत्तर दिक्कला। हे सोम्य! ब्रह्म का यह पाद प्रकाशवान् नामक चार कलाओं वाला है (इसी प्रकार ब्रह्म के अन्य तीन पाद भी चार-चार अवयव वाले हैं)।।२।।

वह जो कोई विद्वान् ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की इस प्रकार 'प्रकाशवान्' ऐसे गुण से युक्त मानकर उपासना करता है वह इस लोक में विख्यात होता है और मरने पर 'प्रकाशवान्' लोकों को जीतता है। जो विद्वान् इस प्रकार ब्रह्म के 'प्रकाशवान्' इस चतुष्कल पाद की उपासना करता है।।३।।

।।इति पञ्चमः खण्डः ।।

किंचाहं **ब्रह्मणः** परस्य **ते** तुभ्यं **पादं ब्रवाणि** कथयानि। इत्युक्तः प्रत्युवाच— **ब्रवीतु** कथयतु **मे** मह्यं **भगवान्**। **इत्युक्त** ऋषभस्**तस्मै** सत्यकामाय **होवाच। प्राची दिक्कला** ब्रह्मणः पादस्य चतुर्थो भागः। तथा **प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सोम्य** ब्रह्मणः पाद**श्चतुष्कलश्च**तस्रः कला अवयवा यस्य सोऽयं चतुष्कलः **पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम** प्रकाशवानित्येव नामाभिधानं यस्य। तथोत्तरेऽपि पादास्त्रयश्चतुष्कला ब्रह्मणः।। २।।

स यः कश्चिदेवं यथोक्तमेतं ब्रह्मणश्च**तुष्कलं पादं** विद्वान्**प्रकाशवानित्यनेन** गुणेन विशिष्ट**मुपास्ते** तस्येदं फलं **प्रकाशवानस्मिँल्लोके भवति** प्रख्यातो भवतीत्यर्थः। तथाऽदृष्टं फलं **प्रकाशवतो ह लोका**न्देवादिसंबन्धिनो मृतः **सञ्जयति** प्राप्नोति। **य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते**।। ३।।

इति चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः।।५।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः)

अग्निष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥१॥

तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥२॥

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति

अग्नि द्वारा ब्रह्म के द्वितीय पाद का उपदेश

अग्नि तुझे (ब्रह्म का दूसरा) पाद बतलायेगा। ऐसा (कहकर साँड मौन हो गया)। दूसरे दिन सत्यकाम ने (नित्य क्रिया से निवृत्त होकर) गौओं को (गुरुकुल की ओर) ले चला। सायंकाल में जहाँ एकत्रित गौएं हुईं, वहाँ ही अग्नि स्थापित कर गौओं को रोक समिधा का आधान कर (साँड के वचनों को याद करता हुआ) अग्नि के पश्चिम की ओर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया ॥१॥

हे सत्यकाम! ऐसा सत्यकाम से अग्नि ने संबोधित किया। तब सत्यकाम ने हे भगवन्! ऐसा कह कर उसे उत्तर दिया ॥२॥

हे सोम्य! मैं तुझे ब्रह्म का एक पाद बतलाऊँ? (सत्यकाम ने कहा) भगवन् मुझे अवश्य

सोऽग्निस्ते **पादं वक्तेत्यु**पररामर्षभः। **स** सत्यकामो **ह श्वोभूते** परेद्युर्नैत्यिकं नित्यं कर्म कृत्वा **गा अभिप्रस्थापयांचकारा**ऽऽचार्यकुलं प्रति। **ताः** शनैश्चरन्त्य आचार्यकुलाभिमुख्यः प्रस्थिता **यत्र** यस्मिन्देशे**ऽभि सायं** निशायामभि-संबभूवुरेकत्राभिमुख्यः संभूताः, **तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश** ऋषभवचो ध्यायन्॥ १॥

तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम ३ इति संबोध्य, तमसौ सत्यकामो **भगव इति ह प्रतिशुश्राव** प्रतिवचनं ददौ॥ २॥

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच

तस्मै होवाच पृथिवी कलाऽन्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम ॥३॥

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्तेऽनन्तवानस्मिँल्लोके भवत्यनन्तवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते ॥४॥

इति चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

(अथ चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः)

हꣳसस्ते पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा

बतलावें। तो अग्नि ने सत्यकाम से कहा- पृथिवी कला, अन्तरिक्ष कला, द्युलोक कला और समुद्रकला है। हे सोम्य! ब्रह्म का यह चतुष्कल पाद 'अनन्तवान्' नाम वाला है।।३।।

वह जो कोई पुरुष अनन्तवत्त्व गुण से युक्त इसे जानते हैं और ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद 'अनन्तवान्' समझकर उपासना करता है, वह इस लोक में अनन्त गुण वाला हो जाता है और वह अनन्तवान् इस गुण से युक्त उपासना करता है।।४।।

।। इति षष्ठः खण्डः ।।

हंस ने ब्रह्म के तृतीय पाद का उपदेश किया

हंस (आदित्य) तुझे ब्रह्म का तीसरा पाद बतलायेगा। दूसरे दिन उसने गौओं को गुरुकुल की ओर घुमा दिया, सायंकाल वे गौएं जहाँ एकत्रित हुईं, वहाँ पर सत्यकाम ने अग्नि जलाकर गौओं

पृथिवी कलाऽन्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलेत्यात्मगोचरमेव दर्शनमग्निरब्रवीत्। **एष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम**।।३।।

स यः कश्चिद्यथोक्तं पादमनन्तवत्त्वेन गुणेनोपास्ते स तथैव तद्गुणो भवत्य**स्मिँल्लोके**, मृतश्चा**नन्तवतो ह** लोकान्स **जयति, य एतमेवमि**त्यादि पूर्ववत्।।४।।

इति चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः।।६।।

सोऽग्नि**र्हंसस्ते पादं वक्ते**त्युक्त्वोपरराम। हंस आदित्यः। शौकल्यात्पतन-

उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ।।१।।

तꣳ हꣳस उपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ।।२।।

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाचाग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम ।।३।।

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मा- दीप्तियुक्त **नित्युपास्ते ज्योतिष्मानस्मिँल्लोके भवति, ज्योतिष्मतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ।।४।।**

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।।७।।

को रोका और समिधा का आधान कर अग्नि से पश्चिम की ओर पूर्वाभिमुख हो बैठ गया ।।१।।

तब हंस ने उसके समीप जाकर कहा हे सत्यकाम! उसने उत्तर दिया हे भगवन्।।२।।

हे सोम्य! मैं तुझे ब्रह्म का तीसरा पाद बतलाऊँ। (ऐसा हंस ने कहा, तब सत्यकाम ने कहा) भगवान् मुझे अवश्य बतलावें। तब वह हंस सत्यकाम से बोला अग्नि कला है, सूर्य कला है, चन्द्र कला है और विद्युत कला है। हे सोम्य! ब्रह्म का यह चतुष्कल पाद ''ज्योतिष्मान्'' नाम वाला है।।३।।

जो कोई इस प्रकार का विद्वान पुरुष ''ज्योतिष्मान्'' ऐसे गुण से युक्त इस चतुष्कल पाद की उपासना करता है वह इस लोक में तेजोयुक्त होता है तथा तेजस्वी लोकों को जीतता है। जो इस प्रकार इसे जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद को 'ज्योतिष्मान्' ऐसे गुण से युक्त उपासना करता है।।४।।

।।इति सप्तमः खण्डः ।।

सामान्याच्च। **स ह श्वोभूत** इत्यादि समानम्।।१।।२।।

अग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलैष वै सोम्येति ज्योतिर्विषयमेव च दर्शनं प्रोवाचातो हंसस्याऽऽदित्यत्वं प्रतीयते। विद्वत्फलं— **ज्योतिष्मान्**दीप्तियुक्तो**ऽस्मिँल्लोके भवति**। चन्द्रादित्यादीनां ज्योतिष्मत एव च मृत्वा **लोकाञ्जयति**। समानमुत्तरम्।।३।।४।।

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः।।७।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्याष्टमः खण्डः)

मद्गुष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ।।१।।

तं मद्गुरुपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ।।२।।

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम ।।३।।

मद्गु ने ब्रह्म के चतुर्थ पाद का उपदेश किया

मद्गु (जलचर पक्षी) चौथा पाद तुझे बतलायेगा। ऐसा (कहकर हंस चला गया) दूसरे दिन सत्यकाम गौओं को, गुरुकुल की ओर ले चला। सायंकाल में जहाँ वे गौएं एकत्रित हुईं, वहाँ पर अग्नि प्रज्वलित कर गौओं को रोकर समिधा आधान कर सत्यकाम अग्नि के पीछे पूर्वाभिमुख बैठ गया ।। १।।

मद्गु ने निकट में जाकर सत्यकाम से कहा, सत्यकाम! तब उसने उत्तर दिया भगवन्!।। २।।

हे सोम्य! मैं तुझे ब्रह्म का चतुर्थ पाद बतलाऊँ? मुझे अवश्य बतालाएं। तब मद्गु ने कहा प्राण कला, चक्षु कला, श्रोत्र कला और मन कला है। हे सोम्य! ब्रह्म का यह चतुष्कल पाद ''आयतनवान्'' नाम वाला है।। ३।।

हंसोऽपि मद्गुष्टे पादं वक्तेत्युपरराम। मद्गुरुदकचरः पक्षी, स चाप्संबन्धात्प्राणः। **स ह श्वोभूत** इत्यादि पूर्ववत्।। १।।

स च मद्गुः प्राणः स्वविषयमेव च दर्शनमुवाच प्राणः कलेत्याद्यायतनवानित्येवं नाम। आयतनं नाम मनः सर्वकरणोपहृतानां भोगानां तद्यस्मिन्पादे विद्यत इत्यायतनवान्नाम पादः।। २।। ३।।

सावकाशान्

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्त आयतनवानस्मिँल्लोके भवत्यायतनवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते ।।४।।

इति चतुर्थाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।।८।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्य नवमः खण्डः)

प्राप हाऽऽचार्यकुलं तमाचार्योऽभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ।।१।।

वह जो कोई इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की ''आश्रयवान्'' ऐसे गुण से युक्त उपासना करता है, वह इस लोक में आश्रय वाला होता है और मरने पर अवकाश युक्त लोकों को जीतता है; जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की ''आश्रयवान्'' ऐसे गुण से युक्त उपासना करता है।।४।।

।।इत्यष्टमः खण्डः ।।

आचार्य मुख से सत्यकाम का उपदेश ग्रहण

(इस प्रकार सत्यकाम ब्रह्मवेत्ता होकर) गुरुकुल में पहुँचा, उससे आचार्य ने कहा, सत्यकाम! सत्यकाम ने उत्तर दिया, भगवन्! ।।१।।

तं पादं तथैवोपास्ते यः स **आयतनवाना**श्रयवान**स्मिँल्लोके भवति**। तथाऽऽ**यतनवत** एव सावकाशाल्ँ**लोका**न्मृतो **जयति य एतमेव**मित्यादि पूर्ववत्।।४।।

इति चतुर्थाध्यायस्याष्टमः खण्डः।।८।।

स एवं ब्रह्मवित्सन्**प्राप ह** प्राप्तवाना**चार्यकुलम्**। **तमाचार्योऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति**। **भगव इति ह प्रतिशुश्राव** ।।१।।

ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि, को नु त्वाऽनुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे भगवाꣳस्त्वेव मे कामे ब्रूयात् ॥२॥

श्रुतꣳ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापदितीति तस्मै हैतदेवोवाचात्र ह न किंचन वीयायेति वीयायेति ॥३॥

इति चतुर्थाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

हे सोम्य! तू ब्रह्मवेत्ता सा प्रतीत हो रहा है, (क्योंकि प्रसन्नेन्द्रिय हंसमुख चिन्तारहित ब्रह्मज्ञानी ही होता है) तुझे किसने उपदेश दिया है? तब सत्यकाम ने उत्तर दिया, मनुष्यों से भिन्न देवताओं ने मुझे उपदेश दिया। अब मेरी इच्छा के अनुसार आप भगवान् ही उपदेश करें॥ २॥

मैंने आप जैसे ऐश्वर्यवान् ऋषियों से सुना है कि आचार्य से जानी गयी विद्या ही अतिशय साधुता को प्राप्त होती है। ऐसा सुनकर आचार्य ने सत्यकाम को (देवताओं द्वारा प्राप्त) उसी विद्या का उपदेश किया, उसमें कुछ भी न्यूनता नहीं की, न्यूनता नहीं हुई, अर्थात् उसकी विद्या पूर्ण हुई ॥ ३॥

॥ इति नवमः खण्डः ॥

ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि। प्रसन्नेन्द्रियः प्रहसितवदनश्च निश्चिन्तः कृतार्थो ब्रह्मविद्भवति। अत आचार्यो ब्रह्मविदिव भासीति को न्विति वितर्कयन्नुवाच **कस्त्वामनुशशासेति**। स चाऽऽह सत्यकामो**ऽन्ये** मनुष्येभ्यः। देवता मामनुशिष्टवत्यः। कोऽन्यो भगवच्छिष्यं मां मनुष्यः सन्ननुशासितुमुत्सहेतेत्यभिप्रायः। अतो**ऽन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे** प्रतिज्ञातवान्। भगवांस्त्वेव मे कामे ममेच्छायां ब्रूयात्किमन्यैरुक्तेन नाहं तद्गणयामीत्यभिप्रायः॥ २॥

किंच **श्रुतं हि** यस्मान्मम विद्यत एवास्मिन्नर्थे **भगवद्दृशेभ्यो** भगवत्समेभ्य ऋषिभ्यः। **आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं** साधुतमत्वं **प्रापदिति** प्राप्नोती**ति**त्यतो भगवानेव ब्रूयादित्युक्त आचार्योऽब्रवी**त्तस्मै** तामेव दैवतैरुक्तां विद्याम्। अत्र ह **न किंचन** षोडशकलविद्यायां किंचिदेकदेशमात्रमपि न **वीयाय** न विगतमित्यर्थः। द्विरभ्यासो विद्यापरिसमाप्त्यर्थः॥ ३॥

॥ इति सप्तमाह्निकम्॥७॥

इति चतुर्थाध्यायस्य नवमः खण्डः॥ ९॥

(अथ चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः)

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास तस्य ह द्वादश वर्षाण्यग्नीन्परिचचार स ह स्मान्यानन्तेवासिनः समावर्तयꣳस्तꣳ ह स्मैव न समावर्तयति ॥१॥

तं जायोवाच तप्तो ब्रह्मचारी कुशलमग्नीन्परिचचारीन्मा त्वाऽग्नयः परिप्रवोचन्प्रब्रूह्यस्मा इति तस्मै हाप्रोच्यैव प्रवासांचक्रे ॥२॥

अग्नि ने उपकोसल को ब्रह्मविद्या का उपदेश किया

उपकोसल नाम से प्रसिद्ध कमल के पुत्र ने सत्यकाम जाबाल के पास ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास किया। उसने बारह वर्षों तक उस आचार्य के अग्नियों की परिचर्या की। किन्तु उस आचार्य ने अन्य ब्रह्मचारियों का तो स्वाध्याय कराकर समावर्तन कर दिया, केवल उपकोसल का ही समावर्तन नहीं किया।।१।।

आचार्य से उनकी पत्नी ने कहा- इस ब्रह्मचारी ने खूब तपस्या की है, इसने अग्नियों की अच्छी प्रकार सेवा की है। कहीं अग्नियाँ आपकी निन्दा न करें, इसलिये इस उपकोसल को इसकी अभीष्ट विद्या का उपदेश कर दीजिये। पत्नी द्वारा कहे जाने पर भी आचार्य उसे उपदेश किये बिना ही बाहर चले गये ।।२।।

पुनर्ब्रह्मविद्यां प्रकारान्तरेण वक्ष्यामीत्यारभते गतिं च तद्विदोऽग्निविद्यां च। आख्यायिका पूर्ववच्छ्रद्धातपसोर्ब्रह्मविद्यासाधनत्वप्रदर्शनार्था—

उपकोसलो ह वै नामतः कमलस्यापत्यं कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास। तस्य, ह ऐतिह्यार्थः, तस्याऽऽचार्यस्य **द्वादश वर्षाण्यग्नीन्परिचचार**ाग्नीनां परिचरणं कृतवान्। स ह स्माऽऽचार्योऽन्यान्ब्रह्मचारिणः स्वाध्यायं ग्राहयित्वा **समावर्तयंस्तमे**वोपकोसलमेकं **न समावर्तयति** स्म ह।।१।।

तमाचार्य**जायोवाच, तप्तो ब्रह्मचारी कुशलं** सम्य**गग्नीन्परिचचारी**त्परिचरितवान्। भगवांश्चाग्निषु भक्तं न समावर्तयति। अतोऽस्मद्भक्तं न समावर्तयतीति ज्ञात्वा त्वामग्नयो मा परिप्रवोचन्गर्हां तव मा कुर्युः। अतः प्रब्रूह्यस्मै विद्यामिष्टामुपकोसलायेति। **तस्मा** एवं जाययोक्तोऽपि **हाप्रोच्यैवा**नुक्त्वैव किंचित्**प्रवासांचक्रे** प्रवसितवान्।। २।।

स ह व्याधिनाऽनशितुं दध्रे तमाचार्यजायोवाच ब्रह्मचारिन्नशान किं नु नाश्नासीति स होवाच बहव इमेऽस्मिन्पुरुषे कामा नानात्यया व्याधिभिः प्रतिपूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति ॥३॥

अथ हाग्नयः समूदिरे तप्तो ब्रह्मचारी कुशलं नः पर्यचारीद्धन्तास्मै प्रब्रवामेति तस्मै होचुः प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति ॥४॥

उपकोसल ने मानिसक दुःख से अनशन करने का निश्चय किया (अग्निशाला में चुपचाप बैठे हुए) उससे गुरुपत्नी ने कहा- हे ब्रह्मचारिन्! तू भोजन कर, क्या बात है, भोजन नहीं करता? ब्रह्मचारी ने कहा- इस अकृतार्थ साधारण मनुष्य में अनेक कामनाएं रहती हैं, जो अनेक दिशाओं में ले जाने वाली हैं। मैं व्याधियों से परिपूर्ण हूँ। अतः मैं भोजन नहीं करूँगा।। ३।।

तब (उसकी सेवा से अनुकूल हुए तीनों) अग्नियों ने करुणावश एकत्रित होकर कहा- इस ब्रह्मचारी ने हमारी अच्छी प्रकार सेवा की है। अतः इस श्रद्धालु ब्रह्मचारी को हम ब्रह्मविद्या का उपदेश करें ऐसा निश्चय कर वे अग्नियाँ ब्रह्मचारी से बोलीं- ''प्राण'' ब्रह्म है 'क' ब्रह्म है 'ख' ब्रह्म है।। ४।।

स ह**उपकोसलो** **व्याधिना** मानसेन दुःखे**नानशितु**मनशनं कर्तुं **दध्रे** धृतवान्मनः। तं तूष्णीमग्न्यागारेऽवस्थि**तमाचार्यजायोवाच**। हे **ब्रह्मचारिन्नशान** भुङ्क्ष्व, **किं नु** कस्मान्नुकारणा**न्नाश्नासीति**? **स होवाच बहवो**ऽनेके**ऽस्मिन्पुरुषे**ऽकृतार्थे प्राकृते **कामा** इच्छाः कर्तव्यं प्रति नानाऽत्ययोऽतिगमनं येषां व्याधीनां कर्तव्यचिन्तानां ते **नानात्यया** व्याधयः कर्तव्यताऽप्राप्तिनिमित्तानि चित्तदुःखानीत्यर्थः। तैः **प्रतिपूर्णोऽस्मि**। अतो **नाशिष्यामीति**।। ३।।

उक्त्वा तूष्णींभूते ब्रह्मचारिण्**यथ हाग्नयः** शुश्रूषयाऽऽवर्जिताः करुणयाविष्टाः सन्तस्त्रयोऽपि **समूदिरे** संभूयोक्तवन्तः। हन्तेदानीमस्मै ब्रह्मचारिणेऽस्मद्भक्ताय दुःखिताय तपस्विने श्रद्दधानाय सर्वे **प्रब्रवाम** ब्रह्मविद्यामि**ति**। एवं संप्रधार्य **तस्मै होचु**रुक्तवन्तः **प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति**।। ४।।

स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति

उसने कहा- यह तो मैं जानता हूँ कि प्राण ब्रह्म है (क्योंकि प्राण के रहने पर जीवन है, और उसके अभाव में मृत्यु हो जाती है। अतः प्राण का ब्रह्म होना उचित ही है) किन्तु 'क' और 'ख' को मैं नहीं जानता हूँ, तब अग्नियों ने कहा- निश्चय ही जो 'क' है वही 'ख' है

स होवाच ब्रह्मचारी **विजानाम्यहं यद्भ**वद्भिरुक्तं प्रसिद्धपदार्थकत्वात्**प्राणो ब्रह्मे**ति। यस्मिन्सति जीवनं, यदपगमे च न भवतीति, तस्मिन्वायुविशेषे लोके रूढोऽतो युक्तं ब्रह्मत्वं च तस्य। तेन प्रसिद्धपदार्थकत्वाद्विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्मेति। कं च तु खं च न विजानामीति। ननु कंखंशब्दयोरपि सुखाकाशविषयत्वेन प्रसिद्धपदार्थकत्वमेव, कस्माद्ब्रह्मचारिणोऽज्ञानम्। नूनं सुखस्य कंशब्दवाच्यस्य क्षणप्रध्वंसित्वात्खंशब्दवाच्यस्य चाऽऽकाशस्याचेतनस्य कथं ब्रह्मत्वमिति मन्यते। कथं च भवतां वाक्यमप्रमाणं स्यादिति। अतो न विजानामीत्याह।

तमेवमुक्तवन्तं ब्रह्मचारिणं **ते हाग्नय ऊचुः। यद्वाव** यदेव वयं कमवोचाम **तदेव खमा**काशमित्येवं खेन विशेष्यमाणं कं विषयेन्द्रियसंयोगजात्सुखान्निवर्तितं स्यान्नीलेनेव विशेष्यमाणमुत्पलं रक्तादिभ्यः। **यदेव** खमित्याकाशमवोचाम **तदेव** च **कं** सुखमिति जानीहि। एवं च सुखेन विशेष्यमाणं खं भौतिकादचेतनात्खान्निवर्तितं स्यान्नीलोत्पलवदेव। सुखमाकाशस्थं नेतरल्लौकिकमाकाशं च सुखाश्रयं नेतरद्भौतिकमित्यर्थः। नन्वाकाशं चेत्सुखेन विशेषयितुमिष्टमस्त्वन्यतरदेव विशेषणं यद्वाव कं तदेव खमित्यतिरिक्तमितरत्। यदेव खं तदेव कमिति पूर्वविशेषणं वा। ननु सुखाकाशयोरुभयोरपि लौकिकसुखाकाशाभ्यां व्यावृत्तिरिष्टेत्यवोचाम।

सुखेनाऽऽकाशे विशेषिते व्यावृत्तिरुभयोरर्थप्राप्तैवेति चेत्सत्यमेवं किंतु सुखेन विशेषितस्यैवाऽऽकाशस्य ध्येयत्वं विहितं न, त्वाकाशगुणस्य विशेषणस्य सुखस्य ध्येयत्वं विहितं स्यात्। विशेषणोपादानस्य विशेष्यनियन्तृत्वेनैवोपक्षयात्। अतः खेन सुखमपि विशेष्यते ध्येयत्वाय। कुतश्चैतन्निश्चीयते? कंशब्दस्यापि ब्रह्मशब्दसंबन्धात्कं ब्रह्मेति। यदि हि सुखगुणविशिष्टस्य खस्य ध्येयत्वं विवक्षितं स्यात्कं खं ब्रह्मेति ब्रूयुरग्नयः प्रथमम्। न चैवमुक्तवन्तः। किं तर्हि कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति। अतो

प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः ॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

(अथ चतुर्थाध्यायस्यैकादशः खण्डः)

अथ हैनं गार्हपत्योऽनुशशास पृथिव्यग्निरन्नमादित्य इति य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥१॥

और जो 'ख' है वही 'क' है। (क्योंकि 'क' सुख है और वह सुख आकाशरूप होने से नित्य एवं व्यापक है) इस प्रकार उन्होंने उस ब्रह्मचारी को प्राण और उसके आश्रय आकाश का उपदेश किया॥५॥

॥इति दशमः खण्डः ॥

गार्हपत्याग्नि विद्या.

(उनमें से सबसे पहले) उस ब्रह्मचारी को गार्हपत्याग्नि ने शिक्षा दी- पृथिवी, अग्नि, अन्न, और आदित्य (ये चारों मेरे शरीर हैं)। आदित्य में जो यह पुरुष दिखाई पड़ता है वह मैं हूँ॥१॥

ब्रह्मचारिणो मोहापनयनाय कंखंशब्दयोरितरेतरविशेषणविशेष्यत्वनिर्देशो युक्त एव यद्वाव कमित्यादिः।

तदेतदग्निभिरुक्तं वाक्यार्थमस्मद्बोधाय श्रुतिराह— **प्राणं च हास्मै** ब्रह्मचारिणे। तस्याऽऽकाशस्तदाकाशः। प्राणस्य संबन्ध्याश्रयत्वेन हार्द आकाश इत्यर्थः। सुखगुणवत्त्वनिर्देशात्तं चाऽऽ**काशं** सुखगुणविशिष्टं ब्रह्म तत्स्थं च प्राणं ब्रह्मसंपर्कादेव ब्रह्मेत्युभयं प्राणं चाऽऽकाशं च समुच्चित्य ब्रह्मणी **ऊचुर**ग्नय इति॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः॥१०॥

संभूयाग्नयो ब्रह्मचारिणे ब्रह्मोक्तवन्तः। **अथा**नन्तरं प्रत्येकं स्वस्वविषयां विद्यां वक्तुमारेभिरे। तत्राऽऽदा**वेनं** ब्रह्मचारिणं **गार्हपत्यो**ऽग्नि**रनुशशास**। **पृथिव्यग्निरन्नमादित्य इति** ममैताश्चतस्रस्तनवः। तत्र **य आदित्य एष पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि** गार्हपत्योऽग्निर्यश्च गार्हपत्योऽग्निः **स एवाहमा**दित्ये पुरुषोऽ**स्मीति**। पुनः परावृत्त्या स एवाहमस्मीति वचनम्। पृथिव्यन्नयोरिव भोज्यत्वलक्षणयोः संबन्धो न गार्हपत्यादित्ययोः। अत्तृत्वपक्तृत्वप्रकाशनधर्मा अविशिष्टा इत्यत एकत्वमेवानयोरत्यन्तम्। पृथिव्यन्नयोस्तु भोज्यत्वेनाऽऽभ्यां संबन्धः॥१॥

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकीभवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ।।२।।

पालन.

इति चतुर्थाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।।११।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्य द्वादशः खण्डः)

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशासाऽऽपो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स

जो इसे प्रकार जानने वाला उसकी उपासना करता है, वह पुरुष पाप कर्मों को नष्ट कर देता है, अग्नि लोक वाला हो जाता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है तथा इसकी संतति-परम्परा में उत्पन्न पुरुष क्षीण नहीं होते तथा हम उसका इस लोक में जीवित और परलोक में में भी पालन करते हैं। जो विद्वान् इस प्रकार जान कर इसकी उपासना करता है (उसे पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है) ।।२।।

।। इति इत्येकादशः खण्डः ।।

अन्वाहार्य पंचाग्नि विद्या

फिर उपकोसल को दक्षिणाग्नि ने शिक्षा दी- जल, दिशा, नक्षत्र और चन्द्रमा (ये चार मेरे शरीर हैं, अर्थात् अपने को चार प्रकार से विभक्त करके अन्वाहार्य पचन रूप से मैं स्थित हूँ)

स यः कश्चि**देवं** यथोक्तं गार्हपत्यमग्निमन्नान्नादत्वेन चतुर्धा प्रविभक्त**मुपास्ते, सोऽपहते** विनाशयति **पापकृत्यां** पापं कर्म। **लोकी** लोकवांश्चास्मदीयेन लोकेनाऽऽग्नेयेन तद्वान्**भवति,** यथा वयम्। इह च लोके **सर्वं** वर्षशत**मायुरेति** प्राप्नोति **ज्योग्**उज्ज्वलं **जीवति** नाप्रख्यात इत्येतत्। न चास्यावराश्च ते पुरुषाश्चास्य विदुषः संततिजा इत्यर्थः। न क्षीयन्ते संतत्युच्छेदो न भवतीत्यर्थः। किं च **तं** वयमुप**भुञ्जामः** पालयामो**ऽस्मिंश्च लोके** जीवन्त**ममुष्मिंश्च** परलोके। **य एतमेवं विद्वानुपास्ते** यथोक्तं तस्यैतत्फलमित्यर्थः।। २।।

इति चतुर्थाध्यायस्यैकादशः खण्डः।।११।।

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशास दक्षिणाग्नि**रापो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इत्ये**ता मम चतस्रस्तनवश्चतुर्धाऽहमन्वाहार्यपचन आत्मानं प्रविभज्यावस्थितः। तत्र **य**

एवाहमस्मीति ।।१।।

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्ते उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ।।२।।

रक्षा करेंगे

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ।। १२।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः)

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास प्राण आकाशो द्यौर्विद्युदिति य एष विद्युति पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ।।१।।

उनमें से चन्द्रमा में जो पुरुष दिखायी पड़ता है; वह मैं हूँ।।१।।

जो इसे इस प्रकार जान कर इस चतुर्धा विभक्त अग्नि की उपासना करता है, वह पुरुष पाप कर्मों को नाश कर देता है। लोकवान् होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, विशुद्ध जीवन व्यतीत करता है। उसकी उत्तरवर्ती संतति क्षीण नहीं होती और हम उसका लोक-परलोक में पालन करते हैं; जो इस प्रकार जानकर इसकी उपासना करता है ।।२।।

।।इति द्वादशः खण्डः ।।

आहवनीयाग्नि विद्या

उसके बाद उस ब्रह्मचारी को आहवनीयाग्नि ने शिक्षा दी- प्राण, आकाश, द्युलोक और विद्युत् (ये चार मेरे शरीर हैं, इनमें से) यह जो विद्युत में पुरुष दीख पड़ता है वह मैं हूँ, वही मैं हूँ।।१।।

एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति पूर्ववत्। अन्नसंबन्धाज्ज्योतिष्ट्वसामान्याच्चान्वाहार्यपचनचन्द्रमसोरेकत्वं दक्षिणा(ण) दिक्संबन्धाच्च। अपां नक्षत्राणां च पूर्ववदन्नत्वेनैव संबन्धः। नक्षत्राणां चन्द्रमसो भोग्यत्वप्रसिद्धेः। अपामन्नोत्पादकत्वादन्नत्वं दक्षिणाग्नेः पृथिवीवद्गार्हपत्यस्य। समानमन्यत्।।१।। २।।

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।। १२।।

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास प्राण आकाशो द्यौर्विद्युदिति ममाप्येताश्चतस्रस्तनवः **य एष विद्युति पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मीत्यादि** पूर्ववत्सामान्यात्। दिवा (द्य्वा)

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकीभवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ।।२।।

इति चतुर्थाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।।१३।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः)

ते होचुरुपकोसलैषा सोम्य तेऽस्मद्विद्याऽऽत्मविद्या चाऽऽचार्यस्तु ते गतिं वक्तेत्याजगाम हास्याऽऽचार्यस्तमाचार्योऽभ्युवादोपकोसल ३ इति ।।१।।

जो इसे इस प्रकार जानकर इस (चार भाग में विभक्त अग्नि) की उपासना करता है, वह पुरुष पाप कर्म को नष्ट करा देता है। लोकवान् होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है तथा विशुद्ध जीवन बिताता है। उस उपासक के परवर्ती क्षीण नहीं होते और हम इस लोक तथा परलोक में उसका पालन करते हैं, जो इसे उक्त रीति से जानकर इसकी उपासना करता है।।२।।

।।इति त्रयोदशः खण्डः ।।

आचार्य का शुभागमन

उन अग्नियों ने फिर एक साथ कहा- हे उपकोसल! हे सोम्य! हमने तेरे प्रति यह अपनी विद्या और आत्मविद्या (प्राणो ब्रह्म, कं प्रह्म, खं ब्रह्म, इत्यादि रूपा) कही, (इस विद्या के फल की प्राप्ति के लिये) मार्ग तुझे आचार्य बतला देंगे। कालान्तर में उसके आचार्य आये और उन्होंने उससे कहा, हे उपकोसल! ।।१।।

काशयोस्त्वाश्रयत्वाद्विद्युदाहवनीययोर्भोग्यत्वेनैव संबन्धः। समानमन्यत्।।१।।२।।

इति चतुर्थाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः।।१३।।

ते पुनः संभूयोचुर्होपकोसलैषा सोम्य ते तवास्मद्विद्याऽग्निविद्येत्यर्थः। आत्मविद्या पूर्वोक्ता "प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मे"ति च। "**आचार्यस्तु ते गतिं वक्ता**" विद्याफलप्राप्तय **इत्युक्त्वोपरेमुरग्नयः**। **आजगाम हास्याऽऽचार्यः** कालेन। **तं च** शिष्यम**ाचार्योऽभ्युवादोपकोसल ३ इति**।।१।।

भगव इति ह प्रतिशुश्राव ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं भाति को नु त्वाऽनुशशासेति को नु माऽनुशिष्याद्भो इतीहापेव निह्नुते इमे नूनमीदृशा अन्यादृशा इतीहाग्नीनभ्यूदे किं नु सोम्य किल तेऽवोचन्निति ।।२।।

इदमिति ह प्रतिजज्ञे लोकान्वाव किल सोम्य तेऽवोचन्नहं तु ते तद्वक्ष्यामि यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते

गुरु शिष्य संवाद

हे भगवन्! ऐसा उपकोसल ने उत्तर दिया। आचार्य बोले– हे सोम्य! तेरी मुखाकृति ब्रह्मज्ञानी के समान प्रतीत होती है, तुझे किसने उपदेश किया। ऐसा सुनकर ब्रह्मचारी ने कहा– देव! आपके अभाव में मुझे कौन उपदेश करता। इस प्रकार कह कर, वह अग्नि के द्वारा दिये हुए उपदेश को मानो छिपाने लगा। (फिर अग्नियों की ओर संकेत करते हुए बोला– निश्चय ही मेरी सेवा से प्रसन्न हो) इन अग्नियों ने उपदेश किया है, क्योंकि अग्नियाँ पहले अन्य प्रकार की थीं और अब ये कांपती हुई सी हो गईं हैं। ऐसा कहकर उसने अग्नियों को उपदेशक रूप में बतलाया। आचार्य ने पूछा– हे सोम्य! उन्होंने तुझे क्या उपदेश किया?।। २।।

तब उपकोसल ने "यह बतलाया है" ऐसी प्रतिज्ञा की। आचार्य ने पूछा– हे सोम्य! उन अग्नियों ने तुझे केवल लोकों को ही बतलाया है। अब मैं तुझे वह बतलाता हूँ, जिससे जानने

भगव इति प्रतिशुश्राव। ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं प्रसन्नं **भाति को** नु **त्वाऽनुशशासे**त्युक्तः प्रत्याह। **को** नु **माऽनुशिष्याद**नुशासनं कुर्या**द्भो** भगवंस्त्वयि प्रोषिते **इतीहापेव** निह्नुतेऽपनिह्नुत इवेति व्यवहितेन संबन्धो, न चापनिह्नुते। न च यथावदग्निभिरुक्तं ब्रवीतीत्यभिप्रायः। कथ**मिमे**ऽग्नयो मया परिचरिता उक्तवन्तो **नूनं** यतस्त्वां दृष्ट्वा वेपमाना इवेदृशा दृश्यन्ते पूर्वमन्यादृशाः सन्त **इतीहाग्नीनभ्यूदे**ऽभ्युक्तवान्काक्वाऽग्नीन्दर्शयन्। **किं नु** सोम्य **किल ते** तुभ्य**मवोचन्न**ग्नय **इति** पृष्टे इत्येवमिदमुक्तवन्त इत्येवं **ह प्रतिजज्ञे** प्रतिज्ञातवान्प्रतीकमात्रं किंचिन्न सर्वं यथोक्तमग्निभिरुक्तमवोचत्। यत आहाऽऽचार्यो **लोकान्वाव** पृथिव्यादीन्हे

(4) सहनशीलता = दुःख में जितना ज्यादा सहन कर सके उतना अच्छा है। सिद्धि = सहनशीलता। अखण्डानन्द जी उड़िया बाबा से सिद्धि के बारे में पूछने पर उत्तर।

एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते इति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच ।।३।।

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ।।१४।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः)

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तद्यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति

वाले में पाप कर्म का लेप वैसे ही नहीं होता जैसे कमल पत्र में जल का संबन्ध नहीं होता। ब्रह्मचारी ने कहा- भगवन्! मुझे अवश्य बतलावें, तब आचार्य ने उससे कहा ।। ३।।

।।इति चतुर्दशः खण्डः ।।

नेत्रस्थ पुरुष की उपासना का उपदेश

(संयत इन्द्रिय समुदाय समाहित चित्त विवेकियों द्वारा) ''जो यह नेत्रों में दृष्टि का द्रष्टा पुरुष दिखलायी पड़ता है यह आत्मा है'' यह अमृत है, यह अभय है और यह ब्रह्म है, ऐसा आचार्य

सोम्य किल तेऽवोचन्न ब्रह्म साकल्येन। **अहं तु ते** तुभ्यं तद्ब्रह्म **यदिच्छसि** त्वं श्रोतुं **वक्ष्यामि**, शृणु तस्य मयोच्यमानस्य ब्रह्मणो ज्ञानमाहात्म्यं- **यथा पुष्करपलाशे** पद्मपत्रे **आपो न श्लिष्यन्त**, एवं यथा वक्ष्यामि **ब्रह्मैवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते** न संबध्यते इत्येवमुक्तवत्याचार्य आहोपकोसलो **ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाचा**ऽऽचार्यः।। २।। ३।।

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।। १४।।

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते निवृत्तचक्षुर्भिर्ब्रह्मचर्यादिसाधनसंपन्नैः शान्तैर्विवेकिभिर्दृष्टेर्द्रष्टा। ''चक्षुषश्चक्षुः'' (के. १.२) इत्यादिश्रुत्यन्तरात्। नन्वग्निभिरुक्तं वितथं, यत आचार्यस्तु ते गतिं वक्तेति गतिमात्रस्य वक्तेत्यवोचन्भविष्यद्विषयापरिज्ञानं चाग्नीनाम्। नैष दोषः। सुखाकाशस्यैवाक्षिणि दृश्यते इति द्रष्टुरनुवादात्। **एष आत्मा** प्राणिनामिति **होवाचै**वमुक्तवानेतद्यदेवाऽऽत्मतत्त्वमवोचाम। **एतदमृतम**मरणधर्म्य-

वर्त्मनी एव गच्छति ॥१॥

एतꣳसंयद्वाम इत्याचक्षते एतꣳ हि सर्वाणि वामान्यभिसंयन्ति सर्वाण्येनं वामान्यभिसंयन्ति य एवं वेद ॥२॥

एष उ एव वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि नयति सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद ॥३॥

ने कहा। उस (पुरुष का ऐसा माहात्म्य है कि उसके स्थान रूप नेत्र) में यदि घृत या जल डाला जाय, तो वह इधर उधर पलकों में ही चला जाता है। (जब उसके स्थान की ऐसी महिमा है, तो भला स्थानी नेत्रस्थ पुरुष की निस्संगता के विषय में तो कहना ही क्या है)।।१।।

इस पुरुष को ''संयद्वाम'' ऐसा कहते हैं, क्योंकि संपूर्ण संभजनीय पदार्थ इसे सभी ओर से प्राप्त होते हैं। सभी संभजनीय पदार्थ इसे सभी ओर से प्राप्त होते हैं, जो ऐसा जानता है।।२।।

यही वामनी है, क्योंकि (प्राणियों के प्रति पुण्य कर्मानुसार) सम्पूर्ण पुण्य कर्म फलों को प्राप्त कराता है। सम्पूर्ण पुण्य कर्म फलों को यही प्राप्त कराता है, जो ऐसा जानता है।।३।।

विनाश्यत एवा**भयं,** यस्य हि विनाशाशङ्का तस्य भयोपपत्तिस्तदभावादभयमत **एवैतद्ब्रह्म** बृहदनन्तमिति। किंचास्य ब्रह्मणोऽक्षिपुरुषस्य माहात्म्यं तत्तत्र पुरुषस्य स्थानेऽक्षिणि **यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति** पक्ष्मावेव गच्छति न चक्षुषा संबध्यते पद्मपत्रेणेवोदकम्। स्थानस्याप्येतन्माहात्म्यं, किं पुनः स्थानिनोऽक्षिपुरुषस्य निरञ्जनत्वं वक्तव्यमित्यभिप्रायः।। १ ।।

एतं यथोक्तं पुरुषं **संयद्वाम इत्याचक्षते**। कस्मात्? यस्मा**देतं सर्वाणि वामानि** वननीयानि संभजनीयानि शोभनान्**यभिसंयन्त्य**भिसंगच्छन्तीत्यतः संयद्वामः। तथैवंविद**मेनं सर्वाणि वामान्यभिसंयन्ति य एवं वेद**।। २।।

एष उ एव वामनीर्यस्मादेष हि सर्वाणि वामानि पुण्यकर्मफलानि पुण्यानुरूपं प्राणिभ्यो **नयति** प्रापयति वहति चाऽऽत्मधर्मत्वेन। विदुषः फलं— **सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद**।। ३।।

एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद ॥४॥

अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि, च न तेऽर्चिषमेवाभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्नः आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासाꣳस्तान्मासेभ्यः संवत्सरꣳ, संवत्सरादा-

यह भामनी है, क्योंकि यही सम्पूर्ण (आदित्य चन्द्र और अग्नि आदि के रूप में) लोकों में भासमान् होता है। जो ऐसा जानता है, वह भी सम्पूर्ण लोकों में भासमान् होता है।।४।।



ब्रह्मज्ञानी की गति

इस ब्रह्मवेत्ता के लिये शव कर्म करें अथवा न करें, वह अर्चि मार्ग के अभिमानी देव को ही प्राप्त होते हैं, फिर अर्चि अभिमानी देव से दिन अभिमानी देवता को, दिनाभिमानी देवता से शुक्लपक्षभिमानी देवता को और शुक्लपक्षाभिमानी देवता से उत्तरायण ६ मासों के अभिमानी

एष उ एव भामनीरेष हि यस्मात्**सर्वेषु लोकेष्वा**दित्यचन्द्राग्न्यादिरूपै**र्भाति** दीप्यते। "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" (कठ.५.१६) इति श्रुतेरतो भामानि नयतीति भामनीः। **य एवं वेदा**सावपि **सर्वेषु लोकेषु भाति**।।४।।

अथेदानीं यथोक्तब्रह्मविदो गतिरुच्यते। यद्य**द्यु चैवास्मिन्ने**वंविदि **शव्यं** शवकर्म मृते **कुर्वन्ति, यदि च न** कुर्वन्ति ऋत्विजः, सर्वथाऽप्येवंवित्तेन शवकर्मणाऽकृतेनापि प्रतिबद्धो न ब्रह्म प्राप्नोतीति न। न च कृतेन शवकर्मणाऽस्य कश्चनाभ्यधिको लोकः। "न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्" (बृ.४४.२३) इति श्रुत्यन्तरात्। शवकर्मण्यनादरं दर्शयन्विद्यां स्तौति न पुनः शवकर्मैवंविदो न कर्तव्यमिति। अक्रियमाणे हि शवकर्मणि कर्मणां फलारम्भे प्रतिबन्धः कश्चिदनुमीयतेऽन्यत्र। यत इह विद्याफलारम्भकाले शवकर्म स्याद्वा न वेति विद्यावतोऽप्रतिबन्धेन फलारम्भं दर्शयति। ये सुखाकाशमक्षिस्थं संयद्वामो वामनीर्भामनीरित्येवंगुणमुपासते प्राणसहितामग्निविद्यां च, तेषामन्यत्कर्म भवतु मा वा भूत्सर्वथाऽपि तेऽर्चिषमेवाभिसंभवन्त्यर्चिरभिमानिनीं

दित्यमादित्याच्चन्द्रमसं, चन्द्रमसो विद्युतं, तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नाऽऽवर्तन्ते नाऽऽवर्तन्ते ।।५।। कार्यं बादरि प्रतिरूपपत्तेः "ब्रह्म

इति चतुर्थाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।। १५।।

देव को प्राप्त होता है। उन मासों से संवत्सराभिमानी को, संवत्सर से आदित्य को और आदित्य से चन्द्रमा को, चन्द्रमा से विद्युत को प्राप्त करता है। वहाँ से विद्युतलोक में गये उपासकों को अमानव पुरुष ब्रह्मलोक से आकर सत्यलोकस्थ ब्रह्म के पास पहुँचा देता है। यह देव मार्ग है, यह ब्रह्म मार्ग है। इस मार्ग से जाने वाले उपासक इस मानव सृष्टि में नहीं लौटते नहीं लौटते ।।५।।

।।इति चतुर्थाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।।

देवतामभिसंभवन्ति प्रतिपद्यन्ते इत्यर्थः।

अर्चिषोऽर्चिर्देवताया अहरहरभिमानिनीं देवतामह्नः आपूर्यमाणपक्षं शुक्लपक्ष-देवतामापूर्यमाणपक्षाद्यान्षण्मासानुदङ्ङुत्तरां दिशमेति सविता तान्मासानुत्तरायणदेवतां तेभ्यो **मासेभ्यः संवत्सरं** संवत्सरदेवतां ततः **संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं· चन्द्रमसो विद्युतं, तत**त्रस्थांस्तान्पुरुषः कश्चिद्ब्रह्मलोकादेत्य **मानवो** मानव्यां सृष्टौ भवो मानवो न मानवोऽमानव **स** पुरुष **एनान्ब्रह्म** सत्यलोकस्थं **गमयति** गन्तृगन्तव्यगमयितृत्वव्यपदेशेभ्यः। सन्मात्रब्रह्मप्राप्तौ तदनुपपत्तेः। ब्रह्मैव सन्ब्रह्मा-प्येतीति हि तत्र वक्तुं न्याय्यम्। सर्वभेदनिरासेन सन्मात्रप्रतिपत्तिं वक्ष्यति। न चादृष्टो मार्गोऽगमनायोपतिष्ठते। ''स एनमविदितो न भुनक्ति'' इति श्रुत्यन्तरात्। **एष देवपथो** देवैरर्चिरादिभिर्गमयितृत्वेनाधिकृतैरुपलक्षितः पन्था देवपथ उच्यते। ब्रह्म गन्तव्यं तेन चोपलक्षित इति **ब्रह्मपथः**। **एतेन प्रतिपद्यमाना** गच्छन्तो ब्रह्मे**मं मानवं** मनुसंबन्धिनं मनोः सृष्टिलक्षण**मावर्तं नाऽऽवर्तन्त** आवर्तन्तेऽ-स्मिञ्जननमरणप्रबन्धचक्रारूढा घटीयन्त्रवत्पुनः पुनरित्यावर्तास्तं न प्रतिपद्यन्ते। **नाऽऽवर्तन्त** इति द्विरुक्तिः सफलाया विद्यायाः परिसमाप्तिप्रदर्शनार्था।।५।।

इति चतुर्थाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः।।१५।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्य षोडशः खण्डः)

एष ह वै यज्ञो, योऽयं पवते, एष ह यन्निदꣳ सर्वं पुनाति, यदेष यन्निदꣳ सर्वं पुनाति, तस्मादेष एव यज्ञस्तस्य मनश्च वाक्च वर्तनी ॥१॥

तयोरन्यतरां मनसा सꣳस्करोति ब्रह्मा, वाचा होताऽध्वर्यु-

यज्ञ की उपासना

यह जो वायु रूप से चलता है, निश्चय यज्ञ ही है। निःसन्देह यह सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करता है। यह गमन करता हुआ निश्चय ही सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करता है, इसीलिये यही यज्ञ है। (यज्ञ के मन्त्रोच्चारण करने में प्रवृत्त) वाणी और यथार्थ वस्तु के ज्ञान में प्रवृत्त मन ये दोनों मार्ग हैं ॥१॥

ब्रह्मा के मौन भंग होने पर यज्ञ की हानि

उन दोनों मार्गों में से एक मार्ग का ब्रह्मा नामक ऋत्विक् विवेकयुक्त मन से संस्कार

रहस्यप्रकरणे प्रसङ्गादारण्यकत्वसामान्याच्च यज्ञे क्षते उत्पन्ने व्याहृतयः प्रायश्चित्तार्था विधातव्यास्तदभिज्ञस्य चर्त्विजो ब्रह्मणो मौनमित्यत इदमारभ्यते—

एष ह वा एष वायु**र्योऽयं पवते**ऽयं **यज्ञः**। ह वा इति प्रसिद्धार्थावद्योतकौ निपातौ, वायुप्रतिष्ठो हि यज्ञः प्रसिद्धः श्रुतिषु। "स्वाहा वाते धाः" "अयं वै यज्ञो योऽयं पवते" इत्यादिश्रुतिभ्यः वात एव हि चलनात्मकत्वात्क्रियासमवायी। "वात एव यज्ञस्याऽऽरम्भको वातः प्रतिष्ठा" इति च श्रवणात्। **एष ह यन्**गच्छंश्चलन्**निदं सर्वं** जगत्**पुनाति** पावयति शोधयति। न ह्यचलतः शुद्धिरस्ति। दोषनिरसनं चलतो हि दृष्टं न स्थिरस्य। यद्यस्माच्च यन्नेष **इदं सर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञो** यत्पुनातीति। **तस्या**स्यैवं विशिष्टस्य यज्ञस्य वाक्च मन्त्रोच्चारणे व्यापृता। मनश्च यथाभूतार्थज्ञाने व्यापृतम्। ते एते वाङ्मनसे **वर्तनी** मार्गौ याभ्यां यज्ञस्तायमानः प्रवर्तते ते वर्तनी। "प्राणापानपरिचलनवत्या हि वाचश्चित्तस्य चोत्तरोत्तरक्रमो यद्यज्ञः" इति हि श्रुत्यन्तरम्। अतो वाङ्मनसाभ्यां यज्ञो वर्तते इति वाङ्मनसे वर्तनी उच्येते यज्ञस्य ॥ १ ॥

तयोर्वर्तन्यो**रन्यतरां** वर्तनीं **मनसा** विवेकज्ञानवता **संस्करोति** ब्रह्मर्त्विग्, **वाचा**

रुद्गाताऽन्यतरा\u0943ं, स यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदति ॥२॥

अन्यतरामेव वर्तनीं\u0943ं सं\u0943ंस्करोति, हीयतेऽन्यतरा स यथैकपाद्व्रजन्रथो वैकेन चक्रेण वर्तमानो रिष्यत्येवमस्य यज्ञो रिष्यति, यज्ञं\u0943ं रिष्यन्तं, यजमानोऽनुरिष्यति, स इष्ट्वा पापीयान्भवति ॥३॥

करता है तथा होता, अध्वर्यु और उद्गाता ये तीनों ऋत्विक् भी वाणी रूप मार्ग द्वारा दूसरे मार्ग का संस्कार करते हैं। यदि प्रातरनुवाक के आरम्भ हो जाने पर परिधानीया ऋचा के उच्चारण से पूर्व ब्रह्मा बोल जाय, तो वह एक वाणी रूप मार्ग का ही संस्कार करता है। दूसरा मन रूप मार्ग छिद्रयुक्त हो जाता है। जैसे एक पाद से चलने वाला पुरुष या एक चक्र से चलने वाला रथ नष्ट हो जाता है, वैसे ही इसका यज्ञ नष्ट हो जाता है। यज्ञ नष्ट हो जाने के बाद यजमान का भी नाश हो जाता है, फिर तो इस प्रकार यज्ञ करके वह और भी अधिकतर पापी होता है ।।२-३।।

वर्तन्या **होताऽध्वर्युरुद्गातेत्येते** त्रयोऽप्यृत्विजो**ऽन्यतरां** वाग्लक्षणां वर्तनीं वाचैव संस्कुर्वन्ति। तत्रैवं सति वाङ्मनसे वर्तनी संस्कार्ये यज्ञे। अथ स ब्रह्मा **यत्र** यस्मिन्काल **उपाकृते** प्रारब्धे **प्रातरनुवा**के शस्त्रे **पुरा** पूर्वं **परिधानीयाया** ऋचो **ब्रह्मै**तस्मिन्नन्तरे काले **व्यववदति** मौनं परित्यजति यदि, तदा**ऽन्यतरामेव** वाग्व**र्तनीं संस्करोति**। ब्रह्मणाऽसंस्क्रियमाणा मनोवर्तनी **हीयते** विनश्यति च्छिद्रीभवत्य**ऽन्यतरा**। स यज्ञो वाग्वर्तन्यैवान्यतरया वर्तितुमशक्नुवन्रिष्यति। कथमिवेत्याह। **स यथैकपा**त्पुरुषो **व्रजन**गच्छन्नध्वानं रिष्यति, **रथो वैकेन चक्रेण वर्तमानो** गच्छन्**रिष्यत्येवमस्य** यजमानस्य कुब्रह्मणा **यज्ञो रिष्यति** विनश्यति। **यज्ञं रिष्यन्तं यजमानोऽनुरिष्यति**। यज्ञप्राणो हि यजमानः। अतो युक्तो यज्ञरेषे रेषस्तस्य। **स** तं **यज्ञमिष्ट्वा** तादृशं **पापीयान्**पापतरो **भवति**।। २।। ३।।

अथ यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके न पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदत्युभे एव वर्तनी सꣳस्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्यतरा ।।४।।

स यथोभयपाद्व्रजन्रथो वोभाभ्यां चक्राभ्यां वर्तमानः प्रतितिष्ठत्येवमस्य यज्ञः प्रतितिष्ठति, यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनुप्रतितिष्ठति, स इष्ट्वा श्रेयान्भवति ।।५।।

इति चतुर्थाध्यायस्य षोडशः खण्डः ।। १६ ।।



ब्रह्मा के मौन धारण से यज्ञ की सिद्धि

और यदि विद्वान् ब्रह्मा प्रातरनुवाक आरम्भ करने के बाद परिधानीया ऋचा से पूर्व मौन त्यागता नहीं, तो (सभी ऋत्विक् मिलकर) दोनों ही मार्गों का संस्कार करते हैं, तब एक भी मार्ग नष्ट नहीं होता ।।४।।

जैसे दोनों पैरों से चलने वाला पुरुष या दोनों चक्रों से चलने वाला रथ प्रतिष्ठित रहता है, इसी प्रकार इस यजमान का यज्ञ प्रतिष्ठित रहता है और यज्ञ के प्रतिष्ठित रहने पर (यज्ञ के समान ही) यजमान भी प्रतिष्ठित रहता है (इस प्रकार मौन विज्ञानयुक्त ब्रह्मा वाला) वह यजमान यज्ञ करके श्रेष्ठ होता है ।।५।।

।। इति षोडशः खण्डः ।।

अथ पुन**र्यत्र** ब्रह्मा विद्वान्मौनं परिगृह्य वाग्विसर्गमकुर्वन्वर्तते यावत्**परिधानीयाया न व्यववदति,** तथैव सर्वर्त्विज **उभे एव वर्तनी संस्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्यतरा**ऽपि। किमिवेत्याह। पूर्वोक्तविपरीतौ दृष्टान्तौ। एवमस्य यजमानस्य **यज्ञः** स्ववर्तनीभ्यां **वर्तमानः** प्रतितिष्ठति स्वेनाऽऽत्मनाऽविनश्यन्वर्तत इत्यर्थः।। **यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनुप्रतितिष्ठति स** यजमान एवं मौनविज्ञानवद्ब्रह्मोपेतं यज्ञ**मिष्ट्वा श्रेयान्भवति** श्रेष्ठो भवतीत्यर्थः।। ४ ।। ५ ।।

इति चतुर्थाध्यायस्य षोडशः खण्डः ।।१६ ।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः)

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानाꣳ रसान्प्रावृहदग्निं पृथिव्या वायुमन्तरिक्षादादित्यं दिवः ॥१॥

स एतास्तिस्त्रो देवता अभ्यतपत्तासां तप्यमानानाꣳ रसान्प्रावृहदग्नेर्ऋचो वायोर्यजूꣳषि सामान्यादित्यात् ॥२॥

स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्तस्यास्तप्यमानाया रसान्प्रावृहद्-भूरित्यृग्भ्यो भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः ॥३॥

यज्ञ दोष के निवारणार्थ व्याहृतियों की उपासना

प्रजापति ने लोकों को उद्देश्य बनाकर (इनके सार ग्रहण की इच्छा से) ध्यान रूप तप किया। उन तपे हुए लोकों में से उसने रस निकाला। पृथिवी से अग्नि रूप रस, अन्तरिक्ष से वायु रूप रस तथा द्युलोक से आदित्य रूप रस को निकाला ॥१॥

फिर भी प्रजापति ने अग्न्यादि इन तीन देवताओं को लक्ष्य बनाकर तप किया। उन तपे हुए देवताओं से उसने रस निकाले। अग्नि से ऋक्, वायु से यजुः और आदित्य के साम वेद को निकाला॥ २॥

उसके बाद उस प्रजापति ने इस त्रयीविद्या को लक्ष्य में रखकर तप किया। उस तपी हुई

अत्र ब्रह्मणो मौनं विहितं, तद्रेषे ब्रह्मत्वकर्मणि चाथान्यस्मिंश्च हौत्रादिकर्मरेषे व्याहृतिहोमः प्रायश्चित्तमिति तदर्थं व्याहृतयो विधातव्या इत्याह–

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपल्लोकानुद्दिश्य तत्र सारजिघृक्षया ध्यानलक्षणं तपश्चचार। **तेषां तप्यमाना**नां लोकानां **रसान्**साररूपान्**प्रावृहद्**उद्धृतवाञ्जग्राहेत्यर्थः। कान्? **अग्निं** रसं **पृथिव्याः। वायुमन्तरिक्षात्। आदित्यं दिवः**॥ १॥

पुनरप्येवमेवाग्न्याद्याः **स एतास्तिस्त्रो देवता** उद्दिश्या**भ्यतपत्**। ततोऽपि सारं रसं त्रयीविद्यां जग्राह॥ २॥

स एतां पुनरभ्यतप**त्त्रयीं विद्याम्। तस्यास्तप्यमानाया रसान् भूरिति** व्याहृति**मृग्भ्यो** जग्राह। **भुवरिति** व्याहृतिं **यजुर्भ्यः**। **स्वरिति** व्याहृतिं **सामभ्यः**।

तद्यदृक्तो रिष्येद्भूः स्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयादृचामेव तद्रसेनर्चां वीर्येणर्चां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति ।।४।।

अथ यदि यजुष्टो रिष्येद्भुवः स्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयाद्यजुषामेव तद्रसेन यजुषां वीर्येण यजुषां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति ।।५।।

अथ यदि सामतो रिष्येत्स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्साम्नामेव तद्रसेन साम्नां वीर्येण साम्नां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति ।।६।।

विद्या से उसने रस निकाले। ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः और सामवेद से स्वः इन तीनों व्याहृतिरूप रसों को निकाला।।३।।

उस यज्ञ में यदि ऋग्वेदों के संबन्ध से क्षति हो तो "भूः स्वाहा" ऐसा उच्चारण कर गार्हपत्याग्नि में हवन करे। इस प्रकार वह यजमान ऋचाओं के रस से ऋक् श्रुतियों के ओज द्वारा यज्ञ के ऋक् संबन्धी विच्छेद की पूर्ति करता है।।४।।

और यदि यजुर्वेद के निमित्त से क्षति हो तो "भुवः स्वाहा" ऐसा उच्चारण कर दक्षिणाग्नि में हवन करे। इस प्रकार यजुर्वेद के रस से यजुर्वेद के ओज द्वारा यज्ञ के यजुः संबन्धी क्षति की पूर्ति करता है।।५।।

एवं यदि साम श्रुतियों के निमित्त से क्षति हो तो "स्वः स्वाहा" ऐसा उच्चारण कर आहवनीयाग्नि में हवन करे। इस प्रकार वह साम के रस से साम के ओज द्वारा साम संबन्धी यज्ञ की क्षति की पूर्ति करता है।।६।।

अत एव लोकदेववेदरसा महाव्याहृतयः। अतस्तत्तत्र यज्ञे यद्यृक्त ऋक्संबन्धादृङ्निमित्तं रिष्येद्यज्ञः क्षतं प्राप्नुयाद्भूः **स्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयात्**। सा तत्र प्रायश्चित्तिः। कथम्? ऋचामेव तदिति क्रियाविशेषणं, रसेनर्चां वीर्येणौजसर्चां यज्ञस्य ऋक्संबधिनो **यज्ञस्य विरिष्टं** विच्छिन्नं क्षतरूपमुत्पन्नं **संदधाति** प्रतिसंधत्ते।।३।।४।।

अथ यदि यजुष्टो यजुर्निमित्तं **रिष्येद्भुवः स्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयात्**। तथा सामनिमित्ते रेषे स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्। तथा पूर्ववद्यज्ञं **संदधाति**। ब्रह्मनिमित्ते तु रेषे त्रिष्वग्निषु तिसृभिर्व्याहृतिभिर्जुहुयात्। त्रय्या हि विद्यायाः स रेषः। "अथ केन ब्रह्मत्वमित्यनयैव त्रय्या विद्यया" इति श्रुतेः। न्यायान्तरं वा मृग्यं ब्रह्मत्वनिमित्ते रेषे।।५।।६।।

तद्यथा लवणेन सुवर्णꣳ संदध्यात्सुवर्णेन रजतꣳ, रजतेन त्रपु, त्रपुणा सीसꣳ, सीसेन लोहं, लोहेन दारु, दारु चर्मणा ।।७।।

एवमेषां लोकानामासां देवतानामस्यास्त्रय्या विद्याया वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवति ।।८।।

एष ह वा उदक्प्रवणो यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवत्येवंविदꣳ

विद्वान् ब्रह्मा की विशेषता

इस संबन्ध में (ऐसा समझना चाहिये कि) जैसे लवण (क्षार) से सुवर्ण को, सुवर्ण से रजत को, रजत से राँगे को, राँगे से शीशे को, शीशे से लोहे को, लोहे से काष्ठ को या चमड़े के बन्धन से काष्ठ को जोड़ा जाता है।।७।।

वैसे ही इन लोक, देवता और त्रयीविद्या के ओज से यज्ञ की क्षति की पूर्ति करते हैं। जिसमें इस प्रकार विद्वान् ब्रह्मा होता है, वह यज्ञ निश्चय ही मानो औषधियों द्वारा सुसंस्कृत होते हैं।।८।।

जहाँ ऐसा विद्वान् होता है, वह यज्ञ उत्तर मार्ग की प्राप्ति कराने वाला होता है। इस प्रकार जानने वाले ब्रह्मा को लक्ष्य में रखकर ही यह गाथा प्रसिद्ध हुई है कि जहाँ-जहाँ कर्म आवृत

तद्यथा लवणेन सुवर्णं संदध्यात्। क्षारेण टङ्कणादिना खरे मृदुत्वकरं हि तत्। **सुवर्णेन रजतम**शक्यसंधानं संदध्यात्। **रजतेन** तथा **त्रपु त्रपुणा सीसं सीसेन लोहं, लोहेन दारु, दारु चर्मणा**, चर्मबन्धनेन। **एवमेषां लोकानामासां देवतानामस्यास्त्रय्या विद्याया वीर्येण** रसाख्येनौजसा **यज्ञस्य विरिष्टं संदधाति। भेषजकृतो ह वा एष यज्ञः**। रोगार्त इव पुमांश्चिकित्सकेन सुशिक्षितेनै**ष यज्ञो भवति**। कोऽसौ। **यत्र** यस्मिन्यज्ञे **एवंवि**द्यथोक्तव्याहृतिहोमप्रायश्चित्तवि**द्ब्रह्मा**र्त्विग्**भवति** स यज्ञ इत्यर्थः।।७।।८।।

किंचैष ह वा उदक्प्रवण, उदङ्निम्नो दक्षिणोच्छ्रायो यज्ञो भवति। उत्तरमार्गप्रतिपत्तिहेतुरित्यर्थः। **यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवत्येवंविदं** ह वै **ब्रह्माण**मृत्विजं

स्तुतिपरा

ह वा एषा ब्रह्माणमनुगाथा यतो यत आवर्तते तत्तद्गच्छति ।।९।।

योद्धान् मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक्कुरूनश्वाऽभिरक्षत्येवंविद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानꣳसर्वाꣳश्चर्त्विजोऽभिरक्षति, तस्मादेवंविदमेव ब्रह्माणं कुर्वीत, नानेवंविदं नानेवंविदम् ।।१०।।

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ।।१७।।

इति च्छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ।।४।।

होता है, वहाँ पर वह पहुँच जाता है (और यज्ञकर्ता की सब प्रकार से रक्षा करता है) एक मौनी (मनन शील) ब्रह्मा ही ऋत्विक् है। जैसे युद्ध में घोड़ी योद्धाओं की रक्षा सब प्रकार से करती है, वैसे ही ऐसा जानने वाला ब्रह्मा यज्ञ, यजमान और समस्त ऋत्विजों की भी रक्षा करता है। अतः इस प्रकार जानने वाले को ही ब्रह्मा बनावे, ऐसा न जानने वाले को ब्रह्मा न बनावे। दुरुक्ति अध्याय की समाप्ति का सूचक है।।९।।१०।।

।।इति चतुर्थाध्यायः सप्तदशः खण्डः ।।

इस प्रकार छान्दोग्योपनिषत् चतुर्थ अध्याय की श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य कैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज कृत मिताक्षरा व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।४।।

प्रत्येषाऽ**नुगाथा** ब्रह्मणः स्तुतिपरा। **यतो यत आवर्तते** कर्म प्रदेशादृत्विजां यज्ञः क्षतीभवंस्तत्तद्यज्ञस्य क्षतरूपं प्रतिसंदधत्प्रायश्चित्तेन **गच्छति** परिपालयतीत्येतत्।।९।।

मानवो ब्रह्मा मौनाचरणान्मननाद्वा ज्ञानवत्त्वात्ततो **ब्रह्मैवैक ऋत्विक्कुरू**न्कर्तॄन्। योद्धृनारूढानश्वा वडवा यथा**ऽभिरक्षत्येवंविद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानं** सर्वांश्चर्त्विजोऽभिरक्षति तत्कृतदोषापनयनात्। यत एवं विशिष्टो ब्रह्मा विद्वांस्त**स्मादेवंविदमेव** यथोक्तव्याहृत्यादिविदं **ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं** कदाचनेति। द्विरभ्यासोऽध्यायपरिसमाप्त्यर्थः।।१०।।

इति अष्टमाह्निकम्।।८।।

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः।।१७।।

इति श्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः।।४।।

ॐ

पञ्चमोऽध्याय:

(अथ पञ्चमाध्यायस्य प्रथम: खण्ड:)

ॐ। यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद, ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति, प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ।।१।।

यो ह वै वसिष्ठं वेद, वसिष्ठो ह स्वानां भवति, वाग्वाव वसिष्ठ: ।।२।।

ज्येष्ठादि गुण विशिष्ट प्राण की उपासना

जो कोई (आयु में प्रथम होने से) ज्येष्ठ और (गुणों में अधिक होने से) श्रेष्ठ को जानता है, वह निश्चय ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हो जाता है, (क्योंकि कार्यकरणसंघात में) निश्चय ही प्राण ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ है।।१।।

जो कोई (अत्यन्त आच्छादक और धनवान् होने से) वसिष्ठ को जानता है, वह स्वजातियों में वसिष्ठ होता है। निश्चय ही वाग् वसिष्ठ है (क्योंकि श्रेष्ठ वक्ता लोग ही दूसरों को पराभव करते एवं धनी भी होते हैं)।।२।।

सगुणब्रह्मविद्याया उत्तरा गतिरुक्ता। अथेदानीं पञ्चमेऽध्याये पञ्चाग्निविदो गृहस्थस्योर्ध्वरेतसां च श्रद्धालूनां विद्यान्तरशीलिनां तामेव गतिमनूद्यान्या दक्षिणदिक्संबन्धिनी केवलकर्मिणां धूमादिलक्षणा पुनरावृत्तिरूपा, तृतीया च। तत: कष्टतरा संसारगतिर्वैराग्य-हेतोर्वक्तव्येत्यारभ्यते। प्राण: श्रेष्ठो वागादिभ्य: प्राणो वाव संवर्ग इत्यादि च बहुशोऽतीते ग्रन्थे प्राणग्रहणं कृतं, स कथं श्रेष्ठो वागादिषु सर्वै: संहत्यकारित्वाविशेषे, कथं च तस्योपासनमिति तस्य श्रेष्ठत्वादिगुणविधित्सया प्रथममिदमनन्तरमारभ्यते—

यो ह वै कश्चिज्**ज्येष्ठं च** प्रथमं वयसा, **श्रेष्ठं** च गुणैरभ्यधिकं **वेद,** स **ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति**। फलेन पुरुषं प्रलोभ्याभिमुखीकृत्याऽऽह— **प्राणो वाव ज्येष्ठ**श्च वयसा वागादिभ्य:। गर्भस्थे हि पुरुषे प्राणस्य वृत्तिर्वागादिभ्य: पूर्वं लब्धात्मिका भवति, यया गर्भो विवर्धते चक्षुरादिस्थानावयवनिष्पत्तौ सत्यां पश्चाद्वागादीनां वृत्तिलाभ इति प्राणो ज्येष्ठो वयसा भवति। श्रेष्ठत्वं तु प्रतिपादयिष्यति 'सुहय' इत्यादिनिदर्शनेन। अत: प्राण एव ज्येष्ठश्च **श्रेष्ठश्चा**स्मिन्कार्यकरणसंघाते।।१।।

यो ह वै वसिष्ठं वसितृतममाच्छादयितृतमं वसुमत्तमं वा यो **वेद,** स तथैव **वसिष्ठो ह** भवति **स्वानां** ज्ञातीनाम्। कस्तर्हि वसिष्ठ इत्याह। **वाग्वाव वसिष्ठो** वाग्मिनो हि पुरुषा वसन्त्यभिभवन्त्यन्यान्वसुमत्तमाँश्चातो वाग्वसिष्ठ:।। २।।

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ॥३॥

यो ह वै संपदं वेद सꣳ हास्मै कामाः पद्यन्ते दैवाश्च मानुषाश्च श्रोत्रं वाव संपत् ॥४॥

यो ह वा आयतनं वेदाऽऽयतनꣳ ह स्वानां भवति मनो ह वा आयतनम् ॥५॥

जो कोई प्रतिष्ठा को जानता है, वह इस लोक और परलोक में प्रतिष्ठित होता है। चक्षु ही प्रतिष्ठा है (क्योंकि नेत्र से ही देखकर सम एवं विषम स्थानों में प्रतिष्ठित होता है)॥३॥

जो कोई संपद् को जानता है, उसे दैव और मानुष भोग सम्यक् प्रकार से प्राप्त होते हैं। श्रोत्र ही संपद् है (क्योंकि श्रोत्र से वेद और उसके अर्थ को जानकर कर्मानुष्ठान करके भोगों को प्राप्त करता है)।४॥ जो कोई आयतन को जानता है, वह सजातियों का आयतन बन जाता है। निश्चय ही मन आयतन है (क्योंकि इन्द्रियों द्वारा उपस्थापित विषयों का मन ही आश्रय है)॥५॥

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद सा चास्मिँल्**लोकेऽमुष्मिंश्च** परे प्रतितिष्ठति **ह**। का तर्हि प्रतिष्ठेत्याह- **चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा**। चक्षुषा हि पश्यन्समे च दुर्गे च प्रतितिष्ठति यस्मात्। अतः प्रतिष्ठा चक्षुः॥३॥

यो ह वै संपदं वेद, तस्मा **अस्मै दैवाश्च मानुषाश्च कामाः** संपद्यन्ते **ह**। का तर्हिसंपदित्याह- **श्रोत्रं वाव संपत्**। यस्माच्छ्रोत्रेण वेदा गृह्यन्ते तदर्थविज्ञानं च, ततः कर्माणि क्रियन्ते, ततः कामसंपदित्येवं कामसंपद्धेतुत्वाच्छ्रोत्रं वाव संपत्॥४॥

यो ह वा आयतनं वेदाऽऽयतनं ह स्वानां भवत्याश्रयो भवतीत्यर्थः। किं तदायतनमित्याह। **मनो ह वा आयतनम्**। इन्द्रियोपहृतानां विषयाणां भोक्त्रर्थानां प्रत्ययरूपाणां मन आयतनमाश्रयः। अतो मनो ह वा आयतनमित्युक्तम्॥५॥

अथ ह प्राणा अहꣳश्रेयसि व्यूदिरेऽहꣳ श्रेयानस्म्यहꣳ श्रेयानस्मीति ॥६॥

ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन्को नः श्रेष्ठ इति तान्होवाच यस्मिन्व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ॥७॥

सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा कला अवदन्तः प्राणन्तः

इन्द्रियों का परस्पर विवाद

एक बार "मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं ज्येष्ठ हूँ" इस प्रकार अपनी श्रेष्ठता के लिये इन्द्रियाँ परस्पर विवाद करने लग गयीं।।६।।

श्रेष्ठता के लिये प्रजापति का निर्णय

इस प्रकार विवाद करते हुए उन प्राणों ने अपने पिता प्रजापति के पास जाकर कहा- भगवन्! हममें कौन श्रेष्ठ है? प्रजापति ने उन्हें उत्तर दिया- तुममें से जिसके उत्क्रमण करने पर यह शरीर अत्यन्त पापिष्ठ (प्राणहीन एवं निकृष्ट) सा दिखायी दे, वही तुममें श्रेष्ठ है।।७।।



वाणी की परीक्षा

उस वाणी ने उत्क्रमण किया और उसने एक वर्ष तक प्रवास करने के बाद फिर लौट कर उन प्राणों से कहा- मेरे बिना तुम लोग कैसे जीवित रह सके? अन्य इन्द्रियों ने उत्तर दिया- जैसे

अथ ह प्राणा एवं यथोक्तगुणाः सन्तोऽहंश्रेयस्यहं **श्रेयानस्म्यहं श्रेयानस्मीत्ये**-तस्मिन्प्रयोजने **व्यूदिरे** नाना विरुद्धं चोदिर उक्तवन्तः।।६।।

ते ह ते हैवं विवदमाना आत्मनः श्रेष्ठत्वविज्ञानाय **प्रजापतिं पितरं** जनयितारं कंचिदेत्योचुरुक्तवन्तो हे **भगवन्को नो**ऽस्माकं मध्ये श्रेष्ठोऽभ्यधिको गुणैरित्येवं पृष्टवन्तः, **तान्पितोवाच ह यस्मिन्वो** युष्माकं मध्य **उत्क्रान्ते शरीरमिदं** पापिष्ठमिव जीवतोऽपि समुत्क्रान्तप्राणं ततोऽपि **पापिष्ठतरमिव**ातिशयेन **दृश्येत** कुणपमस्पृश्यमशुचि दृश्येत, स वो युष्माकं **श्रेष्ठ इत्य**वोचत्काक्वा तद्दुःखं परिजिहीर्षुः।।७।।

तथोक्तेषु पित्रा प्राणेषु **सा ह वागुच्चक्रामो**त्क्रान्तवती। सा चोत्क्रम्य संवत्सरमात्रं **प्रोष्य** स्वव्यापारान्निवृत्ता सती पुनः पर्येत्येतरान्प्राणानुवाच, कथं केन प्रकारेणाशकत

प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह वाक् ।।८।।

चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथाऽन्धा अपश्यन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षुः ।।९।।

श्रोत्रꣳ होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो

गूँगे संसार में वाणी से बिना बोले प्राण से प्राणन करते हुए जीवित रहते हैं; वैसे ही (हम जीवित रहे)। ऐसा सुनकर अपनी अश्रेष्ठता जानकर वाणी शरीर में पुनः प्रवेश कर गयी।।८।।

नेत्र की परीक्षा

फिर नेत्र ने उत्क्रमण किया, उसने भी एक वर्ष प्रवास करने के बाद लौट कर शेष प्राणों से पूछा- मेरे बिना तुम कैसे जीवित रह सके? जैसे अंधे लोग नेत्र से रूप देखे बिना ही प्राण से प्राणन करते हुए, वाणी से बोलते हुए, कान से सुनते और मन से चिन्तन करते हुए जीवित रहते हैं, वैसे ही (हम भी जीवित रहे)। इस प्रकार अपनी अश्रेष्ठता जानकर नेत्र ने फिर शरीर में प्रवेश किया।।९।।

श्रोत्र की परीक्षा

पुनः श्रोत्र ने उत्क्रमण किया। उसने भी एक वर्ष तक प्रवास करने के बाद लौट कर अन्य प्राणों से पूछा- मेरे बिना तुम लोक कैसे जीवित रहे? जैसे बहरे कान से सुने बिना प्राण से प्राणन करते हुए, वाणी से बोलते, नेत्र से देखते और मन से चिन्तन करते हुए संसार में जीवित रहते

शक्तवन्तो यूयं मदृते मां विना जीवितुं धारयितुमात्मानमिति ते होचुर्**यथा कला** इत्यादि। कला मूका यथा लोके**ऽवदन्तो** वाचा जीवन्ति। कथम्। **प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवं** सर्वकरणचेष्टां कुर्वन्त इत्यर्थः। एवं वयमजीविष्मेत्यर्थः। आत्मनोऽश्रेष्ठतां प्राणेषु बुद्ध्वा **प्रविवेश ह वाक्**पुनः स्वव्यापारे प्रवृत्ता बभूवेत्यर्थः। समानमन्य**च्चक्षुर्होच्चक्राम श्रोत्रं होच्चक्राम मनो**

वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥१०॥

मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बाला अमनसः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेश ह मनः॥११॥

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन्स यथा सुहयः पड्वीशशङ्कून्संखिदेदेवमितरान्प्राणान्समखिदत्तꣳहाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति ॥१२॥

हैं, वैसे ही (हम भी जीवित रहे)। इस प्रकार अपनी अश्रेष्ठता जान कर श्रोत्र ने पुनः इस शरीर में प्रवेश किया।। १०।।



मन की परीक्षा

तदनन्तर मन ने उत्क्रमण किया, उसने भी एक वर्ष तक प्रवास करने के बाद अन्य प्राणों से कहा– मेरे बिना तुम कैसे जीवित रहे? जैसे अविकसित मन वाले बालक लोग प्राण से प्राणन करते हुए, वाणी से बोलते हुए, नेत्र से देखते और कान से सुनते हुए, जीवित रहते हैं, वैसे ही (हम भी जीवित रहे)। इस प्रकार अपनी अश्रेष्ठता जानकर मन ने फिर से शरीर में प्रवेश किया।। ११।।



परीक्षा में प्राण की विजय

उसके बाद मुख्य प्राण ने उत्क्रमण करना चाहा। जिस प्रकार लोक में अच्छा घोड़ा (परीक्षा के लिये मनुष्य द्वारा चाबुक से मारे जाने पर) अपने पैर बाँधने की कीलों को उखाड़ डालता है, उसी प्रकार मुख्य प्राण ने वागादि अन्य प्राणों को उखाड़ डाला। तब उन सभी वागादि प्राणों ने मुख्य प्राण के सामने जाकर कहा– भगवन्! आप हमारे स्वामी हो। हम सबमें आप ही श्रेष्ठ हैं। अतः आप उत्क्रमण न करें।। १२।।

होच्चक्रामेत्यादि। यथा बाला अमनसोऽप्ररूढमनस इत्यर्थः।। ८।। ९।। १०।। ११।।

एवं परीक्षितेषु वागादिष्व**थानन्तरं ह स** मुख्यः **प्राण उच्चिक्रमिषन्**नुत्क्रमितुमिच्छन्किमकरोदित्युच्यते। **यथा** लोके **सुहयः** शोभनोऽश्वः **पड्वीशशङ्कून्**पादबन्धनकीलान्परीक्षणायाऽऽरूढेन कशया हतः सन्**संखिदेत्**समुत्खनेत्समुत्पाटयेत्, **एवमितरान्**वागादीन्**प्राणान्समखिदत्**समुद्धृतवान्। ते प्राणाः संचालिताः सन्तः स्वस्थाने स्थातुमनुत्सहमाना **अभिसमेत्य** मुख्यं प्राणं तमूचुर्हे **भगवन्नेधि** भव **नः** स्वामी, यस्मात्त्वं नोऽस्माकं **श्रेष्ठोऽसि मा** चास्माद्देहादु**त्क्रमीरिति**।। १२।।

विकल्पानां अद्वयसमात्रेण नियन्तव्यरोऽप्युपगम्यते॥
संवाद: कल्पितो विदुषोऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां प्राणश्रेष्ठतानिर्धारणार्थम्॥

अथ हैनं वागुवाच यदहं वसिष्ठोऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीत्यथ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठाऽस्मि त्वं तत्प्रतिष्ठाऽसीति ।।१३।।

अथ हैनꣳ श्रोत्रमुवाच यदहꣳसंपदस्मि त्वं तत्संपदसीत्यथ हैनं मन उवाच यदहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति ।।१४।।

न वै वाचो न चक्षूꣳषि न श्रोत्राणि न मनाꣳसीत्याचक्षते प्राणा इत्येवाऽऽचक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति ।।१५।।

इति पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।।१।।

इन्द्रियों ने प्राण की स्तुति की

तत्पश्चात् वाणी ने प्राण से कहा- मैं जो वसिष्ठत्व गुण वाली हूँ, वह तुम्हीं वसिष्ठत्व गुण से युक्त हो। पुनः नेत्र ने प्राण से कहा- जो मैं प्रतिष्ठा वाला हूँ, वह तुम्हीं प्रतिष्ठा वाले हो।। १३।।

फिर प्राण से श्रोत्र ने कहा- मैं जो संपद् हूँ, वह तुम्हीं संपद् हो। पुनः प्राण से मन ने कहा- मैं जो आयतनत्व विशिष्ट हूँ, वह तुम्हीं आयतनत्व विशिष्ट हो।। १४।।

(लोक में इन समस्त इन्द्रियों को शास्त्रज्ञ पुरुष) न तो वाक् कहते हैं, न चक्षु, न श्रोत्र और न मन ही कहते हैं। किन्तु "प्राण" ऐसा ही कहते हैं, क्योंकि ये समस्त वागादि इन्द्रिय समुदाय प्राण ही हैं।। १५।।

।। इति प्रथम खण्डः ।।

अथ हैनं वागादयः प्राणस्य श्रेष्ठत्वं कार्येणाऽऽपादयन्त आहुर्बलिमिव हरन्तो राज्ञे विशः। कथं? **वाक्** तावदुवाच **यदहं वसिष्ठोऽस्मि** यदिति क्रियाविशेषणं यद्वसिष्ठत्वगुणोऽस्मीत्यर्थः। **त्वं तद्वसिष्ठस्तेन** वसिष्ठत्वगुणेन **त्वं तद्वसिष्ठोऽसि** तद्गुणस्त्वमित्यर्थः। अथवा तच्छब्दोऽपि क्रियाविशेषणमेव। त्वत्कृतस्त्वदीयोऽसौ वसिष्ठत्वगुणोऽज्ञानान्ममेति मयाऽभिमत इत्येतत्। तथोत्तरेषु योज्यं चक्षुःश्रोत्रमनःसु।। १३।। १४।।

श्रुतेरिदं वचो युक्तमिदं वागादिभिर्मुख्यं प्राणं प्रत्यभिहितं यस्मान्न **वै** लोके **वाचो न चक्षूंषि न श्रोत्राणि न मनांसीति** वागादीनि करणान्या**चक्षते** लौकिका

आगमज्ञा वा, किं तर्हि **प्राणा इत्येवाऽऽचक्षते** कथयन्ति, यस्मात्**प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि** वागादीनि करणजातानि **भवत्य**तो मुख्यं प्राणं प्रत्यनुरूपमेव वागादिभिरुक्तमिति प्रकरणार्थमुपसंजिहीर्षति।

ननु कथमिदं युक्तं चेतनावन्त इव पुरुषा अहंश्रेष्ठतायै विवदन्तोऽन्योन्यं स्पर्धेरन्निति। न हि चक्षुरादीनां वाचं प्रत्याख्याय प्रत्येकं वदनं संभवति। तथाऽपगमोदेहात्पुनः प्रवेशो ब्रह्मगमनं प्राणस्तुतिर्वोपपद्यते।

तत्राग्न्यादिचेतनावद्देवताधिष्ठितत्वाद्वागादीनां चेतनावत्त्वं तावत्सिद्धमागमतः। तार्किकसमयविरोध इति चेद्देह एकस्मिन्ननेकचेतनावत्त्वे। न। ईश्वरस्य निमित्तकारणत्वाभ्युपगमात्। ये तावदीश्वरमभ्युपगच्छन्ति तार्किकास्ते मनआदिकार्यकरणानामाध्यात्मिकानां बाह्यानां च पृथिव्यादीनामीश्वराधिष्ठितानामेव नियमेन प्रवृत्तिमिच्छन्ति रथादिवत्। न चास्माभिरग्न्याद्याश्चेतनावत्योऽपि देवता अध्यात्मं कर्त्र्यो भोक्त्र्योऽभ्युपगम्यन्ते, किं तर्हि, कार्यकरणवतीनां हि तासां प्राणैकदेवताभेदानामध्यात्माधिभूताधिदैवभेदकोटिविकल्पानामध्यक्षतामात्रेण नियन्तेश्वरोऽभ्युपगम्यते। स ह्यकरणः। ''अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।'' (श्वे. ३.१९) इत्यादिमन्त्रवर्णात्। ''हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानम्'' (श्वे. ४.१२) ''हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्'' (श्वे. ३.४.) इत्यादि च श्वेताश्वतरीयाः पठन्ति। भोक्ता कर्मफलसंबन्धी देहे तद्विलक्षणो जीव इति वक्ष्यामः।

वागादीनां चेह संवादः कल्पितो विदुषोऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां प्राणश्रेष्ठतानिर्धारणार्थम्। यथा लोके पुरुषा अन्योन्यमात्मनः श्रेष्ठतायै विवदमानाः कंचिद्गुणविशेषाभिज्ञं पृच्छन्ति, को नः श्रेष्ठो गुणैरिति। तेनोक्ता एकैकश्येनादः कार्यं साधयितुमुद्यच्छत, येनादः कार्यं साध्यते स वः श्रेष्ठ इत्युक्तास्तथैवोद्यच्छन्तः आत्मनोऽन्यस्य वा श्रेष्ठतां निर्धारयन्ति। तथेमं संव्यवहारं वागादिषु कल्पितवती श्रुतिः। कथं नाम विद्वान्वागादीनामेकैकस्याभावेऽपि जीवनं दृष्टं न तु प्राणस्येति प्राणश्रेष्ठतां प्रतिपद्येतेति। तथाच श्रुतिः कौषीतकिनाम्; ''जीवति वागपेतो मूकान्हि पश्यामो जीवति चक्षुरपेतोऽन्धान्हि पश्यामो जीवति श्रोत्रापेतो बधिरान्हि पश्यामो जीवति मनोपेतो बालान्हि पश्यामो जीवति बाहुच्छिन्नो जीवत्यूरुच्छिन्नः'' (कौ. ३.३) इत्याद्या।। १५।।

इति पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः।।१।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः)

स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति यत्किंचिदिदमाश्वभ्य आशकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा एतदनस्यान्नमनो ह वै नाम प्रत्यक्षं न ह वा एवंविदि किंचनानन्नं भवतीति ॥१॥

प्राणभूतत्वात्

प्राण के अन्न का वर्णन

उस मुख्य प्राण ने कहा- भला मेरा क्या अन्न होगा? तब वागादि इन्द्रियों ने कहा- कुत्तों और पक्षियों से लेकर सभी प्राणियों का यह जो कुछ भी प्रसिद्ध अन्न है। (वह सभी तेरा अन्न है) वह यह सब प्राण का अन्न है, प्राण का "अन" यह प्रत्यक्ष नाम है (क्योंकि शरीर और इन्द्रियों में सारी चेष्टाएं प्राण से ही होती हैं)। इस प्रकार प्राण विज्ञान वाले के लिये कुछ भी अभक्ष्य नहीं रहता (क्योंकि वह विद्वान् प्राण स्वरूप हो जाता है)।।१।।

स होवाच मुख्यः प्राणः **किं मेऽन्नं भविष्यतीति** 'मुख्यं प्राणं प्रष्टारमिव कल्पयित्वा वागादीन्प्रतिवक्तॄनिव कल्पयन्ती श्रुतिराह— यदिदं लोकेऽन्नजातं प्रसिद्धमा-**श्वभ्यः** श्वभिः सहाऽऽ**शकुनिभ्यः** सह शकुनिभिः सर्वप्राणिनां यदन्नं तत्तवान्नमिति **होचु**र्वागादय इति। प्राणस्य सर्वमन्नं प्राणोऽत्ता सर्वस्यान्नस्येत्येवं प्रतिपत्तये कल्पिताख्यायिकारूपाद्व्यावृत्य स्वेन श्रुतिरूपेणाऽऽह। **तद्वा एतद्य**त्किंचिल्लोके प्राणिभिरन्नमद्यतेऽ**नस्य** प्राणस्य तदन्नं प्राणेनैव तदद्यत इत्यर्थः। सर्वप्रकार-चेष्टाव्याप्तिगुणप्रदर्शनार्थमन इति प्राणस्य प्रत्यक्षं नाम। प्राद्युपसर्गपूर्वत्वे हि विशेषगतिरेव स्यात्। तथाच सर्वान्नानामत्तुर्नामग्रहणमितीदं **प्रत्यक्षं** नामान इति सर्वान्नानामत्तुः साक्षादभिधानम्। **न ह वा एवंविदि** यथोक्तप्राणविदि प्राणोऽहमस्मि सर्वभूतस्थः सर्वान्नानामत्तेति तस्मिन्नेवंविदि ह वै **किंचन** किंचिदपि प्राणिभिराद्यं सर्वै**रनन्नम**नाद्यं न **भवति** सर्वमेवंविद्यन्नं भवतीत्यर्थः। प्राणभूतत्वाद्विदुषः। "प्राणाद्वा एष उदेति प्राणेऽस्तमेति" (बृ.१.५.२३) इत्युपक्रम्य— "एवंविदो ह वा उदेति सूर्य एवंविद्यस्तमेति" इति श्रुत्यन्तरात्।।१।।

स होवाच किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचुस्तस्माद्वा एतदशिष्यन्तः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चाद्भिः परिदधति लम्भुको ह वासो भवत्यनग्नो ह भवति ।।२।।

प्राण का वस्त्र

तब फिर प्राण ने कहा– मेरा वस्त्र क्या होगा? इस पर वागादि ने कहा– "जल"। अतएव भोजन करने वाले विद्वान् पुरुष भोजन से पूर्व और पश्चात् भी मुख्य प्राण का (वस्त्र स्थानीय) जल से आच्छादन करते हैं। इसी से वह प्राण वस्त्र प्राप्त करने वाला और अनग्न होता है ।।२।।

स होवाच पुनः प्राणः। पूर्ववदेव कल्पना। **किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचुर्**वागादयः। यस्मात्प्राणस्य वास आपस्**तस्माद्वा एतदशिष्यन्तो** भोक्ष्यमाणा भुक्तवन्तश्च ब्राह्मणा विद्वांस एतत्कुर्वन्ति। किम् ? अद्भिर्वासस्थानीयाभिः **पुरस्ताद्**भोजनात्पूर्व**मुपरिष्टाच्च** भोजनादूर्ध्वं च **परिदधति** परिधानं कुर्वन्ति मुख्यस्य प्राणस्य **लम्भुको** लम्भनशीलो **वासो ह भवति**। वाससो लब्धैव भवतीत्यर्थः। **अनग्नो ह भवति**। वाससो लम्भुकत्वेनार्थसिद्धैवानग्नतेत्यनग्नो ह भवतीत्युत्तरीयवान्भवतीत्येतत्।

भोक्ष्यमाणस्य भुक्तवतश्च यदाचमनं शुद्ध्यर्थं विज्ञातं तस्मिन्प्राणस्य वास इति दर्शनमात्रमिह विधीयते। अद्भिः परिदधतीति नाऽऽचमनान्तरम्। यथा लौकिकैः प्राणिभिरद्यमानमन्नं प्राणस्येति दर्शनमात्रं, तद्वत्किं मेऽन्नं किं मे वास इत्यादिप्रश्न-प्रतिवचनयोस्तुल्यत्वात्। यद्याचमनमपूर्वं तादर्थ्येन क्रियेत, तदा कृम्याद्यन्नमपि प्राणस्य भक्ष्यत्वेन विहितं स्यात्। तुल्ययोर्विज्ञानार्थयोः प्रश्नप्रतिवचनयोः प्रकरणस्य विज्ञानार्थत्वादर्धजरतीयो न्यायो न युक्तः कल्पयितुम्।

यत्तु प्रसिद्धमाचमनं प्रायत्यार्थं प्राणस्यानग्नतार्थं च न भवतीत्युच्यते न तथा वयमाचमनमुभयार्थं ब्रूमः। किं तर्हि प्रायत्यार्थाचमनसाधनभूता आपः प्राणस्य वास इति दर्शनं चोद्यत इति ब्रूमः। तत्राऽऽचमनस्योभयार्थत्वप्रसङ्गदोषचोदनाऽनुपपन्ना। वासोर्थ एवाऽऽचमने तद्दर्शनं स्यादिति चेत्। न। वासोज्ञानार्थवाक्ये वासोऽर्थापूर्वाचमनविधाने तत्रानग्नतार्थत्वदृष्टिविधाने च वाक्यभेदः। आचमनस्य तदर्थत्वमन्यार्थत्वं चेति प्रमाणाभावात्।। २।।

तद्धैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्रपद्यायोक्त्वोवाच यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेरन्नेवास्मिञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥३॥

अथ यदि महज्जिगमिषेदमावास्यायां दीक्षित्वा पौर्णमास्याꣳ रात्रौ सर्वौषधस्य मन्थं दधिमधुनोरुपमथ्य ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय

प्राण विज्ञान की स्तुति

उस इस प्राण विज्ञान को सत्यकाम जाबाल ने गोश्रुति नामक वैयाघ्रपाद को बदलाकर कहा– यदि प्राणवेत्ता पुरुष इस दर्शन को शुष्कं स्थाणु से कहे, तो उसमें भी शाखाएं उत्पन्न हो जायेंगी और पत्ते निकल आयेंगे।।३।।

मन्थ कर्म

इसके बाद यदि वह महत्त्व को प्राप्त करना चाहे, तो उसे अमावास्या तिथि को दीक्षित पुरुष के समान नियमादि का आश्रय लेकर पूर्णिमा की रात्रि को सर्वौषध के भाग को लेकर दधि और मधु के सहित (कंसाकार गूलर के पात्र में डालकर) उस मन्थ का मंथन करे

तदेतत्प्राणदर्शनं स्तूयते। कथम्। **तद्धैतत्**प्राणदर्शनं **सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये** नाम्ना **वैयाघ्रपद्याय** व्याघ्रपदोऽपत्यं वैयाघ्रपद्यस्तस्मै गोश्रुत्याख्यायो**क्त्वोवाचा**न्यदपि वक्ष्यमाणं वचः। किं तदुवाचेत्याह— **यद्यपि शुष्काय स्थाणव** एतद्दर्शनं **ब्रूयात्**प्राणविज्जायेरन्नुत्पद्येर**न्नेवास्मिन्**स्थाणौ **शाखाः प्ररोहेयुश्च पलाशानि** पत्राणि, किमु जीवते पुरुषाय ब्रूया**दिति**।।३।।

यथोक्तप्राणदर्शनविद इदं मन्थाख्यं कर्माऽऽरभ्यते—

अथानन्तरं **यदि महन्**महत्त्वं **जिगमिषेद्**गन्तुमिच्छेन्महत्त्वं प्राप्तुं यदि कामयेतेत्यर्थः। तस्येदं कर्म विधीयते। महत्त्वे हि सति श्रीरुपनमते। श्रीमतो ह्यर्थप्राप्तं धनं, ततः कर्मानुष्ठानं ततश्च देवयानं पितृयाणं वा पन्थानं प्रतिपत्स्यत इत्येतत्प्रयोजनमुररीकृत्य महत्त्वप्रेप्सोरिदं कर्म न विषयोपभोगकामस्य। तस्यायं कालादिविधिरुच्यते— **अमावास्यायां दीक्षित्वा** दीक्षित इव भूमिशयनादिनियमं कृत्वा तपोरूपं सत्यवचनं

स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत् ॥४॥

वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत्प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत्संपदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेदायतनाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत् ॥५॥

ईषदपसृप्य प्राणस्य नाम·

अथ प्रतिसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय जपत्यमो नामास्यमा हि ते सर्वमिदꣳ स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाऽधिपतिः स मा

''ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहा'' ऐसा करते हुए आवसथ्याग्नि में आहुति देकर स्रुवा में लगे हुए शेष घृत को मन्थ पर गिरा देना चाहिये ॥४॥

(इसी प्रकार) ''वसिष्ठाय स्वाहा'' इस मन्त्र से उसी अग्नि में घृताहुति देकर अवशेष घृत को मन्थ पर डाले। ''प्रतिष्ठायै स्वाहा'' इस मन्त्र से अग्नि में घृताहुति देकर अवशेष घृत की धारा मन्थ पर डाले। 'संपदे स्वाह' इस मन्त्र से अग्नि में घृताहुति देकर अवशेष घृत का स्राव मन्थ पर डाले। एवं ''आयतनाय स्वाहा'' इस मन्त्र से उसी अग्नि में घृत की आहुति देकर अवशेष घृत का स्राव मन्थ पर डाले ॥५॥

फिर अग्नि से कुछ दूर हट कर मन्थ को अंजलि में रखकर ''अमो नामास्यमा हि ते'' इत्यादि मन्त्र का जाप करे अर्थात् हे मन्थ! तू अम नाम वाला है, क्योंकि सम्पूर्ण भूत भौतिक

ब्रह्मचर्यमित्यादिधर्मवान्भूत्वेत्यर्थः। न पुनर्दैक्षमेव कर्मजातं सर्वमुपादत्ते। अतद्विकारत्वान्मन्थाख्यस्य कर्मणः। ''उपसद्व्रती'' इतिश्रुत्यन्तरात्पयोमात्रभक्षणं च शुद्धिकारणं तप उपादत्ते **पौर्णमास्यां रात्रौ** कर्माऽऽरभते **सर्वौषधस्य** ग्राम्यारण्यानामोषधीनां यावच्छक्त्यल्पमल्पमुपादाय तद्वितुषीकृत्याऽऽममेव पिष्ट्वा **दधिमधुनोरौ**दुम्बरे कंसाकारे चमसाकारे वा पात्रे श्रुत्यन्तरात्प्रक्षिप्योपमथ्याग्रतः स्थापयित्वा **ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नावा**वसथ्य आज्यस्याऽऽवापस्थाने **हुत्वा** स्रुवसंलग्नं **मन्थे संपातमवनयेत्**संस्रवमधः पातयेत् ॥४॥

समानमन्यत्। वसिष्ठायै **प्रतिष्ठायै** संपद **आयतनाय स्वाहेति** प्रत्येकं तथैव संपातमवनयेद्धुत्वा ॥५॥

अथ प्रतिसृप्याग्नेरीषदपसृप्या**ञ्जलौ मन्थमाधाय** जपतीमं मन्त्रम्। **अमो**

ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदꣳ सर्वमसानीति ।।६।।

अथ खल्वेतयर्चा पच्छ आचामति तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति, वयं देवस्य भोजनमित्याचामति श्रेष्ठꣳ सर्वधातममित्याचामति तुरं भगस्य धीमहीति सर्वं पिबति निर्णिज्य कꣳसं चमसं वा

जगत् तेरे (प्राण के) साथ स्थित है। वह तू ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, कान्तिमान् और सबका अधिष्ठान है। अतः वह तुम मुझे ज्येष्ठत्व, श्रेष्ठत्व, राज्य और आधिपत्य प्राप्त कराओ। मैं भी आपके समान ही सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हो जाऊँ।।६।।

इसके बाद वह इस (आगे कही जाने वाली) ऋचा से पादशः (मन्थ का एक-एक ग्रास) भक्षण करता है। "तत्सवितुर्वृणीमहे" (सम्पूर्ण विश्व के जनयिता आदित्य देव के उस मन्थरूप भोजन की हम प्रार्थना करते हैं) ऐसा कहकर भक्षण करता है। "वयं देवस्य भोजनम्" (हम उस देव का भोजन बनें) ऐसा कहकर भक्षण करता है। "श्रेष्ठं सर्वधातमम्" (सम्पूर्ण अन्नों की अपेक्षा प्रशस्यतम, समस्त जगत् के अतिशय विधाता) ऐसा कहकर भोजन करता है। तथा-

---

नामास्यमा हि ते। अम इति प्राणस्य नाम। अन्नेन हि प्राणः प्राणिति देह इत्यतो मन्थद्रव्यं प्राणस्यान्नत्वात्प्राणत्वेन स्तूयतेऽमो नामासीति। कुतः। यतोऽमा सह हि यस्मात्ते तव प्राणभूतस्य **सर्वं** समस्तं जग**दिद**मतः। **स हि** प्राणभूतो मन्थो **ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च**। अत एव च **राजा** दीप्तिमान**धिपति**श्चाधिष्ठाय पालयिता सर्वस्य। **स मा** मामपि मन्थः प्राणो ज्यैष्ठ्यादिगुणपूगमात्मनो **गयमत्वहमेवेदं सर्वं** जगदसानि भवानि प्राणवत्। इतिशब्दो मन्त्रपरिसमाप्त्यर्थः।।६।।

अथानन्तरं खल्वेतया वक्ष्यमाणयर्चा **पच्छः आचामति** भक्षयति, मन्त्रस्यैकैकेन पादेनैकैकं ग्रासं भक्षयति। तद्भोजनं सवितुः सर्वस्य प्रसवितुः। प्राणमादित्यं चैकीकृत्योच्यते। आदित्यस्य **वृणीमहे** प्रार्थयेमहि मन्थरूपम्। येनान्नेन सावित्रेण भोजनेनोपभुक्तेन **वयं** सवितृस्वरूपापन्ना भवेमेत्यभिप्रायः। देवस्य सवितुरिति पूर्वेण संबन्धः। **श्रेष्ठं** प्रशस्यतमं सर्वान्नेभ्यः **सर्वधातमं** सर्वस्य जगतो धारयितृतममतिशयेन विधातृतममिति वा। सर्वथा भोजनविशेषणम्। **तुरं** त्वरं तूर्णं शीघ्रमित्येतत्। **भगस्य** देवस्य सवितुः स्वरूपमिति शेषः। **धीमहि** चिन्तयेमहि विशिष्टभोजनेन संस्कृताः

नाभिभूयते

पश्चादग्नेः संविशति चर्मणि वा स्थण्डिले वा वाचंयमोऽप्रसाहः स यदि स्त्रियं पश्येत्समृद्धं कर्मेति विद्यात् ।।७।।

तदेष श्लोको यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियꣳ स्वप्नेषु पश्यति समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ।।८।।

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ।।२।।

"तुरं भगस्य धीमहि" (हम शीघ्र ही सविता देव के स्वरूप का चिन्तन करते हैं) ऐसा कहकर कटोरे या चमचे को धोकर सारे मन्थ लेप को पी जाता है। तदनन्तर वह अग्नि के पीछे मृगचर्म या केवल पवित्र भूमि पर वाणी का संयम करके (स्त्री आदि अनिष्ट स्वप्न के दर्शन से) विकृत न होता हुआ सो जाता है, उस समय यदि वह स्वप्न में स्त्री को देखे, तो यह समझे कि मेरा यह कर्म सफल हो गया।।७।।

इस विषय में यह मन्त्र है। जिस समय सकाम कर्मों में स्वप्न में स्त्री को देखे, तो ऐसे स्वप्न के दर्शन होने पर कर्म की सफलता समझे। द्विर्वचन कर्म समाप्ति के लिये है।।८।।

।।इति द्वितीयः खण्डः ।।

शुद्धात्मानः सन्त इत्यभिप्रायः। अथवा **भगस्य** श्रियः कारणं महत्त्वं प्राप्तुं कर्म कृतवन्तो वयं **तद्धीमहि** चिन्तयेमहीति **सर्वं** च मन्थलेपं **पिबति निर्णिज्य** प्रक्षाल्य **कंसं** कंसाकारं **चमसं** चमसाकारं वौदुम्बरं पात्रम्। पीत्वाऽऽचम्य **पश्चादग्नेः** प्राक्शिराः **संविशति चर्मणि वा**ऽजिने **स्थण्डिले** केवलायां वा भूमौ। **वाचंयमो** वाग्यतः सन्नित्यर्थः। **अप्रसाहो** न प्रसह्यते नाभिभूयते स्त्र्याद्यनिष्टस्वप्नदर्शनेन यथा, तथा संयतचित्तः सन्नित्यर्थः। **स** एवंभूतो **यदि** स्त्रियं **पश्येत्**स्वप्नेषु तदा **विद्यात्समृद्धं** ममेदं **कर्मेति**।।७।।

तदेतस्मिन्नर्थ **एष श्लोको** मन्त्रोऽपि भवति। **यदा कर्मसु काम्येषु** कामार्थेषु **स्त्रियं स्वप्नेषु** स्वप्नदर्शनेषु स्वप्नकालेषु वा **पश्यति, समृद्धिं तत्र जानीयात्**। कर्मणां फलनिष्पत्तिर्भविष्यतीति जानीयादित्यर्थः। **तस्मि**न्स्त्र्यादिप्रशस्तस्वप्नदर्शने सतीत्यभिप्रायः। द्विरुक्तिः कर्मसमाप्त्यर्था।।८।।

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।।२।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः)

श्वेतकेतुर्हाऽऽरुणेयः पञ्चालानाꣳ समितिमेयाय तꣳ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच कुमारानु त्वाऽशिषत्पितेत्यनु हि भगव इति ।।१।।

वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीति न भगव इति वेत्थ यथा

पाञ्चालों की परिषद में श्वेतकेतु

अरुण का पुत्र श्वेतकेतु पञ्चाल देशवासियों की सभा में आया। उस आये हुए से जीवल के पुत्र प्रवाहण ने कहा- हे कुमार! क्या पिता ने तुझे शिक्षा दी है? ऐसा पूछने पर उसने कहा, हाँ भगवन् (मैं पिता से शिक्षित हूँ)।।१।।

श्वेतकेतु के प्रति प्रवाहण के प्रश्न

प्रवाहण- क्या तू जानता है कि इस लोक से ऊपर प्रजा कहाँ जाती है?

श्वेतकेतु ने कहा- भगवन्! (मैं उसे जानता) नहीं।

प्रवाहण ने पूछा- क्या तू जानता है, वे प्रजा फिर इस लोक में कैसे लौटती हैं?

श्वेतकेतु- भगवन्! मैं उसे नहीं जानता।

प्रवाहण- क्या तू जानता है, देवयान और पितृयाण इन दोनों मार्गों का विलगाव कहाँ से होता है?

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ताः संसारगतयो वक्तव्या वैराग्यहेतोर्मुमुक्षूणामित्यत आख्यायिकाऽऽरभ्यते—

श्वेतकेतुर्नामतो, **ह** इत्यैतिह्यार्थः। अरुणस्यापत्यमारुणिस्तस्यापत्यम**ारुणेयः पञ्चालानां** जनपदानां **समितिं** सभा**मेयाया**ऽऽजगाम। **तमा**गतवन्तं **ह प्रवाहणो** नामतो जीवलस्यापत्यं **जैवलिरुवाचो**क्तवान्। हे **कुमारानु त्वा** त्वामशिषदन्व**शिषत्पिता**। किमनुशिष्टस्त्वं पित्रेत्यर्थः, इत्युक्तः स आहानु ह्यनुशिष्टोऽस्मि **भगव इति** सूचयन्नाह।। १।।

तं होवाच यद्यनुशिष्टोऽसि, **वेत्थ यदितो**ऽस्माल्लोकादध्यूर्ध्वं यत्**प्रजाः प्रयन्ति** यद्गच्छन्ति, तत्किं जानीष इत्यर्थः। **न भगव इत्या**हेतरो न जानेऽहं तद्यत्पृच्छसि। एवं तर्हि **वेत्थ** जानीषे **यथा** येन प्रकारेण **पुनरावर्तन्त इति। न भगव इति** प्रत्याह। **वेत्थ पथो**र्मार्गयोः सहप्रयाणयोर्देवयानस्य **पितृयाणस्य च व्यावर्तना**

पुनरावर्तन्ते३ इति, न भगव इति, वेत्थ पथोर्देवयानस्य पितृयाणस्य च व्यावर्तना३ इति न भगव इति ।।२।।

वेत्थ यथाऽसौ लोको न संपूर्यते३ इति, न भगव इति, वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति नैव भगव इति ।।३।।

अथ नु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो हीमानि न विद्यात्कथꣳ सोऽनुशिष्टो ब्रुवीतेति स हाऽऽयस्तः पितुरर्धमेयाय तꣳ

श्वेतकेतु- भगवन्! इसे भी मैं नहीं जानता।। २।।

प्रवाहण- क्या तू जानता है, वह पितृलोक क्यों नहीं भर जाता?

श्वेतकेतु- भगवन्! मैं उसे नहीं जानता।

प्रवाहण- क्या तू जानता है कि पाँच संख्या वाली आहुति के होम कर दिये जाने पर सोम घृतादि जल प्रधान रस पुरुष संज्ञा को कैसे प्राप्त होते हैं?

श्वेतकेतु- नहीं भगवन्! मैं इसे भी नहीं जानता।। ३।।

फिर भला तूने "मुझे शिक्षा दी गई है" ऐसा अपने विषय में कैसे कहा? जो पुरुष मेरे इन प्रश्नों को जानता नहीं, वह विद्वत् समाज में अपने को शिक्षित कैसे कह सकता है। इसके बाद राजा

व्यावर्तनमितरेतरवियोगस्थानं सह गच्छतामित्यर्थः। **न भगव इति**।। २।।

वेत्थ यथाऽसौ लोकः पितृसंबन्धी यं प्राप्य पुनरावर्तन्ते बहुभिः प्रयद्भिरपि येन कारणेन न **संपूर्यत** इति। **न भगव इति** प्रत्याह। **वेत्थ यथा** येन क्रमेण **पञ्चम्यां** पञ्चसंख्याकाया**माहुतौ** हुतायामाहुतिनिर्वृत्ता आहुतिसाधनाश्चा**ऽऽपः पुरुषवचसः** पुरुष इत्येवं वचोऽभिधानं यासां हूयमानानां क्रमेण षष्ठाहुतिभूतानां ताः **पुरुषवचसः** पुरुषशब्दवाच्या **भवन्ति** पुरुषाख्यां लभन्त इत्यर्थः। इत्युक्तो **नैव भगव इत्या**ह। नैताहमत्र किंचन जानामीत्यर्थः।।३।।

अथैवमज्ञः सन्किम**नु** कस्मात्त्व**मनुशिष्टोऽ**स्मीत्य**वोचथा** उक्तवानसि। **यो हीमानि** मया पृष्टान्यर्थजातानि **न विद्यान्न** विजानीयात्**कथं स** विद्वत्स्व**नुशिष्टोऽ**स्मीति **ब्रुवीत**

होवाचाननुशिष्य वाव किल मा भगवानब्रवीदनु त्वाऽशिषमिति ।।४।।

पञ्च मा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षीत्तेषां नैकंचनाशकं विवक्तुमिति स होवाच यथा मा त्वं तदैतानवदो यथाऽहमेषां नैकंचन वेद यद्यहमिमानवेदिष्यं कथं ते नावक्ष्यमिति ।।५।।

से त्रस्त होकर वह श्वेतकेतु अपने पिता के स्थान पर आया और उससे कहा- श्रीमान् ने मुझे शिक्षा दिये बिना ही (समावर्तन संस्कार के समय) कह दिया था कि मैंने तुझे शिक्षा दे दी है।।४।।

उस क्षत्रियबन्धु ने मुझसे पाँच प्रश्न पूछे थे, उनमें से एक का भी विवेचन मैं नहीं कर सका। उसके पिता ने कहा- तुमने आते ही उस समय मुझे ये जैसे प्रश्न सुनाये, उनमें से मैं एक को भी नहीं जानता क्योंकि यदि मैं इन प्रश्नों को जानता होता तो (समावर्तन संस्कार के समय अपने प्रिय पुत्र) तुम्हें क्यों नहीं बतलाता?।।५।।

इत्येवं स श्वेतकेतू राज्ञाऽऽयस्त आयासितः **सन्पितुरर्धं** स्थान**मेयाया**ऽऽगतवाँस्तं च पितर**मुवाचाननुशिष्या**नुशासनमकृत्वैव **मा** मां **किल भगवान्स**मावर्तन-कालेऽ**ब्रवीदु**क्तवान**नु त्वाऽशिषम**न्वशिषं त्वामिति।।४।।

यतः **पञ्च** पञ्चसंख्याकान्प्रश्नान्**मा** मां राजन्यबन्धू राजन्या बन्धवोऽस्येति **राजन्यबन्धुः** स्वयं दुर्वृत्त इत्यर्थः। अप्राक्षीत्पृष्टवांस्तेषां प्रश्नानां **नैकंचनै**कमपि **नाशकं** न शक्तवानहं **विवक्तुं** विशेषेणार्थतो निर्णेतुमित्यर्थः। **स होवाच** पिता **यथा मा** मां वत्स **त्वं** तदाऽऽगतमात्र एवै**तान्**प्रश्नानवद उक्तवानसि तेषां **नैकंचना**शकं विवक्तुमिति तथा मां जानीहि, त्वदीयाज्ञानेन लिङ्गेन मम तद्विषयमज्ञानं जानीहीर्त्यः। कथं; **यथाऽहमेषां** प्रश्नाना**मेकंचनै**कमपि **न वेद** न जान इति। यथा त्वमेवाङ्गैतान्प्रश्नान्न जानीषे तथाऽहमप्येतान्न जान इत्यर्थः। अतो मय्यन्यथाभावो न कर्तव्यः। कुत एतदेवं यतो **यद्यहमिमान्**प्रश्नान**वेदिष्यं** विदितवानस्मि **कथं ते** तुभ्यं प्रियाय पुत्राय समावर्तनकाले पुरा **नावक्ष्यं** नोक्तवानस्मीत्युक्त्वा स ह गौतमो गोत्रतो राज्ञो जैवलेरर्धं स्थानमेयाय गतवान्। **तस्मै ह** गौतमाय **प्राप्तायार्हाम**र्हणां **चकार** कृतवान्। स च गौतमः कृतातिथ्य उषित्वा परेद्युः प्रातःकाले सभागे सभां गते राज्ञ्युदेयाय। भजनं भागः पूजा सेवा सह भागेन

स ह गौतमो राज्ञोऽर्धमेयाय तस्मै ह प्राप्तायार्हाञ्चकार स ह प्रातः सभाग उदेयाय तꣳ होवाच मानुषस्य भगवन्गौतम वित्तस्य वरं वृणीथा इति स होवाच तवैव राजन्मानुषं वित्तं यामेव कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तामेव मे ब्रूहीति स ह कृच्छ्रीबभूव ।।६।।

तꣳ ह चिरं वसेत्याज्ञापयांचकार तꣳ होवाच यथा मा त्वं गौतमावदो यथेयं न प्राक्त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान्गच्छति

पिता पुत्र का प्रवाहण के पास जाना

तब वह गौतमगोत्रोत्पन्न मुनि राजा जैवलि के पास आया। अपने यहाँ आये हुए उस अभ्यागत की पूजा राजा ने की। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही सभा में राजा के पहुँचने पर वह गौतम उसके पास गया। राजा ने उस गौतम से कहा- हे भगवन् गौतम! मनुष्यसंबन्धी ग्रामादि धन का वरदान यथेच्छ माँग लेवें। गौतम ने कहा- हे राजन्! यह मनुष्यसंबन्धी धन तुम्हारे ही पास रहे, तुमने मेरे पुत्र के प्रति जो पाँच प्रश्नरूप बात कही थी, वही बात मुझसे कहो। तब वह राजा धर्म-संकट में पड़ गया।।६।।

राजा ने उस गौतम को "चिरकाल तक यहाँ रहें" ऐसी आज्ञा दी और उस गौतम से कहा- हे गौतम! जिस प्रकार तूने मुझसे कहा है (इससे यही जान पड़ता है कि) पूर्वकाल में तुझसे पहले यह पंचाग्निविद्या ब्राह्मणों के पास नहीं गयी थी। इसी से पूर्वकाल में सम्पूर्ण लोक में इस

वर्तमानो वा सभागः पूज्यमानोऽन्यैः स्वयं गौतम **उदेयाय** राजानमुद्गतवान्। **तं होवाच** गौतमं राजा **मानुषस्य भगवन्गौतम** मनुष्यसंबन्धिनो **वित्तस्य** ग्रामादेर्वरं वरणीयं कामं **वृणीथाः** प्रार्थयेथाः। **स होवाच** गौतमस्**तवैव** तिष्ठतु **राजन्मानुषं वित्तम्**। **यामेव कुमारस्य** मम पुत्रस्यान्ते समीपे **वाचं** पञ्चप्रश्नलक्षणा**मभाषथा** उक्तवानसि **तामेव** वाचं **मे** मह्यं **ब्रूहि** कथयेत्युक्तो गौतमेन राजा, **स ह कृच्छ्री** दुःखी **बभूव**। कथं त्विदमिति।।५।।६।।

स ह कृच्छ्रीभूतोऽप्रत्याख्येयं ब्राह्मणं मन्वानो न्यायेन विद्या वक्तव्येति मत्वा **तं ह** गौतमं **चिरं** दीर्घकालं **वसे**त्येवमा**ज्ञापयांचकारा**ऽऽज्ञप्तवान्, यत्पूर्वं

तस्मादु सर्वेषु लोकेषु क्षत्त्रस्यैव प्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच ।।७।।

इति पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।।३।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः)

असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्याऽऽदित्य एव समिद्रश्मयो

विद्या का शिष्यों के प्रति अनुशासन क्षत्रियों का ही होता रहा है- अर्थात् इतने समय तक यह विद्या क्षत्रियों की परम्परा में ही आती रही है। ऐसा कहकर राजा ने गौतम से कहा।।७।।

।।इति तृतीयः खण्डः ।।

द्युलोक रूप अग्नि विज्ञान

हे गौतम! वह प्रसिद्ध द्युलोक ही अग्नि है। उस अग्नि की आदित्य ही समिधा है, (क्योंकि उससे संदीप्त होने पर ही यह लोक देदीप्यमान् होता है) आदित्य की किरणें धूम हैं,

---

प्रत्याख्यातवान्राजा विद्यां यच्च पश्चाच्चिरं वसेत्याज्ञप्तवान्, तन्निमित्तं ब्राह्मणं क्षमापयति हेतुवचनोक्त्या। **तं होवाच** राजा सर्वविद्यो ब्राह्मणोऽपि सन्यथा येन प्रकारेण **मा** मां हे **गौतमावदस्त्वं** तामेव विद्यालक्षणां वाचं मे ब्रूहीत्यज्ञानात्तेन त्वं जानीहि। तत्रास्ति वक्तव्यं **यथा** येन प्रकारे**णेयं विद्या** प्राक्त्वत्तो **ब्राह्मणान्न गच्छति** न गतवती, न च ब्राह्मणा अनया विद्ययाऽनुशासितवन्तः, तथैतत्प्रसिद्धं लोके यतस्**तस्मादु पुरा** पूर्वं **सर्वेषु लोकेषु क्षत्त्रस्यैव** क्षत्त्रजातेरेवानया विद्यया **प्रशासनं** प्रशास्तृत्वं शिष्याणा**मभूद्**बभूव। क्षत्त्रियपरम्परयैवेयं विद्यैतावन्तं कालमागता। तथाऽप्यहमेतां तुभ्यं वक्ष्यामि त्वत्संप्रदानादूर्ध्वं ब्राह्मणान्गमिष्यति। अतो मया यदुक्तं तत्क्षन्तुमर्हसीत्युक्त्वा **तस्मै होवाच** विद्यां राजा।। ७।।

इति पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।। ३।।

पञ्चम्यामाहुतावाप इत्ययं प्रश्नः प्राथम्येनापाक्रियते। तदपाकरणमन्वितरेषामपाकरणमनुकूलं भवेदिति। अग्निहोत्राहुत्योः कार्यारम्भो यः, स उक्तो वाजसनेयके "तं प्रति प्रश्नाः। उत्क्रान्तिराहुत्योर्गतिः प्रतिष्ठा तृप्तिः पुनरावृत्तिर्लोकं प्रत्युत्थायी"

धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः ॥१॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुतेः सोमो

दिन ज्वाला है, चन्द्रमा अङ्गार है (क्योंकि दिन के शान्त होने पर चन्द्र प्रकट होता है) तथा नक्षत्रगण चिनगारियाँ हैं (क्योंकि अग्नि से विस्फुलिङ्ग के समान चन्द्रमा के इधर-उधर बिखरे हुए से नक्षत्र दीखते हैं)॥१॥

उस इस द्युलोकरूप अग्नि में देवगण श्रद्धा (सूक्ष्म जल श्रद्धा पद लक्ष्य) का हवन करते

इति। तेषां चापाकरणमुक्तं तत्रैव— "ते वा एते आहुती हुते उत्क्रामतस्ते अन्तरिक्षमाविशतस्ते अन्तरिक्षमेवाऽऽहवनीयं कुर्वाते वायुं समिधं मरीचीरेव शुक्लामाहुतिं ते अन्तरिक्षं तर्पयतस्ते तत उत्क्रामत इत्याद्येवमेव पूर्ववद्दिवं तर्पयतस्ते तत आवर्तेते। इमामाविश्य तर्पयित्वा पुरुषमाविशतः। ततः स्त्रियमाविश्य लोकं प्रत्युत्थायी भवति" इति। तत्राग्निहोत्राहुत्योः कार्यारम्भमात्रमेवंप्रकारं भवतीत्युक्तम्। इह तु तं कार्यारम्भमग्निहोत्रापूर्वविपरिणामलक्षणं पञ्चधा प्रविभज्याग्नित्वेनोपासनमुत्तरमार्गप्रतिपत्तिसाधनं विधित्सन्नाह— **असौ वाव लोको गौतमाग्निरित्यादि**। इह सायंप्रातरग्निहोत्राहुती हुते पयआदिसाधने श्रद्धापुरःसरे आहवनीयाग्निसमिद्धूमार्चिरङ्गारविस्फुलिङ्गभाविते कर्त्रादिकारकभाविते चान्तरिक्षक्रमेणोत्क्रम्य द्युलोकं प्रविशन्त्यौ सूक्ष्मभूते अप्समवायित्वादप्शब्दवाच्ये श्रद्धाहेतुत्वाच्च श्रद्धाशब्दवाच्ये तयोरधिकरणोऽग्निरन्यच्च तत्संबन्धं समिदादीत्युच्यते। या चासावग्न्यादिभावनाऽऽहुत्योः साऽपि तथैव निर्दिश्यते। असौ वाव लोकोऽग्निर्हे गौतम यथाऽग्निहोत्राधिकरणमाहवनीय इह। **तस्याग्नेर्द्युलोकाख्यस्याऽऽदित्य एव** समित्तेन हीद्धोऽसौ लोको दीप्यते। अतः समिन्धनात्**समिदा**दित्यः **रश्मयो धूमस्**तदुत्थानात्, समिधो हि धूम उत्तिष्ठति। **अहरर्चिः** प्रकाशसामान्यात्, आदित्यकार्यत्वाच्च। **चन्द्रमा अङ्गाराः**। अहः प्रशमेऽभिव्यक्तेः। अर्चिषो हि प्रशमेऽङ्गारा अभिव्यज्यन्ते। **नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाश्**चन्द्रमसोऽवयवा इव विप्रकीर्णत्वसामान्यात्॥१॥

तस्मिन्नेतस्मिन्यथोक्तलक्षणे**ऽग्नौ देवा** यजमानप्राणा अध्यात्मम्। अग्न्यादिरूपा अधिदैवतम्। **श्रद्धाम**ग्निहोत्राहुतिपरिणामावस्थारूपाः सूक्ष्मा आपः श्रद्धाभाविताः श्रद्धा

राजा संभवति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः)

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो ,

हैं, उस आहुति से सोम राजा की उत्पत्ति होती है॥ २॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

पर्जन्य रूपा अग्नि विद्या

हे गौतम! (वृष्टि के अभिमानी देवता विशेषरूप) पर्जन्य ही अग्नि है, उसका वायु ही समिधा है, (क्योंकि पर्जन्यरूप अग्नि वायु से प्रदीप्त होता है)। बादल धूम है, बिजली ज्वाला

उच्यन्ते। ''पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति'' इत्यपां होम्यतया प्रश्ने श्रुतत्वात्। ''श्रद्धा वा आपः श्रद्धामेवाऽऽरभ्य प्रणीय प्रचरन्ति'' इति च विज्ञायते। तां श्रद्धामब्रूपां **जुह्वति। तस्या आहुतेः** सोमो राजाऽपां श्रद्धाशब्दवाच्यानां द्युलोकाग्नौ हुतानां परिणामः **सोमो राजा संभवति**। यथर्ग्वेदादिपुष्परसा ऋगादिमधुकरोपनीतास्त आदित्ये यशआदिकार्यं रोहितादिरूपलक्षणामारभन्त इत्युक्तं, तथेमा अग्निहोत्राहुतिसमवायिन्यः सूक्ष्माः श्रद्धाशब्दवाच्या आपो द्युलोकमनुप्रविश्य चान्द्रं कार्यमारभन्ते फलरूप-मग्निहोत्राहुत्योः। यजमानाश्च तत्कर्तार आहुतिमया आहुतिभावनाभाविता आहुतिरूपेण कर्मणाऽऽकृष्टाः श्रद्धाप्समवायिनो द्युलोकमनुप्रविश्य सोमभूता भवन्ति। तदर्थं हि तैरग्निहोत्रं हुतम्। अत्र त्वाहुतिपरिणाम एव पञ्चाग्निसंबन्धक्रमेण प्राधान्येन विवक्षित उपासनार्थं न यजमानानां गतिः। तां त्वविदुषां धूमादिक्रमेणोत्तरत्र वक्ष्यति विदुषां चोत्तरां विद्याकृताम्॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः॥४॥

द्वितीयहोमपर्यायार्थमाह— **पर्जन्यो वाव** पर्जन्य एव **गौतमाग्निः** पर्जन्यो नाम वृष्ट्युपकरणाभिमानी देवताविशेषः। **तस्य वायुरेव** समित्। वायुना हि पर्जन्योऽग्निः समिध्यते। पुरोवातादिप्राबल्ये वृष्टिदर्शनात्। **अभ्रं धूमो** धूमकार्यत्वाद्धूमवच्च

विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादनयो विस्फुलिङ्गाः ।।१।।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमꣳ राजानं जुह्वति तस्या आहुतेर्वर्षꣳ संभवति ।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।।५।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः)

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः संवत्सर एव समिदाकाशो

है, वज्र अंगार है तथा गर्जन विस्फुलिङ्ग है (क्योंकि विस्फुलिङ्ग और शब्द में चारों ओर फैलना रूप समानता है)।।१।।

उस इस अग्नि में देवगण राजा सोम का हवन करते हैं, उस आहुति से वृष्टि होती है (श्रद्धा नामक आप द्वितीय पर्याय में सोम रूप से परिणत हो पर्जन्य अग्नि को प्राप्त करके वृष्टि रूप में बदल जाते हैं)।।२।।

।।इति पञ्चमः खण्डः।।

पृथिवी रूपा अग्नि विद्या

हे गौतम! पृथिवी ही अग्नि है, उसका संवत्सर ही समिधा है (क्योंकि संवत्सर काल से युक्त होकर पृथिवी धान्यादि की निष्पत्ति में समर्थ होती है)। आकाश धूम है, तमोरूपा रात्रि

लक्ष्यमाणत्वात्। **विद्युदर्चिः**। प्रकाशसामान्यात्। **अशनिरङ्गाराः**। काठिन्याद्विद्युत्संबन्धाद्वा। **ह्रादनयो विस्फुलिङ्गाः**। ह्रादनयो गर्जितशब्दाः मेघानां विप्रकीर्णत्वसामान्यात्।।१।।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः पूर्ववत्**सोमं राजानं जुह्वति। तस्या आहुतेर्वर्षं संभवति।** श्रद्धाख्या आपः सोमाकारपरिणता द्वितीये पर्याये पर्जन्याग्निं प्राप्य वृष्टित्वेन परिणमन्ते।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः।।५।।

पृथिवी वाव गौतमाग्निरित्यादि पूर्ववत्। **तस्याः** पृथिव्याख्यस्याग्नेः **संवत्सर एव समित्**। संवत्सरेण हि कालेन समिद्धा पृथिवी व्रीह्यादिनिष्पत्तये भवति। **आकाशो धूमः** पृथिव्या इवोत्थित आकाशो दृश्यते। यथाऽग्नेर्धूमः। **रात्रिरर्चिः**

धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः ॥१॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्या आहुतेरन्नꣳ संभवति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः)

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमो जिह्वाऽर्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः ॥१॥

ज्वाला है, दिशाएं अंगारे हैं एवं क्षुद्र होने के कारण अवान्तर दिशाएं विस्फुलिङ्ग हैं॥१॥

उस इस पृथिवी रूप अग्नि में देवगण वृष्टि का हवन करते हैं, उस आहुति से यवादिरूप अन्न होता है॥२॥

॥इति षष्ठः खण्डः॥

पुरुष रूपा अग्नि विद्या

हे गौतम! पुरुष ही अग्नि है, उसकी वाणी ही समिधा है, (क्योंकि वाणी से ही पुरुष सुशोभित होता है)। प्राण धूम है, लाल होने के कारण जिह्वा ज्वाला है। प्रकाश का आश्रय होने से नेत्र अंगार है और श्रोत्र विस्फुलिङ्ग है॥१॥

पृथिव्या ह्यप्रकाशात्मिकाया अनुरूपा रात्रिः। तमोरूपत्वात्। अग्नेरिवानुरूपमर्चिः। **दिशोऽङ्गारा** उपशान्तत्वसामान्यात्। **अवान्तरदिशो विस्फुल्लिङ्गाः** क्षुद्रत्वसामान्यात्॥१॥

तस्मिन्नित्यादि समानम्। **तस्या आहुतेरन्नं** व्रीहियवादि **संभवति**॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः॥६॥

पुरुषो वाव गौतमाग्निः। तस्य वागेव समित्। वाचा हि मुखेन समिध्यते पुरुषो न मूकः। **प्राणो धूमो** धूम इव मुखान्निर्गमनात्। **जिह्वाऽर्चि**र्लोहितत्वात्। चक्षुरङ्गारा भास आश्रयत्वात्। **श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः**। विप्रकीर्णत्वसाम्यात्॥१॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुहवति तस्या आहुते रेतः संभवति ।।२।।

इति पञ्चमाध्ययस्य सप्तमः खण्डः ।।७।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्याष्टमः खण्डः)

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः ।।१।।

उस इस अग्नि में देवगण अन्न का हवन करते हैं, उस अन्नरूप आहुति से वीर्य उत्पन्न होता है ।।२।।

।। इति सप्तमः खण्डः ।।

स्त्री रूपा अग्नि विद्या

हे गौतम! स्त्री ही अग्नि है। उसका उपस्थ ही समिधा है (क्योंकि पुत्रादि उत्पन्न करने के लिये वह प्रदीप्त होता है) पुरुष जो उपमन्त्रणा करता है, वह धूम है, लाल होने के कारण योनि ज्वाला है तथा जो भीतर की ओर करता है, वह अग्नि से संबन्धित होने के कारण अंगार है और उससे जो क्षुद्र सुख होता है, वह विस्फुलिङ्ग है।।१।।

समानमन्यत्। **अन्नं जुह्वति** व्रीह्यादिसंस्कृतम्। **तस्या आहुते रेतः संभवति**।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः।।७।।

योषा वाव गौतमाग्निः। **तस्या उपस्थ एव समित्**। तेन हि सा पुत्राद्युत्पादनाय समिध्यते। **यदुपमन्त्रयते स धूमः**। स्त्रीसंभवादुपमन्त्रणस्य। **योनिरर्चि**र्लोहितत्वात्। **यदन्तः करोति तेऽङ्गारा** अग्निसंबन्धात्। **अभिनन्दाः** सुखलवा **विस्फुलिङ्गाः** क्षुद्रत्वात्।। १।।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः संभवति ।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।।८।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः)

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति स

उस इस अग्नि में देवगण वीर्य का हवन करते हैं, उस आहुति से गर्भ उत्पन्न होता है, (इस प्रकार श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न और वीर्यरूप आहुतियों के होम से क्रमशः आप ही गर्भरूप में परिणत होता है)।।२।।

।।इत्यष्टमः खण्डः ।।

पञ्चम आहुति में पुरुष संज्ञा को प्राप्त हुए "आप" की गति

इस प्रकार पाँचवी आहुति में आप पुरुष शब्दवाची हो जाते हैं। वह जरायु से वेष्टित हुआ

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति। तस्या आहुतेर्गर्भः संभवतीति। एवं श्रद्धासोमवर्षान्नरेतोहवनपर्यायक्रमेणाऽऽप एव गर्भीभूतास्ताः। तत्रापामाहुतिसमवायित्वात्प्राधान्यविवक्षाः "आपः पञ्चम्यामाहुतौ पुरुषवचसो भवन्ति" इति। न त्वाप एव केवलाः सोमादिकार्यमारभन्ते। न चाऽऽपोऽत्रिवृत्कृताः सन्तीति। त्रिवृत्कृतत्वेऽपि विशेषसंज्ञालाभो दृष्टः पृथिवीयमिमा आपोऽयमग्निरित्यन्यतमबाहुल्यनिमित्तः। तस्मात्समुदितान्येव भूतान्यब्बाहुल्यात्कर्मसमवायीनि सोमादिकार्यारम्भकाण्याप इत्युच्यन्ते। दृश्यते च द्रवबाहुल्यं सोमवृष्ट्यन्नरेतोदेहेषु। बहुद्रवं च शरीरं यद्यपि पार्थिवम्। तत्र पञ्चम्यामाहुतौ हुतायां रेतोरूपा आपो गर्भीभूताः।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्याष्टमः खण्डः।।८।।

इति त्वेवं तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति व्याख्यात एकः प्रश्नः। यत्तु द्युलोकादिमां प्रत्यावृत्तयोराहुत्योः पृथिवीं पुरुषं स्त्रियं क्रमेणाऽऽविश्य लोकं प्रत्युत्थायी भवतीति वाजसनेयक उक्तं तत्प्रासङ्गिकमिहोच्यते। इह च प्रथमे प्रश्न उक्तं वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीति। तस्य चायमुपक्रमः। स

उल्बावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाऽथ जायते ।।१।।

स जातो यावदायुषं जीवति तं प्रेतं दिष्टमितोऽग्नय एव हरन्ति यत एवेतो यतः संभूतो भवति ।।२।।

कर्मणा निर्दिष्टं

इति पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः ।।९ ।।

गर्भ दश या नौ मास तक अथवा जब तक (कम या अधिक समय में सर्वाङ्ग पूर्ण नहीं हो जाते, तब तक माता की) कुक्षि में ही शयन करने के अनन्तर पुनः उत्पन्न होता है।। १।।

इस प्रकार उत्पन्न हुआ वह पूर्ण आयु जीवित रहता है, फिर मरने पर कर्मवश परलोक प्रस्थान किये हुए उस जीवात्मा को अग्नि में दाह के लिये ले जाते हैं, जहाँ से वह आया था और जिस अग्नि से क्रमशः उत्पन्न हुआ था।। २।।

।। इति नवमः खण्डः ।।

गर्भोऽपां पञ्चमः परिणामविशेष आहुतिकर्मसमवायिनीनां श्रद्धाशब्दवाच्यानाम**उल्बावृत** उल्बेन जरायुणाऽऽवृतो वेष्टितो **दश वा नव वा मासानन्त**र्मातुः कुक्षौ **शयित्वा** यावद्वा यावता कालेन न्यूनेनातिरिक्तेन **वाऽथा**नन्तरं **जायते**।

उल्बावृत इत्यादि वैराग्यहेतोरिदमुच्यते। कष्टं हि मातुः कुक्षौ मूत्रपुरीषवातपित्तश्लेष्मादिपूर्णे तदनुलिप्तस्य गर्भस्योल्बाशुचिपटावृतस्य लोहितरेतोऽशुचिबीजस्य मातुरशितपीतरसानुप्रवेशेन विवर्धमानस्य निरुद्धशक्तिबलवीर्यतेजःप्रज्ञाचेष्टस्य शयनम्। ततो योनिद्वारेण पीड्यमानस्य कष्टतरा निःसृतिर्जन्मेति वैराग्यं ग्राहयति। मुहूर्तमप्यसह्यं दश वा नव वा मासानतिदीर्घकालमन्तः शयित्वेति च।। १।।

स एवं **जातो यावदायुषं** पुनः पुनर्घटीयन्त्रवद्गमनागमनाय कर्म कुर्वन्कुलालचक्रवद्वा तिर्यग्भ्रमणाय यावत्कर्मणोपात्तमायुस्तावज्**जीवति**। **तमेनं** क्षीणायुषं **प्रेतं** मृतं **दिष्टं** कर्मणा निर्दिष्टं परलोकं प्रति यदि चेज्जीवन्वैदिके कर्मणि ज्ञाने वाऽधिकृतस्तमेनं मृत**मितो**ऽस्माद्ग्रामाद**ग्नये**ऽ**ग्न्य**र्थमृत्विजो **हरन्ति** पुत्रा वाऽन्त्यकर्मणे। **यत एवेत** आगतोऽग्नेः सकाशाच्छ्रद्धाद्याहुतिक्रमेण, **यतश्च** पञ्चभ्योऽग्निभ्यः **संभूत** उत्पन्नो **भवति**, तस्मा एवाग्नये हरन्ति स्वामेव योनिमग्निमापादयन्तीत्यर्थः।।२।।

इति नवमाह्निकम्।।९।।

इति पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः।। ९।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्य दशमः खण्डः)

तद्य इत्थं विदुः। ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरहन आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्केति मासाꣳस्तान् ॥१॥

प्रथम प्रश्न का उत्तर

उक्त अधिकारी गृहस्थों में जो इस प्रकार (उक्त पञ्चाग्नि विद्या को) जानते हैं और ये जो कि अरण्य में श्रद्धा एवं तप-इन दोनों की उपासना करते हैं, (वे मरने के बाद) अर्चिरभिमानी देवताओं को प्राप्त होते हैं। पुनः अर्चिरभिमानी देवताओं से दिन के अभिमानी देवताओं को, दिन के अभिमानी देवताओं से शुक्लपक्षाभिमानी देवताओं को, शुक्लपक्षाभिमानी देवताओं से जिन छः महीनों में सूर्य उत्तरायण की ओर जाता है, उन छः महीनों को प्राप्त होते हैं।।१।।

वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीत्ययं प्रश्न प्रत्युपस्थितोऽपाकर्तव्यतया। तत्तत्र लोकं प्रत्युत्थितानामधिकृतानां गृहमेधिनां **य इत्थमेवं** यथोक्तं पञ्चाग्निदर्शनं द्युलोकाद्यग्निभ्यो वयं क्रमेण जाता अग्निस्वरूपाः पञ्चाग्न्यात्मान इत्येवं **विदुर्जानीयुः**। कथमवगम्यत इत्थं विदुरिति गृहस्था एवोच्यन्ते नान्य इति। गृहस्थानां ये त्वनित्थंविदः केवलेष्टापूर्तदत्तपरास्ते धूमादिना चन्द्रं गच्छन्तीति वक्ष्यति। ये चारण्योपलक्षिता वैखानसाः परिव्राजकाश्च श्रद्धा तप इत्युपासते तेषां चेत्थंविद्भिः सहार्चिरादिना गमनं वक्ष्यति पारिशेष्यादग्निहोत्राहुतिसंबन्धाच्च गृहस्था एव गृह्यन्त इत्थं विदुरिति।

ननु ब्रह्मचारिणोऽप्यगृहीता ग्रामश्रुत्याऽरण्यश्रुत्या चानुपलक्षिता विद्यन्ते कथं पारिशेष्यसिद्धिः। नैष दोषः। पुराणस्मृतिप्रामाण्यादूर्ध्वरेतसां नैष्ठिकब्रह्मचारिणामुत्तरेणार्यम्णः पन्था प्रसिद्धः। अतस्तेऽप्यरण्यवासिभिः सह गमिष्यन्ति। उपकुर्वाणकास्तु स्वाध्यायग्रहणार्था इति न विशेषनिर्देशार्हाः।

ननूर्ध्वरेतस्त्वं चेदुत्तरमार्गप्रतिपत्तिकारणं पुराणस्मृतिप्रामाण्यादिष्यत इत्थंवित्त्वमनर्थकं प्राप्तम्। न। गृहस्थान्प्रत्यर्थवत्त्वात्। ये गृहस्था अनित्थंविदस्तेषां स्वभावतो दक्षिणो धूमादिः पन्थाः प्रसिद्धस्तेषां य इत्थं सगुणं वाऽन्यद्ब्रह्म विदुः। "अथ यदु

मासेभ्यः संवत्सरꣳसंवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्था इति ।।२।।

उन छः महीनों से संवत्सर को, संवत्सर से आदित्य को, आदित्य से चन्द्रमा को एवं चन्द्रमा से विद्युत को प्राप्त होते हैं। उस विद्युत लोक में एक अमानव पुरुष है, वही उन अधिकारियों को हिरण्यगर्भ लोक में ले जाता है। बस यही देवयान मार्ग है ।।२।।

चैवास्मिञ्शव्यं कुर्वन्ति यदि नार्चिषमेव'' इति लिङ्गादुत्तरेण ते गच्छन्ति। ननूर्ध्वरेतसां गृहस्थानां च समान आश्रमित्वे ऊर्ध्वरेतसामेवोत्तरेण पथा गमनं न गृहस्थानामिति न युक्तम् अग्निहोत्रादिवैदिककर्मबाहुल्ये च सति। नैष दोषः। अपूता हिते। शत्रुमित्रसंयोगनिमित्तौ हि तेषां रागद्वेषौ। तथा धर्माधर्मौ हिंसानुग्रहनिमित्तौ। हिंसानृतमायाऽब्रह्मचर्यादि च बह्वशुद्धिकारणमपरिहार्यं तेषाम्। अतोऽपूताः। अपूतत्वान्नोत्तरेण पथा गमनम्। हिंसानृतमायाऽब्रह्मचर्यादिपरिहाराच्च शुद्धात्मानो हीतरे शत्रुमित्ररागद्वेषादिपरिहाराच्च विरजसस्तेषां युक्त उत्तरः पन्थाः। तथाच पौराणिकाः- **''ये प्रजामीषिरेऽधीरास्ते श्मशानानि भेजिरे। ये प्रजां नेषिरे धीरास्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे''।। इत्याहुः।**

इत्थंविदां गृहस्थानामरण्यवासिनां च समानमार्गत्वेऽमृतत्वफले च सत्यरण्यवासिनां विद्यानर्थक्यं प्राप्तम्। तथाच श्रुतिविरोधः। ''न तत्र दक्षिणा यन्ति नाविद्वांसस्तपस्विनः'' इति। ''एनमविदितो न भुनक्ति'' इति च विरुद्धम्। न। आभूतसंप्लवस्थानस्यामृतत्वेन विवक्षितत्वात्। तत्रैवोक्तं पौराणिकैः- ''आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्वं हि भाष्यते'' इति। यच्चाऽऽत्यन्तिकममृतत्वं तदपेक्षया ''न तत्र दक्षिणा यन्ति'' स एनमविदितो न भुनक्ति'' इत्याद्याः श्रुतय इत्यतो न विरोधः। ''न च पुनरावर्तन्ते'' इतीमं मानवमावर्तं नाऽऽवर्तन्ते'' (छा.४.१५.५) इत्यादिश्रुतिविरोध इति चेत्। न। इमं मानवमिति विशेषणात्तेषामिह न पुनरावृत्तिरस्तीति च। यदि ह्येकान्तेनैव नाऽऽवर्तेरन्निमं मानवमिहेति च विशेषणमनर्थकं स्यात्। इममिहेत्याकृतिमात्रमुच्यत इति चेत्। न।

अनावृत्तिशब्देनैव नित्यानावृत्त्यर्थस्य प्रतीतत्वादाकृतिकल्पनाऽनर्थिका। अत इममिहेति च विशेषणार्थवत्त्वायान्यत्राऽऽवृत्तिः कल्पनीया। न च सदेकमेवाद्वितीयमित्येवंप्रत्ययवतां मूर्धन्यया नाड्याऽर्चिरादिमार्गेण गमनम्। "ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति"। "तस्मात्तत्सर्वमभवत्" (बृ.१.४.६)। "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति। अत्रैव समवलीयन्ते" (बृ. ४.४.६) इत्यादिश्रुतिशतेभ्यः।

ननु तस्माज्जीवादुच्चिक्रमिषोः प्राणा नोत्क्रामन्ति सहैव गच्छन्तीत्ययमर्थः कल्प्यत इति चेत्। न। अत्रैव समवलीयन्त इतिविशेषणानर्थक्यात्। 'सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति' (बृ. ४.४.२) इति च प्राणैर्गमनस्य प्राप्तत्वात्। 'तस्मादुत्क्रामन्तीत्यनाशङ्कैवैषा। यदाऽपि मोक्षस्य संसारगतिवैलक्षण्यात्प्राणानां जीवेन सहाऽऽगमनमाशङ्क्य तस्मान्नोत्क्रामन्तीत्युच्यते, तदाऽप्यत्रैव समवलीयन्त इति विशेषणमनर्थकं स्यात्।

न च प्राणैर्वियुक्तस्य गतिरुपपद्यते जीवत्वं वा। सर्वगतत्वात्सदात्मनो निरवयवत्वात्प्राणसंबन्धमात्रमेव ह्यग्निविस्फुलिङ्गवज्जीवत्वभेदकारणमित्यतस्तद्वियोगे जीवत्वं गतिर्वा न शक्या परिकल्पयितुं, श्रुतयश्चेत्प्रमाणम्। न च सतोऽणुरवयवः स्फुटितो जीवाख्यः सद्रूपं छिद्रीकुर्वन्गच्छतीति शक्यं कल्पयितुम्। तस्मात् "तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति" इति सगुणब्रह्मोपासकस्य प्राणैः सह नाड्या गमनं सापेक्षमेव चामृतत्वं न साक्षान्मोक्ष इति गम्यते। "तदपराजिता पूस्तदैरं मदीयं सरः" इत्याद्युक्त्वा "तेषामेवैष ब्रह्मलोकः' इति विशेषणात्।

अतः पञ्चाग्निविदो गृहस्था, ये चेमेऽरण्ये वानप्रस्थाः परिव्राजकाश्च सह नैष्ठिकब्रह्मचारिभिः श्रद्धा तप इत्येवमाद्युपासते श्रद्दधानास्तपस्विनश्चेत्यर्थः। उपासनशब्दस्तात्पर्यार्थः। इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासत इति यद्वत्। श्रुत्यन्तराद्ये च सत्यं ब्रह्म हिरण्यगर्भाख्यमुपासते, ते सर्वेऽर्चिषमर्चिरभिमानिनीं देवतामभिसंभवन्ति प्रतिपद्यन्ते। समानमन्यच्चतुर्थगतिव्याख्यानेन। **एष देवयानः पन्था** व्याख्यातः सत्यलोकावसानो नाण्डाद्बहिः। "यदन्तरा पितरं मातरं च" (बृ.६.२.२)इति मन्त्रवर्णात्।। १।। २।।

अथ य इमे ग्रामे इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रिꣳरात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान्षड्दक्षिणैति मासाꣳस्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति ॥३॥

द्वितीय प्रश्न का उत्तर

अब जो यह गृहस्थ लोग (अग्निहोत्रादि वैदिक कर्मरूप) इष्ट (वापी-कूप-तड़ागादि निर्माण-रूप) पूर्त और (वेदी से बाहर अधिकारी व्यक्तियों को यथाशक्ति धन देना रूप) दत्त- इनकी उपासना करते हैं, वे धूमाभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं। धूमाभिमानी देवता से रात्रि के अभिमानी देव को, रात्रि के अभिमानी देवों से कृष्णपक्षाभिमानी देव को तथा कृष्णपक्षाभिमानी देव से जिन छः महीनों में सूर्य दक्षिणायन से जाता है, उन छः महीनों को प्राप्त होते हैं एवं ये लोग संवत्सर को प्राप्त नहीं करते ।। ३ ।।

अथेत्यर्थान्तरप्रस्तावनार्थो **य इमे** गृहस्था **ग्रामे**। ग्रामे इति गृहस्थानामसाधारणं विशेषणमरण्यवासिभ्यो व्यावृत्त्यर्थम्। यथा वानप्रस्थपरिव्राजकानामरण्यं विशेषणं गृहस्थेभ्यो व्यावृत्त्यर्थं, तद्वत्। **इष्टापूर्ते** इष्टमग्निहोत्रादिवैदिकं कर्म, पूर्तं वापीकूपडागारामादिकरणम्। **दत्तं** बहिर्वेदि यथाशक्त्यर्हेभ्यो द्रव्यसंविभागो दत्तम्। इत्येवंविधं परिचरणपरित्राणा**द्युपासते**। **इति**शब्दस्य प्रकारदर्शनार्थत्वात्। **ते** दर्शनवर्जितत्वा**द्धूमं** धूमाभिमानिनीं देवता**मभिसंभवन्ति** प्रतिपद्यन्ते। तयाऽतिवाहिता **धूमाद्रात्रिं** रात्रिदेवतां रात्रेरपरपक्षदेवतामेव कृष्णपक्षाभिमानिनीमपरपक्षाद्यान्षण्मासान्**दक्षिणा** दक्षिणां दिशमेति सविता। तान्**मासान्द**क्षिणायनषण्मासाभिमानिनीर्देवताः प्रतिपद्यन्त इत्यर्थः। संघचारिण्यो हि षण्मासदेवता इति मासानिति बहुवचनप्रयोगस्तासु। नैते कर्मिणः प्रकृताः **संवत्सरं** संवत्सराभिमानिनीं देवता**मभिप्राप्नुवन्ति**। कुतः पुनः संवत्सरप्राप्तिप्रसङ्गो यतः प्रतिषिध्यते? अस्ति हि प्रसङ्गः संवत्सरस्य ह्येकस्यावयवभूते दक्षिणोत्तरायणे तत्रार्चिरादिमार्गप्रवृत्तानामुदगयनमासेभ्योऽवयविनः संवत्सरस्य प्राप्तिरुक्ता। अत इहापि तदवयवभूतानां दक्षिणायनमासानां प्राप्तिं श्रुत्वा तदवयविनः संवत्सरस्यापि पूर्ववत्प्राप्तिरापन्नेत्यतस्तत्प्राप्तिः प्रतिषिध्यते "नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्तीति"।। ३।।

मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसम्। कोऽसौ यस्तैः प्राप्यते चन्द्रमा य **एष** दृश्येऽन्तरिक्षे **सोमो राजा** ब्राह्मणानां **तदन्नं देवानां तं**

मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति ।।४।।

तस्मिन्यावत्संपातमुषित्वाऽथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते

दक्षिणायन के छः महीनों से पितृलोक को, पितृलोक से आकाश को और आकाश से चन्द्रमा को प्राप्त होते हैं। यह चन्द्रमा ही ब्राह्मणों का राजा सोम है, वह देवताओं का अन्न है। उस चन्द्रमा रूप अन्न का इन्द्रादि देवता भक्षण करते हैं।।४।।

तृतीय प्रश्न का उत्तर

उस चन्द्रलोक में वहाँ के उपभोग के निमित्त कर्मों का नाश होने तक रहकर फिर वे लोग उसी मार्ग से लौटते हैं, जिस मार्ग से वे पहले गये थे। उस समय वे सर्वप्रथम आकाश को प्राप्त

चन्द्रमसमन्नं **देवा** इन्द्रादयो **भक्षयन्ति**। अतस्ते धूमादिना गत्वा चन्द्रभूताः कर्मिणो देवैर्भक्ष्यन्ते। नन्वनर्थायेष्टादिकरणं, यद्यन्नभूता देवैर्भक्ष्येरन्। नैष दोषः। अन्नमित्युपकरणमात्रस्य विवक्षितत्वात्। न हि ते कवलोत्क्षेपेण देवैर्भक्ष्यन्ते। किं तर्ह्युपकरणमात्रं देवानां भवन्ति ते, स्त्रीपशुभृत्यादिवत्। दृष्टश्चान्नशब्द उपकरणेषु ''स्त्रियोऽन्नं पशवोऽन्नं विशोऽन्नं राज्ञामि'' त्यादि। न च तेषां स्त्र्यादीनां पुरुषोपभोग्यत्वेऽप्युपभोगो नास्ति। तस्मात्कर्मिणो देवानामुपभोग्या अपि सन्तः सुखिनो देवैः क्रीडन्ति। शरीरं च तेषां सुखोपभोगयोग्यं चन्द्रमण्डले आप्यमारभ्यते। तदुक्तं पुरस्ताच्छ्रद्धाशब्दा आपो द्युलोकाग्नौ हुताः सोमो राजा संभवतीति। ता आपः कर्मसमवायिन्य इतरैश्च भूतैरनुगता द्युलोकं प्राप्य चन्द्रत्वमापन्नाः शरीराद्यारम्भिका इष्टाद्युपासकानां भवन्ति। अन्त्यायां च शरीराहुतावग्नौ हुतायामग्निना दह्यमाने शरीरे तदुत्था आपो धूमेन सहोर्ध्वं यजमानमावेष्ट्य चन्द्रमण्डलं प्राप्य कुशमृत्तिकास्थानीया बाह्यशरीरारम्भिका भवन्ति। तदारब्धेन च शरीरेणेष्टादिफलमुपभुञ्जाना आसते।।४।।

यावत्तदुपभोगनिमित्तस्य कर्मणः क्षयः संपतन्ति येनेति संपातः कर्मणः क्षयो **यावत्संपातं** यावत्कर्मणः क्षय इत्यर्थः। ताव**त्तस्मिं**श्चन्द्रमण्डले **उषित्वाऽथा**नन्तर**मेतमेव** वक्ष्यमाण**मध्वानं** मार्गं **पुनर्निवर्तन्ते**। पुनर्निवर्तन्त इति प्रयोगात्पूर्वमप्यसकृच्चन्द्रमण्डलं गता निवृत्ताश्चाऽऽसन्निति गम्यते। तस्मादिह लोक इष्टादिकर्मोपचित्य चन्द्रं गच्छन्ति।

यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति ॥५॥

होते हैं। आकाश से वायु को, वायु होकर वे धूम होते हैं और धूम होकर पुनः बादल बनते हैं॥५॥

तत्क्षये चाऽऽवर्तन्ते। क्षणमात्रमपि तत्र स्थातुं न लभ्यते। स्थितिनिमित्तकर्मक्षयात्। स्नेहक्षयादिव प्रदीपस्य।

तत्र किं येन कर्मणा चन्द्रमण्डलमारूढस्तस्य सर्वस्य क्षये तस्मादवरोहणं, किं वा सावशेष इति। किं ततः। यदि सर्वस्यैव क्षयः कर्मणश्चन्द्रमण्डस्थस्यैव मोक्षः प्राप्नोति। तिष्ठतु तावत्तत्रैव मोक्षः स्यान्न वेति। तत आगतस्येह शरीरोपभोगादि न संभवति। ततः शेषेणेत्यादिस्मृतिविरोधश्च स्यात्। नन्विष्टापूर्तदत्तव्यतिरेकेणापि मनुष्यलोके शरीरोपभोगनिमित्तानि कर्माण्यनेकानि संभवन्ति, न च तेषां चन्द्रमण्डले उपभोगः। अतोऽक्षीणानि तानि। यन्निमित्तं चन्द्रमण्डलमारूढस्तान्येव क्षीणानीत्यविरोधः। शेषशब्दश्च सर्वेषां कर्मत्वसामान्यादविरुद्धः। अत एव च तत्रैव मोक्षः स्यादिति दोषाभावः। विरुद्धानेकयोन्युपभोगफलानां च कर्मणामेकैकस्य जन्तोरारम्भकत्वसंभवात्। न चैकस्मिञ्जन्मनि सर्वकर्मणां क्षय उपपद्यते। ब्रह्महत्यादेश्चैकैकस्य कर्मणोऽनेकजन्मारम्भकत्वस्मरणात्। स्थावरादिप्राप्तानां चात्यन्तमूढानामुत्कर्षहेतोः कर्मण आरम्भकत्वासंभवात्। गर्भभूतानां च स्रंसमानानां कर्मासंभवे संसारानुपपत्तिः। तस्मान्नैकस्मिञ्जन्मनि सर्वेषां कर्मणामुपभोगः।

यत्तु कैश्चिदुच्यते सर्वकर्माश्रयोपमर्देन प्रायेण कर्मणां जन्मारम्भकत्वम्। तत्र कानिचित्कर्माण्यनारम्भकत्वेनैव तिष्ठन्ति कानिचिज्जन्माऽऽरभन्ते इति नोपपद्यते। मरणस्य सर्वकर्माभिव्यञ्जकत्वात्स्वगोचराभिव्यञ्जकप्रदीपवदिति। तदसत्। सर्वस्य सर्वात्मकत्वाभ्युपगमात्। न हि सर्वस्य सर्वात्मकत्वे देशकालनिमित्तावरुद्धत्वात्सर्वात्मनोपमर्दः कस्यचित्क्वचिदभिव्यक्तिर्वा सर्वात्मनोपपद्यते। तथा कर्मणामपि साश्रयाणां भवेत्। यथा च पूर्वानुभूतमनुष्यमयूरमर्कटादिजन्माभिसंस्कृता विरुद्धानेकवासना मर्कटत्वप्रापकेन(ण) कर्मणा मर्कटजन्माऽऽरभमाणेन नोपमृद्यन्ते, तथा कर्माण्यप्यन्यजन्मप्राप्तिनिमित्तानि नोपमृद्यन्ते इति युक्तम्। यदि हि सर्वाः पूर्वजन्मानुभववासना

अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं

अभ्र होकर वह (वर्षा करने में समर्थ) मेघ होता है, मेघ होकर ऊँचे स्थानों में बरसता है। उसके बाद वे जीव इस लोक में धान, जौ, औषधि, वनस्पति, तिल और उड़द इत्यादि होकर उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् यहाँ से निष्क्रमण निश्चय ही उसके लिये अत्यन्त कष्ट प्रद होता है। जो-जो जीव उस अन्न को खाता है और जो वीर्य सेचन करता है वह तद्रूप ही हो जाता है। (यदि ऊर्ध्वरेता, बालक, नपुंसक या वृद्ध पुरुष ने उस अन्न को खाया हो, तो वह उनके उदर

उपमृद्येरन्मर्कटजन्मनिमित्तेन कर्मणा मर्कटजन्मन्यारब्धे मर्कटस्य जातमात्रस्य मातुः शाखायाः शाखान्तरगमने मातुरुदरसंलग्नत्वादिकौशलं न प्राप्नोति। इह जन्मन्यनभ्यस्तत्वात्। न चातीतानन्तरजन्मनि मर्कटत्वमेवाऽऽसीत्तस्येति शक्यं वक्तुम्। "तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च" (बृ.४.४.२) इति श्रुतेः। तस्माद्वासनावन्नाशेषकर्मोपमर्द इति शेषकर्मसंभवः। यत एवं तस्माच्छेषेणोपभुक्तात्कर्मणः संसारः उपपद्यत इति न कश्चिद्विरोधः।

कोऽसावध्वा यं प्रति निवर्तन्ते इत्युच्यते। यथेतं यथागतं निवर्तन्ते। ननु **मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमि**ति गमनक्रमः उक्तो न तथा निवृत्तिः। किं तर्ह्याकाशाद्वायुमित्यादि, कथं यथेतमित्युच्यते। नैष दोषः। आकाशप्राप्तेस्तुल्यत्वात्पृथिवीप्राप्तेश्च। न चात्र यथेतमेवेति नियमोऽनेवंविधमपि निवर्तन्ते पुनर्निवर्तन्ते इति तु नियमः। अत उपलक्षणार्थमेतद्यथेतमिति। अतो भौतिक**माकाशं** तावत्प्रतिपद्यन्ते। यास्तेषां चन्द्रमण्डले शरीरारम्भिका आपः आसंस्तास्तेषां तत्रोपभोगनिमित्तानां कर्मणां क्षये विलीयन्ते। घृतसंस्थानमिवाग्निसंयोगे ता विलीना अन्तरिक्षस्था आकाशभूता इव सूक्ष्मा भवन्ति। ता अन्तरिक्षाद्वायुर्भवन्ति। वायुप्रतिष्ठा वायुभूता इतश्चामुतश्चोह्यमानास्ताभिः सह क्षीणकर्मा वायुभूतो भवति। **वायुर्भूत्वा** ताभिः सहैव **धूमो भवति। धूमो भूत्वाऽभ्रम**भ्भरणमात्ररूपो **भवति**।।५।।

अभ्रं भूत्वा ततः सेचनसमर्थो **मेघो भवति मेघो भूत्वो**न्नतेषु प्रदेशेष्वथ **प्रवर्षति**। वर्षधारारूपेण शेषकर्मा पततीत्यर्थः। **ते इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इत्ये**वंप्रकारा **जायन्ते**। क्षीणकर्मणामनेकत्वाद्बहुवचननिर्देशः। मेघादिषु

यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ॥६॥

में ही नष्ट हो जाता है। कदाचित् वीर्य सेचन करने वालों के द्वारा खाये जाने पर वह अपने कर्मों की वृत्ति का लाभ कर पाता है। अतएव अन्नरूप में आ जाने के बाद वहाँ से उसका निकलना कठिन माना गया है)॥६॥

पूर्वेष्वेकरूपत्वादेकवचननिर्देशः। यस्माद्गिरितटदुर्गनदीसमुद्रारण्यमरुदेशादिसंनिवेशसहस्राणि वर्षधाराभिः पतितानाम्। **अतस्तस्माद्धेतोर्वै खलु दुर्निष्प्रपतरं** दुर्निष्क्रमणं दुर्निःसरणम्। यतो गिरितटादुदकस्रोतसोह्यमाना नदीः प्राप्नुवन्ति ततः समुद्रं ततो मकरादिभिर्भक्ष्यन्ते। तेऽप्यन्येन। तत्रैव च सह मकरेण समुद्रे विलीनाः समुद्राम्भोभिर्जलधरैराकृष्टाः पुनर्वर्षधाराभिर्मरुदेशे शिलातटे वाऽगम्ये पतितास्तिष्ठन्ति कदाचिद्व्यालमृगादिपीता भक्षिताश्चान्यैः। तेऽप्यन्यैरित्येवंप्रकाराः परिवर्तेरन्। कदाचिदभक्ष्येषु स्थावरेषु जातास्तत्रैव शुष्येरन्। भक्ष्येष्वपि स्थावरेषु जातानां रेतःसिग्देहसंबन्धो दुर्लभो बहुत्वात्स्थावराणामित्यतो दुर्निष्क्रमणत्वम्।

अथवाऽतोऽस्माद्व्रीहियवादिभावाद्दुर्निष्प्रपतरं दुर्निर्गमतरम्। दुर्निष्प्रपतरमिति तकार एको लुप्तो द्रष्टव्यः। व्रीहियवादिभावो दुर्निष्प्रपतस्तस्मादपि दुर्निष्प्रपताद्रेतःसिग्देहसंबन्धो दुर्निष्प्रपततरं इत्यर्थः। यस्मादूर्ध्वरेतोभिर्बालैः पुंस्त्वरहितैः स्थविरैर्वा भक्षिता अन्तराले शीर्यन्ते। अनेकत्वादन्नादानाम्। कदाचित्काकतालीयवृत्त्या रेतःसिग्भिर्भक्ष्यन्ते यदा तदा रेतःसिग्भावं गतानां कर्मणो वृत्तिलाभः। कथम् **यो यो ह्यन्नमत्त्यु**नुशयिभिः संश्लिष्टं रेतःसिग्यश्च **रेतः सिञ्चत्यृ**तुकाले योषिति तद्भूय **एव** तदाकृतिरेव **भवति**। तदवयवाकृतिभूयस्त्वं भूय इत्युच्यते रेतोरूपेण योषितो गर्भाशयेऽन्तः प्रविष्टोऽनुशयी। रेतसो रेतःसिगाकृतिभावितत्वात्। "सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः संभूतम्" (ऐ.४.१)इति श्रुत्यन्तरात्। अतो रेतःसिगाकृतिरेव भवतीत्यर्थः। तथा हि— पुरुषात्पुरुषो जायते गोर्गवाकृतिरेव न जात्यत्यन्तराकृतिस्तस्माद्युक्तं तद्भूय एव भवतीति।

ये त्वन्येऽनुशयिभ्यश्चन्द्रमण्डलमनारुह्येहैव पापकर्मभिर्घोरैर्व्रीहियवादिभावं प्रतिपद्यन्ते पुनर्मनुष्यादिभावं, तेषां नानुशयिनामिव दुर्निष्प्रपतरम्। कस्मात्? कर्मणा हि तैर्व्रीहियवादिदेह उपात्त इति तदुपभोगनिमित्तक्षये व्रीह्यादिस्तम्बदेहविनाशे यथाकर्मार्जितं देहान्तरं नवं नवं जलूकावत्संक्रमन्ते सविज्ञाना एव "सविज्ञानो भवति सविज्ञानमेवान्ववक्रामति"

(बृ.४.४.२) इति श्रुत्यन्तरात्।

यद्यप्युपसंहृतकरणाः सन्तो देहान्तरं गच्छन्ति, तथाऽपि स्वप्नवद्देहान्तर-प्राप्तिनिमित्तकर्मोद्भावितवासनाज्ञानेन सविज्ञाना एव देहान्तरं गच्छन्ति, श्रुतिप्रामाण्यात्। तथाऽर्चिरादिना धूमादिना च गमनं स्वप्न इवोद्भूतविज्ञानेन लब्धवृत्तिकर्मनिमित्तत्वाद्गमनस्य। न तथाऽनुशयिनां व्रीह्यादिभावेन जातानां सविज्ञानानामेव रेतःसिग्योषिद्देहसंबन्ध उपपद्यते। न हि ब्रीह्यादिलवनकण्डनपेषणादौ च सविज्ञानानां स्थितिरस्ति।

ननु चन्द्रमण्डलादप्यवरोहतां देहान्तरगमनस्य तुल्यत्वाज्जलूकावत्सविज्ञानतैव युक्ता। तथा सति घोरो नरकानुभव इष्टापूर्तादिकारिणां चन्द्रमण्डलादारभ्य प्राप्तो यावद्ब्राह्मणादिजन्म। तथा च सत्यनर्थायैवेष्टापूर्ताद्युपासनं विहितं स्यात्। श्रुतेश्चाप्रामाण्यं प्राप्तं, वैदिकानां कर्मणामनर्थानुबन्धित्वात्। न। वृक्षारोहणपतनवद्विशेषसंभवात्। देहाद्देहान्तरं प्रतिपित्सोः कर्मणो लब्धवृत्तित्वात्कर्मणोद्भावितेन विज्ञानेन सविज्ञानत्वं युक्तम्। वृक्षाग्रमारोहत इव फलं जिघृक्षोः। तथाऽर्चिरादिना गच्छतां सविज्ञानत्वं भवेत्। धूमादिना च चन्द्रमण्डलमारुरुक्षताम्। न तथा चन्द्रमण्डलादवरुरुक्षतां वृक्षाग्रादिव पततां सचेतनत्वम्। यथा च मुद्गराद्यभिहतानां तदभिघातवेदननिमित्तसंमूर्छितप्रतिबद्धकरणानां स्वदेहेनैव देशाद्देशान्तरं नीयमानानां विज्ञानशून्यता दृष्टा, तथा चन्द्रमण्डलान्मानुषादिदेहान्तरं प्रत्यवरुरुक्षतां स्वर्गभोगनिमित्तकर्मक्षयान्मृदिताब्देहानां प्रतिबद्धकरणानाम्। अतस्तेऽपरित्यक्त-देहबीजभूताभिरद्भिर्मूर्छिता इवाऽऽकाशादिक्रमेणेमामवरुह्य कर्मनिमित्तजातिस्थावरदेहैः संश्लिष्यन्ते प्रतिबद्धकरणतयाऽनुद्भूतविज्ञाना एव।

तथा लवनकण्डनपेषणसंस्कारभक्षणरसादिपरिणामरेतःसेककालेषु मूर्छितवदेव। देहान्तरारम्भकस्य कर्मणोऽलब्धवृत्तित्वात्। देहबीजभूताप्संबन्धापरित्यागेनैव सर्वास्ववस्थासु वर्तन्त इति जलूकावच्चेतनावत्त्वं न विरुध्यते। अन्तराले त्वविज्ञानं मूर्छितवदेवेत्यदोषः।

न च वैदिकानां कर्मणां हिंसायुक्तत्वेनोभयहेतुत्वं शक्यमनुमातुम्। हिंसायाः शास्त्रचोदितत्वात्। "अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः" इति श्रुतेः शास्त्रचोदिताया हिंसाया नाधर्महेतुत्वमभ्युपगम्यते। अभ्युपगमेऽप्यधर्महेतुत्वे मन्त्रैर्विषादिवत्तदपनयोपपत्तेर्न दुःखकार्यारम्भकत्वोपपत्तिर्वैदिकानां कर्मणां मन्त्रेणेव विषभक्षणस्येति।। ६।।

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाऽथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ।।७।।

अथैतयोः पथोर्न कतरेणचन तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयꣳ स्थानं तेनासौ लोको

संस्कार युक्त जीवों की कर्मानुसार गति

उन संस्कार युक्त जीवों में से जो अच्छे आचरण वाले होते हैं, वे शीघ्र ही उत्तम योनि को प्राप्त होते हैं, अर्थात् वे ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि वा वैश्ययोनि को प्राप्त करते हैं और जो अशुभ आचरण वाले होते हैं, वे कुत्ते की योनि, सूकरयोनि या चाण्डाल योनिरूप अशुभ शरीर को प्राप्त करते हैं।।७।।

चतुर्थ प्रश्न का उत्तर

किन्तु जो पापात्मा धूम या अर्चिरादि मार्गों में से किसी भी मार्ग से नहीं जाते, वे ये बेचारे जीव क्षुद्र और पुनःपुनः आने जाने वाले प्राणी होते हैं। जन्मो और मरो; यही तृतीय स्थान उनके लिये

तत्तत्र तेष्वनुशयिनां मध्ये ये इह लोके रमणीयं शोभनं चरणं शीलं येषां ते **रमणीयचरणा** रमणीयचरणेनोपलक्षितः शोभनोऽनुशयः पुण्यं कर्म येषां ते रमणीयचरणाः उच्यन्ते। क्रौर्यानृतमायावर्जितानां हि शक्य उपलक्षयितुं शुभानुशयसद्भावः। तेनानुशयेन पुण्येन कर्मणा चन्द्रमण्डले भुक्तशेषेणा**भ्याशो ह** क्षिप्रमेव **यद्**इति क्रियाविशेषणं **ते रमणीयां** क्रौर्यादिवर्जितां **योनिमापद्येरन्**प्राप्नुयु**र्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा** स्वकर्मानुरूपेण। **अथ** पुनर्ये तद्विपरीताः **कपूयचरणो**पलक्षित-कर्माणोऽशुभानुशया **अभ्याशो ह यत्ते कपूयां** यथाकर्म **योनिमापद्येरन्क**पूयामेव धर्मसंबन्धवर्जितां जुगुप्सितां योनिमापद्येर**ञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं** स्वकर्मानुरूपेणैव। ये तु रमणीयचरणा द्विजातयस्ते स्वकर्मस्थाश्चेदिष्टादिकारिणस्ते धूमादिना गच्छन्त्यागच्छन्ति च पुनः पुनर्घटीयन्त्रवत्। विद्यां चेत्प्राप्नुयुस्तदाऽर्चिरादिना गच्छन्ति।।७।।

यदा तु न विद्यासेविनो नापीष्टादिकर्म सेवन्ते, तदाऽ**थैतयोः पथो**र्यथोक्तयोरर्चिर्धूमादिलक्षणयो**र्न कतरेणा**न्यतरेण च नापि यन्ति **तानीमानि** भूतानि

संसार गति घृणा

न संपूर्यते तस्माज्जुगुप्सेत तदेष श्लोकः ॥८॥

ब्राह्मण : सन्

ब्राह्मण **स्तेनो हिरण्यस्य, सुरां पिबꣳश्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा**

पतित **चैते पतन्ति चत्वारः, पञ्चमश्चाऽऽचरꣳस्तैरिति ॥९॥** ब्राह्मणस्य हन्ता

होता है। बस! यही कारण है जिससे कि स्वर्गादि परलोक भरता नहीं। अतः (जन्मना-मरनारूप संसार गति से विवेकशील व्यक्ति को) घृणा करनी चाहिये। इस विषय में यह मन्त्र है॥८॥

ब्राह्मण का सोना चुराने वाला, ब्राह्मण होकर मदिरा पीने वाला, गुरुपत्नी से सहवास करने वाला और ब्राह्मण की हत्या करने वाला, ये चारों पतित होते हैं तथा पाँचवाँ उनके साथ संसर्ग करने वाला भी (पतित होता है)॥९॥ cause for the increase of population

---

क्षुद्राणि दंशमशककीटादीन्य**सकृदावर्तीनि भवन्ति**। अत उभयमार्गपरिभ्रष्टा ह्यसकृज्जायन्ते म्रियन्ते चेत्यर्थः। तेषां जननमरणसंततेरनुकरणमिदमुच्यते **जायस्व म्रियस्वेती**श्वरनिमित्ता वा चेष्टोच्यते। जननमरणलक्षणेनैव कालयापना भवति। न तु क्रियासु भोगेषु वा कालोऽस्तीत्यर्थः। **एतत्क्षु**द्रजन्तुलक्षणं **तृतीयं** पूर्वोक्तौ पन्थानावपेक्ष्य **स्थानं** संसरताम्। येनैवं दक्षिणमार्गगा अपि पुनरागच्छन्त्यनधिकृतानां ज्ञानकर्मणोरगमनमेव दक्षिणेन पथेति। **तेनासौ लोको न संपूर्यते**। पञ्चमस्तु प्रश्नः पञ्चाग्निविद्यया व्याख्यातः। प्रथमो दक्षिणोत्तरमार्गाभ्यामपाकृतो दक्षिणोत्तरयोः पथोर्व्यावर्तनाऽपि मृतानामग्नौ प्रक्षेपः समानस्ततो व्यावर्तनाऽन्येऽर्चिरादिना यन्त्यन्ये धूमादिना पुनरुत्तरदक्षिणायने षण्मासान्प्राप्नुवन्तः संयुज्य पुनर्व्यावर्तन्ते। अन्ये संवत्सरमन्ये मासेभ्यः पितृलोकमिति व्याख्याता। पुनरावृत्तिरपि क्षीणानुशयानां चन्द्रमण्डलादाकाशादिक्रमेणोक्ता। अमुष्य लोकस्यापूरणं स्वशब्देनैवोक्तम्— "तेनासौ लोको न संपूर्यत" इति। यस्मादेवं कष्टा संसारगतिस्**तस्माज्जुगुप्सेत**। यस्माच्च जन्ममरणजनितवेदनानुभवकृतक्षणाः क्षुद्रजन्तवो ध्वान्ते च घोरे दुस्तरे प्रवेशिताः सागरे इवागाधेऽप्लवे निराशाश्चोत्तरणं प्रति। तस्माच्चैवंविधां संसारगतिं जुगुप्सेत, बीभत्सेत, घृणीभवेन्मा भूदेवंविधे संसारमहोदधौ घोरे पातः इति। **तदे**तस्मिन्नर्थ **एष श्लोकः** पञ्चाग्निविद्यास्तुतये॥८॥

स्तेनो हिरण्यस्य ब्राह्मणसुवर्णस्य हर्ता। **सुरां पिबन्**ब्राह्मणः सन्। **गुरोश्च तल्पं** दारा**न्**आ**वसन्**। **ब्रह्म**हा ब्राह्मणस्य हन्ता चेत्येते **पतन्ति चत्वारः**। **पञ्चमश्च तैः** सहाऽऽ**चरन्**िति॥९॥

अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्नीन्वेद न सह तैरप्याचरन्पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति य एवं वेद य एवं वेद ।।१०।।

इति पञ्चमाध्ययस्य दशमः खण्डः ।।१०।।

Refer below 1

(अथ पञ्चमाध्यायस्यैकादशः खण्डः)

प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते

जो कोई इस प्रकार पञ्चाग्नियों को जानता है, वह उन पतितों के साथ संसर्ग करता हुआ भी पाप से लिपायमान नहीं होता है। इसीलिये वह शुद्ध पवित्र और पुण्यलोक का भागी बन जाता है जो इस प्रकार जानता है।। १०।।

।। इति दशमः खण्डः ।।

आत्ममीमांसा का प्रस्ताव

उपमन्यु का पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष का पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लवि का पौत्र इन्द्रद्युम्न, शार्कराक्ष्य का पुत्र जन, एवं अश्वतराश्व का पुत्र बुडिल ये पाँचों बड़े कुटुम्ब वाले महागृहस्थ

अथ ह पुनर्यो यथोक्तान्**पञ्चाग्नीन्वेद** स **तैरप्याचरन्**महापातकिभिः **सह न पाप्मना लिप्यते शुद्धः** एव। तेन पञ्चाग्निदर्शनेन पावितो यस्मात्**पूतः** पुण्यो लोकः प्राजापत्यादिर्यस्य सोऽयं **पुण्यलोको भवति य एवं वेद** यथोक्तं समस्तं पञ्चभिः प्रश्नैः पृष्टमर्थजातं वेद। द्विरुक्तिः समस्तप्रश्ननिर्णयप्रदर्शनार्था।। १०।।

इति पञ्चमाध्यायस्य दशमः खण्डः।।१०।।

दक्षिणेन पथा गच्छतामन्नभावः उक्तः "तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ती"ति, क्षुद्रजन्तुलक्षणा च कष्टा संसारगतिरुक्ता। तदुभयदोषपरिजिहीर्षया वैश्वानरात्तृभावप्रतिपत्त्यर्थमुत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते। अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमित्यादिलिङ्गात्। आख्यायिका तु सुखावबोधार्था विद्यासंप्रदानन्यायप्रदर्शनार्था च—

प्राचीनशाल इति नामत उपमन्योरपत्य**मौपमन्यवः**। **सत्ययज्ञो** नामतः पुलुषस्यापत्यं **पौलुषिः**। तथेन्द्रद्युम्नो नामतो भल्लवेरपत्यं भाल्लविस्तस्यापत्यं

महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमाꣳसां चक्रुः को न आत्मा किं ब्रह्मेति ।।१।।

ते ह संपादयांचक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तꣳ हन्ताभ्यागच्छामेति तꣳ हाभ्याजग्मुः ।।२।।

तथा महाश्रोत्रिय एकत्रित होकर आपस में विचार करने लगे, कि हमारा आत्मा कौन है और ब्रह्म क्या है?।।१।।

औपमन्यवादि का उद्दालक के पास जाना

उन सभी पूज्यों ने (उक्त तत्त्व का निश्चय न होने से) निष्कर्ष निकाला कि यह अरुण का पुत्र आरुणि उद्दालक इस समय वैश्वानर आत्मा को जानता है। अतः हम सब उनके पास चलें, इस प्रकार निश्चय कर वे उस आरुणि के पास आये।।२।।

भाल्लवेयः। **जन** इति नामतः शर्कराक्षस्यापत्यं **शार्कराक्ष्यः**। बुडिलो नामतोऽश्वतराश्वस्यापत्य**माश्वतराश्विः**। पञ्चापि **ते हैते महाशाला महागृहस्था** विस्तीर्णाभिः शालाभिर्युक्ताः, संपन्ना इत्यर्थः। **महाश्रोत्रियाः** श्रुताध्ययनवृत्तसंपन्ना इत्यर्थः। ते एवंभूताः सन्तः **समेत्य** संभूय क्वचिन्**मीमांसां** विचारणां **चक्रुः** कृतवन्त इत्यर्थः। कथम्? **को नो**ऽस्माक**मात्मा**, **किं ब्रह्मेत्या**त्मब्रह्मशब्दयोरितरेतरविशेषणविशेष्यत्वम् ब्रह्मेत्यध्यात्मपरिच्छिन्नमात्मानं निवर्तयत्यात्मेति चाऽऽत्मव्यतिरिक्तस्याऽऽदित्यादिब्रह्मण उपास्यत्वं निवर्तयति। अभेदेनाऽऽत्मैव ब्रह्म, ब्रह्मैवाऽऽत्मेत्येवं सर्वात्मा वैश्वानरो ब्रह्म, स आत्मेत्येतत्सिद्धं भवति। मूर्धा ते व्यपतिष्यदन्धोऽभविष्यदित्यादिलिङ्गात्।। १।।

ते ह मीमांसन्तोऽपि निश्चयमलभमानाः **संपादयांचक्रुः** संपादितवन्त आत्मन उपदेष्टारम्। **उद्दालको वै** प्रसिद्धो नामतो **भगवन्तः** पूजावन्तोऽयमारुणिररुणस्यापत्यं संप्रति सम्यगिममात्मानं वैश्वानरमस्मदभिप्रेत**मध्येति** स्मरति। **तं हन्ते**दानी**मभ्यागच्छामेत्ये**वं निश्चित्य, **तं हाभ्याजग्मुर्ग**तवन्तस्तमारुणिम्।। २।।

स ह संपादयांचकार, प्रक्ष्यन्ति मामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये, हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति ।।३।।

तान्होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेय:, संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति, तꣳ हन्ताभ्यागच्छामेति तꣳ हाभ्याजग्मु: ।।४।।

तेभ्यो ह प्राप्तेभ्य: पृथगर्हाणि कारयांचकार, स ह प्रात: संजिहान उवाच, न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिता-

आये हुए ऋषियों के सहित उद्दालक अश्वपति के पास गया

उद्दालक ने निश्चय किया कि ये महागृहस्थ और परम श्रोत्रिय मुझसे (वैश्वानर के विषय में) पूछेंगे। पर मैं इन्हें अच्छी प्रकार से बतला न सकूँगा। अत: अच्छा होगा कि मैं इन्हें दूसरा उपदेशक बतला दूँ।।३।।

उद्दालक ने ऋषियों से कहा- हे भगवन्! इस समय कैकेय का पुत्र अश्वपति इस वैश्वानर आत्मा को ठीक-ठीक जानता है, आइये हम सब उसी के पास चलें। ऐसा कहकर वे सभी उस अश्वपति के पास आये ।।४।।



अश्वपति द्वारा अभ्यागतों का स्वागत

अपने पास आये हुए उन ऋषियों का राजा ने (पुरोहित और सेवकों से) पृथक-पृथक सत्कार कराया। दूसरे दिन प्रात: काल उठते ही (उनके पास जाकर विनयपूर्वक) उसने कहा।

स ह तान्दृष्ट्वैव तेषामागमनप्रयोजनं बुद्ध्वा **संपादयांचकार**। कथम्? प्रक्ष्यन्ति मां वैश्वानर**मिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो**ऽहं **न सर्वमिव** पृष्टं **प्रतिपत्स्ये** वक्तुं नोत्सहे। अतो **हन्ताहमि**दानी**मन्य**मेषा**मभ्यनुशासानि** वक्ष्याम्युपदेष्टार**मिति**।।३।।

एवं संपाद्य **तान्होवाच**। **अश्वपतिर्वै** नामतो **भगवन्तोऽयं** केकयस्यापत्यं **कैकेय: संप्रति** सम्यग**िममात्मानं वैश्वानरमध्येती**त्यादि समानम्।।४।।

तेभ्यो ह राजा **प्राप्तेभ्य:** पृथक**पृथगर्हाण्य**र्हणानि पुरोहितैर्भृत्यैश्च **कारयांचकार** कारितवान्। **स ह**ान्येद्यू राजा **प्रात: संजिहान उवाच** विनयेनोपगम्यैतद्धनं

ग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतो, यक्ष्यमाणो वै भगवन्तोऽहमस्मि, यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि, तावद्भगवद्भ्यो दास्यामि, वसन्तु भगवन्त इति ।।५।।

ते होचुर्येन हैवार्थेन पुरुषश्चरेत्तथ्ं, हैव वदेदात्मानमेवेमं वैश्वानरथ्ं संप्रत्यध्येषि, तमेव नो ब्रूहीति ।।६।।

मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, धनवान् कोई कृपण नहीं, न मद्यपान करने वाला, न अनाहिताग्नि, न अविद्वान् और न परस्त्री लम्पट ही है, फिर कोई दुराचारिणी स्त्री कैसे हो सकती है। हे पूज्यगण! मैं भी यज्ञ करने वाला हूँ (उसके लिये मैंने धन का संकल्प कर लिया है, तदनुसार) मैं एक ऋत्विक् को जितना धन दूँगा, उतना ही धन आपमें से प्रत्येक को भी दूँगा। अतः आप लोग यहीं ठहरिये (और मेरा यज्ञ देखिये)।।५।।

उन ऋषियों ने कहा, जिस प्रयोजन से कोई पुरुष किसी के पास जावे, तो उसे अपना प्रयोजन बतला देना चाहिये। इस समय आप इस वैश्वानर आत्मा को भली प्रकार जानते हैं। अतः उसी का वर्णन आप हमसे करें।।६।।

मत्त उपाददध्वमिति, तैः प्रत्याख्यातो, मयि दोषं पश्यन्ति नूनं, यतो न प्रतिगृह्णन्ति मत्तो धनमिति मन्वान आत्मनः सद्वृत्ततां प्रतिपिपादयिषन्नाह। **न मे** मम **जनपदे स्तेनः** परस्वहर्ता विद्यते। न **कदर्यो**ऽदाता सति विभवे। **न मद्यपो** द्विजोत्तमः सन्। **नानाहिताग्निः** शतगुः **नाविद्वान**धिकारानुरूपम्। **न स्वैरी** परदारेषु गन्ता। अत एव **स्वैरिणी कुतो** दुष्टचारिणी न संभवतीत्यर्थः। तैश्च न वयं धनेनार्थिन इत्युक्ते आहाल्पं मत्वैते धनं न गृह्णन्तीति। **यक्ष्माणो वै** कतिभिरहोभिर**हं** हे **भगवन्तोऽस्मि**। तदर्थं क्लृप्तं धनं मया **यावदेकैकस्मै** यथोक्त**मृत्विजे धनं दास्यामि तावत्**प्रत्येकं **भगवद्भ्यो**ऽपि **दास्यामि**। **वसन्तु भगवन्तः**, पश्यन्तु च मम यागमित्युक्ता**स्ते होचुः**। **येन हैवार्थेन** प्रयोजनेन यं प्रति **चरेद्**गच्छेत्**पुरुषस्तं हैवार्थं वदेत्**। इद**मेव** प्रयोजनमागमनस्येत्ययंन्यायः सताम्। वयं च वैश्वानरज्ञानार्थिनः। आत्मानमेवेमं **वैश्वानरं संप्रत्यध्येषि** सम्यग्जानासि। अत**स्तमेव नो**ऽस्मभ्यं **ब्रूही**त्युक्तस्तान्होवाच। **प्रातर्वो** युष्मभ्यं **प्रतिवक्तास्मि** प्रतिवाक्यं दातास्मीत्युक्तास्ते

तान्होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्तास्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे तान्हानुपनीयैवैतदुवाच ।।७।।

इति पञ्चमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।।११।।

 **(अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ।।**

औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्से इति दिवमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं

 **अश्वपतिके प्रति मुनियों की विधिपूर्वक उपसत्ति**

अश्वपति ने उन मुनियों से कहा कि मैं आप लोगों को इसका उत्तर प्रातःकाल दूँगा। राजा के अभिप्राय को जानकर दूसरे दिन पूर्वाह्न में वे मुनिगण हाथों में समिधायें लेकर राजा के पास गए। राजा ने उनका उपनयन न करके ही उस वैश्वानर विद्या का उपदेश कर दिया।।७।।

।। इत्यैकादशः खण्डः ।।

 **अश्वपति तथा औपमन्यव का संवाद**

(राजा ने कहा) हे औपमन्यव! तुम किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो? हे पूज्य राजन्! मैं द्युलोक को ही वैश्वानर मानकर उपासना करता हूँ, ऐसा औपमन्यव ने उत्तर दिया। (राजा ने कहा-) तुम जिस आत्मा की उपासना करते हो निश्चय ही यह सुतेजा नाम से प्रसिद्ध

ह राज्ञोऽभिप्रायज्ञाः **समित्पाणयः** समिद्भारहस्ताः अपरेद्युः **पूर्वाह्णे** राजानं **प्रतिचक्रमिरे** गतवन्तः। यत एवं महाशाला महाश्रोत्रिया ब्राह्मणाः सन्तो महाशालत्वाद्यभिमानं हित्वा समिद्भारहस्ता जातितो हीनं राजानं विद्यार्थिनो विनयेनोपजग्मुः। तथाऽन्यैर्विद्योपादित्सुभिर्भवितव्यम्। तेभ्यश्चादाद्विद्यामनुपनीयैवोपनयनमकृत्वैव तान्। यथा योग्येभ्यो विद्यामदात्तथाऽन्येनापि विद्या दातव्येत्याख्यायिकार्थः। एतद्वैश्वानरविज्ञानमुवाचेति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः।।५।।६।।७।।

इति पञ्चमाध्यायस्यैकादशः खण्डः।।११।।

स कथमुवाचेत्याह— हे **औपमन्यव**! **कमात्मानं** वैश्वानरं **त्वमुपास्से इति** पप्रच्छ। नन्वयमन्याय आचार्यः सच्छिष्यं पृच्छतीति? नैष दोषः। ''यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामी'' तिन्यायदर्शनात्। अन्यत्राप्याचार्यस्याप्रतिभानवति शिष्ये प्रतिभोत्पादनार्थः प्रश्नो दृष्टोऽजातशत्रोः, ''क्वैष तदाऽभूत्कुत एतदागादि''

त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते ।।१।।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूर्धा त्वेष आत्मन इति होवाच मूर्धा ते व्यपतिष्यद्यन्मां नाऽऽगमिष्यः इति ।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ।। १२।।

वैश्वानर आत्मा है, (क्योंकि आत्मा का यह अवयव है) इसीलिये तुम्हारे कुल में ''सुत'' (एकाहादि-रूप ज्योतिष्टोमादि अहर्गण में निकाला हुआ सोमरूप लता द्रव्य) ''प्रसुत'' (अहीनादि कर्म में प्रकर्ष निकाला हुआ सोमरस) तथा (सत्र में प्रकर्ष से निकाला हुआ सोमरस रूप) ''आसुत'' दिखायी देते हैं।।१।।

तुम दीप्ताग्नि होकर अन्न भक्षण करते हो तथा पुत्र पौत्रादिरूप प्रिय का दर्शन करते हो। जो वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार से उपासना करता है, वह अन्य भी कोई व्यक्ति अन्न का भक्षण करता है, प्रिय वस्तु का दर्शन करता है और उसके कुल में (सुत, प्रसुत एवं आसुत इत्यादि कर्मित्वरूप) ब्रह्मतेज होता है। फिर भी यह वैश्वानर आत्मा का मस्तक ही है (सम्पूर्ण वैश्वानर नहीं है) ऐसा राजा ने कहा। साथ ही यह भी कहा- यदि तुम मेरे पास नहीं आये होते, तो निश्चय ही तुम्हारा मस्तक गिर जाता।। २।।

।। इति द्वादशः खण्डः ।।

इति। **दिवमेव** द्युलोकमेव वैश्वानरमुपासे **भगवो राजन्निति होवाच**। **एष वै सुतेजाः** शोभनं तेजो यस्य सोऽयं सुतेजा इति प्रसिद्धो **वैश्वानर आत्मा**ऽऽत्मनोऽवयवभूतत्वाद्यं त्वमात्मानमात्मैकदेशमुपास्से **तस्मा**त्सुतेजसो वैश्वानरस्योपासनात्**तव सुतम**भिषुतं सोमरूपं कर्मणि **प्रसुतं** प्रकर्षेण च सुतमा**सुतं** चाहर्गणादिषु तव **कुले दृश्यते**ऽतीव कर्मिणस्त्वत्कुलीनाः इत्यर्थः।। १।।

अत्स्यन्नं दीप्ताग्निः सन्**पश्यसि** च पुत्रपौत्रादि **प्रियमिष्टम्**। अन्योऽप्य**त्त्यन्नं पश्यति** च **प्रियं भवत्यस्य** सुतं प्रसुतमासुतमित्यादि कर्मित्वं **ब्रह्मवर्चसं कुले यः** कश्चिदेतं यथोक्त**मेवं वैश्वानरमुपास्ते**। **मूर्धा** त्वात्मनो वैश्वानरस्यैव न समस्तो वैश्वानरः। अतः समस्तबुद्ध्या वैश्वानरस्योपासनान्मूर्धा शिरस्**ते** विपरीतग्राहिणो **व्यपतिष्यद्वि**पतितमभविष्यत् **यद्यदि मां नाऽऽगमिष्यो** नाऽऽगतोऽभविष्यः। साध्वकार्षीर्यन्मामागतोऽसीत्यभिप्रायः।। २।।

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।।१२।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः।)

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं, प्राचीनयोग्य! कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से, तस्मात्तव बहु विश्वरूपं कुले दृश्यते ।।१।।

प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो, दासीनिष्कोऽत्स्यन्नं, पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति, प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं

अश्वपतिऔर सत्ययज्ञ का संवाद

फिर अश्वपति ने पौलुषि सत्ययज्ञ से कहा- हे प्राचीनयोग्य! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो? उसने कहा- हे पूज्य राजन्! मैं आदित्य की ही वैश्वानर दृष्टि से उपासना करता हूँ। (राजा ने कहा-) यह निश्चय ही विश्वरूप वैश्वानर आत्मा है, (क्योंकि यह वैश्वानर का अवयव है) जिस आत्मा की तुम उपासना करते हो, इस उपासना के कारण से ही तेरे कुल में बहुत-सा ऐहिक और पारलौकिक) विश्वरूप साधन दीखता है।।१।।

दो खच्चरायिों से जुता हुआ रथ और दासियों से युक्त हार प्राप्त है। तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रिय वस्तु को देखते हो। जो कोई अन्य व्यक्ति भी इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार उपासना करता है, वह अन्न भक्षण करता है, प्रिय वस्तु को देखता है और उसके कुल में

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं, हे प्राचीनयोग्य! कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति होवाच। शुक्लनीलादिरूपत्वाद्विश्वरूपत्वमादित्यस्य, सर्वरूपत्वाद्वा। सर्वाणि रूपाणि हि त्वाष्ट्राणि यतोऽतो वा विश्वरूप आदित्यस्तदुपासनात्त**व बहु विश्वरूपमि**हामुत्रार्थमुपकरणं **दृश्यते कुले**।।१।।

किंच त्वामनु **प्रवृत्तोऽश्वतरी**भ्यां युक्तो **रथो**ऽश्वतरीरथो, **दासीनिष्को** दासीभिर्युक्तो निष्को हारो दासीनिष्कः। **अत्स्यन्नमि**त्यादि समानम्। चक्षुर्वैश्वानरस्य तु सविता।

वैश्वानरमुपास्ते, चक्षुष्ट्वेतदात्मन इति होवाचान्धोऽभविष्यो, यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।)

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं, वैयाघ्रपद्य! कं त्वमात्मानमुपास्स इति वायुमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै पृथग्वर्त्माऽऽत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वां पृथग्बलय आयन्ति पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति ॥१॥

ब्रह्मतेज होता है। फिर भी यह वैश्वानर आत्मा का नेत्र ही है (सम्पूर्ण वैश्वानर नहीं है) ऐसा कहकर राजा ने फिर कहा- यदि तुम मेरे पास नहीं आते तो अन्धे हो जाते ॥२॥

॥इति त्रयोदशः खण्डः॥

अश्वपति तथा इन्द्रद्युम्न का संवाद

उसके बाद राजा ने भाल्लवेय इन्द्रद्युम्न से कहा- हे वैयाघ्रपद्य! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो? उसने कहा- हे पूज्य राजन्! मैं वैश्वानर दृष्टि से वायु की उपासना करता हूँ, (राजा ने कहा-) जिस आत्मा की तुम उपासना करते हो, वह निश्चय ही (आवह-उद्वह आदि अनेकों भेद वाला) पृथक् वर्त्मा वैश्वानर आत्मा है। इसी के प्रभाव से तेरे पास पृथक्-पृथक् उपहार आते हैं और तेरे पीछे पृथक्-पृथक् रथ की पंक्तियाँ चलती हैं॥१॥

तस्य समस्तबुद्ध्योपासनाद**न्धोऽभविष्य**श्चक्षुर्हीनोऽभविष्यो **यन्मां नाऽऽगमिष्य इति** पूर्ववत्॥२॥

इति पञ्चमाध्यास्य त्रयोदशः खण्डः॥१३॥

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं, वैयाघ्रपद्य! कं त्वमात्मानुपास्से इत्यादि समानम्। **पृथग्वर्त्मा** नाना वर्त्मानि यस्य वायोरावहोद्वहादिभिर्भेदैर्वर्तमानस्य सोऽयं पृथग्वर्त्मा वायुः, **तस्मात्**पृथग्वर्त्मात्मनो वैश्वानरस्योपासनात्पृथङ्नानादिक्कास्**त्वां** बलयो वस्त्रान्नादिलक्षणा **बलय आयन्त्या**गच्छन्ति। **पृथग्रथश्रेण**यो रथपङ्क्तयोऽपि त्वाम**नुयन्ति**॥१॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच प्राणस्ते उदक्रमिष्यद्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।। १४।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः।)

अथ होवाच जनꣳ शार्कराक्ष्य! कं त्वमात्मानमुपास्स इत्याकाशमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै बहुल आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च ।।१।।

तुम अन्न भक्षण करते हो, प्रिय वस्तु को देखते हो। जो कोई अन्य व्यक्ति भी इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार से उपासना करता है, वह भी अन्न भक्षण करता है, प्रिय वस्तु को देखता है और उसके कुल में ब्रह्मतेज होता है। किन्तु यह वैश्वानर आत्मा का प्राण ही है (सम्पूर्ण वैश्वानर नहीं है) ऐसा राजा ने कहा और यह भी कहा, यदि तुम मेरे पास नहीं आये होते, तो तेरा प्राण निकल जाता।। २।।

।। इति चतुर्दशः खण्डः ।।

अश्वपति और जन का संवाद

फिर अश्वपति ने जन से कहा- हे शार्कराक्ष्य! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो? जन ने कहा- हे राजन्! मैं वैश्वानर दृष्टि से आकाश की ही उपासना करता हूँ। (राजा ने कहा) यह निश्चय ही बहुल नामक वैश्वानर आत्मा है जिसकी तुम उपासना करते हो। इसी उपासना के बल से तुम प्रजा और स्वर्णादि धन से परिपूर्ण हो।। १।।

अत्स्यन्नमित्यादि समानम्। **प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच प्राणस्ते** तवोद-**क्रमिष्यदु**त्क्रान्तोऽभविष्य**द्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति**।। २।।

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।।१४।।

अथ होवाच जनमित्यादि समानम्। **एष वै बहुल आत्मा वैश्वानरः**। बहुलत्वमाकाशस्य सर्वगतत्वाद्बहुलगुणोपासनाच्च। **त्वं बहुलोऽसि प्रजया च** पुत्रपौत्रादिलक्षणया **धनेन च** हिरण्यादिना।। १।।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते संदेहस्त्वेष आत्मन इति होवाच संदेहस्ते व्यशीर्यद्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।। १५ ।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्य षोडशः खण्डः।)

अथ होवाच बुडिलमाश्वतराश्विं, वैयाघ्रपद्य! कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यप एव भगवो राजन्निति होवाचैष वै

तुम अन्न भक्षण करते हो, प्रिय वस्तु को देखते हो। इस प्रकार अन्य जो कोई भी व्यक्ति इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार से उपासना करता है, वह भी अन्न भक्षण करता है, प्रिय वस्तु को देखता है और उसका कुल ब्रह्मतेज से युक्त होता है, पर याद रखो इस वैश्वानर आत्मा का यह आकाश केवल मध्यभाग है, सम्पूर्ण वैश्वानररूप नहीं है। ऐसा राजा ने कहा, साथ ही यह भी कहा, कि यदि तू मेरे पास नहीं आता, तो तेरे देह का मध्यभाग नष्ट हो जाता।। २।।

।। इति पञ्चदशः खण्डः ।।

अश्वपति और बुडिल का संवाद

उसके बाद राजा ने अश्वतराश्व के पुत्र बुडिल से कहा- हे वैयाघ्रपद्य! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो? बुडिल ने कहा- हे पूज्य राजन्! मैं तो वैश्वानर दृष्टि से जल की ही उपासना करता हूँ। (राजा ने कहा-) जिसकी तुम उपासना करते हो, वह निश्चय ही धन नामक

संदेहस्त्वेष संदेहो मध्यमं शरीरं वैश्वानरस्य। दिहेरुपचयार्थत्वान्मांसरुधिरास्थ्यादिभिश्च बहुलं शरीरं तत्**संदेहस्ते** तव शरीरं **व्यशीर्यच्छी**र्णमभविष्य**द्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति**।। २।।

इति पञ्चमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः।। १५।।

अथ होवाच बुडिलमाश्वतराश्विमित्यादि समानम्। **एष वै रयिरात्मा वैश्वानरो**

रयिरात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वꣳ रयिमान्पुष्टिमानसि ॥१॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते बस्तिस्त्वेष आत्मन इति होवाच बस्तिस्ते व्यभेत्स्यद्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः।)

अथ होवाचोद्दालकमारुणिं, गौतम! कं त्वमात्मानमुपास्से इति पृथिवीमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै प्रतिष्ठाऽऽत्मा

वैश्वानर आत्मा है (क्योंकि जल से अन्न होता और अन्न से धन)। इसीलिये तुम धनवान् और शरीर से हृष्ट-पुष्ट हो।।१।।

तुम अन्न खाते हो और प्रिय वस्तु को देखते हो। जो कोई पुरुष इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार उपासना करता है, वह अन्न खाता है, प्रिय वस्तु को देखता है और उसके कुल में ब्रह्म तेजस्वी होता है। किन्तु यह वैश्वानर आत्मा का मूत्र संग्रह स्थान है, सम्पूर्ण वैश्वानररूप नहीं है, ऐसा राजा ने कहा और यह भी कहा, यदि तू मेरे पास नहीं आया होता, तो तेरा बस्ति स्थान फट जाता।।२।।

।।इति षोडशः खण्डः ।।

अश्वपति और उद्दालक का संवाद

अश्वपति ने उद्दालक आरुणि से कहा- हे गौतम! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो? उद्दालक ने कहा- हे पूज्य रजान्! मैं वैश्वानर दृष्टि से पृथिवी की ही उपासना करता हूँ।

धनरूपः। अद्भ्योऽन्नं, ततो धनमिति। **तस्माद्रयिमान्**धनवांस्त्वं **पुष्टिमांश्च** शरीरेण पुष्टेश्चान्ननिमित्तत्वात्।।१।।

बस्तिस्त्वेष आत्मनो वैश्वानरस्य बस्तिर्मूत्रसंग्रहस्थानं **बस्तिस्ते व्यभेत्स्य**-द्भिन्नोऽभविष्य**द्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति**।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्य षोडशः खण्डः।।१६।।

अथ होवाचोद्दालकमित्यादि समानम्। **पृथिवीमेव भगवो राजन्निति होवाच।**

वैश्वानरो, यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं प्रतिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्च ।।१।।

अत्स्यन्नं, पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते पादौ त्वेतावात्मन इति शिथिलौ **होवाच, पादौ ते व्यम्लास्येतां, यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ।।२।।**

इति पञ्चमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः।। १७।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः)

तान्होवाचैते वै खलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वाꣳसोऽन्नमत्थ यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं
परिच्छिन्नात्मरूपेण ... हस्तिदर्शन इव

(राजा ने कहा-) जिसकी तुम उपासना करते हो, वह निश्चय ही उस वैश्वानर आत्मा के चरण हैं, सम्पूर्ण वैश्वानररूप नहीं है। इसी की उपासना से तुम प्रजा और पशुओं से युक्त हो।।१।।

तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रिय वस्तु को देखते हो। जो कोई अन्य व्यक्ति भी इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार उपासना करता है, वह अन्न खाता है, प्रिय वस्तु को देखता है, उसके कुल में ब्रह्म तेजस्वी होता है। पर याद रखो यह आत्मा के चरण ही हैं, सम्पूर्ण वैश्वानररूप नहीं है। ऐसा राजा ने कहा, साथ में यह भी कहा यदि तू मेरे पास नहीं आता, तो तेरे पाद शिथिल हो जाते।।२।।

।।इति सप्तदशः खण्डः ।।

समस्त वैश्वानर उपासना का फल

व्यस्त उपासना करने वाले उन ऋषियों से राजा अश्वपति ने कहा- ये सभी तुम लोग इस वैश्वानर आत्मा को पृथक-पृथक-सा जान कर अन्न भक्षण करते हो। जो कोई 'यही मैं हूँ, इस

एष वै प्रतिष्ठा पादौ वैश्वानरस्य। **पादौ ते व्यम्लास्येतां** विम्लानावभविष्यतां श्लथीभूतौ **यन्मां नाऽऽगमिष्य इति**।।१।।२।।

शिथिलौ

इति पञ्चमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः।।१७।।

तान्यथोक्तवैश्वानरदर्शनवतो होवाच। एते यूयं **वै खल्वित्यनर्थकौ** यूयं पृथगिवापृथक्सन्तमिममेकं वैश्वानरमात्मानं **विद्वांसोऽन्नमत्थ** परिच्छिन्नात्मबुद्ध्येत्येतद्धस्तिदर्शन

वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति ॥१॥

तस्य ह वा एतस्याऽऽत्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्माऽऽत्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव

प्रकार अभिमान करता हुआ इस अभिमान के विषय (द्युलोक से लेकर पृथिवी पर्यन्त) प्रादेशमात्र वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है वह (वैश्वानर वेत्ता सर्वात्मा होकर अन्न भक्षण करता है, अज्ञानियों के समान देहमात्र में अभिमान करके अन्न नहीं खाता किन्तु) समस्त लोकों में, सभी प्राणियों में और शरीरादि सम्पूर्ण आत्माओं में अन्न भक्षण करता है।। १।।

समस्त वैश्वानर का वर्णन

उस इस प्रकृत वैश्वानर आत्मा का मस्तक ही द्युलोक है, चक्षु सूर्य है, प्राण पृथग्वर्त्मारूप वायु है, शरीर का मध्यभाग आकाश है, बस्ति ही जल है और पृथिवी दोनों पाद हैं, वक्षःस्थल वेदी है, लोम कुशाएं हैं, (क्योंकि वेदी में बिछे हुए दर्भ के समान वक्षःस्थल पर बिछे हुए से

इव जात्यन्धाः। **यस्त्वेतमेवं** यथोक्तावयवैर्द्युमूर्धादिभिः पृथिवीपादान्तैर्विशिष्टमेकं **प्रादेशमात्रं** प्रादेशैर्द्युमूर्धादिभिः पृथिवीपादान्तैरध्यात्मं मीयते ज्ञायत इति प्रादेशमात्रम्। मुखादिषु वा करणेष्वत्तृत्वे मीयत इति प्रादेशमात्रः। द्युलोकादिपृथिव्यन्तप्रदेशपरिमाणो वा प्रादेशमात्रः। प्रकर्षेण शास्त्रेणाऽऽदिश्यन्त इति प्रादेशा द्युलोकादय एव तावत्परिमाणः प्रादेशमात्रः। शाखान्तरे तु मूर्धादिचिबुकप्रतिष्ठित इति प्रादेशमात्रं कल्पयन्ति। इह तु न तथाऽभिप्रेतः। तस्य ह वा एतस्याऽऽत्मन इत्याद्युपसंहारात्। प्रत्यगात्मतयाऽभिविमीयतेऽहमिति ज्ञायत इत्यभिविमानस्तमेत**मात्मानं वैश्वानरं** विश्वान्नरान्नयति पुण्यपापानुरूपां गतिं सर्वात्मैष ईश्वरो वैश्वानरो विश्वो नर एव वा सर्वात्मत्वात्। विश्वैर्वा नरैः प्रत्यगात्मतया प्रविभज्य नीयते इति वैश्वानरस्तमेव**मुपास्ते** यः, **सो**ऽदन्नन्नादी **सर्वेषु लोकेषु** द्युलोकादिषु **सर्वेषु भूतेषु** चराचरेषु **सर्वेष्वात्मसु** शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिषु तेषु ह्यात्मकल्पनाव्यपदेशः प्राणिना**मन्नमत्ति** वैश्वानरवित्सर्वात्मा सन्नन्नमत्ति। न यथाऽज्ञः पिण्डमात्राभिमानः सन्नित्यर्थः।।१।।

कस्मादेवम्? यस्मा**त्तस्य ह वै प्रकृतस्यैवैतस्याऽऽत्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्माऽऽत्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादौ**। अथवा विध्यर्थमेतद्वचनमेवमुपास्य इति। अथेदानीं वैश्वानरविदो भोजनेऽग्निहोत्रं संपिपादयिषन्नाह— एतस्य वैश्वानरस्य भोक्तुर**उर एव वेदि**राकारसामान्यात्। **लोमानि**

रयिः, पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो, मनोऽन्वाहार्यपचन, आस्यमाहवनीयः ।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ।।१८।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः।)

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयꣳ, स यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति, प्राणस्तृप्यति ।।१।।

प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यन्त्यां यत्किंच द्यौश्चाऽऽदित्यश्चा-

दीखते हैं) हृदय गार्हपत्याग्नि है। हृदय से उत्पन्न हुआ मन अन्वाहार्यपचन अग्नि है और मुख आहवनीयाग्नि है (क्योंकि इसी में अन्न का हवन किया जाता है)।।२।।

।। इत्यष्टदशः खण्डः ।।

भोजन में अग्निहोत्रत्व के लिए प्रथम प्राणाहुति का वर्णन

(पूर्वोक्त सिद्धान्त के कारण वैश्वानर उपासक का यह कर्तव्य है) कि भोजन के समय जो भात पहले आवे, उसका हवन करे। वह भोक्ता जो पहली आहुति दे तो उसे ''प्राणाय स्वाहा' ऐसा कहकर मुख में अन्न डालें, उससे प्राण तृप्त होता है।।१।।

प्राण के तृप्त होने पर नेत्र इन्द्रिय तृप्त होती है, नेत्र इन्द्रिय के तृप्त होने पर आदित्य तृप्त

बर्हिर्वेद्यामिवोरसि लोमान्यास्तीर्णानि दृश्यन्ते। **हृदयं गार्हपत्यो**, हृदयाद्धि **मनः** प्रणीतमिवानन्तरीभवत्यतो**ऽन्वाहार्यपचनो**ऽग्निर्मनः। **आस्यं** मुखमा**हवनीय** इवाऽऽहवनीयो हूयतेऽस्मिन्नन्नमिति।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ।।१८।।

तत्तत्रैवं सति **यद्भक्तं** भोजनकाल **आगच्छेद्भो**जनार्थं **तद्धोमीयं** तद्धोतव्यमग्निहोत्रसंपन्मात्रस्य विवक्षितत्वान्नाग्निहोत्राङ्गेतिकर्तव्यताप्राप्तिरिह **स** भोक्ता **यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां** कथं **जुहुयादि**त्याह— **प्राणाय स्वाहेत्य**नेन मन्त्रेणाऽऽहुतिशब्दाद्‌वदानप्रमाणमन्नं प्रक्षिपेदित्यर्थः। तेन **प्राणस्तृप्यति**।। १ ।।

प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुरादित्यो **द्यौश्चे**त्यादि तृप्यति यच्चान्य**द्द्यौश्चाऽऽदित्यश्च** स्वामित्वेना**धितिष्ठतस्तच्च तृप्यति तस्य तृप्तिमनु** स्वयं भुञ्जान-

धितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति, प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ।।२।।

इति पञ्चमाध्यस्यैकोनविंशः खण्डः ।।१९।।



(अथ पञ्चमाध्यायस्य विंशः खण्डः।)

अथ यां द्वितीयां जुहुयात्तां जुहुयाद्व्यानाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति ।।१।।

व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति श्रोत्रे तृप्यति चन्द्रमास्तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति दिशस्तृप्यन्ति दिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किंच दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्य विंशः खण्डः ।।२०।।

होता है। सूर्य के तृप्त होने पर द्युलोक तृप्त होता है तथा द्युलोक के तृप्त होने पर जिस किसी के ऊपर द्युलोक और आदित्य (स्वामी भाव से) अधिष्ठित हैं, वह भी तृप्त होता है और उसके तृप्त होने पर स्वयं भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेज के द्वारा तृप्त होता है।। २।।

।। इत्येकोनविंशः खण्डः ।।



द्वितीय आहुति

उसके बाद जो दूसरी आहुति डाले तो उसे "व्यानाय स्वाहा" इस मन्त्र को बोलकर मुख में ग्रास डाले, इस प्रकार व्यान तृप्त होता है ।।१।।

व्यान के तृप्त होने पर श्रोत्र तृप्त होता है, श्रोत्र के तृप्त होने पर चन्द्रमा तृप्त होता है, चन्द्रमा के तृप्त होने पर दिशाएं तृप्त होती हैं और दिशाओं के तृप्त होने पर जिस किसी के ऊपर चन्द्रमा एवं दिशाएं (स्वामी भाव से) अधिषिठत हैं, वह तृप्त होता है। उसकी तृप्ति के पीछे वह भोक्ता, प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज एवं ब्रह्मतेज से तृप्त हो जाता है ।।

।। इति विंशः खण्डः ।।

स्तृप्यतीत्येव प्रत्यक्षम्। किं च प्रजादिभिश्च। तेजः शरीरस्था दीप्तिरुज्ज्वलत्वं प्रागल्भ्यं वा, ब्रह्मवर्चसं वृत्तस्वाध्यायनिमित्तं तेजः।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः।।१९।।

अथ यां द्वितीयां तृतीयां चतुर्थीं पञ्चमीमिति समानम्।। १।।२।।

इति पञ्चमाध्यायस्य विंशः खण्डः।। २०।।



(अथ पञ्चमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः।)

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्य पानस्तृप्यति ॥१॥

अपाने तृप्यति वाक्तृप्यति वाचि तृप्यन्त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यत्किंच पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः॥ २१॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः।)

अथ यां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात्समानाय स्वाहेति समानस्तृप्यति ॥१॥



तृतीय आहुति का वर्णन

पुनः जिस तीसरी आहुति को दे उसे ''अपानाय स्वाहा'' इस मन्त्र के द्वारा मुख में डाले, इस प्रकार अपान तृप्त हो जाता है॥१॥

अपान के तृप्त होते ही वाणी तृप्त होती है, उससे अग्नि तृप्त होती है, अग्नि के तृप्त होने पर पृथिवी तृप्त होती है और पृथिवी के तृप्त होने पर जिस किसी के ऊपर पृथिवी तथा अग्नि (स्वामी भाव से) प्रतिष्ठित हैं वह तृप्त होता है एवं उसकी तृप्ति के पीछे भोक्ता, प्रजा, पशु, अन्नाद्य तेज और ब्रह्मतेज से तृप्त हो जाता है॥२॥

॥ इत्येकविंशः खण्डः ॥



चतुर्थ आहुति का वर्णन

फिर जिस चतुर्थ आहुति को दे, तो उसे ''समानाय स्वाहा'' इस मन्त्र से मुख में ग्रास डाले, इससे समान तृप्त होता है॥१॥

॥१॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः॥ २१॥

समाने तृप्यति मनस्तृप्यति मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति पर्जन्ये तृप्यति विद्युत्तृप्यति विद्युति तृप्यन्त्यां यत्किंच विद्युच्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः॥ २२॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः।)

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति ॥१॥

उदाने तृप्यति त्वक्तृप्यति त्वचि तृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किंच वायुश्चाऽऽकाशश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः॥ २३॥

समाने के तृप्त होने पर मन तृप्त होता है, मन के तृप्त होने पर पर्जन्य तृप्त होता है। पर्जन्य के तृप्त होने पर जिस किसी के ऊपर विद्युत् और पर्जन्य अधिष्ठित हैं, वह तृप्त होता है। इस प्रकार उसकी तृप्ति के पीछे भोक्ता, प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेज से तृप्त होता है।। २।।

।। इति द्वाविंशः खण्डः ।।

पंचम आहुति का वर्णन

पुनः जिस पंचम आहुति को मुख में दे, उसे "उदानाय स्वाहा" इस मन्त्र से मुख में डाले, इस प्रकार उदान तृप्त होता है।। १।।

उदान के तृप्त होने पर त्वगिन्द्रिय तृप्त होती है, त्वचा के तृप्त होने पर वायु तृप्त होता है। वायु के तृप्त होने पर आकाश तृप्त होता है तथा आकाश के तृप्त होने पर जिस किसी के ऊपर वायु और आकाश (स्वामी भाव से) अधिष्ठित है, वह तृप्त होता और उसकी तृप्ति के पीछे स्वयं भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेज से तृप्त होता है।। २।।

।। इति त्रयोविंशः खण्डः ।।

।। १।। २।।

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः।। २२।।

।। १।। २।।

इति पञ्चमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः।। २३।।

(अथ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः।)

स य इदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति यथाऽङ्गारानपोह्य भस्मनि जुहुयात्तादृक्तत्स्यात् ॥१॥

अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मसु हुतं भवति ॥२॥

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवꣳ हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति ॥३॥

अविद्वानों का अग्निहोत्र

वह जो कोई इस वैश्वानर विद्या को न जानता हुआ लोक प्रसिद्ध अग्निहोत्र करता है- उसका वह अग्निहोत्र ऐसा ही है, जैसे आहुति योग्य अंगारों को हटाकर भस्म में आहुति डाले (इस प्रकार वैश्वानर उपासक के अग्निहोत्र की प्रशंसा की गयी है)।।१।।

विद्वानों का अग्निहोत्र

किन्तु जो इस प्रकार इस वैश्वानर को जानकर अग्निहोत्र करता है, उसका सम्पूर्ण लोक, सम्पूर्ण भूत और पूर्वोक्त सम्पूर्ण आत्माओं में हवन हो जाता है।।२।।

इस विषय में यह दृष्टान्त है- जैसे सींक का अग्रभाग अग्नि में डालते ही जल कर राख हो जाता है, वैसे ही जो इस प्रकार जानता हुआ अग्निहोत्र करता है, उसके सम्पूर्ण पाप जलकर भस्म हो जाते हैं।।३।।

स यः कश्चिदिदं वैश्वानरदर्शनं यथोक्त**मविद्वान्**स**न्नग्निहोत्रं** प्रसिद्धं **जुहोति यथाऽङ्गारा**नाहुतियोग्या**न्पोह्या**नाहुतिस्थाने **भस्मनि जुहुयात्तादृक्त**त्तुल्यं तस्य तदग्निहोत्रहवनं **स्याद्वै**श्वानरविदोऽग्निहोत्रमपेक्ष्येति प्रसिद्धाग्निहोत्रनिन्दया वैश्वानरविदोऽग्निहोत्रं स्तूयते।। १ ।।

अतश्चैतद्विशिष्टमग्निहोत्रम्। कथम्। **अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य** यथोक्तवैश्वानरविज्ञानवतः **सर्वेषु लोकेष्वि**त्याद्युक्तार्थम्। हुतमन्नमत्तीत्यनयोरेकार्थत्वात्।। २ ।।

किंच **तद्यथेषीकाया**स्**तूल**मग्र**मग्नौ प्रोतं** प्रक्षिप्तं **प्रदूयेत** प्रदह्येत क्षिप्रमेवं **हास्य** विदुषः सर्वात्मभूतस्य सर्वान्नानामत्तुः **सर्वे** निरवशिष्टाः **पाप्मानो** धर्माधर्माख्या अनेकजन्मसंचिता इह च प्राग्ज्ञानोत्पत्तेर्ज्ञानसहभाविनश्च **प्रदूयन्ते** प्रदह्येरन्वर्तमानशरीरारम्भकपाप्मवर्जं, लक्ष्यं प्रति मुक्तेषुवत्प्रवृत्तफलत्वात्तस्य न दाहः। **य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति** भुङ्क्ते।। ३ ।।

तस्मादु हैवंविद्यद्यपि चण्डालायोच्छिष्टं प्रयच्छेदात्मनि हैवास्य तद्वैश्वानरे हुतꣳ स्यादिति तदेष श्लोकः ॥४॥

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासते एवꣳ सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासते इत्यग्निहोत्रमुपासत इति ॥५॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः॥ २४॥

इति च्छान्दोग्योपनिषदि पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥५॥

अतः वह इस प्रकार जानकर यदि चाण्डाल को उच्छिष्ट भी दे तो भी उस उपासक का वह अन्न वैश्वानर आत्मा में ही हवन किया हुआ माना जाता है, इस विषय में यह श्लोक भी है।।४।।

जैसे इस लोक में क्षुधा से पीड़ित बालक सभी प्रकार से माता की उपासना करते हैं (कि माता हमें कब अन्न देगी) ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी इस प्रकार जानने वाले के अग्निहोत्ररूप भोजन की उपासना करते हैं। अग्निहोत्र की उपासना करते हैं ।।५।।

।। इति पंचमाध्यायः, चतुर्विंशः खण्डः ।।

इस प्रकार छान्दोग्योपनिषत् पञ्चम अध्याय की श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य कैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज कृत मिताक्षरा व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।५।।

स यद्यपि **चण्डालायो**च्छिष्टानर्हा**योच्छिष्टं प्रयच्छे**दुच्छिष्टं दद्यात्प्रतिषिद्धमुच्छिष्टदानं यद्यपि कुर्या**दात्मनि हैवास्य** चण्डालदेहस्थे **वैश्वानरे** त**द्धुतं स्या**न्नाधर्मनिमित्तमिति विद्यामेव स्तौति। तदेतस्मिन्स्तुत्यर्थे **श्लोको** मन्त्रोऽप्ये**ष** भवति।।४।।

यथेह लोके **क्षुधिता** बुभुक्षिता **बाला मातरं पर्युपासते** कदा नो माताऽन्नं प्रयच्छतीत्येवं **सर्वाणि** भूतान्यन्नादान्येवंविदो**ऽग्निहोत्रं** भोजन**मुपासते** कदा त्वसौ भोक्ष्यत इति, जगत्सर्वं विद्वद्भोजनेन तृप्तं भवतीत्यर्थः। द्विरुक्तिरध्यायपरिसमाप्त्यर्था।।५।।

इति दशमाह्निकम्।।१०।।

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः।। २४।।

इति श्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः।।५।।

षष्ठोऽध्यायः

(अथ षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः।)

ॐ श्वेतकेतुर्हाऽऽरुणेय आस तꣳह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यं न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति ।।१।।

स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विꣳशतिवर्षः सर्वान्वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध एयाय तꣳह पितोवाच श्वेतकेतो

(आरुणि का श्वेतकेतु के प्रति उपदेश)

शास्त्र में यह प्रसिद्ध है कि अरुण का पौत्र श्वेतकेतु था। उससे उसके पिता ने कहा, हे श्वेतकेतु! तू (हमारे कुल के अनुरूप गुरु के पास जाकर) ब्रह्मचर्य पूर्वक वास कर, क्योंकि हे सोम्य! यह उचित नहीं है, हमारे कुल में उत्पन्न हुआ कोई भी पुरुष अध्ययन न करके ब्रह्मबन्धु के समान हो जावे।। १।।

पिता के कहने पर वह श्वेतकेतु बारह वर्ष की अवस्था में उपनयन कराके चौबीस वर्ष की अवस्था तक सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कर और उनका अर्थ जानकर अपने

श्वेतकेतुर्हाऽऽरुणेय आसेत्याद्यध्यायसंबन्धः। सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानित्युक्तं, कथं तस्माज्जगदिदं जायते, तस्मिन्नेव च लीयतेऽनिति च तेनैवेत्येतद्वक्तव्यम्। अनन्तरं चैकस्मिन्भुक्ते विदुषि सर्वं जगत्तृप्तं भवतीत्युक्तं तदेकत्वे सत्यात्मनः सर्वभूतस्थस्योपपद्यते नाऽऽत्मभेदे। कथं च तदेकत्वमिति तदर्थोऽयं षष्ठोऽध्याय आरभ्यते। पितापुत्राख्यायिका विद्यायाः सारिष्ठत्वप्रदर्शनार्था। श्वेतकेतुरिति नामतो हेत्यैतिह्यार्थः। आरुणेयोऽरुणस्य पौत्र आस बभूव। तं पुत्रं हाऽऽरुणिः पिता योग्यं विद्याभाजनं मन्वानस्तस्योपनयनकालात्ययं च पश्यन्नुवाच हे **श्वेतकेतो**ऽनुरूपं गुरुं कुलस्य नो गत्वा, वस ब्रह्मचर्यम्। न चैतद्युक्तं, यदस्मत्कुलीनो हे **सोम्याननूच्या**नधीत्य **ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति** ब्राह्मणान्बन्धून्व्यपदिशति न स्वयं ब्राह्मणवृत्त इति।। १।।

'तस्यातः प्रवासोऽनुमीयते पितुः। येन स्वयं गुणवान्सन्पुत्रं नोपनेष्यति। स पित्रोक्तः श्वेतकेतुर्ह **द्वादशवर्षः** सन्नुपेत्याऽऽचार्यं यावच्चतुर्विंशतिवर्षो बभूव

यन्नु सोम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेश-मप्राक्ष्यः ।।२।।

प्रवक्ता अप्रणत स्वभाव

सुनने का शोध **येनाश्रुतꣳश्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति ।।३।।** अर्थवाद

को बड़ा बुद्धिमान और व्याख्याता मानता हुआ अविनीत स्वभाव होकर घर लौटा। पिता ने उससे कहा हे सोम्य! तुम जो पंडित और उद्दण्ड दीखते हो, वह क्या तूने उस आदेश को पूछा है।।२।।

जिस आदेश के श्रवण द्वारा न सुना हुआ पदार्थ भी सुना हो जाता है, न मनन किया हुआ पदार्थ भी मनन हो जाता है और अनिश्चित पदार्थ भी निश्चित हो जाता है। (इस बात को सुनकर श्वेतकेतु ने कहा) भगवन्! वह आदेश कैसा होता है।।३।।

तावत्**सर्वान्वेदां**श्चतुरोऽ**प्यधीत्य** तदर्थं च बुद्ध्वा **महामना** महद्गम्भीरं मनो यस्यासममात्मानमन्यैर्मन्यमानं मनो यस्य सोऽयं महामना **अनूचानमा**न्यनूचानमात्मानं मन्यत इत्येवंशीलो यः सोऽनूचानमानी **स्तब्धो**ऽप्रणतस्वभाव **एयाय** गृहम्। तमेवंभूतं **हा**ऽऽत्मनोऽननुरूपशीलं स्तब्धं मानिनं पुत्रं दृष्ट्वा **पितोवाच** सद्धर्मावतारचिकीर्षया। **श्वेतके**तो! **यन्विदं महामना अनूचानमानी स्तब्ध**श्चासि, कस्तेऽतिशयः प्राप्त उपाध्यायादुतापि **तमादेशमा**दिश्यत इत्यादेशः केवलशास्त्राचार्योपदेशगम्यमित्येतद्येन वा परं ब्रह्माऽऽदिश्यते स आदेशस्तम**प्राक्ष्यः** पृष्टवानस्याचार्यम्।।२।।

प्रवक्ता

तमादेशं विशिनष्टि येनाऽऽदेशेन श्रुतेना**श्रुत**मप्यन्यच्**छ्रुतं भवत्यमतं मतम**तर्कितं तर्कितं भवत्य**विज्ञातं विज्ञातम**निश्चितं निश्चितं भव**तीति**। सर्वानपि वेदानधीत्य सर्वं चान्यद्वेद्यमधिगम्याप्यकृतार्थ एव भवति, यावदात्मतत्त्वं न जानातीत्याख्यायिकातोऽवगम्यते। तदेतदद्भुतं श्रुत्वाऽऽह **कथं** न्वेतदप्रसिद्धमन्यविज्ञानेनान्यद्विज्ञातं भवतीत्येवं मन्वानः पृच्छति, कथं नु केन प्रकारेण हे **भगवः! स आदेशो भवतीति**।।३।।

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ।।४।।

यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ।।५।।

यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातꣳ

हे सोम्य लोक में जिस प्रकार मृत्तिका के एक पिण्ड के ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण मृत्तिका के कार्य समूह का ज्ञान हो जाता है, कि विकार केवल वाणी के आधार नाममात्र ही है, वस्तुतः सत्य तो केवल मृत्तिका ही है।।४।।

हे सोम्य! जैसे एक सुवर्णपिण्ड के ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण सुवर्णमय पदार्थ जान लिये जाते हैं, क्योंकि विकार वाणी पर आधारित नाममात्र ही है, सत्य तो केवल सुवर्ण ही है।।५।।

हे सोम्य! जैसे एक नख कृन्तन के ज्ञान से सम्पूर्ण लौह विकार समूह जान लिये जाते हैं,

---

यथा स आदेशो भवति, तच्छृणु हे **सोम्य**। यथा लोके **एकेन मृत्पिण्डेन** करककुम्भादिकारणभूतेन विज्ञातेन **सर्वमन्य**त्तद्विकारजातं **मृन्मयं** मृद्विकारजातं **विज्ञातं स्यात्**। कथं मृत्पिण्डे कारणे विज्ञाते कार्यमन्यद्विज्ञातं स्यात्? नैष दोषः। कारणेनानन्यत्वात्कार्यस्य। यन्मन्यसेऽन्यस्मिन्विज्ञातेऽन्यन्न ज्ञायते इति। सत्यमेवं स्यात्। यद्यन्यत्कारणात्कार्यं स्यान्न त्वेवमन्यत्कारणात्कार्यम्। कथं तर्हीदं लोके इदं कारणमयमस्य विकार इति। शृणु। वाचाऽऽरम्भणं वागालम्बनमित्येतत्। कोऽसौ? **विकारो नामधेयं** नामैव नामधेयं स्वार्थे धेयप्रत्ययः। वागालम्बनमात्रं नामैव केवलं, न विकारो नाम वस्त्वस्ति परमार्थतो, **मृत्तिकेत्येव** तु मृत्तिकैव तु **सत्यं** वस्त्वस्ति।।४।।

यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सुर्वणपिण्डेन **सर्व**मन्यद्विकारजातं कटकमुकुट-केयूरादि **विज्ञातं स्यात्**। वाचाऽऽरम्भणमित्यादि समानम्।।५।।

यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेनोपलक्षितेन कृष्णायसपिण्डेनेत्यर्थः। सर्वं **कार्ष्णायसं**

स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यमेवꣳ सोम्य स आदेशो भवतीति ।।६।।

न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुर्यद्ध्येतदवेदिष्यन्कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवाꣳस्त्वेव मे तद्ब्रवीत्विति तथा सोम्येति होवाच ।।७।।

इति षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।।१।।

क्योंकि विकार वाणी पर आधारित केवल नाममात्र हैं, सत्य तो केवल लोहा ही है, हे सोम्य! ऐसा ही वह आदेश भी है (जिसे मैंने कहा है)।।६।।

निश्चय ही वे मेरे पूज्य गुरुदेव आपकी पूछी हुई इस बात को नहीं जानते थे। यदि वे जानते होते तो, मुझ गुणवान् भक्त और अनुगत शिष्य को क्यों नहीं बतलाते। अब आप ही मुझे उस वस्तु को बतलावें। तब पिता ने कहा, अच्छा सोम्य! तुझे उस तत्त्व को बतलाता हूँ।।७।।

।।इति प्रथमः खण्डः ।।

कृष्णायसविकारजातं **विज्ञातं स्यात्**। समानमन्यत्। अनेकदृष्टान्तोपादानं दार्ष्टान्तिकानेकभेदानुगमार्थं, दृढप्रतीत्यर्थं च। **एवं सोम्य! स आदेशो** यो मयोक्तो **भवतीत्युक्तवति** पितर्याहेतरो **न वै नूनं भगवन्तः** पूजावन्तो गुरवो मम ये, ते **एतद्यद्भवदुक्तं** वस्तु **नावेदिषुर्न** विज्ञातवन्तो नूनम्। यद्यदि ह्यवेदिष्यन्विदितवन्त एतद्वस्तु, **कथं मे** गुणवते भक्तायानुगताय **नावक्ष्यन्नो**क्तवन्तस्तेनाहं मन्ये न विदितवन्तः इति। अवाच्यमपि गुरोर्न्यग्भावमवादीत्पुनर्गुरुकुलं प्रति प्रेषणभयात्। अतो **भगवांस्त्वेव मे** मह्यं तद्वस्तु येन सर्वज्ञत्वं ज्ञातेन मे स्यात्तद्**ब्रवीतु** कथयत्वित्युक्तः पितोवाच तथाऽस्तु **सोम्येति**।।६।।७।।

इति षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः।।१।।

(अथ षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।)

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्। तद्धैक आहुरसदेवेदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायत ॥१॥

(पक्षान्तर का खण्डन पूर्वक जगत् की सद्रूपता का वर्णन)

हे सोम्य! उत्पत्ति से पूर्व यह दीखने वाला नामरूपात्मक जगत् (सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद शून्य) एकमात्र अद्वितीय सत् ही था। इस सम्बन्ध में कुछ लोगों ने ऐसा भी कहा है, कि आरम्भ में यह जगत् एकमात्र अद्वितीय असद्रूप ही था। उसी असत् से सत् की उत्पत्ति हुई।।१।।

सदेव सदित्यस्तितामात्रं वस्तु सूक्ष्मं निर्विशेषं सर्वगतमेकं निरञ्जनं निरवयवं विज्ञानं यदवगम्यते सर्ववेदान्तेभ्यः। एवशब्दोऽवधारणार्थः। किं तदवध्रियते इत्याह। **इदं** जगन्नामरूपक्रियावद्विकृतमुपलभ्यते यत्तत्सदेवा**ऽऽसीदि**त्यासीच्छब्देन संबध्यते। कदा सदेवेदमासीदित्युच्यते। अग्रे जगतः प्रागुत्पत्तेः।

किं नेदानीमिदं सद्येनाग्रे आसीदिति विशेष्यते। न। कथं तर्हि विशेषणम्? इदानीमपीदं सदेव किंतु नामरूपविशेषणवदिदंशब्दबुद्धिविषयं चेतीदं च भवति। प्रागुत्पत्तेस्त्वग्रे केवलसच्छब्दबुद्धिमात्रगम्यमेवेति सदेवेदमग्र आसीदित्यवधार्यते। न हि प्रागुत्पत्तेर्नामवद्रूपवद्वेदमिति ग्रहीतुं शक्यं वस्तु सुषुप्तकाल इव। यथा सुषुप्तादुत्थितः सत्त्वमात्रमवगच्छति, सुषुप्ते सन्मात्रमेव केवलं वस्त्विति, तथा प्रागुत्पत्तेरित्यभिप्रायः।

यथेदमुच्यते लोके पूर्वाह्णे घटादिसिसृक्षुणा कुलालेन मृत्पिण्डं प्रसारितमुपलभ्य; ग्रामान्तरं गत्वा प्रत्यागतोऽपराह्णे, तत्रैव घटशरावाद्यनेकभेदभिन्नं कार्यमुपलभ्य मृदेवेदं घटशरावादि केवलं पूर्वाह्ण आसीदिति, तथेहाप्युच्यते सदेवेदमग्रे आसीदिति। **एकमेवे**ति। स्वकार्यपतितमन्यन्नास्तीत्येकमेवेत्युच्यते। **अद्वितीयमि**ति। मृद्व्यतिरेकेण मृदो यथाऽन्य-द्घटाद्याकारेण परिणमयितृकुलालादिनिमित्तकारणं दृष्टं, तथा सद्व्यतिरेकेण सतः

सहकारिकारणं द्वितीयं वस्त्वन्तरं प्राप्तं प्रतिषिध्यतेऽद्वितीयमिति नास्य द्वितीयं वस्त्वन्तरं विद्यते इत्यद्वितीयम्। ननु वैशेषिकपक्षेऽपि सत्सामानाधिकरण्यं सर्वस्योपपद्यते। द्रव्यगुणादिषु सच्छब्दबुद्ध्यनुवृत्तेः। सद्द्रव्यं सन्गुणः सत्कर्मेत्यादिदर्शनात्? सत्यमेवं स्यादिदानीं प्रागुत्पत्तेस्तु नैवेदं कार्यं सदेवाऽऽसीदित्यभ्युपगम्यते वैशेषिकैः, प्रागुत्पत्तेः कार्यस्यासत्त्वाभ्युपगमात्। न चैकमेव सदद्वितीयं प्रागुत्पत्तेरिच्छन्ति। तस्माद्वैशेषिक-परिकल्पितात्सतोऽन्यत्कारणमिदं सदुच्यते मृदादिदृष्टान्तेभ्यः।

तत्तत्र हैतस्मिन्प्रागुत्पत्तेर्वस्तुनिरूपणे एके वैनाशिका आहुर्वस्तु निरूपयन्तोऽसदभावमात्रं प्रागुत्पत्तेरिदं जगदेकमेवाग्रेऽद्वितीयमासीदिति। सदभावमात्रं हि प्रागुत्पत्तेस्तत्त्वं कल्पयन्ति बौद्धाः। न तु सत्प्रतिद्वंद्वि वस्त्वन्तरमिच्छन्ति। यथा सच्चासदिति गृह्यमाणं यथाभूतं तद्विपरीतं तत्त्वं भवतीति नैयायिकाः। ननु सदभावमात्रं प्रागुत्पत्तेश्चेदभिप्रेतं वैनाशिकैः। कथं प्रागुत्पत्तेरिदमासीदसदेकमेवाद्वितीयं चेति कालसंबन्धः संख्यासंबन्धोऽद्वितीयत्वं चोच्यते तैः? बाढं न युक्तं तेषां भावाभावमात्रमभ्युपगच्छताम्। असत्त्वमात्राभ्युपगमोऽ-प्ययुक्त एवाभ्युपगन्तुरनभ्युपगमानुपपत्तेः। इदानीमभ्युपगन्ताऽभ्युपगम्यते न प्रागुत्पत्तेरिति चेत्। न। प्रागुत्पत्तेः सदभावस्य प्रमाणाभावात्। प्रागुत्पत्तेरसदेवेतिकल्पनानुपपत्तिः।

ननु कथं वस्त्वाकृतेः शब्दार्थत्वेऽसदेकमेवाद्वितीयमितिपदार्थवाक्यार्थोपपत्तिस्तदनुपपत्तौ चेदं वाक्यमप्रमाणं प्रसज्येतेति चेत्। नैष दोषः। सद्ग्रहणनिवृत्तिपरत्वाद्वाक्यस्य। सदित्ययं तावच्छब्दः सदाकृतिवाचकः। एकमेवाद्वितीयमित्येतौ च सच्छब्देन समानाधिकरणौ। तथेदमासीदिति च। तत्र नञ् सद्वाक्ये प्रयुक्तः सद्वाक्यमेवावलम्ब्य सद्वाक्यार्थविषयां बुद्धिं सदेकमेवाद्वितीयमिदमासीदित्येवंलक्षणां ततः सद्वाक्यार्थान्नि-वर्तयत्यश्वारूढ इवाश्वालम्बनोऽश्वं तदभिमुखविषयान्निवर्तयति तद्वत्। न तु पुनः सदभावमेवाभिधत्ते। अतः पुरुषस्य विपरीतग्रहणनिवृत्त्यर्थपरमिदमसदेवेत्यादि वाक्यं प्रयुज्यते। दर्शयित्वा हि विपरीतग्रहणं ततो निवर्तयितुं शक्यत इत्यर्थवत्त्वादसदादिवाक्यस्य श्रौतत्वं प्रामाण्यं च सिद्धमित्यदोषः। **तस्मादसतः** सर्वाभावरूपात्सद्विद्यमानमजायत समुत्पन्नम्। अडभावश्छान्दसः।। १।।

कुतस्तु खलु सोम्यैवꣳ स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति। सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥२॥

पर हे सोम्य! भला ऐसा कैसे हो सकता है, असत् से सत् की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है? अतः हे सोम्य! आरम्भ में यह नामरूपात्मक जगत् एकमात्र अद्वितीय सत् ही था। (ऐसा पिता ने अपने पुत्र से कहा)।। २।।

तदेतद्विपरीतग्रहणं महावैनाशिकपक्षं दर्शयित्वा प्रतिषेधति। **कुतस्तु** प्रमाणात्**खलु** हे **सोम्यैवं स्याद**सतः **सज्जायेते**त्येवं कुतो भवेन्न कुतश्चित्प्रमाणादेवं संभवतीत्यर्थः। यदपि बीजोपमर्देऽङ्कुरो जायमानो दृष्टोऽभावादेवेति, तदप्यभ्युपगमविरुद्धं तेषाम्। कथम्? ये तावद्बीजावयवा बीजसंस्थानविशिष्टास्तेऽङ्कुरेऽप्यनुवर्तन्त एव न तेषामुपमर्दोऽङ्कुरजन्मनि। यत्पुनर्बीजाकारसंस्थानं तद्बीजावयवव्यतिरेकेण वस्तुभूतं न वैनाशिकैरभ्युपगम्यते यदङ्कुरजन्मन्युपमृद्येत। अथ तदस्त्यवयवव्यतिरिक्तं वस्तुभूतं, तथा च सत्यभ्युपगमविरोधः। अथ संवृत्याऽभ्युपगतं बीजसंस्थानरूपमुपमृद्यत इति चेत्। केयं संवृतिर्नाम, किमसावभाव, उत भाव इति। यद्यभावो दृष्टान्ताभावः, अथ भावस्तथाऽपि नाभावादङ्कुरोत्पत्तिर्बीजावयवेभ्यो ह्यङ्कुरोत्पत्तिः।

अवयवा अप्युपमृद्यन्ते इति चेत्। न। तदवयवेषु तुल्यत्वात्। यथा वैनाशिकानां बीजसंस्थानरूपोऽवयवी नास्ति तथाऽवयवा अपीति तेषामप्युपमर्दानुपपत्तिः। बीजावयवानामपि सूक्ष्मावयवास्तदवयवानामप्यन्ये सूक्ष्मतरावयवा इत्येवं प्रसङ्गस्यानिवृत्तेः सर्वत्रोपमर्दानुपपत्तिः। सद्बुद्ध्यनुवृत्तेः सत्त्वानिवृत्तिश्चेति सद्वादिनां सत एव सदुत्पत्तिः सेत्स्यति। न त्वसद्वादिनां दृष्टान्तोऽस्त्यसतः सदुत्पत्तेः। मृत्पिण्डाद्घटोत्पत्तिर्दृश्यते सद्वादिनां तद्भावे भावात्तदभावे चाभावात्।

यद्यभावादेव घट उत्पद्येत, घटार्थिना मृत्पिण्डो नोपादीयेत। अभावशब्दबुद्ध्यनुवृत्तिश्च घटादौ प्रसज्येत, न त्वेतदस्त्यतो नासतः सदुत्पत्तिः। यदप्याहुर्मृद्बुद्धिर्घटबुद्धेर्निमित्तमिति मृद्बुद्धिर्घटबुद्धेः कारणमुच्यते 'न तु परमार्थत एव मृद्घटो वाऽस्तीति तदपि मृद्बुद्धिर्विद्यमाना विद्यमानाया एव घटबुद्धेः कारणमिति नासतः सदुत्पत्तिः। मृद्घटबुद्ध्योर्निमित्तनैमित्तिकतयाऽऽनन्तर्यमात्रं न तु कार्यकारणत्वमिति चेत्। न। बुद्धीनां नैरन्तर्ये गम्यमाने वैनाशिकानां बहिर्दृष्टान्ताभावात्। अतः कुतस्तु खलु

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत।

उस सत्य ने ईक्षण किया ''मैं बहुत हो जाऊँ, अनेकरूप से उत्पन्न होऊँ'' इस प्रकार ईक्षण पूर्वक उस सत् ने तेज की सृष्टि की। उस तेज ने ईक्षण किया ''मैं बहुत रूप होऊँ'', ''नाना

सोम्यैवं स्यादिति होवाच कथं केन प्रकारेणासत: सज्जायेतेति। असत: सदुत्पत्तौ न कश्चिदपि दृष्टान्तप्रकारोऽस्तीत्यभिप्राय:। एवमसद्वादिपक्षमुन्मथ्योपसंहरति सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदिति स्वपक्षसिद्धिम्।

ननु सद्वादिनोऽपि सत: सदुत्पद्यत इति नैव दृष्टान्तोऽस्ति घटाद्घटान्तरोत्पत्त्यदर्शनात्। सत्यमेवं न सत: सदन्तरमुत्पद्यते, किं तर्हि सदेव संस्थानान्तरेणावतिष्ठते। यथा सर्प: कुण्डली भवति। यथा च मृच्चूर्णपिण्डघटकपालादिप्रभेदै:। यद्येवं सदेव सर्वप्रकारावस्थं कथं प्रागुत्पत्तेरिदमासीदित्युच्यते। ननु न श्रुतं त्वया सदेवेत्यवधारणमिदंशब्दवाच्यस्य कार्यस्य। प्राप्तं तर्हि प्रागुत्पत्तेरसदेवाऽऽसीन्नेदंशब्दवाच्यमिदानीमिदं जातमिति। न। सत एवेदंशब्दबुद्धिविषयतयाऽवस्थानाद्यथा मृदेव पिण्डघटादिशब्दबुद्धिविषयत्वेनावतिष्ठते, तद्वत्।

ननु यथा मृद्वस्त्वेवं पिण्डघटाद्यपि तद्वत्सद्बुद्धेरन्यबुद्धिविषयत्वात्कार्यस्य सतोऽन्यद्वस्त्वन्तरं स्यात्कार्यजातं यथाऽश्वाद्गौ:। न। पिण्डघटादीनामितरेतरव्यभिचारेऽपि मृत्त्वाव्यभिचारात्। यद्यपि घट: पिण्डं व्यभिचरति पिण्डश्च घटं, तथाऽपि पिण्डघटौ मृत्त्वं न व्यभिचरतस्तस्मान्मृन्मात्रं पिण्डघटौ। व्यभिचरति त्वश्वं गौरश्वो वा गाम्। तस्मान्मृदादि संस्थानमात्रं घटादय:। एवं सत्संस्थानमात्रमिदं सर्वमिति युक्तं प्रागुत्पत्ते: सदेवेति। वाचारम्भणमात्रत्वाद्विकारसंस्थानमात्रस्य।

ननु निरवयवं सन्निष्कलं ''निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनं दिव्यो ह्यमूर्त: पुरुष:'' ''सबाह्याभ्यन्तरो ह्यज'' इत्यादिश्रुतिभ्यो निरवयवस्य सत: कथं विकारसंस्थानमुपपद्यते। नैष दोष:। रज्ज्वाद्यवयवेभ्य: सर्पादिसंस्थानवद्बुद्धिपरिकल्पितेभ्य: सदवयवेभ्यो'' विकारसंस्थानोपपत्ते:। ''वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'' एवं ''सदेव सत्यम्'' इति श्रुते:। एकमेवाद्वितीयं परमार्थत इदंबुद्धिकालेऽपि।।२।।

तत्सदैक्षतेक्षां दर्शनं कृतवत्। अतश्च न प्रधानं सांख्यपरिकल्पितं जगत्कारणम्। प्रधानस्याचेतनत्वाभ्युपगमात्। इदं तु सच्चेतनमीक्षितृत्वात्। तत्कथमैक्षतेत्याह— **बहु**

तस्माद्यत्र क्वच शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते ।।३।।

प्रकार से उत्पन्न होऊँ'' इस प्रकार ईक्षण पूर्वक उस तेज ने जल की सृष्टि की, इसीलिये तो आज भी जहाँ कहीं पुरुष शोक सन्ताप करता है, तो उसे पसीना आ जाता है। उस समय वह उस तेज से ही जल की उत्पत्ति होती है।। ३।।

प्रभूतं **स्यां** भवेयं **प्रजायेय** प्रकर्षेणोत्पद्येय। यथा मृद्घटाद्याकारेण, यथा वा रज्ज्वादि-सर्पाद्याकारेण बुद्धिपरिकल्पितेन। असदेव तर्हि सर्वं यद्गृह्यते रज्जुरिव सर्पाद्याकारेण। न। सत एव द्वैतभेदेनान्यथागृह्यमाणत्वान्नासत्त्वं कस्यचित्क्वचिदिति ब्रूमः। यथा सतोऽन्यद्वस्त्वन्तरं परिकल्प्य पुनस्तस्यैव प्रागुत्पत्तेः प्रध्वंसाच्चोर्ध्वमसत्त्वं ब्रुवते तार्किका न तथाऽस्माभिः कदाचित्क्वचिदपि सतोऽन्यदभिधानमभिधेयं वा वस्तु परिकल्प्यते। सदेव तु सर्वमभिधानमभिधीयते च यदन्यबुद्ध्या। यथा रज्जुरेव सर्पबुद्ध्या सर्प इत्यभिधीयते, यथा वा पिण्डघटादि मृदोऽन्यबुद्ध्या पिण्डघटादिशब्देनाभिधीयते लोके, रज्जुविवेकदर्शिनां तु सर्पाभिधानबुद्धी निवर्तेते यथा च मृद्विवेकदर्शिनां घटादिशब्दबुद्धी। तद्वत्सद्विवेकदर्शिनामन्यविकारशब्दबुद्धी निवर्तेते। ''यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सहे'' ति। ''अनिरुक्तेऽनिलयने'' इत्यादिश्रुतिभ्यः। एवमीक्षित्वा सत्तेजोऽसृजत तेजः सृष्टवत्।

ननु ''तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः'' इति श्रुत्यन्तरे आकाशाद्वा-युस्ततस्तृतीयं तेजः श्रुतमिह कथं प्राथम्येन तस्मादेव तेजः सृज्यते तत एव चाऽऽकाशमिति विरुद्धम्? नैष दोषः। आकाशवायुसर्गानन्तरं तत्सत्तेजोऽसृजतेति-कल्पनोपपत्तेः। अथवाऽविवक्षित इह सृष्टिक्रमः सत्कार्यमिदं सर्वमतः सदेकमेवाद्वितीयमित्येतद्विवक्षितम्, मृदादिदृष्टान्तात्। अथवा त्रिवृत्करणस्य विवक्षितत्वात्तेजोऽबन्नानामेव सृष्टिमाचष्टे। तेज इति प्रसिद्धं लोके दग्धृ पक्तृ प्रकाशकं रोहितं चेति। तत्सत्सृष्टं तेज ऐक्षत तेजोरूपसंस्थितं सदैक्षतेत्यर्थः। **बहु स्यां प्रजायेयेति** पूर्ववत्। **तदपोऽसृजत**। आपो द्रवा स्निग्धाः स्यन्दिन्यः शुक्लाश्चेति प्रसिद्धा लोके। यस्मात्तेजसः कार्यभूता आपस्**तस्माद्यत्र क्वच** देशे काले वा **शोचति** संतप्यते **स्वेदते** प्रस्विद्यते वा **पुरुषस्तेजस एव** तत्तदाऽऽपोऽधि**जायन्ते**।। ३।।

उत्पद्येमहि

ता आप ऐक्षन्त बहव्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त

पुनः उस जल के रूप में स्थित सत् ने ईक्षण किया कि "हम बहुत हो जाएँ" अनेकरूप से उत्पन्न हो जाएँ। इस प्रकार ईक्षणपूर्वक उस जल ने अन्न की सृष्टि की। इसी से आज भी जहाँ

ता आप ऐक्षन्त पूर्ववदेवाबाकारसंस्थितं सदैक्षतेत्यर्थः। **बह्व्यः** प्रभूताः **स्याम** भवेम **प्रजायेमह**युत्पद्येमहीति। **ता अन्नमसृजन्त** पृथिवीलक्षणम्। पार्थिवं ह्यन्नं यस्मादप्कार्यमन्नं, तस्मा "द्यत्र **क्व च वर्षति** देशे **तत्तत्रैव भूयिष्ठं** प्रभूतमन्नं **भवति।" अतोऽद्भ्य एव तदन्नाद्यमधिजायते**। ता अन्नमसृजन्तेति पृथिव्युक्ता पूर्वमिह तु दृष्टान्तेऽन्नं च तदाद्यं चेति विशेषणाद्व्रीहियवा उच्यन्ते। अन्नं च गुरु स्थिरं धारणं कृष्णं च रूपतः प्रसिद्धम्। ननु तेजःप्रभृतिष्वीक्षणं न गम्यते, हिंसादिप्रतिषेधाभावा-त्त्रासादिकार्यानुपलम्भाच्च तत्र कथं तत्तेज ऐक्षतेत्यादि? नैष दोषः। ईक्षितृकारण-परिणामत्वात्तेजःप्रभृतीनां सत एवेक्षितुर्नियतक्रमविशिष्टकार्योत्पादकत्वाच्च तेजःप्रभृतीक्षत इवेक्षत प्रत्युच्यते भूतम्।

शब्द सन्निधि मात्र से

ननु सतोऽप्युपचरितमेवेक्षितृत्वम्? न। सदीक्षणस्य केवलशब्दगम्यत्वान्न शक्यमुपचरितं कल्पयितुम्। तेजःप्रभृतीनां त्वनुमीयते मुख्येक्षणाभावः इति युक्तमुपचरितं कल्पयितुम्। ननु सतोऽपि मृद्वत्कारणत्वादचेतनत्वं शक्यमनुमातुम्? अतः प्रधानस्यैवाचेतनस्य सतश्चेतनार्थत्वान्नियतकालक्रमविशिष्टकार्योत्पादकत्वाच्चैक्षतेवैक्षतेति शक्यमनुमातुमु-पचरितमेवेक्षणम्। दृष्टश्च लोकेऽचेतने चेतनवदुपचारः। यथा कूलं पिपतिषतीति तद्वत्सतोऽपि स्यात्? न। "तत्सत्यं स आत्मेति" तस्मिन्नात्मोपदेशात्। आत्मोपदेशोऽप्युपचरित इति चेद्यथा ममाऽऽत्मा भद्रसेन इति सर्वार्थकारिण्यनात्मन्यात्मोपचारस्तद्वत्? न। सदस्मीति सत्सत्याभिसंधस्य तस्य तावदेव चिरमिति मोक्षोपदेशात्।

सोऽप्युपचार इति चेत्। प्रधानात्माभिसंधस्य मोक्षसामीप्यं वर्तत इति मोक्षोपदेशोऽप्युपचरितः एव। यथा लोके ग्रामं गन्तुं प्रस्थितः प्राप्तवानहं ग्राममिति ब्रूयात्त्वरापेक्षया तद्वत्? न। येन विज्ञातेनाविज्ञातं विज्ञातं भवतीत्युपक्रमात्। सत्येकस्मिन्विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति, तदनन्यत्वात्सर्वस्याद्वितीयवचनाच्च। न चान्यद्विज्ञातव्यमवशिष्टं श्रावितं श्रुत्याऽनुमेयं वा लिङ्गतोऽस्ति येन मोक्षोपदेश उपचरितः स्यात्। सर्वस्य च प्रपाठकार्थस्योपचरितत्वपरिकल्पनायां वृथा श्रमः परिकल्पयितुः स्यात्पुरुषार्थ-

तस्माद्यत्र क्व च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते ।।४।।

इति षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ।। २।।

(अथ षष्ठाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।)

तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं

कहीं वर्षा होती है, वहाँ ही बहुत सा अन्न उत्पन्न होता है। वह अन्नाद्य जल से ही उत्पन्न होता है।।४।।

।। इति द्वितीयः खण्डः ।।

सृष्टि का क्रम वर्णन

इन (स्थावर-जंगम) प्रसिद्ध प्राणियों के तीन ही बीज होते हैं। आण्डज, जीवज और

साधनविज्ञानस्य तर्केणैवाधिगतत्वात्तस्य। तस्माद्वेदप्रामाण्यान्न श्रुतार्थपरित्यागः। अतश्चेतनावत्कारणं जगत इति सिद्धम्।। ४।।

इति षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः। २।

तेषां जीवाविष्टानां **खल्वेषां** पक्ष्यादीनां **भूतानामे**षामिति प्रत्यक्षनिर्देशान्न तु तेजःप्रभृतीनां तेषां त्रिवृत्करणस्य वक्ष्यमाणत्वादसति त्रिवृत्करणे प्रत्यक्षनिर्देशानुपपत्तिः। देवताशब्दप्रयोगाच्च तेजःप्रभृतिषु ''इमास्तिस्रो देवता'' इति। तस्मात्तेषां खल्वेषां भूतानां पक्षिपशुस्थावरादीनां **त्रीण्येव** नातिरिक्तानि **बीजानि** कारणानि **भवन्ति**। कानि तानीत्युच्यन्ते। **आण्डजम**ण्डाज्जातमण्डजमण्डजमेवाऽऽण्डजं पक्ष्यादि। पक्षिसर्पादिभ्यो हि पक्षिसर्पादयो जायमाना दृश्यन्ते। तेन पक्षी पक्षिणां बीजं, सर्पः सर्पाणां, तथाऽन्यदप्यण्डाज्जातं तज्जातीयानां बीजमित्यर्थः। नन्वण्डाज्जातमण्डजमुच्यतेऽतोऽण्डमेव बीजमिति युक्तं, कथमण्डजं बीजमुच्यते? सत्यमेवं स्याद्यदि त्वदिच्छातन्त्रा श्रुतिर्यत आहाऽऽण्डजाद्येव बीजं नाण्डादीति। दृश्यते चाण्डजाद्यभावे तज्जातीयसंतत्यभावो नाण्डाद्यभावे। अतोऽण्डजादीन्येव बीजान्यण्डजादीनाम्। तथा जीवाज्जातं **जीवजं** जरायुजमित्येतत्पुरुषाश्वादि। उद्भिज्जमुद्भिनत्तीत्युद्भित्स्थावरं ततो जातमुद्भिज्जं धाना वोद्भित्ततो जायत इत्युद्भिज्जं स्थावरं स्थावराणां बीजमित्यर्थः। स्वेदजसंशोक-

जीवजमुद्भिज्जमिति ॥१॥

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनाऽऽ-

उद्भिज्ज। (इससे अधिक नहीं होते, स्वेदज और उष्मज का यथा संभव आण्डज और उद्भिज्ज में अन्तर्भाव मान लेने पर ही तीन बीज कहे गये हैं)।।१।।

उस इस (सत् नाम वाली तेज, अप् और अन्न की योनिरूपा) देवता ने ईक्षण किया। मैं

जयोरण्डजोद्भिज्जयोरेव यथासंभवमन्तर्भावः। एवं ह्यवधारणं त्रीण्येव बीजानीत्युपपन्नं भवति।।१।।

सेयं प्रकृता सदाख्या तेजोऽबन्नयोनि**र्देवतोक्तैक्षते**क्षितवती यथापूर्वं बहु स्यामिति। तदेव बहुभवनं प्रयोजनं नाद्यापि निर्वृत्तमित्यत ईक्षां पुनः कृतवती बहुभवनमेव प्रयोजनमुररीकृत्य। कथम्। **हन्ते**दानी**महमिमा** यथोक्तास्तेजआद्या**स्तिस्रो देवता अनेन जीवेनेति** स्वबुद्धिस्थं पूर्वसृष्ट्यनुभूतं प्राणधारणमात्मानमेव स्मरन्त्याहानेन जीवेनाऽऽत्मनेति। प्राणधारणकर्त्रात्मनेति वचनात्स्वात्मनोऽव्यतिरिक्तेन चैतन्यस्वरूपतयाऽविशिष्टेनेत्येतद्दर्शयति। अनुप्रविश्य तेजोऽबन्नभूतमात्रासंसर्गेण लब्धविशेषविज्ञाना सती नाम च रूपं च नामरूपे व्याकरवाणि विस्पष्टमाकरवाण्यसौ नामाऽयमिदंरूप इति व्याकुर्यामित्यर्थः।

ननु न युक्तमिदमसंसारिण्याः सर्वज्ञाया देवताया बुद्धिपूर्वकमनेकशतसहस्रानर्थाश्रयं देह**मनुप्रविश्य** दुःखमनुभविष्यामीति संकल्पनमनुप्रवेशश्च स्वातन्त्र्ये सति? सत्यमेवं न युक्तं स्याद्यदि स्वेनैवाविकृतेन रूपेणानुप्रविशेयं दुःखमनुभवेयमिति च संकल्पितवती, न त्वेवम्। कथं तर्हि। अनेन जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रविश्येति वचनात्। जीवो हि नाम देवताया आभासमात्रम्। बुद्ध्यादिभूतमात्रासंसर्गजनित आदर्श इव प्रविष्टः पुरुषप्रतिबिम्बो जलादिष्विव च सूर्यादीनाम् अचिन्त्यानन्तशक्तिमत्या देवताया बुद्ध्यादिसंबन्धश्चैतन्याभासो देवतास्वरूपविवेकाग्रहणनिमित्तः सुखी दुःखी मूढ इत्याद्यनेकविकल्पप्रत्ययहेतुः। छायामात्रेण जीवरूपेणानुप्रविष्टत्वाद्देवता न दैहिकैः स्वतः सुखदुःखादिभिः संबध्यते। यथा पुरुषादित्यादय आदर्शोदकादिषु च्छायामात्रेणानुप्रविष्टा आदर्शोदकादिदोषैर्न संबध्यन्ते, तद्वद्देवताऽपि।

''सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।।

त्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति ॥२॥

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ॥३॥

इस जीवात्मरूप से इन तीनों देवताओं में अनुप्रविष्ट हो नाम और रूपों की अभिव्यक्ति करूँ।।।२।।

और इन तीनों देवताओं में से एक-एक देवता को त्रिवृत्-त्रिवृत् करूँ, (त्रिवृत् करण में एक-एक की प्रधानता और दो-दो की गौणता रहती है। यह त्रिवृत्तकरण पंचीकरण का उपलक्षण है) ऐसा विचार कर देवता ने इस जीवात्मारूप से ही उन तीन देवताओं ने सूर्य प्रतिबिम्ब समान अनुप्रवेश कर नाम-रूपों का व्याकरण किया।।३।।

"आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः" इति हि काठके "ध्यायतीव लेलायतीव" इति च वाजसनेयके। ननु च्छायामात्रश्चेज्जीवो मृषैव प्राप्तस्तथा परलोकेहलोकादि च तस्य? नैष दोषः। सदात्मना सत्यत्वाभ्युपगमात्। सर्वं च नामरूपादि सदात्मनैव सत्यं विकारजातं, स्वतस्त्वनृतमेव। वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयमित्युक्तत्वात्। तथा जीवोऽपीति। यक्षानुरूपो हि बलिरिति न्यायप्रसिद्धः। अतः सदात्मना सर्वव्यवहाराणां सर्वविकाराणां च सत्यत्वं सतोऽन्यत्वे चानृतत्वमिति न कश्चिद्दोषस्तार्किकैरिहानुवक्तुं शक्यः। यथेतरेतरविरुद्धद्वैतवादाः स्वबुद्धिविकल्पमात्रा अतत्त्वनिष्ठा इति शक्यं वक्तुम्।। २।।

सैवं तिस्रो देवता अनुप्रविश्य स्वात्मावस्थे बीजभूते अव्याकृते नामरूपे व्याकरवाणीतीक्षित्वा — **तासां** च तिसृणां देवताना**मेकैकां त्रिवृतं त्रिवृतं करवाणि**। एकैकस्यास्त्रिवृत्करणं एकैकस्याः प्राधान्यं द्वयोर्द्वयोर्गुणभावो, अन्यथा हि रज्ज्वा इवैकमेव त्रिवृत्करणं स्यात्। न तु तिसृणां पृथक्पृथक्त्रिवृत्करणमिति। एवं हि तेजोऽबन्नानां पृथङ्नामप्रत्ययलाभः स्यात्तेज इदमिमा आपोऽन्नमिदमिति च पृथङ्नामप्रत्ययलाभे देवतानां सम्यग्व्यवहारस्य प्रसिद्धिः प्रयोजनं स्यात्। एवमीक्षित्वा **सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव** यथोक्तेनैव जीवेन सूर्यबिम्बवदन्तःप्रविश्य वैराजं पिण्डं प्रथमं देवादीनां च पिण्डाननु**प्रविश्य** यथासंकल्पमेव **नामरूपे व्याकरोद**सौनामाऽयमिदंरूप इति।। ३।।

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ।।४।।

इति षष्ठाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।।३।।

(अथ षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः।)

यदग्ने रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि

उस देवता ने उन देवताओं में से एक-एक को गुण प्रधान भाव से त्रिवृत् त्रिवृत् किया। हे सोम्य! जिस प्रकार ये तीनों देवता (इन पिण्डों से बाहर भी) एक-एक करके त्रिवृत् त्रिवृत् हैं, उसे मेरे द्वारा अच्छी प्रकार से समझ ले।।४।।

।। इति तृतीयः खण्डः ।।

एक विज्ञान से सर्व विज्ञान की उत्पत्ति

(लोक में त्रिवृत्) अग्नि का जो लालरूप है, वह अत्रिवृत् तेज का ही रूप है। वैसे ही जो शुक्लरूप है, वह जल का है तथा जो कृष्ण रूप है वह पृथिवी का है। इस प्रकार अग्नि

तासां च देवतानां गुणप्रधानभावेन **त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोत्**कृतवती देवता। तिष्ठतु तावद्देवतादिपिण्डानां नामरूपाभ्यां व्याकृतानां तेजोबन्नमयत्वेन त्रिधात्वं, यथा **नु खलु** बहिरिमाः पिण्डेभ्य**स्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे** मम निगदतो **विजानीहि** विस्पष्टमवधारयोदाहरणतः।।४।।

इति षष्ठाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।।३।।

यत्तद्देवतानां त्रिवृत्करणमुक्तं, तस्यैवोदाहरणमुच्यते। उदाहरणं नामैकदेशप्रसिद्ध्या-ऽशेषप्रसिद्ध्यर्थमुदाह्रियत इति। तदेतदाह— **यदग्ने**स्त्रिवृत्कृतस्य **रोहितं** रूपं प्रसिद्धं लोके तदत्रिवृत्कृतस्य **तेजसो रूप**मिति विद्धि। तथा **यच्छुक्लं** रूपमग्नेरेव **तदपाम**त्रिवृत्कृतानां **यत्कृष्णं** तस्यैवाग्ने रूपं **तदन्नस्य** पृथिव्या अत्रिवृत्कृताया इति विद्धि। तत्रैवं सति रूपत्रयव्यतिरेकेणाग्निरिति यन्मन्यसे त्वं तस्याग्नेरग्नित्व-मिदानी**मपागाद**पगतम्। प्राग्रूपत्रयविवेकविज्ञानाद्याऽग्निबुद्धिरासीत्ते साऽग्निबुद्धिरपगताऽ-ग्निशब्दश्चेत्यर्थः। यथा दृश्यमानरक्तोपधानसंयुक्तः स्फटिको गृह्यमाणः पद्मरागोऽ-यमितिशब्दबुद्ध्योः प्रयोजको भवति प्रागुपधानस्फटिकयोर्विवेकविज्ञानात्तद्विवेकविज्ञाने तु पद्मरागशब्दबुद्धी निवर्तेते तद्विवेकविज्ञातुस्तद्वत्। ननु किमत्र बुद्धिशब्दकल्पनया

रूपाणीत्येव सत्यम् ।।१।।

यदादित्यस्य रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादादित्यादादित्यत्वं वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ।।२।।

यच्चन्द्रमसो रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चन्द्रत्वं वाचाऽऽरम्भणं विकारो

से अग्नित्व निवृत्त हो गया, क्योंकि (अग्नि बुद्धि और अग्नि शब्दमात्र ही) विकार वस्तु वाणी से कहने के लिये नाममात्र है। वस्तुतः उक्त तीन रूप ही हैं, इतना ही सत्य है।।१।।

आदित्य का जो रक्त रूप है, वह अत्रिवृत् तेज का रूप है, जो शुक्ल रूप है वह जल का है, जो कृष्णरूप है, वह पृथिवी का है। इस प्रकार आदित्य से आदित्यत्व निकल गया, क्योंकि वह विकार वाणी से कहने के लिए नाममात्र है। वस्तुतस्तु उक्त तीन रूप ही हैं, इतना ही सत्य है।।२।।

त्रिवृत् भूत के कार्य चन्द्रमा में जो रोहितरूप है, वह अत्रिवृत् कृत तेज का रूप है। जो शुक्ल रूप है, वह जल का एवं जो कृष्णरूप है वह पृथिवी का है। इस प्रकार चन्द्र से चन्द्रत्व

क्रियते प्राग्रूपत्रयविवेककरणादग्निरेवाऽऽसीत्तदग्**नेरग्नित्वं** रोहितादिरूपविवेककरणादपागादिति युक्तं, यथा तन्त्वपकर्षणे पटाभावः। नैवं, बुद्धिशब्दमात्रमेव ह्यग्निर्यत आह **वाचाऽऽरम्भणम**ग्निर्नाम **विकारो नामधेयं** नाममात्रमित्यर्थः। अतोऽग्निबुद्धिरपि मृषैव। किं तर्हि तत्र सत्यं, **त्रीणि रूपाणीत्येव** सत्यं नाणुमात्रमपि रूपत्रयव्यतिरेकेण सत्यमस्तीत्यवधारणार्थः।।१।।

तथा **यदादित्यस्य यच्चन्द्रमसो यद्विद्युत** इत्यादि समानम्। ननु यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीत्युक्त्वा तेजस एव चतुर्भिरप्युदाहरणैरग्न्यादिभिस्त्रिवृत्करणं दर्शितं नाबन्नयोरुदाहरणं दर्शितं त्रिवृत्करणे? नैष दोषः। अबन्नविषयाण्यप्युदाहरणान्येवमेव च द्रष्टव्यानीति मन्यते श्रुतिः। तेजस उदाहरणमुपलक्षणार्थम्। रूपवत्त्वात्स्पष्टार्थत्वोपपत्तेश्च। गन्धरसयोरनुदाहरणं त्रयाणामसंभवात्। न हि गन्धरसौ तेजसि स्तः। स्पर्शशब्दयोरनुदाहरणं, विभागेन दर्शयितुमशक्यत्वात्।

यदि सर्वं जगत्त्रिवृत्कृतमित्यग्न्यादिवत्त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यमग्नेरग्नित्ववदपागाज्जगतो जगत्त्वम्। तथाऽन्नस्याप्यप्शुङ्गत्वादाप इत्येव सत्यं वाचारम्भणमात्रमन्नम्। तथाऽपामपि तेजःशुङ्गत्वाद्वाचारम्भणत्वं तेज इत्येव सत्यम्। तेजसोऽपि सच्छुङ्गत्वा-

नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥३॥

यद्विद्युतो रोहितꣳ रूपं तेजस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाद्विद्युतो विद्युत्त्वं वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥४॥

एतद्ध स्म वै तद्विद्वाꣳस आहुः पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोऽद्य कश्चनाश्रुतममतमविज्ञातमुदाहरिष्यतीति ह्येभ्यो

चला गया, क्योंकि चन्द्रमारूप विकार तो वाणी पर आधारित नाममात्र है। वास्तव में उक्त तीन ही हैं। इतना ही सत्य है।।३।।

विद्युत का जो लाल रूप है, वह तेज का रूप है। जो शुक्ल रूप है वह जल का रूप है। जो कृष्ण रूप है वह अन्न का रूप है। इस प्रकार विद्युत से विद्युत्त्व निकल गया। इसका विद्युत्त्वरूप केवल वाणी का विकार है। वास्तव में इसके यही तीन रूप हैं। यही सत्य है।।४।।

पूर्व के महाशाल एवं महाश्रोत्रिय विद्वानों ने ऐसा ही कहा है। हमारे में से कोई भी अश्रुत,

---

द्वाचारम्भणत्वं सदित्येव सत्यमित्येषोऽर्थो विवक्षितः। ननु वाय्वन्तरिक्षे त्वत्रिवृत्कृते तेजःप्रभृतिष्वनन्तर्भूतत्वादवशिष्येते एवेति गन्धरसशब्दस्पर्शाश्चावशिष्टाः। कथं सता विज्ञातेन सर्वमन्यदविज्ञातं विज्ञातं भवेत्तद्विज्ञाने वा प्रकारान्तरं वाच्यम्? नैष दोषः। रूपवद्द्रव्ये सर्वस्य दर्शनात्। कथम्? तेजसि तावद्रूपवति शब्दस्पर्शयोरप्युपलम्भा-द्वाय्वन्तरिक्षयोस्तत्र स्पर्शशब्दगुणवतोः सद्भावोऽनुमीयते। तथाऽबन्नयो रूपवतो रसगन्धान्तर्भाव इति। रूपवतां त्रयाणां तेजोऽबन्नानां त्रिवृत्करणप्रदर्शनेन सर्वं तदन्तर्भूतं सद्विकारत्वात्त्रीण्येव रूपाणि विज्ञातं मन्यते श्रुतिः। न हि मूर्तं रूपवद्द्रव्यं प्रत्याख्याय वाय्वाकाशयोस्तद्गुणयोर्गन्धरसयोर्वा ग्रहणमस्ति। अथवा रूपवतामपि त्रिवृत्करणं प्रदर्शनार्थमेव मन्यते श्रुतिः। यथा तु त्रिवृत्कृते त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यं, तथा पञ्चीकरणेऽपि समानो न्याय इत्यतः सर्वस्य सद्विकारत्वात्सता विज्ञातेन सर्वमिदं विज्ञातं स्यात्सदेकमेवाद्वितीयं सत्यमिति सिद्धमेव भवति। तदेकस्मिन्सति विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति सूक्तम्।।२।।३।।४।।

एतद्विद्वांसो विदितवन्तः पूर्वेऽतिक्रान्ता **महाशाला महाश्रोत्रिया** आहुर्ह· **स्म वै** ·किल। किमुक्तवन्त इत्याह— **न नो**ऽस्माकं कुले**ऽद्य**दानीं यथोक्तविज्ञानवतां **कश्चन** कश्चिदप्य**श्रुतममतमविज्ञातमुदाहरिष्यति** नोदाहरिष्यति सर्वं विज्ञात-

विदांचक्रुः ।।५।।

यदु रोहितमिवाभूदिति तेजसस्तद्रूपमिति तद्विदांचक्रुर्यदु शुक्लमिवाभूदित्यपाꣳ रूपमिति तद्विदांचक्रुर्यदु कृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य रूपमिति तद्विदांचक्रुः ।।६।।

यद्विज्ञातमिवाभूदित्येतासामेव देवतानाꣳ समास इति तद्विदांचक्रुर्यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ।।७।।

इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।।४।।

अमत तथा अविज्ञात उदाहरण नहीं देगा, ऐसा इन लोगों से जाना।।५।।

जो रोहित जैसा हुआ वही तेज का रूप है, ऐसा जाना। जो शुक्ल जैसा हुआ वही जल का रूप है, ऐसा जाना। जो कृष्ण जैसा हुआ वही अन्न का रूप है, ऐसा जाना।।६।।

जो जैसा जाना गया वह इन्हीं देवताओं का समास है, ऐसा उन्होंने जाना। हे सोम्य! जैसे ये तीनों देवता त्रिवृत्-त्रिवृत् रूप हैं, वे पुरुष को प्राप्त कर एक-एक अलग-अलग होते हैं, इसे मुझसे जानो।।७।।

।।इति चतुर्थः खण्डः ।।

मेवास्मत्कुलीनानां सद्विज्ञानवत्त्वादित्यभिप्रायः। ते पुनः कथं सर्वं विज्ञातवन्त इत्याह— **एभ्यस्त्रिभ्यो** रोहितादिरूपेभ्यस्त्रिवृत्कृतेभ्यो विज्ञातेभ्यः सर्वमप्यन्यच्छिष्टमेवमेवेति विदांचक्रुर्विज्ञातवन्तो यस्मात्तस्मात्सर्वज्ञा एव सद्विज्ञानात्त आहुरित्यर्थः। अथवैभ्यो विदांचक्रुरित्यग्न्यादिभ्यो दृष्टान्तेभ्यः विज्ञातेभ्यः सर्वमन्यद्विदांचक्रुरित्येतत्।।५।।

कथम्। यदन्यद्रूपेण संदिह्यमाने कपोतादिरूपे रोहितमिव यद्गृह्यमाणमभूत्तेषां पूर्वेषां ब्रह्मविदां तत्तेजसो रूपमिति विदांचक्रुः। तथा यच्छुक्लमिवाभूद्गृह्यमाणं तदपां रूपं यत्कृष्णमिव गृह्यमाणं तदन्नस्येति विदांचक्रुरेवमेवात्यन्तदुर्लक्ष्यं यदु अप्यविज्ञातमिव विशेषतोऽगृह्यमाणमभूत्तदप्ये**तासामेव** तिसृणां **देवतानां समासः** समुदाय **इति विदांचक्रुः**। एवं तावद्बाह्यं वस्त्वग्न्यादिवद्विज्ञातं तथेदानीं **यथा नु खलु** हे **सोम्येमा** यथोक्ता**स्तिस्रो देवताः पुरुषं** शिरःपाण्यादिलक्षणं कार्यकरणसंघातं **प्राप्य** पुरुषेणोपयुज्यमाना**स्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहि** निगदत इत्युक्त्वाऽऽह।।६।।७।।

इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः।।४।।

राम और कृष्ण कथा विश्वास पर निर्भर - वेदान्त का कथा अनुष्ठान मान्य.
जैसा खावे अन्न वैसा बने मन.

आध्यात्मिक त्रिवृत्करण

(अथ षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः।)

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मांसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥१॥ Refer below

आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः ॥२॥

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि

खाया हुआ अन्न तीन भागों में विभक्त होता है। उसकी जो स्थूल धातु है, वह पुरीष है। जो मध्यम है, वह माँस है। जो सूक्ष्म है, वह मन है।। १।।

पीया हुआ जल तीन भागों में विभाजित होता है। उसकी जो स्थूल धातु है, वह मूत्र है। जो मध्यम है, वह लोहित है। जो सूक्ष्म है, वह प्राण है।। २।।

उपभुक्त तेज भी तीन भागों में विभक्त होता है। उसकी जो स्थूल धातु है, वह अस्थि है।

जब तक गंगा जल पीते रहे तब तक शरीर नहीं छूटा: जल पीना छोड़ने के बाद प्राण छूटा.

अन्नमशितं भुक्तं **त्रेधा विधीयते** जाठरेणाग्निना पच्यमानं त्रिधा विभज्यते। कथं; **तस्या**न्नस्य त्रिधा विधीयमानस्य **यः स्थविष्ठः** स्थूलतमो धातुः स्थूलतमं वस्तु विभक्तस्य स्थूलोंऽशस्**तत्पुरीषं भवति। यो मध्यमों**ऽशो धातुरन्नस्य तद्रसादिक्रमेण परिणम्य **मांसं** भवति **योऽणिष्ठो**ऽणुतमो धातुः स ऊर्ध्वं हृदयं प्राप्य सूक्ष्मासु हिताख्यासु नाडीष्वनुप्रविश्य वागादिकरणसंघातस्य स्थितिमुत्पादय**न्मनो** भवति मनोरूपेण विपरिणमन्मनस उपचयं करोति। ततश्चान्नोपचितत्वान्मनसो भौतिकत्वमेव न वैशेषिकतन्त्रोक्तलक्षणं नित्यं निरवयवं चेति गृह्यते। यदपि मनोऽस्य दैवं चक्षुरिति वक्ष्यति, तदपि न नित्यत्वापेक्षया, किं तर्हि सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टादिसर्वेन्द्रियविषय-व्यापकत्वापेक्षया। यच्चान्येन्द्रियविषयापेक्षया नित्यत्वं तदप्यापेक्षिकमेवेति वक्ष्यामः। ''सदेकमेवद्वितीयमि''ति श्रुतेः।। १।।

तथाऽऽ**पः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति। यो मध्यमस्तल्लोहितं** भवति। **योऽणिष्ठः स प्राणो** भवति। वक्ष्यति हि''आपोमयः प्राणो न पिबतो विच्छेत्स्यते'' इति।। २।।

तथा **तेजोऽशितं** तैलघृतादि भक्षितं **त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो**

भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक् ।।३।।

अन्नमयꣳ हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ।।४।।

इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।।५।।

जो मध्यम है, वह मज्जा है। जो सूक्ष्म है, वह वाणी है।।३।।

इस प्रकार, हे सोम्य! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाणी तेजमय है। यह सुनकर, हे भगवन्! आप फिर से मुझे बतलाइये, ऐसा सोम्य ने कहा। इस बात को सुनकर आरुणि ने कहा- अच्छा, समझाता हूँ।।४।।

।।इति पञ्चमः खण्डः ।।

धातुस्तदस्थि भवति। यो मध्यमः स मज्जाऽस्थ्यन्तर्गतः स्नेहः। **योऽणिष्ठः सा वाक्**। तैलघृतादिभक्षणाद्धि वाग्विशदा भाषणे समर्था भवतीति प्रसिद्धं लोके।। ३।।

यत **एवमन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्**। ननु केवलान्नभक्षिण आखुप्रभृतयो वाग्ग्मिनः प्राणवन्तश्च, तथाऽब्मात्रभक्ष्याः, सामुद्रा मीनमकरप्रभृतयो मनस्विनो वाग्ग्मिनश्च, तथा स्नेहपानामपि प्राणवत्त्वं मनस्वित्वं चानुमेयं यदि सन्ति तत्र कथमन्नमयं हि सोम्य मन इत्याद्युच्यते। नैष दोषः। सर्वस्य त्रिवृत्कृतत्वात्सर्वत्र सर्वोपपत्तेः। न ह्यत्रिवृत्कृतमन्नमश्नाति कश्चिदापो वाऽत्रिवृत्कृताः पीयन्ते, तेजो वाऽत्रिवृत्कृतमश्नाति कश्चिदित्यन्नादानामाखुप्रभृतीनां वाग्ग्मित्वं प्राणवत्त्वं चेत्याद्यविरुद्धम्। इत्येवं प्रत्यायितः श्वेतकेतुराह— **भूय एव** पुनरेव **मा** मां **भगवान**न्नमयं हि सोम्य मन इत्यादि **विज्ञापयतु** दृष्टान्तेनावगमयतु नाद्यापि ममास्मिन्नर्थे सम्यङ्निश्चयो जातः। यस्मात्तेजोऽबन्नमयत्वेनाविशिष्टे देह एकस्मिन्नुपयुज्यमानान्यन्नाप्स्नेहजातान्यणिष्ठधातुरूपेण मनःप्राणवाच उपचिन्वन्ति स्वजात्यनतिक्रमेणेति दुर्विज्ञेयमित्यभिप्रायो, अतो भूय एवेत्याद्याह। तमेवमुक्तवन्तं तथाऽस्तु सोम्येति होवाच पिता, शृण्वत्र दृष्टान्तं यथैतदुपपद्यते यत्पृच्छसि।। ४।।

इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः।।५।।

(अथ षष्ठाध्यायस्य षष्ठः खण्डः।)

putting one drop of curds in milk pot

दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवति ॥१॥

एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति ॥२॥

अपाᳬं सोम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति स प्राणो भवति ॥३॥

तेजसः सोम्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति सा वाग्भवति ॥४॥



अन्नादि का सूक्ष्म भाग ही मन, आदि वर्णन

हे सोम्य! मथे जाते हुए दधि का जो सूक्ष्म भाग है, वह ऊपर इकट्ठा होकर नवनीतरूप से आ जाता है, वह घृत होता है॥१॥

उसी प्रकार हे सोम्य! भक्षण किये हुए अन्न का जो सूक्ष्म भाग होता है, वह सम्यक् प्रकार से ऊपर आ जाता है, वही मन होता है॥२॥

हे सोम्य! पीये हुए का जो सूक्ष्म भाग होता है वह एकत्रित होकर ऊपर आ जाता है, वह प्राण होता है॥३॥

हे सोम्य! खाये हुए तेज का जो सूक्ष्म भाग होता है, वह एकत्रित होकर ऊपर आ जाता है और वह वाणी हो जाता है॥४॥

दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमाऽणुभावः, **स ऊर्ध्वः समुदीषति** संभूयोर्ध्वं नवनीतभावेन गच्छति **तत्सर्पिर्भवति**॥१॥

यथाऽयं दृष्टान्त **एवमेव खलु सोम्यान्नस्य**ौदनादेर**श्यमानस्य** भुज्यमानस्यौदर्येणाग्निना वायुसहितेन खजेनेव मथ्यमानस्य **योऽणिमा स** ऊर्ध्वः **समुदीषति तन्मनो भवति** मनोऽवयवैः स संभूय मन उपचिनोतीत्येतत्॥२॥

तथा**ऽपां सोम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति स प्राणो भवती**ति॥३॥

एवमेव खलु **सोम्य तेजसोऽश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति सा वाग्भवति**॥४॥

अन्नमयꣳ हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ।।५।।

इति षष्ठाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।।६।।

(अथ षष्ठाध्यायस्य सप्तमः खण्डः।)

षोडशकलः सोम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माऽशीः काममपः

इसलिये हे सोम्य! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाणी तेजोमयी है (ऐसा आरुणि ने कहा तब श्वेतकेतु कहता है) हे भगवन्! मुझे (अन्न का महत्त्व) फिर से समझाइये। इस बात को सुनकर आरुणि ने कहा- अच्छा। समझाता हूँ।।५।।

।। इति षष्ठः खण्डः ।।

षोडश कला विशिष्ट पुरुष का वर्णन

हे सोम्य! सोलह कलायें जिस पुरुष की हैं, व सोलह कला वाला पुरुष माना जाता है, (इसे प्रत्यक्ष से अनुभव करने के लिये) तू पन्द्रह दिन तक भोजन न कर केवल यथेच्छ जलपान

अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति युक्तमेव मयोक्तमित्यभिप्रायो, अतोऽप्तेजसोरस्त्वेतत्सर्वमेवम्। मनस्त्वन्नमयमित्यत्र नैकान्तेन मम निश्चयो जातो, अतो **भूय एव मा** भगवान्मनसोऽन्नमयत्वं दृष्टान्तेन **विज्ञापयत्विति। तथा सोम्येति होवाच** पिता।।५।।

इति षष्ठाध्यायस्य षष्ठः खण्डः।।६।।

अन्नस्य भुक्तस्य योऽणिष्ठो धातुः स मनसि शक्तिमधात्साऽन्नोपचिता मनसः शक्तिः षोडशधा प्रविभज्य पुरुषस्य कलात्वेन निर्दिदिक्षिता। तया मनस्यन्नोपचितया शक्त्या षोडशधा प्रविभक्तया संयुक्तस्तद्वान्कार्यकरणसंघातलक्षणो जीवविशिष्टः **पुरुषः षोडशकलः** उच्यते, यस्यां सत्यां द्रष्टा श्रोता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञाता सर्वक्रियासमर्थः पुरुषो भवति हीयमानायां च यस्यां सामर्थ्यहानिः। वक्ष्यति चाथान्नस्याऽऽयै द्रष्टेत्यादि। सर्वस्य कार्यकरणसंघातस्य सामर्थ्यं मनःकृतमेव। मानसेन हि बलेन संपन्ना बलिनो दृश्यन्ते लोके ध्यानाहाराश्च केचिद्, अन्नस्य सर्वात्मकत्वात्। अतोऽन्नकृतं मानसं वीर्यं षोडशकला यस्य पुरुषस्य सोऽयं षोडशकलः पुरुषः। एतच्चेत्प्रत्यक्षीकर्तुमिच्छसि **पञ्चदश**संख्याकान्य**हानि माऽशीर**शनं मा कार्षीः।

पिबाऽऽपोमयः प्राणो नपिबतो विच्छेत्स्यत इति ।।१।।

स ह पञ्चदशाहानि नाऽऽशाथ हैनमुपससाद किं ब्रवीमि भो इत्यृचः सोम्य यजूꣳषि सामानीति स होवाच न वै मा प्रतिभान्ति भो इति ।।२।।

तꣳ होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकोऽङ्गारः खद्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोऽपि न बहु दहेदेवꣳ सोम्य

कर। प्राण जल का विकार है। इसलिये जल पीते रहने से जल के कार्य प्राण का नाश नहीं होगा।। १।।

ऐसा सुनकर उसने मन की अन्नमयता को जानने के लिये भोजन नहीं किया। उसके बाद वह अपने पिता के पास आया और कहा- पिताजी क्या कहूँ। इस पर पिता ने कहा- हे सोम्य! ऋग्, यजुः और साम के मन्त्रों का पाठ करो। तब श्वेतकेतु ने कहा, मुझे उन ऋगादि मन्त्रों का स्फुरण नहीं होता ।।२।।

श्वेतकेतु से आरुणि ने कहा- हे सोम्य! लोक में जिस प्रकार बहुत से ईंधन के द्वारा बढ़ाये हुए परिमाण वाले अग्नि का एक जुगनु के बराबर अंगारा यदि शेष रह जाय

काममिच्छातोऽपः पिब। यस्मान्न**पिबतो**ऽपस्ते **प्राणो विच्छेत्स्यते** विच्छेदमापत्स्यते यस्मा**दापोमयो**ऽब्विकारः प्राण इत्यवोचाम। न हि कार्यं स्वकारणोपष्टम्भमन्तरेण विभ्रंश्यमानं स्थातुमुत्सहते।। १।।

स हैवं श्रुत्वा मनसोऽन्नमयत्वं प्रत्यक्षीकर्तुमिच्छन्**पञ्चदशाहानि** नाऽऽश। अशनं न कृतवान्। अथ षोडशेऽहनि हैनं पितरमुपससादोपगतवानुपगम्य चोवाच, किं **ब्रवीमि भो इति**। इतर आह ऋचः सोम्य **यजूंषि सामान्य**धीष्वेति। एवमुक्तः पित्राऽऽह— **न वै मा** मामृगादीनि **प्रतिभान्ति** मम मनसि न दृश्यन्ते इत्यर्थो हे **भो** भगवन्निति।। २।।

एवमुक्तवन्तं पिताऽऽह शृणु तत्र कारणं येन ते तान्यृगादीनि न प्रतिभान्तीति **तं होवाच यथा** लोके हे **सोम्य महतो** महत्परिमाणस्याभ्याहितस्योपचितस्येन्धनैरग्ने**रेकोऽङ्गारः खद्योतमात्रः** खद्योतपरिमाणः शान्तस्य **परिशिष्टो**ऽवशिष्टः स्याद्भवेत्तेनाङ्गारेण **ततोऽपि** तत्परिमाणादीषदपि **न बहु दहेदेवमेव** खलु **सोम्य**

ते षोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टा स्यात्तयैतर्हि वेदान्नानुभवस्यशानाथ मे विज्ञास्यसीति ॥३॥

स हाऽऽशाथ हैनमुपससाद तꣳ ह यत्किंच पप्रच्छ सर्वꣳ ह प्रतिपेदे ॥४॥

तꣳ होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैरुपसमाधाय प्राज्वलयेत्तेन ततोऽपि बहु दहेत् ॥५॥

तो वह दाह नहीं कर सकता। हे सोम्य! उसी प्रकार तेरी सोलह कलाओं में से (पन्द्रह दिन के उपवास के कारण) केवल एक कला शेष रह गयी है। इसीलिये उसके द्वारा तू वेदों का अनुभव नहीं कर सकता। अत: अब तू भोजन कर, इसके पश्चात् तू मेरी बात ठीक-ठीक समझ जायेगा।।३।।

पिता के आदेशानुसार श्वेतकेतु ने भोजन किया और फिर आरुणि के पास आया तब आरुणि ने जो कुछ भी पूछा- उन सभी ऋगादि मन्त्रों और उनके अर्थ को जान लिया ।।४।।

श्वेतकेतु से आरुणि ने कहा- हे सोम्य! जैसे बहुत से ईंधन के द्वारा बढ़ाये हुए अग्नि का एक खद्योतमात्र अंगारा रह जाय और उसे तिनके आदि के द्वारा सम्पन्न करके प्रज्वलित किया जाय तो वह प्रदीप्त हुआ अंगारा पहले की अपेक्षा अधिक दाह कर सकता है।।५।।

ते तवान्नोपचितानां **षोडशानां कलानामेका कला**ऽवयवो**ऽतिशिष्टा**ऽवशिष्टा **स्यात्तया** त्वं खद्योतमात्राङ्गारतुल्ययै**तर्हि**दानीं **वेदान्नानुभवसि** न प्रतिपद्यसे श्रुत्वा च **मे** मम वाचम**थाशे**षं **विज्ञास्यस्यशान** भुङ्क्ष्व तावत्।।३।।

स ह तथैवाऽऽश भुक्तवानथानन्तरं **हैनं** पितरं शुश्रूषु**रुपससाद तं** होपगतं पुत्रं **यत्किंच**र्गादिषु **पप्रच्छ** ग्रन्थरूपमर्थजातं वा पिता, स श्वेतकेतुः **सर्वं** ह तत्**प्रतिपेदे** ऋगाद्यर्थतो ग्रन्थतश्च।।४।।

तं होवाच पुनः पिता, **यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्ये**त्यादि समान**मेकमङ्गारं** शान्तस्याग्नेः **खद्योतमात्रं परिशिष्टं**, तं **तृणै**श्चूर्णैश्**चोपसमाधाय प्राज्वलये**द्वर्धयेत्। **तेने**द्धेनाङ्गारेण **ततोऽपि** पूर्वपरिमाणाद्**बहु दहेत्**।।५।।

एवꣳ सोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टाऽभूत्साऽन्नेनोपसमाहिता प्राज्वाली तयैतर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयꣳ हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥६॥

इति षष्ठाध्यायस्य सप्तमः खण्डः॥७॥

हे सोम्य! तेरी सोलह कलाओं में से एक कला शेष रह गयी थी। वही जब अन्न के द्वारा बढ़ा दी गयी तो अब उसी से तू वेदों का और उसके अर्थ का अनुभव कर रहा है, क्योंकि हे सोम्य! मन अन्न का विकार, प्राण जल का विकार है और वाणी तेज का विकार है। इस प्रकार पिता के कहे गये इस मन आदि के अन्नमयत्वादि को श्वेतकेतु विशेषरूप से समझ गया। विशेषरूप से समझ गया ॥६॥

॥इति सप्तमः खण्डः ॥

एवं सोम्य ते षोडशानामन्नकलानां सामर्थ्यरूपाणा**मेका कलाऽतिशिष्टाऽभूद**तिशिष्टाऽऽसीत्पञ्चदशाहान्यभुक्तवत एकैकेनाह्नैकैका कला चन्द्रमस इवापरपक्षे क्षीणा, साऽतिशिष्टा कला तवान्नेन भुक्**तेनोपसमाहिता** वर्धितोपचिता **प्राज्वाली** दैर्घ्यं छान्दसं प्रज्वलिता वर्धितेत्यर्थः। प्राज्वालीदिति पाठान्तरं तदा तेनोपसमाहिता स्वयं प्रज्वलितवतीत्यर्थः। तया वर्धितयैतर्हीदानीं **वेदाननुभवस्यु**पलभसे। एवं व्यावृत्त्यनुवृत्तिभ्यामन्नमयत्वं मनसः सिद्धमित्युपसंहर**त्यन्नमयं हि सोम्य मन** इत्यादि। यथैतन्मनसोऽन्नमयत्वं तव सिद्धं, तथा**ऽऽपोमय प्राणस्तेजोमयी वागित्येत**दपि सिद्धमेवेत्यभिप्रायः। **तदेतद्धास्य** पितुरुक्तं मनआदीनामन्नादिमयत्वं विजज्ञौ विज्ञातवाञ्श्वेतकेतुः। द्विरभ्यासस्त्रिवृत्करणप्रकरणसमाप्त्यर्थः॥६॥

इत्येकादशाह्निकम्॥११॥

इति षष्ठाऽध्यायस्य सप्तमः खण्डः॥७॥

(अथ षष्ठाध्यायस्याष्टम: खण्ड:)

उद्दालको हाऽऽरुणि: श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुष: स्वपिति नाम सता सोम्य तदा संपन्नो

सुषुप्तिकालीन जीव की स्थिति का वर्णन

प्रसिद्ध उद्दालक नामा आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा- हे सोम्य! तू मुझसे सुषुप्ति या स्वप्न के स्वरूप को स्पष्टरूप से समझ ले। जिस समय यह पुरुष "सोता है" ऐसा कहा जाता है। हे सोम्य! उस समय यह सत् के साथ सम्पन्न हो जाता है और यह अपने स्वरूप को

यस्मिन्मनसि जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रविष्टा परा देवताऽऽदर्श इव पुरुष: प्रतिबिम्बेन जलादिष्विव च सूर्यादय: प्रतिबिम्बै:। तन्मनोऽन्नमयं तेजोऽम्मयाभ्यां वाक्प्राणाभ्यां संगतमधिगतम्। यन्मयो यत्स्थश्च जीवो मननदर्शनश्रवणादिव्यवहाराय कल्पते, तदुपरमे च स्वं देवतारूपमेव प्रतिपद्यते। तदुक्तं श्रुत्यन्तरे- "ध्यायतीव लेलायतीव सधी: स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति" (बृ.४.३.७) "स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमय:" (बृ.४.४.५) इत्यादि, 'स्वप्ने शारीरमि" (बृ.४.३.११) त्यादि, "प्राणन्नेव प्राणो नाम भवती" (बृ.१.४.७) त्यादि च। तस्यास्य मनस्थस्य मनआख्यां गतस्य मनउपशमद्वारेणेन्द्रियविषयेभ्यो निवृत्तस्य यस्यां परस्यां देवतायां स्वात्मभूतायां यदवस्थानं तत्पुत्रायाऽऽचिख्यासु**रुद्दालको ह** किलाऽऽ**रुणि: श्वेतकेतुं पुत्रमुवाचो**क्तवान्।

स्वप्नान्तं स्वप्नमध्यं स्वप्न इति दर्शनवृत्ते: स्वप्नस्याऽऽख्या तस्य मध्यं स्वप्नान्तं सुषुप्तमित्येतत्। अथवा स्वप्नान्तं स्वप्नसतत्त्वमित्यर्थ:। तत्राप्यर्थात्सुषुप्तमेव भवति। "स्वमपीतो भवतीति" वचनात्। न ह्यन्यत्र सुषुप्तात्स्वमपीतिं जीवस्येच्छन्ति ब्रह्मविद:। तत्र ह्यादर्शापनयने पुरुषप्रतिबिम्ब आदर्शगतो यथा स्वमेव पुरुषमपीतो भवत्येवं मनआद्युपरमे चैतन्यप्रतिबिम्बरूपेण जीवेनाऽऽत्मना मनसि प्रविष्टा नामरूपव्याकरणाय परा देवता सा स्वमेवाऽऽत्मानं प्रतिपद्यते जीवरूपतां मनआख्यां हित्वा। अत: सुषुप्त एव स्वप्नान्तशब्दवाच्य इत्यवगम्यते। यत्र तु सुप्त: स्वप्नान्पश्यति तत्स्वाप्नं दर्शनं सुखदु:खसंयुक्तमिति पुण्यापुण्यकार्यम्। पुण्यापुण्ययोर्हि सुखदु:खारम्भकत्वं प्रसिद्धम्। पुण्यापुण्ययोश्चाविद्याकामोपष्टम्भेनैव सुखदु:खतद्दर्शनकार्यारम्भकत्वमुपपद्यते,

भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनꣳ स्वपितीत्याचक्षते स्वꣳ ह्यपीतो भवति ।।१।।

प्राप्त हो जाता है। इसीलिये इसे ''स्वपिति'' नाम से कहते हैं, क्योंकि उस समय जीव अपने को ही प्राप्त हो जाता है।।१।।

नान्यथेत्यविद्याकामकर्मभिः संसारहेतुभिः संयुक्त एव स्वप्न इति न स्वमपीतो भवति। ''अनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाञ्छोकान्हृदयस्य भवति'' (बृ.४.३.२२) ''तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा'' (बृ.४.३.२१) ''एष परम आनन्दः'' (बृ.४.३.३३) इत्यादिश्रुतिभ्यः। सुषुप्त एव स्वं देवतारूपं जीवत्वविनिर्मुक्तं दर्शयिष्यामीत्याह। स्वप्नान्तं **मे** मम निगदतो हे **सोम्य विजानी**हि विस्पष्टमवधारयेत्यर्थः।

कदा स्वप्नान्तो भवतीत्युच्यते। यत्र यस्मिन्काल एत**न्नाम भवति** पुरुषस्य स्वप्स्यतः। प्रसिद्धं हि लोके **स्वपिती**ति। गौणं चेदं नामेत्याह। यदा स्वपितीत्युच्यते पुरुषस्तदा तस्मिन्काले **सता** सच्छब्दवाच्यया प्रकृतया देवतया **संपन्नो भवति** संगत एकीभूतो भवति। मनसि प्रविष्टं मनआदिसंसर्गकृतं जीवरूपं परित्यज्य स्वं सद्रूपं यत्परमार्थसत्यमपीतोऽपिगतो भवति। अतस्तस्मात्स्वपितीत्येनमा**चक्षते** लौकिकाः। **स्वमा**त्मानं हि यस्मा**दपीतो भवति**। गुणनामप्रसिद्धितोऽपि स्वात्मप्राप्तिर्गम्यत इत्यभिप्रायः। कथं पुनर्लौकिकानां प्रसिद्धा स्वात्मसंपत्तिर्जाग्रच्छ्रमनिमित्तोद्भवत्वात्स्वापस्येत्याहुः। जागरिते हि पुण्यापुण्यनिमित्तसुखदुःखाद्यनेकायासानुभवाच्छ्रान्तो भवति, ततश्चाऽऽयस्तानां करणानामनेकव्यापारनिमित्तग्लानानां स्वव्यापारेभ्य उपरमो भवति। श्रुतेश्च ''श्राम्यत्येव वाक्श्राम्यति चक्षुरि'' (बृ.१.५.२१) त्येवमादि। तथा च ''गृहीता वाग्गृहीतं चक्षुर्गृहीतं श्रोत्रं गृहीतं मनः'' (बृ.२.१.१७) इत्येवमादीनि करणानि प्राणग्रस्तानि, प्राण एकोऽश्रान्तो देहे कुलाये यो जागर्ति, तदा जीवः श्रमापनुत्तये स्वं देवतारूपमात्मानं प्रतिपद्यते। नान्यत्र स्वरूपावस्थानाच्छ्रमापनोदः स्यादिति युक्ता प्रसिद्धिर्लौकिकानां **स्वं ह्यपीतो भवती**ति। दृश्यते हि लोके ज्वरादिरोगग्रस्तानां तद्विनिर्मोके स्वात्मस्थानां विश्रमणं, तद्वदिहापि स्यादिति युक्तम्। ''तद्यथा श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः'' (बृ.४.३.१९) इत्यादिश्रुतेश्च।।१।।

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्राऽऽयतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयते एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्राऽऽयतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राणबन्धनꣳ हि सोम्य मन इति ॥२॥

अशनापिपासे मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषोऽशिशिषति नामाऽऽप एव तदशितं नयन्ते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय

जिस प्रकार व्याध के हाथ में पकड़ी हुई डोरी से बँधा हुआ पक्षी दिशा-विदिशा में उड़कर भी अन्यत्र विश्राम स्थान न प्राप्त करके बन्धन-स्थान का ही आश्रय लेता है। इसी प्रकार हे सोम्य! निश्चय ही यह मन भी दिशा-विदिशाओं में जाकर और आत्मा से भिन्न कहीं भी विश्राम स्थान न मिलने से प्राण द्वारा उपलक्षित परदेवता का ही आश्रय लेता है, क्योंकि हे सोम्य! मन प्राणरूप बंधन वाला ही है॥ २॥

हे सोम्य! तू मुझसे भूख और प्यास को स्पष्ट रूप से समझ। जिस समय यह पुरुष "खाना चाहता है" ऐसे नाम वाला होता है, उस समय उसके खाये हुए अन्न को जल ही ले जाता है। जैसे लोक में (गौ ले जाने वाले को) गोनाय, (घोड़े ले जाने वाले को) अश्वनाय तथा (पुरुषों

तत्रायं दृष्टान्तो यथोक्तेऽर्थे, **स यथा शकुनिः** पक्षी शकुनिघातकस्य हस्तगतेन **सूत्रेण प्रबद्धः** पाशितो **दिशं दिशं** बन्धनमोक्षार्थी सन्प्रतिदिशं **पतित्वाऽन्यत्र** बन्धना**दायतनमा**श्रयं विश्रमणाया**लब्ध्वा**ऽप्राप्य **बन्धनमेवोपश्रयते**। **एवमेव** यथाऽयं दृष्टान्तः **खलु**, हे **सोम्य तन्मनस्**तत्प्रकृतं षोडशकलमन्नोपचितं मनो निर्धारितं, तत्प्रविष्टस्तत्स्थस्तदुपलक्षितो जीवस्तन्मन इति निर्दिश्यते मञ्चाक्रोशनवत्। स मनआख्योपाधिर्जीवोऽविद्याकामकर्मोपदिष्टां **दिशं दिशं** सुखदुःखादिलक्षणां जाग्रत्स्वप्नयोः **पतित्वा** गत्वाऽनुभूयेत्यर्थः। **अन्यत्र** सदाख्यात्स्वात्मन **आयतनं** विश्रमणस्थान**मलब्ध्वा प्राणमेव** प्राणेन सर्वकार्यकरणाश्रयेणोपलक्षिता प्राण इत्युच्यते सदाख्या परा देवता। "प्राणस्य प्राणं" (बृ.४.४.१८) "प्राणशरीरो भारूपः" (छा.३.१४.२) इत्यादिश्रुतेः। अतस्तां देवतां प्राणं प्राणाख्यामेवो**पश्रयते**। प्राणो बन्धनं यस्य मनसस्तत्प्राणबन्धनं हि यस्मात्सोम्य मनः प्राणोपलक्षितदेवताश्रयं मन इति तदुपलक्षितो जीव इति॥ २॥

एवं स्वपितिनामप्रसिद्धिद्वारेण यज्जीवस्य सत्यस्वरूपं जगतो मूलं तत्पुत्रस्य दर्शयित्वाऽऽहान्नादिकार्यकारणपरम्परयाऽपि जगतो मूलं सद्दिदर्शयिषुः। **अशनापिपासे**

इत्येवं तदप आचक्षतेऽशनायेति तत्रैतच्छुङ्गमुत्पतितꣳ सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥३॥

तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्यान्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ

को ले जाने वाले राजा या सेनापति को) पुरुषनाय कहते हैं; उसी प्रकार (पुरुष द्वारा खाये हुए अन्नादि को ले जाने के कारण) जल को अशनाया नाम से पुकारते हैं। हे सोम्य! उस जल से ही तुम इस शरीररूप अंकुर को उत्पन्न हुआ समझो, क्योंकि सर्वथा कारण के अभाव में यह शरीररूप कार्य हो नहीं सकता ॥३॥

इस शरीर का मूलकारण अन्न को छोड़कर और क्या हो सकता है अर्थात् अन्न ही इसका मूल कारण है। हे सोम्य! ऐसे ही अन्नरूप कार्य से इसके मूलरूप को खोजो और हे सोम्य!

अशितुमिच्छाऽशना यालोपेन। पातुमिच्छा पिपासा ते अशनापिपासे अशनापिपासयोः सतत्त्वं विजानीहीत्येतत्। **यत्र** यस्मिन्काल एतन्नामे **पुरुषो** भवति। किं तद्**शिशिषत्य**शितुमिच्छतीति। तदा तस्य पुरुषस्य किंनिमित्तं नाम भवतीत्याह। यत्तत्पुरुषेणा**शितम**न्नं कठिनं पीता **आपो नयन्ते** द्रवीकृत्य रसादिभावेन विपरिणमयन्ते, तदा भुक्तमन्नं जीर्यति। अथ च भवत्यस्य नामाशिशिषतीति गौणम्। जीर्णे ह्यन्नेऽशितुमिच्छति सर्वो जन्तुः।

तत्रापामशितनेतृत्वादशनाया इति नाम प्रसिद्धमित्येतस्मिन्नर्थे। **यथा गोनायो** गां नयतीति गोनाय इत्युच्यते गोपालः। तथाऽश्वान्नयतीत्य**श्वनायो**ऽश्वपाल इत्युच्यते। **पुरुषनायः** पुरुषान्नयतीति राजा सेनापतिर्वा। एवं **तत्तदाऽप आचक्ष**ते लौकिका **अशनायेति** विसर्जनीयलोपेन। तत्रैवं सत्यद्भी रसादिभावेन नीतेनाशितेनान्नेन निष्पादितमिदं शरीरं वटकणिकायामिव शुङ्गोऽङ्कुर उत्पतित उद्गतस्तमिमं शुङ्गं कार्यं शरीराख्यं वटादिशुङ्गव**दुत्पतितं** हे **सोम्य! विजानीहि**। किं तत्र विज्ञेयमित्युच्यते। शृण्विदं शुङ्गवत्कार्यत्वाच्छरीरं ना**मूलं** मूलरहितं **भविष्यती**त्युक्ते आह श्वेतकेतुः॥३॥

यद्येवं समूलमिदं शरीरं वटादिशुङ्गवत्तस्यास्य शरीरस्य क्व मूलं स्याद्भवेदित्येवं पृष्ट आह पिता। **तस्य क्व मूलं स्यादन्यत्रान्नाद**न्नं मूलमित्यभिप्रायः। कथम्। अशितं ह्यन्नमद्भिर्द्रवीकृतं जाठरेणाग्निना पच्यमानं रसभावेन परिणमते। रसाच्छोणितं शोणितान्मांसं मांसान्मेदो मेदसोऽस्थीन्यस्थिभ्यो मज्जा मज्जायाः शुक्रम्। तथा

तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ।।४।।

अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम, तेज एव तत्पीतं नयते, तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज आचष्ट उदन्येति,

जलरूप अंकुर के द्वारा जल के मूल कारण तेज को खोजो। ऐसे ही तेजरूप कार्य के द्वारा सद्रूप मूल का अन्वेषण करो, हे सोम्य! इस प्रकार यह सम्पूर्ण प्रजा सन्मूलक है और सत् ही इसका आश्रय है एवं अन्त में सत्य ही इसकी प्रतिष्ठा (लय स्थान) है।।४।।

(अब जलरूप अंकुर से सद्रूप मूल का ज्ञान कराने के लिये आरुणि कहता है) जिस समय यह पुरुष ''पिपासति'' (पीना चाहता है) ऐसे नाम वाला हो जाता है, तो उसके पीये हुए

योषिद्भुक्तं चान्नं रसादिक्रमेणैव परिणतं लोहितं भवति। ताभ्यां शुक्रशोणिताभ्यामन्नकार्याभ्यां संयुक्ताभ्यामन्नेनैवं प्रत्यहं भुज्यमानेनाऽऽपूर्यमाणाभ्यां कुड्यमिव मृत्पिण्डैः प्रत्यहमुपचीयमानोऽन्नमूलो देहशुङ्गः परिनिष्पन्न इत्यर्थः। यत्तु देहशुङ्गस्य मूलमन्नं निर्दिष्टं, तदपि देहवद्विनाशोत्पत्तिमत्त्वात्कस्माच्चिन्मूलादुत्पतितं शुङ्ग एवेति कृत्वाऽऽह। यथा देहशुङ्गोऽन्नमूलः **एवमेव खलु सोम्यान्नेन शुङ्गेन** कार्यभूते**नापो मूलम**न्नस्य शुङ्गस्या**न्विच्छ** प्रतिपद्यस्व। अपामपि विनाशोत्पत्तिमत्त्वाच्छुङ्गत्वमेवेति **अद्भिः सोम्य शुङ्गेन** कार्येण कारणं **तेजो मूलमन्विच्छ**। तेजसोऽपि विनाशोत्पत्तिमत्त्वाच्छुङ्गत्वमिति **तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमे**कमेवाद्वितीयं परमार्थसत्यम्। यस्मिन्सर्वमिदं वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयमनृतं रज्ज्वामिव सर्पादिविकल्पजातमध्यस्तमविद्यया तदस्य जगतो मूलमतः **सन्मूलाः** सत्कारणा, हे **सोम्येमाः** स्थावरजङ्गमलक्षणाः **सर्वाः प्रजा** न केवलं सन्मूला एवेदानीमपि स्थितिकाले **सदायतनाः** सदाश्रया एव। नहि मृदमनाश्रित्य घटादेः सत्त्वं स्थितिर्वाऽस्ति। अतो मृद्वत्सन्मूलत्वात्प्रजानां सदायतनं यासां ताः **सदायतनाः प्रजाः**। अन्ते च **सत्प्रतिष्ठाः** सदेव प्रतिष्ठा लयः समाप्तिरवसानं परिशेषो यासां ताः सत्प्रतिष्ठाः।।४।।

अथेदानीमप्शुङ्गद्वारेण सतो मूलस्यानुगमः कार्य इत्याह। **यत्र** यस्मिन्काले **एतन्नाम पिपासति** पातुमिच्छतीति **पुरुषो** भवति। अशिशिषतीतिवदिदमपि गौणमेव **नाम** भवति। द्रवीकृतस्याशितस्यान्नस्य नेत्र्य आपोऽन्नशुङ्गं देहं क्लेदयन्त्यः शिथिली-

तत्रैतदेव शुङ्गमुत्पतितꣳ सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥५॥

तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्राद्भ्योऽद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः।

जल को तेज ही ले जाता है। अतः जैसे गोनाय, अश्वनाय और पुरुषनाय कहे जाते हैं; वैसे ही उस तेज को 'उदन्या' (उदक को ले जाने के कारण) ऐसे नाम से पुकारते हैं। हे सोम्य! उस जलरूप मूल से यह शरीररूप अंकुर उत्पन्न हुआ है, ऐसा तू जान, क्योंकि यह शरीर मूल के बिना हो नहीं सकता ॥५॥

हे सोम्य! उस भौतिक शरीर का जल के सिवा और कहाँ मूल हो सकता है? हे प्रियदर्शन! जलरूप अंकुर से तू तेजरूप मूल का अन्वेषण कर और हे प्यारे! तेजोरूप अंकुर से सद्रूप मूल

कुर्युरब्बाहुल्याद्यदि तेजसा न शोष्यन्ते। नितरां च तेजसा शोष्यमाणास्वप्सु देहभावेन परिणममानासु पातुमिच्छा पुरुषस्य जायते तदा पुरुषः पिपासति नाम तदेतदाह। **तेज एव तत्त**दा **पीत**मबादि शोषयद्देहगतलोहितप्राणभावेन नयते परिणमयति। **तद्यथा गोनाय** इत्यादि समानमेवं **तत्तेज आचष्टे** लोक **उदन्येत्यु**दकं नयतीत्युदन्यम्। उदन्येतीति च्छान्दसं **तत्रा**पि पूर्ववत्। अपामप्येतदेव शरीराख्यं शुङ्गं नान्यदित्येवमादि समानमन्यत् ॥५॥

सामर्थ्यात्तेजसोऽप्येतदेव शरीराख्यं शुङ्गम्। अतोऽप्शुङ्गेन देहेनाऽऽपो मूलं गम्यते। **अद्भिः शुङ्गेन तेजो मूलं** गम्यते। **तेजसा शुङ्गेन सन्मूलं** गम्यते पूर्ववत्। एवं हि तेजोऽबन्नमयस्य देहशुङ्गस्य वाचारम्भणमात्रस्यान्नादिपरम्परया परमार्थसत्यं सन्मूलमभयमसंत्रासं निरायासं सन्मूलमन्विच्छेति पुत्रं गमयित्वाऽशिशिषति पिपासतीति नामप्रसिद्धिद्वारेण यदन्यदिहास्मिन्प्रकरणे तेजोऽबन्नानां पुरुषेणोपयुज्यमानानां कार्यकरणसंघातस्य देहशुङ्गस्य स्वजात्यसांकर्येणोपचयकरत्वं वक्तव्यं प्राप्तं, तदिहोक्तमेव द्रष्टव्यमिति पूर्वोक्तं व्यपदिशति। यथा नु खलु येन प्रकारेणेमास्तेजोबन्नाख्यास्**तिस्रो** देवताः पुरुषं प्राप्य **त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्य**न्नमशितं त्रेधा विधीयत इत्यादि। तत्रैवोक्तमन्नादीनामशितानां ये मध्यमा धातवस्ते साप्तधातुकं शरीरमुपचिन्वन्तीत्युक्तम्। मांसं भवति, लोहितं

सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः, सदायतनाः, सत्प्रतिष्ठा यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति, तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम् ॥६॥

का अनुसन्धान कर। हे सोम्य! यह सभी प्रजा सन्मूलक है, सद्रूप आयतन वाला है और सत् ही इसका विलय स्थान भी है। हे प्रियदर्शन! जैसे पृथिवी जल और तेजोरूप ये तीन देवता सच्चिदानन्द पुरुष को प्राप्त कर उनमें से प्रत्येक त्रिवृत्-त्रिवृत् हो जाती है, उसे मैंने पहले ही कह दिया। हे प्यारे! मरते समय इस पुरुष की वाणी मन में लीन हो जाती है, मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज परमात्मा में लीन हो जाता है।।६।।

भवति, मज्जा भवति, अस्थि भवतीति ये त्वणिष्ठा धातवो मनः प्राणं वाचं देहस्यान्तःकरणसंघातमुपचिन्वन्तीति चोक्तं तन्मनो भवति स प्राणो भवति सा वाग्भवतीति।

सोऽयं प्राणकरणसंघातो देहे विशीर्णे देहान्तरं जीवाधिष्ठितो येन क्रमेण पूर्वदेहात्प्रच्युतो गच्छति, तदाहास्य हे **सोम्य! पुरुषस्य प्रयतो** म्रियमाणस्य **वाङ्मनसि संपद्यते** मनस्युपसंह्रियते। अथ तदाऽऽहुर्ज्ञातयो, न वदतीति। मनःपूर्वको हि वाग्व्यापारः। "यद्वै मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति" इतिश्रुतेः। वाच्युपसंहृतायां मनसि मनो मननव्यापारेण केवलेन वर्तते। मनोऽपि यदोपसंह्रियते तदा **मनः प्राणे** संपन्नं भवति सुषुप्तकाले इव तदा पार्श्वस्था ज्ञातयो न विजानातीत्याहुः। **प्राणश्च** तदोर्ध्वोच्छ्वासी स्वात्मन्युपसंहृतबाह्यकरणः संवर्गविद्यायां दर्शनाद्धस्तपादादीन्विक्षिपन्मर्मस्थानानि निकृन्तन्निव वोत्सर्जन्क्रमेणोपसंहृतस्तेजसि संपद्यते। तदाऽऽहुर्ज्ञातयो न चलतीति मृतो नेति वा विचिकित्सन्तो देहमालभमाना उष्णं चोपलभमाना देह उष्णो जीवतीति यदा तदप्यौष्ण्यलिङ्गं तेज उपसंह्रियते। तदा तत्तेजः **परस्यां देवतायां** प्रशाम्यति।

तदेवं क्रमेणोपसंहृते स्वमूलं प्राप्ते च मनसि तत्स्थो जीवोऽपि सुषुप्तकालवन्निमित्तोपसंहारादुपसंह्रियमाणः सन्सत्याभिसंधिपूर्वकं चेदुपसंह्रियते सदेव संपद्यते न पुनर्देहान्तराय सुषुप्तादिवोत्तिष्ठति। यथा लोके सभये देशे वर्तमानः कथंचिदिवाभयं देशं प्राप्तस्तद्वत्। इतरस्त्वनात्मज्ञस्तस्मादेव मूलात्सुषुप्तादिवोत्थाय मृत्वा पुनर्देहजालमाविशति।।६।।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥७॥

इति षष्ठाध्यायस्याष्टमः खण्डः॥८॥



(अथ षष्ठाध्यायस्य नवमः खण्डः।)

यथा सोम्य मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणाꣳ

वह यह जो जगत् के मूल कारण में अणुता बतलायी गयी है, एतद्रूप ही सम्पूर्ण जगत् है। वह सत्य है, वही आत्मा है और हे श्वेतकेतो! वही तू है। इस पर श्वेतकेतु ने कहा- भगवन्! मुझे फिर से समझावें। इस पर आरुणि ने कहा- हे सोम्य! अच्छी बात, ऐसा कह कर इसके अभिप्राय को फिर से समझाता हूँ॥७॥

॥इत्यष्टमः खण्डः॥



मधुमक्खियों के दृष्टान्त से सौषुप्त पुरुष का ज्ञान

हे प्रियदर्शन! लोक में जैसे मधुमक्खियाँ तत्परता से मधु को तैयार करती हैं, उस समय वे

यस्मान्मूलादुत्थाय देहमाविशति जीवः, **स यः** सदाख्य **एष** उक्तो**ऽणिमा**ऽणुभावो जगतो मूल**मैतदात्म्य**मेतत्सदात्मा यस्य सर्वस्य तदेतदात्मा तस्य भाव ऐतदात्म्यम्। एतेन सदाख्येनाऽऽत्मनाऽऽत्मवत्**सर्वमिदं** जगत्। नान्योऽस्त्यस्याऽऽत्मा संसारी। "नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ" (बृ.८.३.११) इत्यादिश्रुत्यन्तरात्। येन चाऽऽत्मनाऽऽत्मवत्सर्वमिदं जग**त्त**देव सदाख्यं कारणं **सत्यं** परमार्थसत्। अतः **स** एवा**ऽऽत्मा** जगतः प्रत्यक्स्वरूपं सतत्त्वं याथात्म्यम्। आत्मशब्दस्य निरुपपदस्य प्रत्यगात्मनि गवादिशब्दवन्निरूढत्वात्। अत**स्तत्**स**त्त्वमसि** भवसि हे **श्वेतकेतो** इत्येवं प्रत्यायितः पुत्र आह **भूय एव मा भगवान्विज्ञापयतु** यद्भवदुक्तं तत्संदिग्धं ममाहन्यहनि सर्वाः प्रजाः सुषुप्ते सत्संपद्यन्ते इत्येतद्येन तत्संपद्य न विदुः सत्संपन्ना वयमिति। अतो दृष्टान्तेन मां प्रत्याययत्वित्यर्थः। एवमुक्तस्तथाऽस्तु सोम्येति होवाच पिता॥७॥

इति षष्ठाध्यायस्याष्टमः खण्डः॥८॥

यत्पृच्छस्यहन्यहनि सत्संपद्य न विदुः सत्संपन्नाः स्म इति तत्कस्मादित्यत्र शृणु दृष्टान्तम्। **यथा** लोके हे **सोम्य मधुकृतो मधु** कुर्वन्तीति मधुकृतो मधुकरमक्षिका मधु **निस्तिष्ठन्ति** मधु निष्पादयन्ति तत्पराः सन्तः। कथम्?

रसान्समवहारमेकताꣳ रसं गमयन्ति ।।१।।

ते यथा तत्र न विवेकं लभन्तेऽमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्मीत्येवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति संपद्य न विदुः सति संपद्यामहे इति ।।२।।

ते इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति

नाना दिशाओं में स्थित वृक्षों के रस लाकर उन रसों की मधुरूप से एकता प्राप्त करा देती हैं।। १।।

(मधुरूप में एकता को प्राप्त हुए) वे रस उस मधु में इस प्रकार का विवेक नहीं कर सकते कि मैं उस वृक्ष का रस हूँ। ठीक ऐसे ही ये सम्पूर्ण प्रजा सुषुप्ति काल में सत् को प्राप्त कर भी यह नहीं जानतीं, कि हम सत् को प्राप्त हो रही हैं।। २।।

वे इस लोक में व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, सूकर, कीट, पतंग, डाँसे या मच्छर जो भी सुषुप्ति से पूर्व विद्यमान होते हैं, पुनः वे ही हो जाते हैं। अर्थात् सहस्र कोटि युगों का अन्तर पड़ जाने

नानात्ययानां नानागतीनां नानादिक्कानां वृक्षाणां **रसान्समवहारं** समाहृत्य समाहृत्य**ैकतामे**कभावं मधुत्वेन रसान्**गमयन्ति** मधुत्वमापादयन्ति।। १।।

ते रसा **यथा** मधुत्वेनैकतां गतास्**तत्र** मधुनि **विवेकं न** लभन्ते। कथम्, **अमुष्याहमा**म्रस्य पनसस्य वा वृक्षस्य **रसोऽस्मीति**। यथा हि लोके बहूनां चेतनावतां समेतानां प्राणिनां विवेकलाभो भवत्यमुष्याहं पुत्रोऽमुष्याहं नप्ताऽस्मीति। ते च लब्धविवेकाः सन्तो न संकीर्यन्ते, न तथेहानेकप्रकारवृक्षरसानामपि मधुराम्लतिक्तकटुकादीनां मधुत्वेनैकतां गतानां मधुरादिभावेन विवेको गृह्यते इत्यभिप्रायः। यथाऽयं दृष्टान्त **इत्येवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजा** अहन्यहनि सति **संपद्य** सुषुप्तकाले मरणप्रलययोश्च **न विदुर्न** विजानीयुः **सति संपद्यामहे इति** संपन्ना इति वा।। २।।

यस्माच्चैवमात्मनः सद्रूपतामज्ञात्वैव सत्संपद्यन्ते। अतस्**त इह** लोके यत्कर्मनिमित्तां यां यां जातिं प्रतिपन्ना आसन्व्याघ्रादीनां व्याघ्रोऽहं सिंहोऽहमित्येवं, ते तत्कर्मज्ञानवासनाङ्किताः सन्तः सत्प्रविष्टा अपि तद्भावेनैव पुराभवन्ति पुनः सत आगत्य **व्याघ्रो वा सिंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दंशो वा मशको वा यद्य**त्पूर्वमिह लोके **भवन्ति** बभूवुरित्यर्थः। तदेव पुनरागत्य

लोके स्वकीये गृहे सुप्त उत्थाय ग्रामान्तरं गतो जानाति स्वगृहादागतोऽस्मीत्येवं च जन्तूनां कस्माद्विज्ञानं न भवतीति.

तदा भवन्ति ॥३॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

(अथ षष्ठाध्यायस्य दशमः खण्डः।)

इमाः सोम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्यन्दन्ते पश्चात्प्रतीच्यस्ताः

पर भी अज्ञानी जीवों को पूर्व भावित वासना उद्बुद्ध होकर अभिनिवेश करा देती है॥३॥

वह यह जो अणुरूप पदार्थ है, एतद्रूप ही यह सब कुछ है, वही सत्य है, वही आत्मा है, किंबहुना हे श्वेतकेतो! तू भी वही है। आरुणि के उपदेश को सुनकर श्वेतकेतु ने कहा- भगवान्! मुझे पुनः समझावें। तत्पश्चात् आरुणि ने कहा, हे सोम्य! अच्छी बात॥४॥

॥इति नवमः खण्डः॥

नदी के दृष्टान्त से ब्रह्म आत्मा की एकता का वर्णन

हे प्रियदर्शन! ये पूर्व की ओर बहने वाली (गङ्गा-यमुनादि) नदियाँ पूर्वदिशा की ही ओर बहती हैं (सिन्धु आदि) पश्चिमवाहिनी होकर पश्चिमदिशा की ओर बहती हैं। वे जल निधि समुद्र

भवन्ति युगसहस्रकोट्यन्तरिताऽपि संसारिणो जन्तोर्या पुरा भाविता वासना, सा न नश्यतीत्यर्थः। "यथाप्रज्ञं हि संभवः" इति श्रुत्यन्तरात्॥३॥

ताः प्रजा यस्मिन्प्रविश्य पुनराविर्भवन्ति। ये त्वितोऽन्ये सत्सत्यात्माभिसंधा यमणुभावं सदात्मानं प्रविश्य नाऽऽवर्तन्ते; **स य एषोऽणिमेत्यादि** व्याख्यातम्। यथा लोके स्वकीये गृहे सुप्त उत्थाय ग्रामान्तरं गतो जानाति स्वगृहादागतोऽस्मीत्येवं सत आगतोऽस्मीति च जन्तूनां कस्माद्विज्ञानं न भवतीति **भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्वि**त्युक्तस्तथा **सोम्येति होवाच** पिता॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य नवमः खण्डः॥९॥

शृणु तत्र दृष्टान्तं यथा **सोम्येमा नद्यो** गङ्गाद्याः **पुरस्तात्**पूर्वां दिशं प्रति **प्राच्यः** प्रागञ्चनाः **स्यन्दन्ते** स्रवन्ति। **पश्चात्**प्रतीचीं दिशं प्रति सिन्ध्वाद्याः प्रतीचीमञ्चन्ति गच्छन्तीति **प्रतीच्यस्ताः** समुद्रादम्भोनिधेर्जलधरैराक्षिप्ताः पुनर्वृष्टिरूपेण पतिता गङ्गादिनदीरूपिण्यः पुनः **समुद्र**मम्भोनिधि**मेवापियन्ति स समुद्र एव भवति**

समुद्रात्समुद्रमेवापियन्ति स समुद्र एव भवति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीयमहमस्मीति ।।१।।

एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामहे इति त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदा भवन्ति ।।२।।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वꣳ तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ।।३।।

इति षष्ठाध्ययस्य दशमः खण्डः ।।१०।।

से (मेघों द्वारा आकृष्ट होकर वृष्टि रूप से बरस कर गंगादिरूप में बहती हुई) पुनः समुद्र में मिल जाती हैं और वह समुद्र ही हो जाती हैं। जैसे समुद्र के साथ एकता को प्राप्त हुई वे सब यह नहीं जानती, कि यह मैं गङ्गा हूँ या यह मैं यमुना हूँ; यही मैं हूँ।।१।।

हे सोम्य! ठीक इसी प्रकार ये सम्पूर्ण प्रजायें उस सत् से आने पर यह नहीं जानतीं कि हम सत् से निकल कर आयी हैं, (सुषुप्ति से पूर्व जो प्राणी जिस शरीर में थे सुषुप्ति से उठने पर भी पुनः) इस लोक में वे व्याघ्र, सिंह, कीट, पतंग, डाँसे या मच्छर जो भी होते हैं, वे ही फिर हो जाते हैं।।२।।

वह जो यह अत्यन्त सूक्ष्मरूप है एतद्रूप ही सब है, वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतु! वही तू है। (इस पर श्वेतकेतु ने कहा–) भगवन्! मुझे फिर से समझाइये। (आरुणि ने कहा–) हे सोम्य! अच्छी बात फिर से समझाता हूँ।।३।।

।।इति दशमः खण्डः।।

ता नद्यो **यथा तत्र** समुद्रे समुद्रात्मनैकतां गता **न** विदुर्न जानन्तीयं गङ्गा**ऽहमस्मीयं** यमुना**ऽहमस्मीति**।।१।।

एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजा यस्मात्सति संपद्य न विदुस्तस्मात्सत **आगम्य न विदुः सत आगच्छामहे** आगता **इति** वा। **त इह व्याघ्र** इत्यादि समानमन्यत्। दृष्टं लोके जले वीचीतरङ्गफेनबुद्बुदादय उत्थिताः पुनस्तद्भावं गता विनष्टा इति। जीवास्तु तत्कारणभावं प्रत्यहं गच्छन्तोऽपि सुषुप्ते मरणप्रलययोश्च न विनश्यन्तीत्येतत्। **भूय एव मा भगवान्विज्ञापयतु** दृष्टान्तेन। **तथा सोम्येति होवाच** पिता।।२।।३।।

इति षष्ठाध्यायस्य दशमः खण्डः।।१०।।

(अथ षष्ठाध्यायस्यैकादशः खण्डः।)

अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेत्स एष जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति ।।१।।

अस्य यदेकाꣳ शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति द्वितीयां

वृक्ष के दृष्टान्त से सत्य आत्मा का उपदेश

हे सोम्य! सामने स्थित अनेक शाखादि से युक्त इस महान् वृक्ष के मूल में यदि कोई आघात करे, तो वह (एक ही आघात से सूख नहीं जाता किन्तु) जीवित रहते हुए ही केवल रसस्राव करने लग जाता है। यदि मध्य में कुठाराघात किया जाय तो भी यह वृक्ष जीवित रहते हुए केवल रसस्राव ही करेगा और यदि कोई उसके अग्रभाग में आघात करे तो भी यह जीवित रहते हुए ही रसस्राव करता रहेगा, क्योंकि यह वृक्ष जीवात्मा से ओत-प्रोत है और केवल जलपान करता हुआ (तथा अपनी जड़ों से पृथिवी के रसों को ग्रहण करता हुआ) सानन्द स्थित रहता है।। १ ।।

यदि इस वृक्ष की रोगग्रस्त किसी एक शाखा को जीव छोड़ देता है, तो वह शाखा सूख जाती है। यदि दूसरी को छोड़ देता है, तो वह सूख जाती है और यदि तीसरी को छोड़ देता है

शृणु दृष्टान्त**मस्य,** हे **सोम्य! महतो**ऽनेकशाखादियुक्तस्य **वृक्षस्या**स्येत्यग्रतः स्थितं वृक्षं दर्शयन्नाह। यदि यः कश्चिदस्य **मूलेऽभ्याहन्यात्**परश्वादिना **सकृद्घातमात्रेण न शुष्यतीति जीवन्नेव भवति तदा तस्य रसः स्रवेत्। तथा यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेत्तथा योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेत्स एष** वृक्ष इदानीं **जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रभूतो**ऽनुव्याप्तः **पेपीयमानो**ऽत्यर्थं पिबन्नुदकं भौमांश्च रसान्मूलैर्गृह्णन्**मोदमानो** हर्षं प्राप्नुवं**स्तिष्ठति**।। १ ।।

तस्या**स्य यदेकां शाखां** रोगग्रस्तामाहतां वा **जीवो जहात्यु**पसंहरति शाखायां विप्रसृतमात्मांशम्। **अथ सा शुष्यति**। वाङ्मनःप्राणकरणग्रामानुप्रविष्टो हि जीव इति तदुपसंहार उपसंह्रियते। जीवेन च प्राणयुक्तेनाशितं पीतं च रसतां गतं

जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति ।।२।।

एवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ

तो वह भी सूख जाती है। ऐसे ही यदि सम्पूर्ण वृक्ष को जीव छोड़ देता है, तो सम्पूर्ण वृक्ष सूख जाता है (इन युक्तियों से वृक्षादि में सजीवता सिद्ध होती है)।।२।।

हे सोम्य! ठीक इसी प्रकार तू जान ले कि जीव से रहित हुआ यह शरीर ही मरता है, जीव नहीं मरता है। ऐसा आरुणि ने कहा- यह जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेतनतत्त्व है एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है, हे श्वेतकेतु! वही तू है। (इस पर श्वेतकेतु ने कहा-) हे

जीवच्छरीरं वृक्षं वर्धयद्रसरूपेण जीवस्य सद्भावे लिङ्गं भवति। अशितपीताभ्यां हि देहे जीवस्तिष्ठति, ते चाशितपीते जीवकर्मानुसारिणी इति। तस्यैकाङ्गवैकल्यनिमित्तं कर्म यदोपस्थितं भवति तदा जीव एकां शाखां **जहाति** शाखाया आत्मानमुपसंहरति। **अथ** तदा **सा** शाखा **शुष्यति**। जीवस्थितिनिमित्तो रसो जीवकर्माक्षिप्तो जीवोपसंहारे न तिष्ठति। रसापगमे च शाखा शोषमुपैति। तथा **सर्वं** वृक्षमेव यदाऽयं **जहाति** तदा सर्वोऽपि वृक्षः **शुष्यति**। वृक्षस्य रसस्रवणशोषणादिलिङ्गाज्जीववत्त्वं दृष्टान्तश्रुतेश्च चेतनावन्तः स्थावरा इति बौद्धकाणादमतमचेतना स्थावरा इत्येतदसारमिति दर्शितं भवति।।२।।

यथाऽस्मिन्वृक्षदृष्टान्ते दर्शितं जीवेन युक्तो वृक्षोऽशुष्को रसपानादियुक्तो जीवतीत्युच्यते तदपेतश्च म्रियते इत्युच्यते। **एवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच। जीवापेतं** जीववियुक्तं **वाव किलेदं** शरीरं **म्रियते न जीवो म्रियते इति**। कार्यशेषे च सुप्तोत्थितस्य ममेदं कार्यशेषमपरिसमाप्तमिति स्मृत्वा समापनदर्शनात्। जातमात्राणां च जन्तूनां स्तन्याभिलाषभयादिदर्शनाच्चातीतजन्मान्तरानुभूतस्तन(न्य)पानदुःखानुभवस्मृतिर्गम्यते। अग्निहोत्रादीनां च वैदिकानां कर्मणामर्थवत्त्वान्न जीवो म्रियते इति। **स य एषोऽणिमे**त्यादि समानम्। कथं पुनरिदमत्यन्तस्थूलं पृथिव्यादि

कथं पुनरिदमत्यन्तस्थूलं पृथिव्यादि नामरूपवज्जगदत्यन्तसूक्ष्मात्सद्रूपाद् नामरूपरहितात्सतो जायत इत्येतद्दृष्टान्तेन भूय एव।

सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ।।३।।

इति षष्ठाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।। ११ ।।

(अथ षष्ठाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।)

न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इति भिन्द्धीति भिन्नं भगव इति किमत्र पश्यसीत्यण्व्यःइवेमा धाना भगव इत्यासामङ्गैकां भिन्द्धीति भिन्ना भगव इति किमत्र पश्यसीति न किंचन भगव इति ।।१।।

भगवन्! (किसी अन्य दृष्टान्त द्वारा) मुझे फिर भी इस तत्त्व को समझाइए। तब आरुणि ने कहा- हे सोम्य! अच्छी बात।। ३।।

।। इत्येकादशः खण्डः ।।

वटवृक्ष के दृष्टान्त से सत्यात्मा का उपदेश

इस महान् वटवृक्ष से बरगद का एक फल ले आओ, (इसे सुनकर श्वेतकेतु ने ऐसा ही किया और बोला-) भगवन्! मैं यह फल ले आया हूँ (पिता ने कहा)— इसे फोड़ो। (श्वेतकेतु बोला-) हे भगवन्! फोड़ दिया है। आरुणि ने कहा- इसमें क्या देखते हो। श्वेतकेतु ने कहा- भगवन्! इसमें ये अणुपरिमाण के समान दाने हैं। आरुणि ने कहा- अच्छा बेटा! इन दानों में से एक को फोड़ो। तब श्वेतकेतु ने उसे फोड़ दिया (और उसने कहा-) इसे फोड़ दिया, भगवन्! आरुणि ने कहा- इसमें क्या देखते हो? श्वेतकेतु बोला- कुछ नहीं भगवन्!।। १।।

नामरूपवज्जगदत्यन्तसूक्ष्मात्सद्रूपान्नामरूपरहितात्सतो जायत इत्येतद्दृष्टान्तेन **भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति। तथा सोम्येति होवाच** पिता।। ३।।

इति षष्ठाध्यायस्यैकादशः खण्डः।। ११।।

यद्येतत्प्रत्यक्षीकर्तुमिच्छस्यतोऽस्मान्महतो न्यग्रोधात्फलमेकमाहरेत्युक्तस्तथा चकार स, **इदं भगव** उपहृतं फलमिति दर्शितवन्तं प्रत्याह फलं **भिन्द्धीति**। भिन्नमित्याहेतरः। तमाह पिता **किमत्र पश्यसी**त्युक्ते आह**ण्व्यो**ऽणुतरा **इवेमा धाना** बीजानि पश्यामि **भगव इति। आसां** धानाना**मेकां** धाना**मङ्ग** हे वत्स **भिन्द्धी**त्युक्त आह **भिन्ना भगव इति**। यदि भिन्ना धाना तस्यां भिन्नायां **किं पश्यसी**त्युक्त आह **न किंचन** पश्यामि **भगव इति**।। १।।

तꣳ होवाच यं वै सोम्यैतमणिमानं न निभालयसे एतस्य वै सोम्यैषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोधस्तिष्ठति श्रद्धत्स्व सोम्येति ॥२॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

श्वेतकेतु से पिता ने कहा- हे प्रियदर्शन! इस वटवृक्ष की जिस सूक्ष्मता को तुम नहीं देखते हो, हे सोम्य! उस अणिमा का ही कार्यभूत इतना बड़ा यह वटवृक्ष खड़ा है। हे प्यारे! (हमारे इस कथन में) तुम श्रद्धा करो॥ २॥

वह जो यह अत्यन्त सूक्ष्मतत्त्व है एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतु! वही तू है। (इस पर श्वेतकेतु ने कहा-) भगवन्! दृष्टान्त द्वारा फिर से मुझे इस तत्त्व को समझाइए, तब आरुणि ने कहा- हे सोम्य! अच्छी बात है॥ ३॥

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

तं पुत्रं होवाच वटधानायां भिन्नायां यं वटबीजाणिमानं हे सोम्यैतं न निभालयसे न पश्यसि। तथाऽप्येतस्य **वै** किल **सोम्यैष महान्यग्रोधो** बीजस्याणिम्नः सूक्ष्मस्यादृश्यमानस्य कार्यभूतः स्थूलः शाखास्कन्धफलपलाशवां**स्तिष्ठत्यु**त्पन्नः सन्नुत्तिष्ठतीति वोच्छब्दोऽध्याहार्यो, अतः **श्रद्धत्स्व सोम्य** सत एवाणिम्नः स्थूलं नामरूपादिमत्कार्यं जगदुत्पन्नमिति। यद्यपि न्यायागमाभ्यां निर्धारितोऽर्थस्तथैवेत्यवगम्यते तथाऽप्यत्यन्तसूक्ष्मेष्वर्थेषु बाह्यविषयासक्तमनसः स्वभावप्रवृत्तस्यासत्यां गुरुतरायां श्रद्धायां दुरवगमत्वं स्यादित्याह श्रद्धत्स्वेति। श्रद्धायां तु सत्यां मनसः समाधानं बुभुत्सितेऽर्थे भवेत्ततश्च तदर्थावगतिः। "अन्यत्रमना अभूवम्" (बृ.१.५.३) इत्यादिश्रुतेः॥ २॥

स य इत्याद्युक्तार्थम्। यदि तत्सज्जगतो मूलं कस्मान्नोपलभ्यत इत्येतद्दृष्टान्तेन **मा भगवान्भूय एव विज्ञापयत्विति। तथा सोम्येति होवाच** पिता॥ ३॥

इति षष्ठाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

(अथ षष्ठाध्यायस्यः त्रयोदशः खण्डः)

लवणमेतदुदकेऽवधायाथ मा प्रातरुपसीदथा इति स ह तथा चकार तꣳ होवाच यद्दोषा लवणमुदकेऽवाधा अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृश्य न विवेद ॥१॥

यथा विलीनमेवाङ्गास्यान्तादाचामेति, कथमिति, लवणमिति मध्यादाचामेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति, कथमिति

लवण दृष्टान्त से सत्य आत्मा आ उपदेश

इस नमक की डली को जल में डालकर कल प्रातः काल मेरे पास ले आना। इस प्रकार पिता के कहने पर सत्य के जिज्ञासु श्वेतकेतु ने वैसा ही किया (दूसरे दिन सबेरे ही) आरुणि ने श्वेतकेतु से कहा– हे वत्स! रात्रि में जो तुमने लवण पानी में डाला था, उसे ले आओ! इस प्रकार पिता के कहने से उसनेजल में नमक को टटोला, पर ढूँढ़ने पर भी जल में विद्यमान भी लवण को वह प्राप्त न कर सका ॥१॥

जैसे वह नमक उसी जल में विलीन हो गया है, (इसलिये तू उसे जान नहीं सकता) फिर भी तू इस जल को ऊपर से आचमन कर (उसके वैसा करने पर पिता ने पूछा) कैसा है! (श्वेतकेतुने कहा) नमकीन है। बीच में से आचमन कर, अब कैसा मालूम पड़ता है? नमकीन

विद्यमानमपि वस्तु नोपलभ्यते, प्रकारान्तरेण तूपलभ्यत इति शृण्वत्र दृष्टान्तम्। यदि चेममर्थं प्रत्यक्षीकर्तुमिच्छसि, पिण्डरूपं **लवणमेतद्**घटादा**वुदकेऽवधाय** प्रक्षिप्या**थ मा** मां श्वः **प्रातरुपसीदथा** उपगच्छेथा **इति**। स ह पित्रोक्तमर्थं प्रत्यक्षीकर्तुमिच्छंस्**तथा चकार**। **तं होवाच** परेद्युः प्रात**र्यल्लवणं दोषा** रात्रा**वुदकेऽवाधा** निक्षिप्तवानस्य**ङ्ग** हे वत्स! **तदाहरेत्यु**क्तस्तल्लवणमाजिहीर्षुर्ह किला**वमृश्यो**दके **न विवेद** न विज्ञातवान्यथा तल्लवणं विद्यमानमेव सदप्सु विलीनं संश्लिष्टमभूत्॥ १॥

यथा विलीनं लवणं न वेत्थ, तथाऽपि तच्चक्षुषा स्पर्शनेन च पिण्डरूपं लवणमगृह्यमाणं विद्यते एवाप्सूपलभ्यते चोपायान्तरेणेत्येतत्पुत्रं प्रत्याययितुमिच्छन्नाह **अङ्ग! अस्यो**दकस्या**न्तादु**परिष्टाद् गृहीत्वा**ऽऽचामे**त्युक्त्वा पुत्रं तथाकृतवन्तमुवाच कथमिति? इतर आह **लवणं** स्वादत **इति**। तथा **मध्यादु**दकस्य गृहीत्वा**ऽऽचामेति कथमिति?**

लवणमित्यभिप्रास्यैतदथ मोपसीदथा इति, तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्संवर्तते तꣳ होवाचात्र वाव किल सत्सोम्य न निभालयसेऽत्रैव किलेति ॥२॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति

है। नीचे से आचमन करो। अब कैसा है? नमकीन है। आरुणि ने कहा- यदि ऐसा है तो इस जल को फेंक कर (आचमन करने के बाद) मेरे पास आओ। उसने वैसा ही किया और कहा उस जल में लवणखण्ड सदा ही विद्यमान था, (क्योंकि रात्रि में मैंने उसमें लवण डाला था) तब श्वेतकेतु से आरुणि ने कहा। हे प्रियदर्शन! ऐसा ही वह सत्य भी निश्चय यहाँ पर ही विद्यमान है। यद्यपि तू उसे नहीं देखता है, फिर भी वह यहाँ विद्यामन है ही (जिसे तुमने रसनेन्द्रिय से उपलब्ध किया। वैसे ही सर्वत्र विद्यमान सत्य की उपलब्धि उपायान्तर से हो सकती है)।।२।।

वह जो यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व है, एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतु! वही तू है। तब श्वेतकेतु ने कहा- हे भगवन्! मुझे फिर से अन्य दृष्टान्त द्वारा

लवणमिति। तथाऽन्तादधोदेशाद्गृहीत्वाऽऽचामेति **कथमिति?** लवणमिति यद्येवम**भिप्रास्य** परित्यज्यैतदुदकमाचम्याथ **मोपसीदथा इति तद्ध तथा चकार** लवणं परित्यज्य पितृसमीपमाजगामेत्यर्थः इदं वचनं ब्रुवंस्तल्लवणं तस्मिन्नेवोदके यन्मया रात्रौ क्षिप्तं शश्वन्नित्यं **संवर्तते** विद्यमानमेव तत्सम्यग्वर्तते। इत्येवमुक्तवन्तं **तं होवाच** पिता। यथेदं लवणं दर्शनस्पर्शनाभ्यां पूर्वं गृहीतं पुनरुदके विलीनं ताभ्यामगृह्यमाणमपि विद्यत एवोपायान्तरेण जिह्वोपलभ्यमानत्वात्। एवमेवात्रैवास्मिन्नेव तेजोऽबन्नादिकार्ये शुङ्गे देहे। **वाव किले**त्याचार्योपदेशस्मरणप्रदर्शनार्थौ सत्तेजोऽबन्नादिशुङ्गकारणं वटबीजाणिमवद्विद्यमानमेवेन्द्रियैर्नोपलभसे **न निभालयसे**। यथाऽ**त्रैवो**दके दर्शनस्पर्शना-भ्यामनुपलभ्यमानं लवणं विद्यमानमेव जिह्वयोपलब्धवानसि। एवमेवात्रैव **किल** विद्यमानं सज्जगन्मूलमुपायान्तरेण लवणाणिमवदुपलप्स्यस **इति** वाक्यशेषः।। २।।

स य इत्यादि समानम्। यद्येवं लवणाणिमवदिन्द्रियैरनुपलभ्यमानमपि जगन्मूलं सदुपायान्तरेणोपलब्धुं शक्यते, यदुपलम्भात्कृतार्थः स्यामनुपलम्भाच्चाकृतार्थः स्यामहं

तथा सोम्येति होवाच ।।३।।

इति षष्ठाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।।१३।।

(अथ षष्ठाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।)

यथा सोम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽतिजने विसृजेत्स यथा तत्र प्राङ्वोदङ्वाऽधराङ्वा प्रत्यङ्वा प्रध्मायीताभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो विसृष्टः।। १।।

उस तत्त्व को समझावें! अच्छा सोम्य! ऐसा आरुणि ने कहा।। ३।।

।। इति त्रयोदशः खण्डः ।।

विवेकी पुरुष के दृष्टान्त से सत्य का उपदेश

हे सोम्य! जैसे लोक में कोई चोर किसी पुरुष की आँखों में पट्टी बाँधकर उसे गान्धार देश से लाकर अत्यन्त जनशून्य स्थान में छोड़ देवे तो जैसे उस जगह दिग्भ्रान्त हुआ वह पुरुष पूर्व, उत्तर, दक्षिण या पश्चिम की ओर मुख करके चिल्लावे कि मुझे गान्धार देश से आँखें बाँधकर चोरों ने लाया है और आँखें बँधे हुए ही छोड़ दिया है।। १।।

तस्यैवोपलब्धौ क उपाय **इत्येत**द्भूय **एव मा भगवान्विज्ञापयतु** दृष्टान्तेन। **तथा सोम्येति होवाच**।। ३।।

इति षष्ठाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः।। १३।।

यथा लोके हे **सोम्य! पुरुषं** यं कंचिद्**गन्धारेभ्यो** जनपदेभ्यो**ऽभिनद्धाक्षं** बद्धचक्षुष**मानीय** द्रव्यहर्ता तस्करस्तमभिनद्धाक्षमेव बद्धहस्तमरण्ये **ततोऽप्यतिजने**-ऽतिगतजनेऽत्यन्तविगतजने देशे **विसृजेत्स तत्र** दिग्भ्रमोपेतो **यथा प्राङ्वा** प्रागञ्चनः प्राङ्मुखो वेत्यर्थः। **तथोदङ्वाऽधराङ्वा प्रत्यङ्वा प्रध्मायीत** शब्दं कुर्याद्विक्रोशेत्। **अभिनद्धाक्षोऽ**हं गन्धारेभ्यस्तस्करेणा**ऽऽनीतोऽभिनद्धाक्ष** एव **विसृष्ट** इति।। १।।

तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं गन्धारा एतां दिशं व्रजेति स ग्रामाद्ग्रामं पृच्छन्पण्डितो मेधावी गन्धारानेवोपसंपद्येतैवमेवेहाऽऽचार्यवान्पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये इति॥२॥

उस पुरुष के बन्धन को खोलकर जिस प्रकार कोई कृपालु पुरुष कहे कि इस दिशा में गान्धार देश है। अतः इस दिशा की ओर तू जा, तो वह मेधावी विवेकशील एक गाँव से दूसरे गाँव को पूछता हुआ गान्धार देश में ही पहुँच जाता है। वैसे ही इस लोक में आचार्यवान् पुरुष ही सत्य को जानता है। उस तत्त्ववेत्ता के लिये विदेह कैवल्य प्राप्त करने में उतनी देर है जब तक कि वह (प्रारब्ध कर्म को भोगकर वर्तमान देह बन्धन से) मुक्त नहीं हो जाता। उसके बाद तो वह सत्य ब्रह्म को प्राप्त कर लेता ही है॥२॥

एवं विक्रोशतस्तस्य **यथाभिनहनं** यथाबन्धनं **प्रमुच्य** मुक्त्वा कारुणिकः कश्चि**देतां दिशमु**त्तरतो **गन्धारा एतां दिशं व्रजेति** प्रब्रूयात्स एवं कारुणिकेन बन्धनान्मोक्षितो **ग्रामाद्**ग्रामान्तरं **पृच्छन्पण्डित** उपदेशवान्**मेधावी** परोपदिष्टग्रामप्रवेशमार्गावधारणसमर्थः सन्**गन्धारानेवोपसंपद्येत**, नेतरो मूढमतिर्देशान्तरदर्शनतृड्वा। यथाऽयं दृष्टान्तो वर्णितः स्वविषयेभ्यो गन्धारेभ्यः पुरुषस्तस्करैरभिनद्धाक्षोऽविवेको दिङ्मूढोऽशनायापिपासादिमान्व्याघ्रतस्कराद्यनेकभयानर्थव्रातयुतमरण्यं प्रवेशितो दुःखार्तो विक्रोशन्बन्धनेभ्यो मुमुक्षुस्तिष्ठति, स कथंचिदेव कारुणिकेन केनचिन्मोक्षितः स्वदेशान्गन्धारानेवाऽऽपन्नो निर्वृतः सुख्यभूत्। **एवमेव** सतो जगदात्मस्वरूपात्तेजोऽबन्नादिमयं देहारण्यं वातपित्तकफरुधिरमेदोमांसास्थिमज्जाशुक्रकृमिमूत्रपुरीषवच्छीतोष्णाद्यनेकद्वंद्वसुखदुःखवच्चेदं मोहपटाभिनद्धाक्षो भार्यापुत्रपशुबन्ध्वादिदृष्टानेकविषयतृष्णापाशितः पुण्यापुण्यादितस्करैः प्रवेशितोऽहममुष्य पुत्रो ममैते बान्धवाः सुख्यहं दुःखी मूढः पण्डितो धार्मिको बन्धुमाञ्जातो मृतो जीर्णः पापी पुत्रो मे मृतो धनं मे नष्टं हा हतोऽस्मि कथं जीविष्यामि का मे गतिः किं मे त्राणमित्येवमनेकशतसहस्रानर्थजालवान्विक्रोशन्कथंचिदेव पुण्यातिशयात्परमकारुणिकं कंचित्सद्ब्रह्मात्मविदं विमुक्तबन्धनं ब्रह्मिष्ठं यदाऽऽसादयति तेन च ब्रह्मविदा कारुण्याद्दर्शितसंसारविषयदोषदर्शनमार्गो विरक्तः संसारविषयेभ्यो नासि त्वं संसार्यमुष्य पुत्रत्वादिधर्मवान्किं

तर्हि सद्यत्तत्त्वमसीत्यविद्यामोहपटाभिनहनान्मोक्षितो गन्धारपुरुषवच्च स्वं सदात्मानमुपसंपद्य सुखी निर्वृतः स्यादित्येतमेवार्थमा**हाऽऽचार्यवान्पुरुषो** वेदेति। तस्यास्यैवमाचार्यवतो मुक्ताविद्याभिनहनस्य **तावदेव** तावानेव कालश्चिरं क्षेपः सदात्मस्वरूपसंपत्तेरिति वाक्यशेषः। कियान्कालश्चिरमित्युच्यते **यावन्न विमोक्ष्ये** न विमोक्ष्यत इत्येतत्पुरुषव्यत्ययेन। सामर्थ्यात्। येन कर्मणा शरीरमारब्धं तस्योपभोगेन क्षयाद्देहपातो यावदित्यर्थः। **अथ** तदैव **सत्संपत्स्ये** संपत्स्यत **इति** पूर्ववत्। न हि देहमोक्षस्य तत्संपत्तेश्च कालभेदोऽस्ति येनाथशब्द आनन्तर्यार्थः स्यात्।

ननु यथा सद्विज्ञानानन्तरमेव देहपातः सत्संपत्तिश्च न भवति कर्मशेषवशात्तथाऽप्रवृत्त-फलानि प्राग्ज्ञानोत्पत्तेर्जन्मान्तरसंचितान्यपि कर्माणि सन्तीति तत्फलोपभोगार्थं पतितेऽस्मिञ्शरीरे-शरीरान्तरमारब्धव्यम्। उत्पन्ने च ज्ञाने यावज्जीवं विहितानि प्रतिषिद्धानि वा कर्माणि करोत्येवेति तत्फलोपभोगार्थं चावश्यं शरीरान्तरमारब्धव्यं ततश्च कर्माणि ततः शरीरान्तरमिति ज्ञानानर्थक्यं, कर्मणां फलवत्त्वात्। अथ ज्ञानवतः क्षीयन्ते कर्माणि तदा ज्ञानप्राप्तिसमकालमेव ज्ञानस्य सत्संपत्तिहेतुत्वान्मोक्षः स्यादिति शरीरपातः स्यात्। तथाचाऽऽचार्याभाव इत्याचार्य-वान्पुरुषो वेदेत्यनुपपत्तिर्ज्ञानान्मोक्षाभावप्रसङ्गश्च। देशान्तरप्राप्त्युपायज्ञानवदनैकान्तिकफलत्वं वा ज्ञानस्य। न। कर्मणां प्रवृत्ताप्रवृत्तफलवत्त्वविशेषोपपत्तेः। यदुक्तमप्रवृत्तफलानां कर्मणां ध्रुवफलवत्त्वाद्ब्रह्मविदः शरीरे पतिते शरीरान्तरमारब्धव्यमप्रवृत्तकर्मफलोपभोगार्थमित्येतदसत्। विदुषः "तस्य तावदेव चिरमि"ति श्रुतेः प्रामाण्यात्।।

ननु "पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति" (बृ.३.२.१३) इत्यादिश्रुतेरपि प्रामाण्यमेव। सत्यमेवम्। तथाऽपि प्रवृत्तफलानामप्रवृत्तफलानां च कर्मणां विशेषोऽस्ति। कथम् ? यानि प्रवृत्तफलानि कर्माणि, यैर्विद्वच्छरीरमारब्धं, तेषामुपभोगेनैव क्षयः। यथाऽऽरब्धवेगस्य लक्ष्यमुक्तेष्वादेर्वेगक्षयादेव स्थितिर्न तु लक्ष्यवेधसमकालमेव प्रयोजनं नास्तीति तद्वत्। अन्यानि त्वप्रवृत्तफलानीह प्राग्ज्ञानोत्पत्तेरूर्ध्वं च कृतानि वा क्रियमाणानि वाऽतीतजन्मान्तर-कृतानि वाऽप्रवृत्तफलानि ज्ञानेन दह्यन्ते प्रायश्चित्तेनेव। "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा" (गी.४.३.७)। इति स्मृतेश्च। "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि" इति चाऽऽथर्वणे। अतो ब्रह्मविदो जीवनादिप्रयोजनाभावेऽपि प्रवृत्तफलानां कर्मणामवश्यमेव फलोपभोगः स्यादिति मुक्तेषुवत् "तस्य तावदेव चिरमिति" युक्तमेवोक्तमिति यथोक्तदोषचोदनानुपपत्तिः। ज्ञानोत्पत्तेरूर्ध्वं च ब्रह्मविदः कर्माभावमवोचाम 'ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेती'त्यत्र, तच्च स्मर्तुमर्हसि।। २।।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ।।३।।

इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ।।१४।।

(अथ षष्ठाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः।)

पुरुषꣳ सोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि मां जानासि मामिति तस्य यावन्न वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति ।।१।।

वह जो यह अणिमा है; एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतु! वही तू है। तब श्वेतकेतु ने कहा- भगवन्! मुझे फिर से उस सत्यतत्त्व को समझाइये। अच्छा सोम्य! ऐसा आरुणि ने कहा।।३।।

।।इति चतुर्दशः खण्डः ।।

मरणासन्न पुरुष के दृष्टान्त से सत्य का उपदेश

हे सोम्य! ज्वरादि से अत्यन्त संतप्त हुए मरणासन्न पुरुष को परिवार वाले चारों ओर से घेरकर पूछा करते हैं- क्या तू मुझे (पिता, पुत्र या भाई को) पहचानता है! क्या तू मुझे पहचानता है? उस मुमूर्षु की वाणी जब तक मन में लीन नहीं हो जाती और मन प्राण में, प्राण तेज में, तथा तेज परदेवता में लीन नहीं हो जाता, तब तक वह पहचानता रहता है।।१।।

स य इत्याद्युक्तार्थम्। आचार्यवान्विद्वान्येन क्रमेण सत्संपद्यते, तं क्रमं दृष्टान्तेन **भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति। तथा सोम्येति होवाच**।।३।।

इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।।१४।।

पुरुषं हे **सोम्योतोपतापिनं** ज्वराद्युपतापवन्तं **ज्ञातयो** बान्धवाः परिवार्योपासते मुमूर्षुं **जानासि मां** तव पितरं पुत्रं भ्रातरं वेति पृच्छन्तस्**तस्य** मुमूर्षो ''**यावन्न वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामि**'' त्येतदुक्तार्थम्।।१।।

अथ यदाऽस्य वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति ।।२।।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ।।३।।

इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।।१५।।

फिर जिस समय उस मरणासन्न पुरुष की वाणी (आदि इन्द्रियाँ) मन में लीन हो जाती हैं, मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज परदेवता में लीन हो जाता है। इसके बाद वह किसी को पहचानता नहीं।। २।।

वह जो यह अणुतत्त्व है, एतद्रूप ही यह सम्पूर्ण जगत् है, वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतु! वही तू है। इस पर श्वेतकेतु ने कहा, भगवन्! मुझे उस तत्त्व को फिर से समझाइये। अच्छा सोम्य! ऐसा पिता ने कहा।। ३।।

।।इति पञ्चदशः खण्डः ।।

संसारिणो यो मरणक्रमः स एवायं विदुषोऽपि सत्संपत्तिक्रम इत्येतदाह — परस्यां देवतायां तेजसि संपन्ने**ऽथ न जानाति**। अविद्वांस्तु सत उत्थाय प्राग्भावितं व्याघ्रादिभावं देवमनुष्यादिभावं वा विशति। विद्वांस्तु शास्त्राचार्योपदेशजनितज्ञानदीपप्रकाशितं सद्-ब्रह्मात्मानं प्रविश्य नाऽऽवर्तत इत्येष सत्संपत्तिक्रमः। अन्ये तु मूर्धन्यया नाड्यो-त्क्रम्याऽऽदित्यादिद्वारेण सद्गच्छन्तीत्याहुः। तदसत्। देशकालनिमित्तफलाभिसंधानेन गमनदर्शनात्। न हि सदात्मैकत्वदर्शिनः सत्याभिसंधस्य देशकालनिमित्तफला-द्यनृताभिसंधिरुपपद्यते। विरोधात्। अविद्याकामकर्मणां च गमननिमित्तानां सद्विज्ञानहुताशनविप्लुष्टत्वाद्गमनानुपपत्तिरेव। ''पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्त्विहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः'' इत्याद्याथर्वणे। नदीसमुद्रदृष्टान्तश्रुतेश्च।। २।।

स य इत्यादि समानम्। यदि मरिष्यतो तुल्या सत्संपत्तिस्तत्र विद्वान्स-त्संपन्नो नाऽऽवर्तते, आवर्तते त्वविद्वानित्यत्र कारणं दृष्टान्तेन **भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच**।। ३।।

इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः।। १५।।

शाकुनि, मधुमक्खियाँ, नदी, वृक्ष, न्यग्रोध, लवण, गान्धार पुरुष (उदाहरण)
उपतापिनं आतय, पुरुषं-अपहार्षीत्।

* (अथ षष्ठाध्यास्य षोडशः खण्डः।)

पुरुषꣳ सोम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षीत्स्तेयमकार्षीत्परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते, सोऽनृताभिसंधोऽनृतेनाऽऽत्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते ॥१॥

अथ यदि तस्याकर्ता भवति तत एव सत्यमात्मानं कुरुते

* **चोर के द्वारा तप्त परशु को ग्रहण कराकर सत्य का उपदेश**

हे सोम्य! चोरी के सन्देह में किसी पुरुष को हाथ बाँधकर (राजपुरुष) लाते हैं (और उसे कहते हैं) इस व्यक्ति का धन तूने चुराया है, चोरी की है (न्यायाधीश के पूछने पर भी जब वह चोर अन्त तक अपने अपराध को छिपाना ही चाहता है। तब न्यायाधीश कहता है) इसके लिये फरशे को तपाओ, यदि वह उसका चुराने वाला है, तो अपने को मिथ्यावादित्व सिद्ध करता है। वह मिथ्याभिनिवेश वाला पुरुष अपने चौर्य को छिपाता हुआ तपे हुए परशु को पकड़ता है, मोह वश ऐसा करने पर वह तप्त परशु से जल जाता है और राजपुरुषों द्वारा मारा जाता है।। १।।

और यदि वह चोरी का करने वाला नहीं होता, तो उस परीक्षा में वह अपने को सत्य प्रमाणित करता है। सत्याग्रही वह सत् पुरुष सत्य से अपने को आवृत करके उस तप्त परशु

शृणु यथा **सोम्य** पुरुषं चौर्यकर्मणि संदिह्यमानं निग्रहाय परीक्षणाय वोतापि **हस्तगृहीतं** बद्धहस्त**मानयन्ति** राजपुरुषाः। किं कृतवानयमिति पृष्टाश्चाऽऽहुर**पहार्षीद्**धनमस्यायम्। ते चाऽऽहुः किमपहरणमात्रेण बन्धनमर्हति। अन्यथा दत्तेऽपि धने बन्धनप्रसङ्गादित्युक्ताः पुनराहुः **स्तेयमकार्षीच्**चौर्येण धनमपहार्षीदिति। तेष्वेवं वदत्स्वितरोऽपह्नुते नाहं तत्कर्तेति। ते चाऽऽहुः संदिह्यमानं स्तेयमकार्षीस्त्वमस्य धनस्येति। तस्मिंश्चापह्नुवान आहुः **परशुमस्मै तपतेति** शोधयत्वात्मानमिति। **स यदि तस्य** स्तैन्यस्य **कर्ता भवति** बहिश्चापह्नुते च एवंभूतस्**तत एवानृत**मन्यथाभूतं सन्तमन्यथाऽऽ**त्मानं कुरुते, स** तथाऽ**नृताभिसंधोऽनृतेनाऽऽत्मानमन्तर्धाय** व्यवहतिं कृत्वा **परशुं तप्तं** मोहात्**प्रतिगृह्णाति, स दह्यतेऽथ हन्यते** राजपुरुषैः स्वकृतेनानृताभिसंधिदोषेण।। १ ।।

अथ यदि तस्य कर्मणोऽ**कर्ता भवति, तत एव सत्यमात्मानं कुरुते, स**

स सत्याभिसंधः सत्येनाऽऽत्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स न दह्यतेऽथ मुच्यते ॥२॥

स यथा तत्र नादाह्येत स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥६॥

को पकड़ लेता है, वह उससे जलता नहीं (तत्पश्चात् मिथ्याभियोग लगाने वाले पुरुष के द्वारा) वह तत्काल ही छोड़ दिया जाता है॥२॥

सत्याग्रही वह पुरुष जैसे उस परीक्षा में जलता नहीं (वैसे ही तत्त्वज्ञानी प्रारब्धक्षय के अनन्तर विदेहकैवल्य को प्राप्त कर लेता है और फिर लौटता नहीं, किन्तु नामरूप अनृत विकार में अभिनिवेश करने वाला अविद्वान् मरकर पुनर्जन्म ग्रहण करता है। यह सब एतद्रूप ही है। वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतु! वही तू है। इस प्रकार पिता से नौ बार उपदेश सुनकर वह श्वेतकेतु ब्रह्म और आत्मा की एकता को जान गया। उसे जान लिया ॥३॥

॥इति षष्ठाध्यायः षोडशः खण्डः ॥

इस प्रकार छान्दोग्योपनिषत् षष्ठ अध्याय की श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य कैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज कृत मिताक्षरा व्याख्या सम्पूर्ण हुई।॥६॥

सत्येन तया स्तैन्याकर्तृतयाऽऽ**त्मानमन्तर्धाय** परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति, **स सत्याभिसंधः सन्न दह्यते** सत्यव्यवधानाद**थ मुच्यते** च मृषाभियोक्तृभ्यः तप्तपरशुहस्ततलसंयोगस्य तुल्यत्वेऽपि स्तेयकर्त्रकर्त्रोरनृताभिसंधो दह्यते, न तु सत्याभिसंधः॥२॥

स यथा सत्याभिसंधस्तप्तपरशुग्रहणकर्मणि सत्यव्यवहितहस्ततलत्वान्नादाह्येत न दह्येतेत्येतदेवं सद्ब्रह्मसत्याभिसंधीतरयोः शरीरपातकाले च तुल्यायां सत्संपत्तौ विद्वान्सत्संपद्य न पुनर्व्याघ्रदेवादिदेहग्रहणायाऽऽवर्तते। अविद्वांस्तु विकारानृताभिसंधः पुनर्व्याघ्रादिभावं देवतादिभावं वा यथाकर्म यथाश्रुतं प्रतिपद्यते। यदात्माभिसंध्यनभिसंधिकृते मोक्षबन्धने यच्च मूलं जगतो यदायतना यत्प्रतिष्ठाश्च सर्वाः प्रजा

यदात्मकं च सर्वं यच्चाजममृतमभयं शिवमद्वितीयं तत्सत्यं स **आत्मा** तव, अतस्**तत्त्वमसि** हे **श्वेतकेतो इत्यु**क्तार्थमसकृद्वाक्यम्। कः पुनरसौ श्वेतकेतुस्त्वंशब्दार्थः। योऽहं श्वेतकेतुरुद्दालकस्य पुत्र इति वेदाऽऽत्मानमादेशं श्रुत्वा मत्वा विज्ञाय चाश्रुतममतमविज्ञातं विज्ञातुं पितरं पप्रच्छ कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति। स एषोऽधिकृतः श्रोता मन्ता विज्ञाता तेजोबन्नमयं कार्यकरणसंघातं प्रविष्टा परैव देवता नामरूपव्याकरणायाऽऽदर्शे इव पुरुषः सूर्यादिरिव जलादौ प्रतिबिम्बरूपेण। स आत्मानं कार्यकरणेभ्यः प्रविभक्तं सद्रूपं सर्वात्मानं प्राक् पितुः श्रवणान्न **विजज्ञौ**। अथेदानीं पित्रा प्रतिबोधितस्तत्त्वमसीतिदृष्टान्तैर्हेतुभिश्च तत्पितुरस्य ह किलोक्तं सदेवाहमस्मीति विजज्ञौ विज्ञातवान्। द्विर्वचनमध्यायपरिसमाप्त्यर्थम्।

किं पुनरत्र षष्ठे वाक्यप्रमाणेन जनितं फलमात्मनि, कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरधिकृतत्वविज्ञाननिवृत्तिस्तस्य फलं यमवोचाम त्वंशब्दवाच्यमर्थं, श्रोतुं मन्तुं चाधिकृतमविज्ञातविज्ञानफलार्थम्। प्राक्चैतस्माद्विज्ञानादहमेव करिष्याम्यग्निहोत्रादीनि कर्माण्यहमत्राधिकृतः। एषां च कर्मणां फलमिहामुत्र च भोक्ष्ये, कृतेषु वा कर्मसु कृतकर्तव्यः स्यामित्येवं कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरधिकृतोऽस्मीत्यात्मनि यद्विज्ञानमभूत्तत्स्य यत्सज्जगतो मूलमेकमेवाद्वितीयं तत्त्वमसीत्यनेन वाक्येन प्रतिबुद्धस्य निवर्तते। विरोधात्। न ह्येकस्मिन्नद्वितीये आत्मन्ययमहमस्मीति विज्ञाते ममेदमनेन कर्तव्यमिदं कृत्वाऽस्य फलं भोक्ष्य इति वा भेदविज्ञानमुपपद्यते। तस्मात्सत्सत्याद्वितीयात्मविज्ञाने विकारानृतजीवात्मविज्ञानं निवर्तत इति युक्तम्। ननु तत्त्वमसीत्यत्र त्वंशब्दवाच्येऽर्थे सद्बुद्धिरादिश्यते यथाऽऽदित्यमनआदिषु ब्रह्मादिबुद्धिः। यथा च लोके प्रतिमादिषु विष्ण्वादिबुद्धिस्तद्वन्नतु सदेव त्वमिति यदि सदेव श्वेतकेतुः स्यात्कथमात्मानं न विजानीयाद्येन तस्मै तत्त्वमसीत्युपदिश्यते। न। आदित्यादिवाक्यवैलक्षण्यात्। आदित्यो ब्रह्मेत्यादावितिशब्दव्यवधानान्न साक्षाद्ब्रह्मत्वं गम्यते। रूपादिमत्त्वाच्चाऽऽदित्यादीनामाकाशमनसोश्चेतिशब्दव्यवधानादेवाब्रह्मत्वमिह तु सत एवेह प्रवेशं दर्शयित्वा तत्त्वमसीति निरङ्कुशं सदात्मभावमुपदिशति।।

ननु पराक्रमादिगुणः सिंहोऽसि त्वमितिवत्तत्त्वमसीति स्यात्। न। मृदादिवत्सदेकमेवाद्वितीयं सत्यमित्युपदेशात्। न चोपचारविज्ञानात्तस्य तावदेव चिरमिति

सत्संपत्तिरुपदिश्येत। मृषात्वादुपचारविज्ञानस्य। त्वमिन्द्रो यम इतिवत्। नापि स्तुतिः, अनुपास्यत्वाच्छ्वेतकेतोः। नापि सच्छ्वेतकेतुत्वोपदेशेन स्तूयेत। न हि राजा दासस्त्वमिति स्तुत्यः स्यात्। नापि सतः सर्वात्मन एकदेशनिरोधो युक्तस्तत्त्वमसीति देशाधिपतेरिव ग्रामाध्यक्षस्त्वमिति। न चान्या गतिरिह सदात्मत्वोपदेशादर्थान्तरभूता संभवति। ननु सदस्मीति बुद्धिमात्रमिह कर्तव्यतया चोद्यते न त्वज्ञातं सदसीति ज्ञाप्यते इति चेत्। नन्वस्मिन्पक्षेऽप्यश्रुतं श्रुतं भवतीत्याद्यनुपपन्नम्। न। सदस्मीति-बुद्धिविधेः स्तुत्यर्थत्वात्। नाऽऽचार्यवान्पुरुषो वेद। तस्य तावदेव चिरमित्युपदेशात्। ना आ यदि हि सदस्मीति बुद्धिमात्रं कर्तव्यतया विधीयते न तु त्वंशब्दवाच्यस्य सद्रूपत्वमेव, तदा नाऽऽचार्यवान्वेदेति ज्ञानोपायोपदेशो वाच्यः स्यात्। यथाऽग्निहोत्रं जुहुयादित्येवमादिष्वर्थप्राप्तमेवाऽऽचार्यवत्त्वमिति तद्वत्। तस्य तावदेव चिरमिति च क्षेपकरणं न युक्तं स्यात्। सदात्मत्वेऽविज्ञातेऽपि सकृद्बुद्धिमात्रकरणे मोक्षप्रसङ्गात्। न च तत्त्वमसीत्युक्ते नाहं सदितिप्रमाणवाक्यजनिता बुद्धिर्निवर्तयितुं शक्या नोत्पन्नेति वा शक्यं वक्तुम्। सर्वोपनिषद्वाक्यानां तत्परतयैवोपक्षयात्। यथाऽग्निहोत्रादिविधि-जनिताग्निहोत्रादिकर्तव्यताबुद्धीनामतथार्थत्वमनुत्पन्नत्वं वा न शक्यते वक्तुं तद्वत्।

यत्तूक्तं सदात्मा सन्नात्मानं कथं न जानीयादिति। नासौ दोषः। कार्यकरण-संघातव्यतिरिक्तोऽहं जीवः कर्ता भोक्तेत्यपि स्वभावतः प्राणिनां विज्ञानादर्शनात्किमु तस्य सदात्मविज्ञानम्। कथमेवं व्यतिरिक्तविज्ञानेऽसति तेषां कर्तृत्वादिविज्ञानं संभवति दृश्यते च। तद्वत्तस्यापि देहादिष्वात्मबुद्धित्वान्न स्यात्सदात्मविज्ञानम्। तस्माद्विकारानृताभिसंधिकृतजीवात्मविज्ञाननिवर्तकमेवेदं वाक्यं तत्त्वमसीति सिद्धमिति।। ३।।

इति षष्ठाध्यायस्य षोडशः खण्डः।। १६।।

इति द्वादशाह्निकम्।।१२।।

इति श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीशंकरभगवतः कृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे षष्ठोऽध्यायः संपूर्णः।। ६।।

उपक्रम : तरति शोकमात्मवित् 7-1-3.
उपसंहार : तस्य ह वा एतस्य एवं पश्यत एवं मन्वानस्य एवं विजानतः आत्मतः प्राणः आत्मतः आशा. 7-26-1
अभ्यास : (a) स एव अधस्तात्, स एव उपरिष्टात् 7-25-1
(b) अथातो ऽहंकारादेशः एवाहमेवाधस्तात् अहं. 7-25-2 मेवा
(c) अथात आत्मादेशः 7.25.2

अपूर्वता: सहोवाचर्ग्वेदं भगवो अध्येमि 7-1-2 63.
फल :- न पश्यो मृत्युं पश्यति 7-26-2.
अर्थवाद :- सर्वं ह पश्य: पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वशः 7-26-2.
उपपत्ति :- आत्मत: प्राणा : आत्मत: आशा 7-26-1

ॐ

सप्तमोऽध्याय:

(अथ सप्तमाध्यायस्य प्रथम: खण्ड:।)

शरीर में ही सत्य दर्शन का उपलब्धी होती है।

अनात्मज्ञ:

अधीहि भगव होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तꣳ होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच ॥१॥

सनत्कुमार के पास जाकर नारद को उपदेश ग्रहण

हे भगवन्! मुझे उपदेश करें ऐसा कहते हुए नारद जी (शिष्य भाव से ब्रह्मनिष्ठ योगीश्वर) सनत्कुमार के पास गये। नियमानुसार आये हुए नारद से सनत्कुमार ने कहा- तुम जो कुछ जानते हो, उसे बतलाते हुए मेरे पास आओ, फिर मैं तुम्हें तुम्हारे ज्ञान से आगे उपदेश करूँगा। ऐसा सुनकर नारद ने कहा।।१।। अहमस्मि परंब्रह्म = शब्द से ज्ञान.

परमार्थतत्त्वोपदेशप्रधानपर: षष्ठोऽध्याय: सदात्मैकत्वनिर्णयपरतयैवोपयुक्त:। न सतोऽर्वाग्विकारलक्षणानि तत्त्वानि निर्दिष्टानीत्यतस्तानि नामादीनि प्राणान्तानि क्रमेण निर्दिश्य तद्द्वारेणापि भूमाख्यं निरतिशयं तत्त्वं निर्देक्ष्यामीति शाखाचन्द्रदर्शनवदितीमं सप्तमं प्रपाठकमारभते। अनिर्दिष्टेषु हि सतोऽर्वाक्तत्त्वेषु सन्मात्रे च निर्दिष्टेऽन्यदप्यविज्ञातं स्यादित्याशङ्का कस्यचित्स्यात्सा मा भूदिति वा तानि निर्दिदिक्षति। अथवा सोपानारोहणवत्स्थूलादारभ्य सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं च बुद्धिविषयं ज्ञापयित्वा तदतिरिक्ते स्वाराज्येऽभिषेक्ष्यामीति नामादीनि निर्दिदिक्षति। अथवा नामाद्युत्तरोत्तरविशिष्टानि तत्त्वान्यतितरां च तेषामुत्कृष्टतमं भूमाख्यं तत्त्वमिति तत्स्तुत्यर्थं नामादीनां क्रमेणोपन्यास:। आख्यायिका तु परविद्यास्तुत्यर्था। कथम्? नारदो देवर्षि: कृतकर्तव्य: सर्वविद्योऽपि सन्ननात्मज्ञत्वाच्छुशोचैव, किमु वक्तव्यमन्योऽल्पविज्जन्तुरकृतपुण्यातिशयोऽकृतार्थ इति। अथवा नान्यदात्मज्ञाना-न्निरतिशयश्रेय:साधनमस्तीत्येतत्प्रदर्शनार्थं सनत्कुमारनारदाख्यायिकाऽऽरभ्यते। येन सर्वविज्ञानसाधनशक्तिसंपन्नस्यापि नारदस्य देवर्षे: श्रेयो न बभूव येनोत्तमाभिजनविद्या-वृत्तसाधनशक्तिसंपत्तिनिमित्ताभिमानं हित्वा प्राकृतपुरुषवत्**सनत्कुमारमुपससाद** श्रेय:साधनप्राप्तये, अत: प्रख्यापितं भवति निरतिशयप्राप्तिसाधनत्वमात्मविद्याया इति।

अधीह्यधीष्व **भगवो** भगवन्निति किलोपससाद। अधीहि भगव इति मन्त्र:। सनत्कुमारं योगीश्वरं ब्रह्मनिष्ठं नारद उपसन्नवान्। तं न्यायत उपसन्नं **होवाच यदा**त्मविषये किंचिद्**वेत्थ तेन** तत्प्रख्यापनेन मा**मुपसीदे**दमहं जाने इति **ततो**ऽहं भवतो विज्ञाना**त्ते** तुभ्य**मूर्ध्वं वक्ष्यामी**त्युक्तवति **स होवाच** नारद:।। १।।

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ।।२।।

सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नाऽऽत्मविच्छ्रुतꣳ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति, सोऽहं भगव: शोचामि

हे भगवन्! मैं ऋग्वेद पढ़ा हूँ, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद भी जानता हूँ। (सिवाय इनके) इतिहास पुराणरूप पंचम वेद, वेदों का वेद व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, महाकालानिधि शास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र निरुक्त, शिक्षा, कल्प, छन्द और चितिरूप ब्रह्मविद्या, भूतशास्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिषविद्या, गारुडविद्या, नृत्य संगीतादि विद्या। हे भगवन्! यह सब मैं जानता हूँ।। २।।

हे भगवन्! यह सब जानते हुए भी वह मैं केवल शब्दार्थ मात्र ही जानता हूँ, आत्मा को मैं नहीं जानता। मैंने आप पूज्यजनों के जैसे महापुरुषों से सुना है, आत्मज्ञानी शोक को पार कर

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि स्मरामि, यद्वेत्थेति विज्ञानस्य पृष्टत्वात्। तथा **यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थं** वेदं वेदशब्दस्य प्रकृतत्वा**दितिहासपुराणं पञ्चमं वेदं वेदानां** भारतपञ्चमानां वेदं व्याकरणमित्यर्थ:। व्याकरणेन हि पदादिविभागश ऋग्वेदादयो ज्ञायन्ते। **पित्र्यं** श्राद्धकल्पम्। **राशिं** गणितम्। **दैव**मुत्पातज्ञानम्। **निधिं** महाकालादिनिधिशास्त्रम्। **वाकोवाक्यं** तर्कशास्त्रम्। एकायनं नीतिशास्त्रम्। **देवविद्यां** निरुक्तम्। ब्रह्मण ऋग्यजु:सामाख्यस्य विद्या **ब्रह्मविद्यां** शिक्षाकल्पच्छन्दश्चितयस्ता:। **भूतविद्यां** भूततन्त्रम्। **क्षत्त्रविद्यां** धनुर्वेदम्। **नक्षत्रविद्यां** ज्यौतिषम्। सर्पदेवजनविद्यां सर्पविद्यां गारुडं **देवजनविद्यां** गन्धयुक्तिनृत्यगीतवाद्यशिल्पादिविज्ञानानि। एतत्सर्वं हे **भगवोऽध्येमि**।। २।।

सोऽहं भगव एतत्सर्वं जानन्नपि **मन्त्रविदेवास्मि** शब्दार्थमात्रविज्ञानवानेवास्मीत्यर्थ:। सर्वो हि शब्दोऽभिधानमात्रमभिधानं च सर्वं मन्त्रेष्वन्तर्भवति। मन्त्रविदेवास्मि मन्त्रवित्क-

तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति तꣳ होवाच यद्वै किंचैतदध्यगीष्ठा नामैवैतत् ॥३॥

जाता है और हे भगवन्! मैं तो शोक करता हूँ। ऐसे शोकग्रस्त मुझे शोक से पार कर देवें, अर्थात् मुझे अभय प्राप्त करा देवें। ऐसा सुनकर सनत्कुमार ने नारद से कहा- अभी तक यह जो कुछ तुम जानते हो वह नाममात्र ही है।। ३।।

र्मविदित्यर्थः ''मन्त्रेषु कर्माणीति'' हि वक्ष्यति। **नाऽऽत्मवि**न्नाऽऽत्मानं वेद्मि। नन्वात्माऽपि मन्त्रैः प्रकाश्यते एवेति कथं मन्त्रविच्चेन्नाऽऽत्मवित्। न। अभिधानाभिधेयभेदस्य विकारत्वात्। न च विकार आत्मेष्यते। नन्वात्माऽप्यात्मशब्देनाभिधीयते। न। ''यतो वाचो निवर्तन्ते। ''यत्र नान्यत्पश्यति'' (छा.७.२४.१) इत्यादिश्रुतेः। कथं तर्ह्यात्मैवा-धस्तात्स आत्मेत्यादिशब्दा आत्मानं प्रत्याययन्ति। नैष दोषः। देहवति प्रत्यगात्मनि भेदविषये प्रयुज्यमानः शब्दो देहादीनामात्मत्वे प्रत्याख्यायमाने यत्परिशिष्टं सद्वाच्यमपि प्रत्याययति। यथा सराजिकायां दृश्यमानायां सेनायां छत्रध्वजपताकादि-व्यवहितेऽदृश्यमानेऽपि राजन्येष राजा दृश्यते इति भवति शब्दप्रयोगस्तत्र कोऽसौ राजेति राजविशेषनिरूपणायां दृश्यमानेतरप्रत्याख्यानेऽन्यस्मिन्नदृश्यमानेऽपि राजनि राजप्रतीतिर्भवेत्तद्वत्। तस्मात्सोऽहं मन्त्रवित्कर्मविदेवास्मि कर्मकार्यं च सर्वं विकार इति विकारज्ञ एवास्मि नाऽऽत्मविन्नाऽऽत्मप्रकृतिस्वरूपज्ञ इत्यर्थः। अत एवोक्तम् ''आचार्यवान्पुरुषो वेद'' (छा.६.१४.२ इति। ''यतोवाचो निवर्तन्ते'' (तै.२.४.१) इत्यादिश्रुतिभ्यश्च। श्रुतमागमज्ञानमस्त्ये**व हि** यस्मान्**मे** मम **भगवद्दृशेभ्यो** युष्मत्सदृशेभ्य**स्तरत्य**तिक्रामति **शोकं** मनस्तापमकृतार्थबुद्धितामा**त्मविदित्यतः**। **सोऽह**मनात्मवित्त्वाद्धे **भगवः शोचाम्य**कृतार्थबुद्ध्या संतप्ये सर्वदा **तं मा** मां **शोकस्य** शोकसागरस्य **पार**मन्तं **भगवांस्तारयत्वा**त्मज्ञानोडुपेन कृतार्थबुद्धिमापादयत्वभयं गमयत्वित्यर्थः। तमेवमुक्तवन्तं **होवाच यद्वै किंचैतदध्यगीष्ठा** अधीतवानसि। अध्ययनेन तदर्थज्ञानमुपलक्ष्यते ज्ञातवानसीत्येत**न्नामैवैतत्**। ''वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयम्'' (छा.६.१.४) इति श्रुतेः।। ३।।

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्या नामैवैतन्नामोपास्स्वेति ।।४।।

स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं, तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति, तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।५।।

नाम गोचरं स्वविषयं भवति

इति सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।।१।।

क्योंकि ऋग्वेद नाम है, यजुर्वेद, सामवेद, चौथा आथर्वण वेद, पाँचवाँ वेद इतिहास पुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष, गारूड़, संगीतादि कला और शिल्पशास्त्र- ये सब भी नाम ही हैं। (अतः प्रतिमा में विष्णु बुद्धि के समान) 'तुम नाम को ब्रह्म बुद्धि से उपासना करो।।४।।

'वह जो नाम ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है, जहाँ तक नाम की गति है, वहाँ तक नाम के विषय में उस उपासक की यथेष्ट गति हो जाती है। जो 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार नाम की उपासना करता है। (नारद ने कहा-) भगवन्! क्या नाम से बढ़ कर भी कोई वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा-) नाम से बढ़कर वस्तु है। (तब नारद ने कहा-) भगवन्! मुझे उसका ही उपदेश करें।।५।।

।।इति प्रथम खण्डः ।।

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेद इत्यादि **नामैवैतत्। नामोपास्स्व** ब्रह्मेति ब्रह्मबुद्ध्या। यथा प्रतिमां विष्णुबुद्ध्योपास्ते, तद्वत्।।४।।

स यस्तु नाम ब्रह्मेत्युपास्ते तस्य यत्फलं भवति तच्छृणु, **यावन्नाम्नो गतं** नाम्नो गोचरं **तत्र** तस्मिन्नामविषयेऽ**स्य यथाकामचारः** कामचरणं राज्ञ इव स्वविषये **भवति। यो नाम ब्रह्मेत्युपास्त** इत्युपसंहारः। किमस्ति **भगवो नाम्नो** भूयोऽधिकतरं यद्ब्रह्मदृष्ट्यर्हमन्यदित्यभिप्रायः। सनत्कुमार आह **नाम्नो वाव भूयोऽस्त्येवे**त्युक्त आह यद्यस्ति **तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति**।।५।।

इति सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः।।१।।

(अथ सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।)

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्त्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाऽऽकाशं चापश्च तेजश्च देवाꣳश्च मनुष्याꣳश्च पशूꣳश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतीञ्श्वापदान्याकीट-पतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो

नाम की अपेक्षा वाणी की श्रेष्ठता

निश्चय ही नाम से बढ़कर वाक् है (कण्ठादि आठ स्थानों में स्थित वर्णाभिव्यञ्जक इन्द्रिय को वाणी कहते हैं और वर्ण को नाम कहते हैं) वाणी ही ऋग्वेदरूप नाम को बतलाती है। यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ आथर्वणवेद, इतिहास पुराण पंचमवेद, वेदों का वेद व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातशास्त्र, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या, भूतविद्या, धनुर्विद्या, ज्योतिष, गारुड़, संगीत शास्त्र, द्युलोक, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसक जन्तु, कीट, पतंग, पिपीलकापर्यन्त प्राणी, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, साधु और असाधु, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, जो कुछ भी है (सभी वाणी के विषय हैं) यदि वाणी न होती, तो न धर्म का, न अधर्म का ही ज्ञान होता तथा न सत्य का, न असत्य का, न साधु का, न असाधु का, न मनोज्ञ का और न ही अमनोज्ञ का ही ज्ञान हो पाता। शब्द उच्चारण

वाग्वाव। वागितीन्द्रियं जिह्वामूलादिष्वष्टसु स्थानेषु वर्णानामभिव्यञ्जकम्। वर्णाश्च नामेति **नाम्नो** वाग्**भूयसी**त्युच्यते। कार्याद्धि कारणं भूयो दृष्टं लोके यथा पुत्रात्पिता, तद्वत्। कथं च वाङ्नाम्नो भूयसीत्याह— **वाग्वा ऋग्वेदं** विज्ञापयत्ययमृग्वेद इति। तथा **यजुर्वेदमि**त्यादि समानम्। **हृदयज्ञं** हृदयप्रियम्। तद्विपरीत**महृदयज्ञम्**। यद्यदि वाङ्नाभविष्यद्धर्मादि न व्यज्ञापयिष्यद्वागभावेऽध्ययनाभावोऽध्ययनाभावे तदर्थश्रवणा-भावस्तच्छ्रवणाभावे धर्मादि न व्यज्ञापयिष्यन्न विज्ञातमभविष्यदित्यर्थः। तस्मा**द्वागेवैत-**

व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्स्वेति॥१॥

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २॥

(अथ सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।)

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वाऽऽमलके द्वे वा कोले द्वौ वाऽक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनुभवति

द्वारा वाणी ही इन सबको विज्ञापन करती है। अतः नाम से श्रेष्ठ इस वाणी की 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करो॥ १॥

'यह ब्रह्म है' इस प्रकार वह जो कोई वाणी की उपासना करता है, उस उपासक की वहाँ तक स्वेच्छा से गति होती है, जहाँ तक वाणी की गति है। जो पुरुष 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार से वाणी की उपासना करता है। (नारद ने कहा-) भगवन्! क्या वाणी से भी बढ़कर कोई वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा-) हाँ, वाणी से भी बढ़कर वस्तु है। (नारद ने कहा-) भगवन्! तब तो उसे ही मुझे बतलायें॥ २॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

वाणी से मन की श्रेष्ठता का वर्णन

मन ही वाणी से श्रेष्ठ है, (क्योंकि मनन व्यापार विशिष्ट मन ही वाणी को बोलने में प्रेरित करता है) जैसे दो आँवले, दो बेर, या दो बहेड़े मुट्ठी में आ जाते हैं, वैसे ही वाणी

च्छब्दोच्चारणेन **सर्वं** विज्ञापयत्यतो भूयसी वाङ्नाम्नस्तस्माद्वाचं ब्रह्मेत्युपास्स्व॥ १॥

समानमन्यत्॥ २॥

इति सप्तमध्यायस्य द्वितीयः खण्डः॥ २॥

मनो मनस्यनविशिष्टमन्तःकरणं **वाचो भूयः**। तद्धि मनस्यनव्यापारवद्वाचं वक्तव्ये प्रेरयति। तेन वाङ्मनस्यन्तर्भवति। यच्च यस्मिन्नन्तर्भवति तत्तस्य व्यापकत्वात्ततो भूयो

स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते पुत्राꣳश्च पशुꣳश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति ॥१॥

स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनसो

और नाम का मन में अन्तर्भाव हो जाता है। जब यह पुरुष मन से विचार करता है कि "मैं मन्त्र का उच्चारण करूँ" तभी वह मन्त्र पाठ करता है, जब सोचता है "मैं कर्म करूँ" तभी वह कर्म करता है, जब विचार करता है "मैं पुत्र और पशुओं की इच्छा करूँ" तभी वह उनकी इच्छा करता है और जब विचारता है कि "मैं इस लोक और परलोक की कामना करूँ" तभी उनकी इच्छा करता है। अतः मन ही आत्मा है, मन ही लोक है, मन ही ब्रह्म है। मन की उपासना करो।। १।।

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार जो वह मन की उपासना करता है, उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति होती है, जहाँ तक मन जाता है। "यह ब्रह्म है" इस प्रकार मन की जो उपासना करता है (नारद ने कहा-) भगवन्! क्या मन से भी श्रेष्ठ कोई वस्तु है?

भवति। **यथा वै** लोके **द्वे वाऽऽमलके** फले, **द्वे वा कोले** बदरफले, **द्वौ वाऽक्षौ** विभीतकफले **मुष्टिरनुभवति** मुष्टिस्ते फले व्याप्नोति मुष्टौ हि ते अन्तर्भवतः। एवं **वाचं च नाम चाऽऽ**मलकादिवन्**मनोऽनुभवति स यदा** पुरुषो यस्मिन्काले **मनसा**ऽन्तःकरणेन **मनस्यति** मनस्यनं विवक्षाबुद्धिः कथं **मन्त्रानधीयी**योच्चारयेयमित्येवं विवक्षां कृत्वा**ऽथाधीते** तथा **कर्माणि कुर्वीयेति** चिकीर्षाबुद्धिं कृत्वा**ऽथ कुरुते पुत्रांश्च पशूंश्चेच्छेयेति** प्राप्तीच्छां कृत्वा तत्प्राप्त्युपायानुष्ठानेना**थेच्छते** पुत्रादीन्प्राप्नोतीत्यर्थः। तथे**मं च लोकममुं** चोपाये**नेच्छेयेति** तत्प्राप्त्युपायानुष्ठानेनाथेच्छते प्राप्नोति। **मनो ह्यात्मा**ऽऽत्मनः कर्तृत्वं भोक्तृत्वं च सति मनसि, नान्यथेति मनो ह्यात्मेत्युच्यते। मनो हि लोकः सत्येव हि मनसि लोको भवति तत्प्राप्त्युपायानुष्ठानं चेति मनो हि लोको यस्मात्तस्मा**न्मनो हि ब्रह्म**। यत एवं तस्मा**न्मन उपास्स्वेति**।। १।।

भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।। ३।।

(अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः।)

संकल्पो वाव मनसो भूयान्यदा वै संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति, मन्त्रेषु

(सनत्कुमार ने कहा-) हाँ मन से भी बढ़कर वस्तु है। (नारद ने कहा-) भगवन्! तब तो मुझे उसी को बतलावें।। २।।

।।इति तृतीयः खण्डः ।।

मन की अपेक्षा संकल्प की श्रेष्ठता का वर्णन

संकल्प ही मन से श्रेष्ठ है (कर्तव्याकर्तव्य विषयों के विभाग पूर्वक समर्थन को संकल्प कहते हैं)। इस प्रकार पुरुष जब संकल्प करता है, तभी वह चिकीर्षा बुद्धि रूप मनन करता है और पुनः वाणी को वक्तव्य विषयों की ओर प्रेरित करता है। उसे वह

स यो मन इत्यादि समानम्।। २।।

इति सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।। ४।।

संकल्पो वाव मनसो भूयान्। संकल्पोऽपि मनस्यनवदन्तःकरणवृत्तिः कर्तव्याकर्तव्यविषयविभागेन समर्थनम्। विभागेन हि समर्थिते विषये चिकीर्षाबुद्धिर्मनस्यनानन्तरं भवति। कथम्? **यदा वै संकल्पयते** कर्तव्यादिविषयान्विभजते इदं कर्तुं युक्तमिति, **अथ मनस्यति** मन्त्रानधीयीयेत्यादि। **अथा**नन्तरं **वाचमीरयति** मन्त्राद्युच्चारणे। **तां** च **वाच**मु नाम्नि नामोच्चारणनिमित्तं विवक्षां कृत्वेरयति **नाम्नि** नामसामान्ये **मन्त्राः** शब्दविशेषाः सन्त एकं भवन्त्यन्तर्भवन्तीत्यर्थः। सामान्ये हि विशेषोऽन्तर्भवति। **मन्त्रेषु कर्माण्येकं भवन्ति**। मन्त्रप्रकाशितानि कर्माणि क्रियन्ते नामन्त्रकमस्ति कर्म। यद्धि मन्त्रप्रकाशनेन लब्धसत्ताकं सत्कर्म ब्राह्मणेनेदं कर्तव्यमस्मै फलायेति विधीयते। याऽप्युत्पत्तिर्ब्राह्मणेषु कर्मणां दृश्यते साऽपि मन्त्रेषु लब्धसत्ताकानामेव कर्मणां स्पष्टीकरणम्। न हि मन्त्राप्रकाशितं कर्म किंचिद्ब्राह्मण उत्पन्नं दृश्यते। त्रयीविहितं

कर्माणि ।।१।।

तानि ह वा एतानि संकल्पैकायनानि संकल्पात्मकानि संकल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी, समकल्पेतां वायुश्चाऽऽकाशं, च समकल्पन्ताऽऽपश्च तेजश्च तेषाꣳ संक्लृप्त्यै वर्षꣳ संकल्पते वर्षस्य संक्लृप्त्या अन्नꣳ संकल्पतेऽन्नस्य संक्लृप्त्यै प्राणाः संकल्पन्ते प्राणानाꣳ संक्लृप्त्यै मन्त्राः '

नाम के प्रति प्रवृत्त करता है। नाम में सब मन्त्र एक रूप हो जाते हैं और मन्त्रों में सब कर्म एकरूप हो जाते हैं ।।१।।

वे ये मन आदि संकल्पैकायन हैं, अर्थात् इनका प्रलय स्थान एकमात्र संकल्प ही है। ये उत्पत्ति के समय संकल्पमय हैं और स्थिति के समय संकल्प में ही प्रतिष्ठित हैं। द्युलोक और पृथिवी ने मानो संकल्प किया, (क्योंकि ये निश्चल दिखायी देते हैं) वायु और आकाश ने संकल्प किया है, जल और तेज ने संकल्प किया है। उनके संकल्प के लिये वर्षा समर्थ होती है, अर्थात् द्युलोकादि के समर्थ होने से वर्षा होती है। वर्षा के संकल्प के

कर्मेति प्रसिद्धं लोके। त्रयीशब्दश्च ऋग्यजुःसामसमाख्या। ''मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यन्निति'' चाऽऽथर्वणे। तस्माद्युक्तं मन्त्रेषु कर्माण्येकं भवन्तीति।। १ ।।

तानि ह वा एतानि मनआदीनि **संकल्पैकायनानि** संकल्प एकोऽयनं गमनं प्रलयो येषां तानि संकल्पैकायनानि **संकल्पात्मकान्**युत्पत्तौ **संकल्पे प्रतिष्ठितानि** स्थितौ **समक्लृपतां** संकल्पं कृतवत्याविव हि द्यौश्च पृथिवी च **द्यावापृथिवी** द्यावापृथिव्यौ निश्चले लक्ष्येते। तथा **समकल्पेतां वायुश्चाऽऽकाशं चै**तावपि संकल्पं कृतवन्ताविव। तथा **समकल्पन्ताऽऽपश्च तेजश्च** स्वेन रूपेण निश्चलानि लक्ष्यन्ते यतस्**तेषां** द्यावापृथिव्यादीनां **संक्लृप्त्यै** संकल्पनिमित्तं **वर्षं संकल्पते**। समर्थो भवति। तथा **वर्षस्य संक्लृप्त्यै** संकल्पनिमित्तमन्नं **संकल्पते**। वृष्टेर्ह्यन्नं भवत्**यन्नस्य संक्लृप्त्यै प्राणाः संकल्पन्ते**। अन्नमया हि प्राणा अन्नोपष्टम्भकाः। ''अन्नं दाम'' इति हि श्रुतिः। तेषां **संक्लृप्त्यै** मन्त्राः **संकल्पन्ते**। प्राणवान्हि मन्त्रानधीते नाबलः। **मन्त्राणां** हि **संक्लृप्त्यै कर्माण्य**ग्निहोत्रादीनि **संकल्पन्तेऽ**नुष्ठीयमानानि मन्त्रप्रकाशितानि

संकल्पन्ते मन्त्राणाꣳ संक्लृप्त्यै कर्माणि संकल्पन्ते कर्मणाꣳ संक्लृप्त्यै लोकः संकल्पते लोकस्य संक्लृप्त्यै सर्वꣳ संकल्पते स एष संकल्पः संकल्पमुपास्स्वेति ।।२।।

स यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते क्लृप्तान्वै स लोकान्ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति

लिये अन्न समर्थ होता है (क्योंकि वर्षा से अन्न होता है)। अन्न के संकल्प के लिये प्राण समर्थ होता है। (क्योंकि प्राण अन्न के आश्रित है) प्राणों के संकल्प के लिये मन्त्र समर्थ होते हैं (क्योंकि बलवान ही मन्त्र को पढ़ सकता है। मन्त्रों के संकल्प के लिये कर्म समर्थ होते हैं (क्योंकि फल सहित कर्मों का बोध मन्त्रों से ही होता है) कर्मों के संकल्प के लिये लोक समर्थ होता है। (क्योंकि कर्मों से ही लोक की प्राप्ति होती है) और लोकों के संकल्प के लिये सम्पूर्ण जगत् समर्थ होता है। वह यह सम्पूर्ण जगत् संकल्प मूलक ही है। अतः तुम संकल्प की उपासना करो।।२।।

''यह ब्रह्म है'' इस प्रकार वह जो कोई संकल्प की उपासना करता है। विधाता द्वारा रचे नित्य लोकों को स्वयं नित्य होकर, प्रतिष्ठित लोकों को स्वयं प्रतिष्ठित होकर और स्वयं व्यथित न होता हुआ शत्रु आदि के भय से रहित लोकों को सभी प्रकार से

समर्थीभवन्ति फलाय। ततो **लोकः** फलं **संकल्पते** कर्मकर्तृसमवायितया समर्थीभवतीत्यर्थः। **लोकस्य संक्लृप्त्यै सर्वं** जगत्**संकल्पते** स्वरूपावैकल्याय। एतद्धीदं सर्वं जगद्यत्फलावसानं तत्सर्वं संकल्पमूलम्। अतो विशिष्टः **स एष संकल्पः**। अतः **संकल्पमुपास्स्वेत्यु**क्त्वा फलमाह तदुपासकस्य।। २।।

स यः संकल्पं ब्रह्मेति ब्रह्मबुद्ध्यो**पास्ते क्लृप्तान्वै** धात्राऽस्येमे लोकाः फलमिति क्लृप्तान्समर्थितान्संकल्पितान्**स** विद्वान्**ध्रुवान्**नित्यानत्यन्ताध्रुवापेक्षया ध्रुवश्च स्वयम्। लोकिनो ह्यध्रुवत्वे लोके ध्रुवक्लृप्तिर्व्यर्थेति **ध्रुवः** सन्**प्रतिष्ठितानु**पकरणसंपन्नानित्यर्थः। पशुपुत्रादिभिः प्रतितिष्ठतीति दर्शनात्स्वयं च प्रतिष्ठित आत्मीयोपकरणसंपन्नोऽ**व्यथमानान**मित्रादित्रासरहिता**नव्यथमानश्च** स्वय**मभिसिध्यत्य**भिप्राप्नोतीत्यर्थः। **यावत्संकल्पस्य गतं** संकल्पगोचरस्तत्रास्य **यथाकामचारो भवति**

यावत्संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः संकल्पाद्भूय इति संकल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥३॥

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः॥४॥

(अथ सप्तमाध्ययस्य पञ्चमः खण्डः।)

चेतयितृत्वं **चित्तं वाव संकल्पाद्भूयो यदा वै चेतयतेऽथ संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥१॥**

प्राप्त कर लेता है। जहाँ तक संकल्प की गति है, वहाँ तक उसकी स्वच्छन्द गति हो जाती है। ''यह ब्रह्म है'' जो इस प्रकार संकल्प की उपासना करता है। (नारद ने कहा) भगवन्! क्या संकल्प से भी श्रेष्ठ कोई वस्तु है। (सनत्कुमार ने कहा-) हाँ, संकल्प से भी बढ़कर वस्तु है (नारद ने कहा-) भगवन्! मुझे आप उसी तत्त्व को बतलावें॥३॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

संकल्प की अपेक्षा चित्त की श्रेष्ठता

चित्त ही संकल्प से श्रेष्ठ है। जब पुरुष चेतनायुक्त होता है, तभी वह (भूत एवं भविष्यत् विषयों के प्रयोजन में समर्थ) संकल्प करता है, फिर मनन करता है, उसके बाद वाणी को बोलने के लिये प्रेरित करता है, वाणी को नाम में लगाता है, क्योंकि नाम में मन्त्र एकरूप होते हैं और मन्त्रों में कर्म विद्यमान होते हैं॥१॥

आत्मनः संकल्पस्य न तु सर्वेषां संकल्पस्येति। उत्तरफलविरोधात्। **यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्त** इत्यादि पूर्ववत्॥३॥

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः॥४॥

चित्तं वाव संकल्पाद्भूयः चित्तं चेतयितृत्वं प्राप्तकालानुरूपबोधवत्त्वमतीतानागतविषयप्रयोजननिरूपणसामर्थ्यं च तत्संकल्पादपि भूयः। कथम्? यदा **वै** प्राप्तं वस्त्विदमेवं प्राप्तमिति **चेतयते** तदादानाय वाऽपोहाय वा**ऽथ संकल्पयतेऽथ मनस्यतीत्यादि** पूर्ववत्॥१॥

तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि, चित्तात्मनि, चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान्भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तꣳ ह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति ।।२।।

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान्वै स लोकान्ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति,

वे ये (संकल्प से लेकर कर्मफल पर्यन्त सभी) एक मात्र चित्तरूप लयस्थान वाले, चित्त से उत्पन्न होने वाले तथा चित्त में ही स्थित रहने वाले हैं। इसीलिये यद्यपि कोई पुरुष बहुत से शास्त्रादि का ज्ञान रखता हो, फिर भी यदि वह अचित्त रहता है, तो लोग कहने लग जाते हैं कि ''यह तो कुछ भी नहीं जानता (मूर्ख है) यदि यह कुछ जानता या विद्वान् होता तो ऐसा मूर्ख न होता'' और यदि कोई अल्पज्ञ होने पर भी चिन्तन शील हो, तो उससे ही ये सभी लोग श्रवण करना चाहते हैं (क्योंकि चिन्तन सामर्थ्य से दूसरे के हृदय में अपने अभिप्राय को वह पुरुष उतार देता है)। अतः चित्त ही उनका एकमात्र आधार है, चित्त ही आत्मा है और चित्त ही प्रतिष्ठा है। इसलिये तू चित्त की उपासना कर।। २।।

''यह ब्रह्म है'' इस प्रकार वह जो कोई चित्त की उपासना करता है, वह चित्त से युक्त हो बुद्धि युक्त गुणों से उपचित ध्रुव लोक को, चित्तोपासक स्वयं ध्रुव होकर, प्रतिष्ठित लोकों

तानि संकल्पादीनि कर्मफलान्तानि **चित्तैकायनानि चित्तात्मनि** चित्तोत्पत्तीनि **चित्ते प्रतिष्ठितानि** चित्तस्थितानीत्यपि पूर्ववत्। किंच चित्तस्य माहात्म्यम्। यस्माच्चित्तं संकल्पादिमूलं, **तस्माद्यद्यपि बहुविद्**बहुशास्त्रादिपरिज्ञानवान्सन्न**चित्तो भवति** प्राप्तादिचेतयितृत्वसामर्थ्यविरहितो भवति, तं निपुणा लौकिका **नायमस्ति** विद्यमानोऽप्यसत्सम एवेत्य**ेनमाहुः**। **यच्चा**यं किंचिच्छास्त्रादि वेद श्रुतवांस्तदप्यस्य वृथैवेति कथयन्ति। कस्मात्। **यद्ययं** विद्वान्स्यादित्थमेवमचित्तो न स्यात्तस्मादस्य श्रुतमप्यश्रुतमेवेत्याहुरित्यर्थः। अथाल्पविदपि यदि चित्तवान्भवति तस्मा एतस्मै तदुक्तार्थग्रहणायै**वोता**पि **शुश्रूषन्ते** श्रोतुमिच्छन्ति। तस्माच्च **चित्तं ह्येवैषां** संकल्पादीना**मेकायनमि**त्यादि पूर्ववत्।। २।।

यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इति चित्ताद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।३।।

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।।५।।

(अथ सप्तमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः)

एकाग्रता **ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवाऽऽपो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यायन्तीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति**

को स्वयं प्रतिष्ठित होकर और अव्यथित लोकों को स्वयं अव्यथित हुआ सभी प्रकार से प्राप्त कर लेता है। उस उपासक की वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है, जहाँ तक चित्त की गति है। ''यह ब्रह्म है'' इस प्रकार जो चित्त की उपासना करता है। (नारद ने कहा-) भगवन्! क्या चित्त से भी बढ़कर कोई वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा-) हां, चित्त से भी बढ़कर वस्तु लोक में है, (नारद ने कहा-) भगवन्! तब तो मुझे उसी का उपदेश करें।।३।।

।।इति पञ्चमः खण्डः ।।

चित्त की अपेक्षा ध्यान का महत्त्व

चित्त से बढ़कर ध्यान है, ध्यान ही चित्त से श्रेष्ठ है (ध्यान को एकाग्रता भी कहते हैं)। पृथिवी मानो ध्यान करती है, अन्तरिक्ष मानो ध्यान करता है, द्युलोक मानो ध्यान करता है, (क्योंकि ये सब अचल दीखते हैं) जल मानो ध्यान करते हैं, पर्वत मानो ध्यान करते हैं। देव

चित्तानुपचितान्बुद्धिमद्गुणैः स चित्तोपासको ध्रुवानित्यादि चोक्तार्थम्।।३।।

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः।।५।।

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयः। ध्यानं नाम शास्त्रोक्तदेवताद्यालम्बनेष्वचलो भिन्नजातीयैरनन्तरितः प्रत्ययसंतानः, एकाग्रतेति यमाहुः। दृश्यते च ध्यानस्य माहात्म्यं फलतः। कथम्? यथा योगी ध्यायन्निश्चलो भवति ध्यानफललाभे। एवं **ध्यायतीव** निश्चला दृश्यते **पृथिवी**। ध्यायतीवान्तरिक्षमित्यादि समानमन्यत्। देवाश्च मनुष्याश्च देवमनुष्या मनुष्या एव वा देवसमा **देवमनुष्याः** शमादिगुणसंपन्ना मनुष्या देवस्वरूपं न जहतीत्यर्थः। यस्मादेवं विशिष्टं ध्यानं, **तस्माद्य इह** लोके **मनुष्याणामेव**

ध्यानापादाᳪंशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानापादाᳪंशा इवैव ते भवन्ति ध्यानमुपास्स्वेति ।।१।।

स यो ध्यान ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।।६।।

तुल्य मनुष्य भी मानो ध्यान करते हैं। अतः जो भी कोई मनुष्यों में महत्त्व प्राप्त करते हैं, वे मानो ध्यान का ही अंशतः लाभ लेते हैं। पर जो क्षुद्र विचार वाले होते हैं, वे कलह परायण, निन्दक, दूसरों के दोषों को सामने ही कह देने वाले तथा समर्थ होते हैं। वे पुरुष भी ध्यान के ही लाभ को अंशतः प्राप्त करते हैं। अतः तुम ध्यान की ही उपासना करो।।१।।

'यह ब्रह्म है' इस प्रकार वह जो ध्यान की उपासना करता है, उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है जहाँ तक ध्यान की गति मानी गयी है। ''यह ब्रह्म है'' इस प्रकार ध्यान की जो उपासना करता है। (नारद ने कहा-) भगवन्! क्या ध्यान से भी उत्कृष्ट वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा-) हाँ! ध्यान से भी बढ़कर लोक में वस्तु है (नारद ने कहा-) तब तो भगवन्! मुझे उसी का उपदेश करें।।२।।

।।इति षष्ठः खण्डः ।।

धनैर्विद्यया गुणैर्वा **महत्तां** महत्त्वं **प्राप्नुवन्ति** धनादिमहत्त्वहेतुं लभन्त इत्यर्थः। **ध्यानापादांशा इव** ध्यानस्याऽऽपादनमापादो ध्यानफललाभ इत्येतत्तस्यांशोऽवयवः कला काचिद्ध्यानफललाभकलावन्त इवैवेत्यर्थः। **ते भवन्ति** निश्चला इव लक्ष्यन्ते न क्षुद्रा इव। **अथ ये** पुनर**ल्पाः** क्षुद्राः किंचिदपि धनादिमहत्त्वैकदेशमप्राप्तास्ते पूर्वोक्तविपरीताः **कलहिनः** कलहशीलाः **पिशुनाः** परदोषोद्भासका **उपवादिनः** परदोषं सामीप्ययुक्तमेव वदितुं शीलं येषां **त** उपवादिनश्च भवन्ति। **अथ ये** महत्त्वं प्राप्ता धनादिनिमित्तं, तेऽन्यान्प्रति प्रभवन्तीति **प्रभवो** विद्याचार्यराजेश्वरादयो, **ध्यानापादांशा इवै**त्याद्युक्तार्थम्। अतो दृश्यते ध्यानस्य महत्त्वं फलतोऽतो भूयश्चित्तादतस्त**दुपास्स्वेत्या**द्युक्तार्थम्।।१।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः।।६।।

(अथ सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः।)

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्त्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाऽऽकाशं चापश्च तेजश्च देवाꣳश्च मनुष्याꣳश्च पशूꣳश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं चान्नं च रसं चेमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति ॥ १॥

ध्यान से विज्ञान की श्रेष्ठता

शास्त्र विषयक विज्ञान ही ध्यान से श्रेष्ठ है। विज्ञान से ही पुरुष (यह ऋग्वेद है, इस प्रकार प्रमाणरूप से) ऋग्वेद को जानता है तथा विज्ञान से ही यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ आथर्वणवेद, वेदों में पंचमवेद इतिहास पुराण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीति, निरुक्त, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष, गारुड विद्या, शिल्पविद्या, द्युलोक, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, श्वापद तथा कीट, पतंग, पिपीलिकापर्यन्त, सम्पूर्ण जीव, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, साधु और असाधु, हृदयज्ञ और अहृदयज्ञ, अन्न, रस, एवं इस लोक और परलोक को जानता है। अतः तू विज्ञान की उपासना कर।। १।।

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयः। विज्ञानं शास्त्रार्थविषयं ज्ञानं तस्य ध्यानकारणत्वाद्ध्यानाद्भूयस्त्वम्। कथं च तस्य भूयस्त्वमित्याह— **विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानात्य**यमृग्वेद इति प्रमाणतया यस्यार्थज्ञानं ध्यानकारणम्। तथा **यजुर्वेदमि**त्यादि। किंच पश्वादींश्च धर्माधर्मौ शास्त्रसिद्धौ। साध्वसाधुनी लोकतः स्मार्ते वाऽदृष्टविषयं च सर्वं **विज्ञानेनैव विजानाती**त्यर्थः। तस्माद्युक्तं ध्यानाद्विज्ञानस्य भूयस्त्वम्। अतो **विज्ञानमुपास्स्वेति**।। १।।

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै स लोकाञ्ज्ञानवतोऽभिसिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।।७।।

(अथ सप्तमाध्यायस्याष्टमः खण्डः।)

बलं वाव विज्ञानाद्भूयो, अपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन्परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो कोई विज्ञान की उपासना करता है, उसे विज्ञानवान् एवं ज्ञानवान् लोकों की प्राप्ति होती है। उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है, जहाँ तक विज्ञान की गति है, जो विज्ञान की "यह ब्रह्म है" इस प्रकार उपासना करता है। (नारद ने कहा) भगवन्! क्या विज्ञान से भी कुछ श्रेष्ठ है? (सनत्कुमार ने कहा-) हाँ! विज्ञान से भी श्रेष्ठ अवश्य है। (नारद ने कहा-) तब तो भगवान् मुझे उसी को बतलावें ।।२।।

।।इति सप्तमः खण्डः।।



विज्ञान से बल की महत्ता

बल ही विज्ञान से श्रेष्ठ है, क्योंकि सौ विज्ञानवानों को भी एक बलवान् कँपा देता है। जब यह पुरुष बलवान् होता है- तभी उठने वाला भी होता है, उठने वाला होने पर ही

शृणूपासनफलं विज्ञानवतो विज्ञानं येषु लोकेषु, **तान्विज्ञानवतो लोकाञ्ज्ञानवतश्चाभिसिध्यत्य**भिप्राप्नोति। विज्ञानं शास्त्रार्थविषयं ज्ञानमन्यविषयं नैपुण्यं तद्वद्भिर्युक्ताँल्लोकान्प्राप्नोतीत्यर्थः। **यावद्विज्ञानस्ये**त्यादि पूर्ववत्।। २।।

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः।।७।।

बलं वाव विज्ञानाद्भूयः बलमित्यन्नोपयोगजनितं मनसो विज्ञेये प्रतिभानसामर्थ्यम्। अनशनादृगादीनि न वै मा प्रतिभान्ति भो इति श्रुतेः। शरीरेऽपि तदेवोत्थानादिसामर्थ्यं

श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवति बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति ॥१॥

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलाद्भूय

गुरुजनों की परिचर्या करने वाला होता है और परिचर्या करने वाला होने पर ही उनका अन्तरंग होता है और उपसदन करने वाला ही दर्शन करने वाला होता है। तत्पश्चात् श्रवण करने वाला होता है, मनन करने वाला होता है, बोध वाला होता है, कर्ता होता है और विज्ञाता होता है। बल से ही पृथिवी ठहरी हुई है, बल से ही अन्तरिक्ष, बल से ही द्युलोक, बल से ही पर्वत, बल से ही देवता और मनुष्य, बल से ही पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, श्वापद और कीट, पतंग एवं पिपीलिका पर्यन्त सम्पूर्ण प्राणी स्थित हैं। बल से ही लोक स्थित हैं। अतएव तुम बल की उपासना करो।।१।।

''यह ब्रह्म है'' इस प्रकार वह जो कोई बल की उपासना करता है, उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है, जहाँ तक बल की गति है। जो व्यक्ति (यह ब्रह्म है) इस प्रकार बल की उपासना करता है। (नारद ने कहा-) भगवान्! क्या बल से भी कोई वस्तु उत्कृष्ट है?

यस्माद्**विज्ञानवतां शतमप्येकः** प्राणी **बलवानाकम्पयते**। यथा हस्ती मत्तो मनुष्याणां शतं समुदितमपि। यस्मादेवमन्नाद्युपयोगनिमित्तं बलं, तस्मात्स पुरुषो **यदा बली** बलेन तद्वान्**भवत्यथोत्थाता**ेत्थानस्य कर्तो**त्तिष्ठंश्च** गुरूणामाचार्यस्य च **परिचरिता** परिचरणस्य शुश्रूषायाः कर्ता **भवति परिचरन्नुपसत्ता** तेषां समीपगोऽन्तरङ्गः प्रियो भवतीत्यर्थः। **उपसीदं**श्च सामीप्यं गच्छन्नेकाग्रतयाऽऽचार्यस्यान्यस्य चोपदेष्टुर्गुरो**र्द्रष्टा भवति**। ततस्तदुक्तस्य **श्रोता** भवति। तत इदमेभिरुक्तमेवमुपपद्यत इत्युपपत्तितो **मन्ता भवति** मन्वानश्च **बोद्धा भवत्ये**वमेवेदमिति। तत एवं निश्चित्य तदुक्तार्थस्य

इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्याष्टमः खण्डः।। ८।।

(अथ सप्तमाध्यायस्य नवमः खण्डः।)

अन्नं वाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दश रात्रीर्नाश्नीयाद्यद्यु ह जीवेदथवाऽद्रष्टाऽश्रोताऽमन्ताऽबोद्धाऽकर्ताऽविज्ञाता भवत्यथान्नस्याऽऽयै द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवत्यन्नमुपास्स्वेति ।।१।।

(सनत्कुमार ने कहा-) हाँ; बल से भी कोई वस्तु श्रेष्ठ जरूर है। तब (नारद ने कहा-) भगवान्! मुझे उसका ही उपदेश करें।। २।।

।। इत्यष्टमः खण्डः ।।



बल से अन्न श्रेष्ठ है

(बल का कारण) अन्न ही बल से श्रेष्ठ है। अतएव यदि कोई दश दिन भोजन न करे और जीवित रह भी जाय, तो भी वह अद्रष्टा, अश्रोता, अमन्ता, अबोद्धा, अकर्ता तथा अविज्ञाता निश्चय हो जाता है, (क्योंकि भोजन के अभाव में देखने, सुनने, मनन करने, जानने आदि व्यापार में वह असमर्थ हो जाता है)। पुनः अन्न मिलने पर वह पुरुष देखता है, सुनता है, मनन करता है, बोद्धा हो जाता है, कर्ता और विज्ञाता होता है। इसलिये तू अन्न की उपासना कर।। १।।

कर्ताऽनुष्ठाता **भवति विज्ञाता**ऽनुष्ठानफलस्यानुभविता **भवती**त्यर्थः। किंच बलस्य माहात्म्यं बलेन वै **पृथिवी तिष्ठती**त्याद्युज्वर्थम्।। १।। २।।

इति सप्तमाध्यायाष्टमः खण्डः।। ८।।

अन्नं वाव बलाद्भूयः। बलहेतुत्वात्। कथमन्नस्य बलहेतुत्वमित्युच्यते। यस्माद्बलकारणमन्नं **तस्माद्यद्यपि** कश्चिद्**दश रात्रीर्नाश्नीयात्**सोऽन्नोपयोगनिमित्तस्य बलस्य हान्या म्रियते, न चेन्म्रियते **यद्यु ह जीवेत्**। दृश्यन्ते हि मासमप्यनशनन्तो जीवन्तः। **अथवा** स जीवन्नप्य**द्रष्टा** भवति गुरोरपि तत एव**श्रोते**त्यादि पूर्वविपरीतं सर्वं **भवति**। अथ यदा बहून्यहान्यनशितो दर्शनादिक्रियास्वसमर्थः सन्**नन्नस्याऽऽयी**। आगमनमायोऽन्नस्य प्राप्तिरित्यर्थः, सा यस्य विद्यते सोऽन्नस्याऽऽयी। आय इत्येत-द्वर्णव्यत्ययेन अथान्नस्याऽऽया इत्यपि पाठ एवमेवार्थः। द्रष्टेत्यादिकार्यश्रवणात्। दृश्यते ह्यन्नोपयोगे दर्शनादिसामर्थ्यं, न तदप्राप्तावतो, **अन्नमुपास्स्वेति**।। १।।

स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान्पानवतोऽभिसिध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नाद्भूय इत्यन्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्य नवमः खण्डः।।९।।

(अथ सप्तमाध्यायस्य दशमः खण्डः।)

आपो वावान्नाद्भूयस्यस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणाः अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्ता येयं पृथिवी

''यह ब्रह्म है'' इस प्रकार वह जो कोई पुरुष अन्न की उपासना करता है, उसे प्रभूत अन्न वाले तथा प्रभूत जल वाले लोकों की प्राप्ति होती है। जहाँ तक अन्न की गति है, वहाँ तक उस उपासक की स्वच्छन्द गति होती है। ''यह ब्रह्म है'' इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है। (नारद ने कहा-) भगवन्! क्या अन्न से भी बढ़कर कोई वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा-) हाँ, अन्न से भी बढ़कर लोक में वस्तु अवश्य है। (नारद ने कहा-) भगवान्! तब तो मुझे उसी का उपदेश करें।।२।।

।।इति नवमः खण्डः।।

अन्न की अपेक्षा जल की श्रेष्ठता

(अन्न का कारण होने से) जल ही अन्न की अपेक्षा श्रेष्ट है। इसलिये जब अच्छी वृष्टि नहीं होती, तो प्राण दुःखी हो जाते हैं कि(इस वर्ष) अन्न थोड़ा होगा और जब वृष्टि अच्छी होती है

फलं **चान्नवतः** प्रभूतान्नान्वै **स लोकान्पानवतः** प्रभूतोदकांश्चान्नपानयोर्नित्य संबन्धाल्लोकान**भिसिध्यति**। समानमन्यत्।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्य नवमः खण्डः।।९।।

आपो वावान्नाद्भूयस्योऽन्नकारणत्वात्। यस्मादेवं **तस्माद्यदा** यस्मिन्काले **सुवृष्टिः** सस्यहिता शोभना वृष्टि**र्न भवति** तदा **व्याधीयन्ते प्राणा** दुःखिनो भवन्ति। किंनिमित्तमित्याहान्नमस्मिन्संवत्सरे नः कनीयोऽल्पतरं भविष्यतीति। अथ पुन**र्यदा सुवृष्टिर्भ**वति तदाऽऽ**नन्दिनः** सुखिनो हृष्टाः **प्राणाः** प्राणिनो **भवन्त्यन्नं बहु**

यदन्तरिक्षं यद्द्यौर्यत्पर्वता यद्देवमनुष्या यत्पशवश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकमाप एवेमा मूर्ता अप उपास्स्वेति ॥१॥

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त, आप्नोति सर्वान्कामाꣳस्तृप्तिमान्भवति यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्यो भूय इत्यद्भ्यो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य दशमः खण्डः॥ १०॥

तब अन्न खूब होगा, ऐसा समझ कर प्राण प्रसन्न होता है (क्योंकि यह जो मूर्तिमती पृथिवी है) वह मूर्तिमान् जल ही तो है, तथा जो अन्तरिक्ष, जो द्युलोक, जो पर्वत, जो देवता एवं मनुष्य और जो पशु और पक्षी, जो तृण, वनस्पति, स्वापद और कीट, पतंग, पिपीलिका पर्यन्त प्राणी हैं वे भी मूर्तिमान् जल ही हैं। अतएव तू जल की ही उपासना कर।। १।।

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो कोई जल की उपासना करता है, वह उपासक सम्पूर्ण काम्य वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है और तृप्त होता है। उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है, जहाँ तक जल की गति है। (नारद ने कहा-) भगवन्! क्या जल से भी श्रेष्ट वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा-) जल से भी श्रेष्ठ वस्तु अवश्य है। (नारद ने कहा-) भगवन्! तब मुझे आप उसी का उपदेश करें ।।२।।

।। इति दशमः खण्डः।।

प्रभूतं **भविष्यतीति**। अप्संभवत्वान्मूर्तस्यान्नस्याऽऽप **एवेमा मूर्ता** मूर्तिभेदाकारपरिणता इति मूर्ता येयं **पृथिवी यदन्तरिक्षमित्यादि। आप एवेमा मूर्ताः**, अतोऽप **उपास्स्वेति**।। १ ।।

फलं स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त **आप्नोति सर्वान्कामा**न्काम्यान्मूर्तिमतो विषया-नित्यर्थः। अप्संभवत्वाच्च तृप्तेरम्बूपासाना**त्तृप्तिमांश्च भवति**। समानमन्यत्।। २।।

इति सप्तमाध्यायस्य दशमः खण्डः।। १०।।

13



(अथ सप्तमाध्यायस्यैकादशः खण्डः।)



तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याऽऽकाशमभितपति तदाऽऽहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिराह्रादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तेज उपास्स्वेति ।।१।।



जल की अपेक्षा तेज की श्रेष्ठता

(जल का कारण होने से) जल की अपेक्षा तेज ही श्रेष्ठ है। क्योंकि यह तेज जब वायु को निश्चल करके आकाश को सभी ओर से संतप्त करता है, तब लोग कहते हैं, जगत् सामान्यरूप से संतप्त हो रहा है, बड़ा ताप है। अतः वर्षा होगी। इस प्रकार तेज ही पहले अपने को उद्भूत हुआ दिखला कर फिर जल की सृष्टि करता है। यह तेज ऊर्ध्वगामिनी और तिर्यग्गामिनी बिजलियों के सहित गड़गड़ाहट का शब्द फैला देता है। अतएव लोग कहते हैं, बिजली चमकती है, बादल गरजता है, वर्षा अवश्य होगी। इस प्रकार तेज ही पहले अपने को उक्त रूपों में दिखलाकर फिर जल बरसाता है। इसीलिये तू तेज की उपासना कर।।१।।



तेजो वावाद्भ्यो भूयः तेजसोऽप्कारणत्वात्। कथमप्कारणत्वमित्याह। यस्मादब्योनिस्तेजस्तस्मात्**तद्वा एतत्**तेजो **वायुमागृह्या**वष्टभ्य स्वात्मन निश्चलीकृत्य वायु**माकाशमभितपत्या**काशमभिव्याप्नुवत्तपति यदा **तदाऽऽहुर्लौ**किका **निशोचति** संतपति सामान्येन जग**न्नितपति** देहानतो **वर्षिष्यति वा इति**। प्रसिद्धं हि लोके कारणमभ्युद्यतं दृष्टवतः कार्यं भविष्यतीति विज्ञानम्। **तेज एव तत्पूर्व**मात्मानमुद्भूतं **दर्शयित्वाऽथा**नन्तर**मपः सृजते**ऽतोऽप्स्रष्टृत्वाद्भूयोऽदभ्यस्तेजः। किंचान्य**त्तदेत**त्तेज एव स्तनयित्नुरूपेण वर्षहेतुर्भवति। कथम्? **ऊर्ध्वाभिश्चो**र्ध्वगामिनीभि**र्विद्युद्भिस्तिरश्चीभिश्च** तिर्यग्गताभिश्च सह**ाऽऽह्रादाः** स्तनयनशब्दा**श्चरन्ति। तस्मात्त**द्दर्शनादाहुर्लौकिका **विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा** इत्याद्युक्तार्थम्। अतस्**तेज उपास्स्वेति**।।१।।





स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान्भास्वतोऽपहततमस्कानभिसिध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।। ११ ।।

(अथ सप्तमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।)

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाऽऽह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन

''यह ब्रह्म है'' इस प्रकार वह जो कोई पुरुष तेज की उपासना करता है, वह निश्चय ही तेजस्वी होकर तेज सम्पन्न प्रकाशवान् और बाह्य एवं आभ्यन्तर तम से रहित लोकों को प्राप्त करता है। उस उपासक की वहाँ तक गति हो जाती है, जहाँ तक तेज की गति है। ''यह ब्रह्म है'' इस प्रकार जो तेज की उपासना करता है। (नारद ने कहा-) भगवन्! क्या तेज से भी बढ़कर कोई चीज है? (सनत्कुमार ने कहा-) हाँ, तेज से बढ़कर कोई वस्तु है ही। (नारद ने कहा) तब तो भगवान् मुझे उसी तत्त्व का उपदेश करें।। २।।

।।इत्येकादशः खण्डः ।।



तेज की अपेक्षा आकाश की श्रेष्ठता

(वायु सहित तेज का कारण होने से) आकाश ही तेज से श्रेष्ठ है। आकाश में ही सूर्य-चन्द्र ये दोनों तथा बिजली, नक्षत्र और अग्नि स्थित हैं, आकाश से ही एक व्यक्ति दूसरे को

तस्य तेजस उपासनफलं-**तेजस्वी वै** भवति। **तेजस्वत** एव च **लोकान्भास्वतः** प्रकाशवतो**ऽपहततमस्का**न्बाह्याध्यात्मिकाज्ञानाद्यपनीततमस्का**नभिसिध्यति**। ऋज्वर्थमन्यत्।। २ ।।

इति सप्तमाध्यायस्यैकादशः खण्डः।। ११ ।।

आकाशो वाव तेजसो भूयान्। वायुसहितस्य तेजसः कारणत्वाद्व्योम्नो वायुमागृह्येति तेजसा सहोक्तो वायुरिति पृथगिह नोक्तस्तेजसः कारणं हि लोके कार्याद्भूयो दृष्टम्। यथा घटादिभ्यो मृत्तथाऽऽकाशो वायुसहितस्य तेजसः कारणमिति ततो भूयान्? कथम्। **आकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ** तेजोरूपौ **विद्युन्नक्षत्राण्यग्निश्च** तेजोरूपाण्याकाशेऽन्तः। यच्च यस्यान्तर्वर्ति तदल्पं, भूय इतरत्। किंचा**ऽऽकाशेनाऽऽह्वयति**

प्रतिशृणोत्याकाशे रमते आकाशे न रमते आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति ॥१॥

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्ते आकाशवतो वै स लोकान्प्रकाशवतोऽसंबाधानुरुगायवतोऽभिसिध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाशाद्भूय इत्याकाशाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।। १२।।

पुकारते हैं, आकाश से ही सुनते हैं, आकाश के द्वारा ही प्रतिश्रवण करते हैं, आकाश में ही दूसरे के साथ रमण करते हैं, आकाश में ही रमण नहीं करते, आवरण शून्य आकाश में ही सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं और आकाश की ओर ही (सब जीव तथा अंकुरादि) बढ़ते हैं। अतः तुम आकाश की उपासना करो।। १।।

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो कोई व्यक्ति आकाश की उपासना करता है, वह विस्तार युक्त प्रकाशवान् पीड़ादि दुःख रहित और विस्तार वाले लोकों को प्राप्त करता है। उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति होती है, जहां तक आकाश की सीमा है। "यह ब्रह्म है" इस प्रकार जो आकाश की उपासना करता है। (नारद ने कहा-) हे भगवन्! क्या आकाश से बढ़कर भी कोई वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा-) हाँ! आकाश से भी बढ़कर वस्तु है। (नारद ने कहा-) भगवन्! तब तो आप मुझे उसी का उपदेश करें।। २।।

।। इति द्वादशः खण्डः ।।

चान्यमन्य आहूतश्चेतर **आकाशेन शृणोत्यन्योक्तं** च शब्दमन्यः **प्रतिशृणोत्याकाशे रमते** क्रीडत्यन्योऽन्यं सर्वस्तथा **न रमते चाऽऽकाशे** वध्वादिवियोग आकाशे **जायते** न मूर्तेनावष्टब्धे। तथाऽऽ**काशम**भिलक्ष्याङ्कुरादि जायते, न प्रतिलोमम्। अत आकाशमुपास्स्व।। १।।

फलं शृण्व**ाकाशवतो वै** विस्तारयुक्तान्**स** विद्वाँल्**लोकान्प्रकाशवतः**। प्रकाशाकाशयोर्नित्यसंबन्धात्प्रकाशवतश्च लोकान्संबाधान्संबाधनं संबाधः, संबाधोऽन्योन्यपीडा, तद्रहितान्**संबाधानुरुगायवतो** विस्तीर्णगतीन्विस्तीर्णप्रचाराँल्लोका**नभिसिध्यति**। **यावदाकाशस्ये**त्याद्युक्तार्थम्।। २।।

इति सप्तमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।। १२।।

(अथ सप्तमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः।)

स्मरो वावाऽऽकाशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्न स्मरन्तो नैव ते कंचन शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानीरन्यदा वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन्स्मरेण वै पुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून्स्मरमुपास्स्वेति ॥१॥

स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथा-कामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः स्मराद्भूय

आकाश की अपेक्षा स्मरण की श्रेष्ठता

(अन्तःकरण का धर्मरूप) स्मरण ही आकाश से श्रेष्ठ है। अतएव यद्यपि एक स्थान में बहुत से लोग। (परस्पर भाषण करते हुए) बैठे हों, तथापि स्मरण न करने पर वे न कुछ श्रोतव्य बात सुन सकते हैं, न मन्तव्य बात का मनन कर सकते हैं और न ज्ञातव्य वस्तु को जान ही सकते हैं। पर जिस समय स्मरण करते हैं, उस समय श्रोतव्य को सुनते हैं, तभी मन्तव्य को मनन भी करते हैं और उसी समय विज्ञातव्य को जान सकते हैं। (ऐसे ही मेरे पुत्र हैं, ये मेरे पशु हैं,) इस प्रकार स्मरण करने से ही पुरुष पुत्रों को जानता है और स्मरण से पशुओं को पहचानता है। इसलिये तू स्मरण की उपासना कर।।१।।

''यह ब्रह्म है'' इस प्रकार वह जो कोई पुरुष स्मरण की उपासना करता है, उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है, जहाँ तक स्मरण की गति है। ''यह ब्रह्म है'' इस प्रकार जो कोई

स्मरो वावाऽऽकाशाद्भूयः स्मरणं स्मरोऽन्तःकरणधर्मः। स आकाशाद्भूयानिति द्रष्टव्यं लिङ्गव्यत्ययेन। स्मर्तुः स्मरणे हि सत्याकाशादि सर्वमर्थवत्स्मरणवतो भोग्यत्वात्। असति तु स्मरणे सदप्यसदेव। सत्त्वकार्याभावात्। नापि सत्त्वं स्मृत्यभावे शक्यमाकाशादीनामवगन्तुमित्यतः स्मरणस्याऽऽकाशाद्भूयस्त्वम्। दृश्यते हि लोके स्मरणस्य भूयस्त्वं यस्मा**त्तस्माद्यद्यपि** समुदिता **बहव** एकस्मिन्नासीरन्नुपविशेयुस्ते तत्राऽऽसीना अन्योन्यभाषितमपि न **स्मरन्त**श्चेत्स्युर्**नैव ते कंचन** शब्दं **शृणुयु**स्तथा **न मन्वीर**न्मन्तव्यं चेत्स्मरेयुस्तदा मन्वीरन्स्मृत्यभावान्न मन्वीरंस्तथा न **विजानीरन्**। **यदा वाव ते स्मरेयु**र्मन्तव्यं विज्ञातव्यं श्रोतव्यं चा**थ शृणुयुरथ** मन्वी**रन्नथ**

इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्ड।। १३।।

(अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।)

आशा वाव स्मराद्भूयस्याशेद्धो वै स्मरो मन्त्रानधीते कर्माणि कुरुते पुत्राॅंश्च पशूॅंश्चेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छत आशामुपास्स्वेति ।।१।।

स्मरण की उपासना करता है। (नारद ने कहा-) भगवन्! क्या स्मरण से भी कोई वस्तु श्रेष्ठ है? सनत्कुमार ने कहा- हाँ! स्मरण से भी श्रेष्ठ वस्तु अवश्य है। (नारद ने कहा-) भगवन्! तब तो आप मुझे उसी का उपदेश करें।। २।।

।। इति त्रयोदशः खण्डः ।।

स्मरण से आशा की श्रेष्ठता

(अप्राप्तवस्तु की इच्छारूप) आशा ही स्मरण से श्रेष्ठ है। आशा से प्रदीप्त हुआ स्मरण करके ही ऋगादि मन्त्रों का पाठ करता है, फलाशा से ही कर्म करता है, एवं पुत्र और पशुओं को चाहता है तथा (आशा से समृद्ध हुआ ही वह पुरुष) इस लोक और परलोक की कामना करता है। अतः तू आशा की उपासना कर।। १।।

विजानीरन्। तथा **स्मरेण वै** मम पुत्रा एत इति **पुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून्**। अतो भूयस्त्वात्**स्मरमुपास्स्वेति**। उक्तार्थमन्यत्।। १।। २।।

इति सप्तमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः।। १३।।

आशा वाव स्मराद्भूयसी। आशाऽप्राप्तवस्त्वाकाङ्क्षाऽऽशा तृष्णा काम इति यामाहुः पर्यायैः, सा च स्मराद्भूयसी। कथम् ? आशया ह्यन्तःकरणस्थया स्मरति स्मर्तव्यम्। आशाविषयरूपं स्मरन्नसौ **स्मरो** भवत्यत **आशेद्ध** आशयाऽभिवर्धितः स्मरभूतः स्मरन्नृगादीन्मन्त्रानधीतेऽधीत्य च तदर्थं ब्राह्मणेभ्यो विधींश्च श्रुत्वा **कर्माणि कुरुते** तत्फलाशयैव **पुत्रांश्च पशूंश्च**. कर्मफलभूता**निच्छते**ऽभिवाञ्छत्याशयैव तत्साधनान्यनुतिष्ठति। **इमं च लोकमा**शेद्धः एव स्मरँल्लोकसंग्रहहेतुभिरि्च्छते। **अमुं च** लोकमाशेद्धः स्मरंस्तत्साधनानुष्ठाने**नेच्छते**। अत आशारशनावबद्धं स्मराकाशादिनामपर्यन्तं जगच्चक्रीभूतं प्रतिप्राणि। अत आशायाः स्मरादपि भूयस्त्वमित्यत **आशामुपास्स्व**।। १।।

स य आशां ब्रह्मेत्युपास्ते आशयास्य सर्वे कामाः समृध्यन्त्यमोघा हास्याऽऽशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।। १४।।

(अथ सप्तमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः।)

प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन्प्राणे सर्वꣳ समर्पितं, प्राणः प्राणेन याति, प्राणः प्राणं

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार जो वह पुरुष आशा की उपासना करता है, उस उपासक की सब कामनाएं आशा से समुन्नत हो जाती हैं। उसकी सब प्रार्थनाएं सफल होती हैं। उस उपासक की वहाँ तक स्वच्छन्द गति होती है, जहाँ तक आशा की गति है। "यह ब्रह्म है" इस प्रकार जो आशा की उपासना करता है। (नारद ने कहा-) क्या आशा से भी कोई वस्तु श्रेष्ठ है? (सनत्कुमार ने कहा-) हाँ! आशा से भी बढ़कर कोई वस्तु है ही (नारद ने कहा-) तब तो भगवान्! मुझे उसी का उपदेश करें।। २।।

।।इति चतुर्दशः खण्डः ।।



आशा की अपेक्षा प्राण की श्रेष्ठता

आशा की अपेक्षा निःसन्देह प्राण श्रेष्ठ है। जैसे रथ के चक्के की नाभि में अरे लगे होते हैं, वैसे ही इस प्राण में सारा जगत् ओत-प्रोत हो रहा है। प्राण ही (अपनी शक्ति) प्राण के

यस्त्वाशां ब्रह्मेत्युपास्ते, शृणु तस्य फलम्। **आश**या सदोपासितयाऽस्योपासकस्य **सर्वे कामाः समृध्यन्ति** समृद्धिं गच्छन्ति। **अमोघा हास्याऽऽशिषः** प्रार्थनाः सर्वा **भवन्ति,** यत्प्रार्थितं सर्वं तदवश्यं भवतीत्यर्थः। **यावदाशाया गतमि**त्यादि पूर्ववत्।। २।।

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।। १४।।

नामोपक्रममाशान्तं कार्यकारणत्वेन निमित्तनैमित्तकत्वेन चोत्तरोत्तरभूयस्तयाऽवस्थितं स्मृतिनिमित्तसद्भावमाशारशनापाशैर्विपाशितं सर्वं सर्वतो बिसमिव तन्तुभिर्यस्मिन्प्राणे समर्पितम्। येन च सर्वतो व्यापिनाऽन्तर्बहिर्गतेन मणिगणा इव सूत्रेण ग्रथितं विधृतं च। स एष **प्राणो वा आशाया भूयान्**। कथमस्य भूयस्त्वमित्याह दृष्टान्तेन समर्थयंस्तद्भूयस्त्वम्। **यथा** वै लोके रथचक्रस्**यारा** रथ**नाभौ समर्पिताः** संप्रोताः संप्रवेशिता इत्येतत्।

ददाति, प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः ॥१॥

स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाऽऽचार्यं वा ब्राह्मणं वा किंचिद्भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वाऽस्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति ॥२॥

द्वारा गमन करता है, प्राण-प्राण को देता है और प्राण के लिये देता है। प्राण ही पिता है, प्राण ही माता है, प्राण भ्राता है, प्राण बहिन है, प्राण आचार्य है और प्राण ही ब्राह्मण है।। १।।

यदि कोई पुरुष अपने पिता, माता, भ्राता, बहिन, आचार्य या ब्राह्मण के प्रति (त्वंकारादि उनके अननुरूप कोई) अनुचित बात कहता है, (उसके समीपवर्ती विचारशील लोग) उससे कहते हैं- तुझे धिक्कार है। निश्चय ही तू पिता का हत्यारा है, तू तो माता का हत्यारा है, तू तो भाई को मारने वाला है, तू तो बहिन की हत्या करने वाला है, तू तो आचार्य का घातक है तथा निश्चय ही तू ब्रह्मघाती है।। २।।

एवमस्मिँल्लिङ्गसंघातरूपे प्राणे प्रज्ञात्मनि दैहिके मुख्ये यस्मिन्परा देवता नामरूपव्याकरणायाऽऽदर्शादौ प्रतिबिम्बवज्जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रविष्टा। यश्च महाराजस्येव सर्वाधिकारीश्वरस्य। "कस्मिन्वहमुत्क्रान्ते उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति स प्राणमसृजत" इति श्रुतेः। यस्तु च्छायेवानुगत ईश्वरम्। तद्यथा "रथस्यारेषु नेमिरर्पितो नाभावरा अर्पिता एवमेवैता भूतमात्राः प्रज्ञामात्रास्वर्पिता प्रज्ञामात्राः प्राणेऽर्पिताः। स एष प्राण एव प्रज्ञात्मा" इति कौषीतकिनाम्। अत **एवमस्मिन्प्राणे सर्वं** यथोक्तं **समर्पितम्**। अतः स एष **प्राणो**ऽपरतन्त्रः **प्राणेन** स्वशक्त्यैव **याति** नान्यकृतं गमनादिक्रियास्वस्य सामर्थ्यमित्यर्थः सर्वं क्रियाकारकफलभेदजातं प्राण एव न प्राणाद्बहिर्भूतमस्तीति प्रकरणार्थः। **प्राणः प्राणं ददाति**। यद्ददाति तत्स्वात्मभूतमेव। यस्मै ददाति तदपि प्राणायैव। अतः पित्राद्याख्योऽपि **प्राण** एव।। १।।

कथं पित्रादिशब्दानां प्रसिद्धार्थोत्सर्गेण प्राणविषयत्वमिति। उच्यते— सति प्राणे पित्रादिषु पित्रादिशब्दप्रयोगात्तदुत्क्रान्तौ च प्रयोगाभावात्। कथं तदित्याह। स यः कश्चित्पित्रादीनामन्यतमं **यदि भृशमिव** तदननुरूपमिव किंचिद्वचनं त्वंकारादियुक्तं **प्रत्याह**, तदैनं तं पार्श्वस्था आहुर्विवेकिनो **धिक्त्वाऽस्तु** धिगस्तु त्वामित्येवम्। **पितृहा वै त्वं** पितुर्हन्तेत्यादि।। २।।

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यतिसंदहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहाऽसीति न मातृहाऽसीति न भ्रातृहाऽसीति न स्वसृहाऽसीति नाऽऽचार्यहाऽसीति न ब्राह्मणहाऽसीति ।।३।।

प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति तं चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत ।।४।। goes beyond worldly talks. प्राणं सर्वेश्वरमयमहमस्मीत्यात्मत्वेनोपगतः

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।।४।।

किन्तु प्राण के निकल जाने पर उन्हीं पिता आदि के शरीर को यदि वह शूल से एकत्रित और छिन्न-भिन्न करके जला देवें तो भी तू पितृहत्यारा है, तू मातृघाती है, तू भ्रातृहा है, तू बहिन को मारने वाला है, तू आचार्य का घातक अथवा तू ब्रह्मघाती है, ऐसा कोई भी उससे कुछ नहीं कहते हैं।। ३।।

(चराचर सम्पूर्ण जगत्) ये सब प्राण ही हैं, वह जो इस प्रकार चिन्तन करता हुआ और इस प्रकार जानता हुआ अतिवादी हो जाता है। उससे यदि कोई कहे कि तू तो अतिवादी है, तो उस उपासक को यही कहना चाहिए, कि हाँ! मैं अतिवादी हूँ, उसे छिपाना नहीं चाहिये।। ४।।

।।इति पञ्चदशः खण्डः ।।

अथैनाने**वोत्क्रान्तप्राणां**स्त्यक्तदेहनाथान्**यद्यपि शूलेन समासं** समस्य व्यति**संदहेद्**-व्यत्यस्य संदहेदेवमप्यतिक्रूरं कर्म समासादिप्रकारेण दहनलक्षणं तद्देहसंबद्धमेव कुर्वाणं **नैवैनं ब्रूयुः पितृहे**त्यादि। तस्मादन्वयव्यतिरेकाभ्यामवगम्यते एतत्पित्राद्याख्योऽपि प्राण एवेति।। ३।।

तस्मात्**प्राणो ह्येवैतानि** पित्रादीनि **सर्वाणि भवति** चलानि स्थिराणि च। **स वा एष** प्राणविदेवं यथोक्तप्रकारेण **पश्यन्**फलतोऽनुभव**न्नेवं मन्वान** उपपत्तिभिश्चिन्तयन्नेवं **विजानन्नु**पपत्तिभिः संयोज्यैवमेवेति निश्चयं कुर्वन्नित्यर्थः। मननविज्ञानाभ्यां हि संभूतः शास्त्रार्थो निश्चितो दृष्टो भवेत्। अत एवं पश्य**न्नतिवादी भवति** नामाद्याशान्तमतीत्य वदनशीलो भवतीत्यर्थः। **तं चेद्ब्रूयुस्तं** यद्येवमतिवादिनं सर्वदा सर्वैः शब्दैर्नामाद्याशान्तमतीत्य वर्तमानं प्राणमेव वदन्तमेवं पश्यन्तमतिवदनशीलमतिवादिनं ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तस्य हि जगतः प्राण आत्माऽहमिति ब्रुवाणं ब्रूयु**रतिवाद्यसीति**। बाढ**मतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत**। कस्माद्ध्यसावपह्नुवीत। यत्प्राणं सर्वेश्वरमयमहमस्मीत्यात्मत्वेनोपगतः।। ४।।

~~इति त्रयोदशाह्निकम्।।१३।।~~

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः।।१५।।



(अथ सप्तमाध्यायस्य षोडशः खण्डः।)

एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदानीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥



सत्य ही ज्ञातव्य है

(सनत्कुमार ने कहा-) परमार्थ सत्य आत्मा के विज्ञान से जो अतिवदन करता है, वही वास्तव में अतिवादी होता है। (नारद ने कहा-) भगवन्! (आपकी शरणापन्न हुआ) मैं तो परमार्थ सत्य वस्तु के विज्ञान से ही अतिवदन करता हूँ। (सनत्कुमार ने कहा-) तब तो सत्य को ही विशेषरूप से जिज्ञासा तुझे करनी चाहिए। (नारद ने कहा-) भगवन्! मैं विशेषरूप में आपके द्वारा सत्य को ही जानना चाहता हूँ॥ १॥

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

स एष नारदः सर्वातिशयं प्राणं स्वमात्मानं सर्वात्मानं श्रुत्वा नातः परमस्तीत्युपरराम। न पूर्ववत्किमस्ति भगवः प्राणाद्भूय इति पप्रच्छ यतस्तमेवं विकारानृतब्रह्मविज्ञानेन परितुष्टमकृतार्थं परमार्थसत्यातिवादिनमात्मानं मन्यमानं योग्यं शिष्यं मिथ्या ग्रहविशेषाद्विप्रच्यावयन्नाह भगवान्सनत्कुमारः। **एष तु वा अतिवदति** यमहं वक्ष्यामि न प्राणविदतिवादी परमार्थतः। नामाद्यपेक्षं तु तस्यातिवादित्वम्। यस्तु भूमाख्यं सर्वातिक्रान्तं तत्त्वं परमार्थसत्यं वेद, सोऽतिवादीत्यत आह— एष तु वा अतिवदति **यः सत्येन** परमार्थसत्यविज्ञानवत्तया**ऽतिवदति। सोऽहं** त्वां प्रपन्नो भगवन्**सत्येनातिवदानि**। तथा मां नियुनक्तु भगवान्, यथाऽहं सत्येनातिवदानीत्यभिप्रायः। यद्येवं सत्येनातिवदितुमिच्छसि सत्यमेव तु तावद्विजिज्ञासितव्यमित्युक्त आह नारदः। तथाऽस्तु तर्हि **सत्यं भगवो विजिज्ञासे** विशेषेण ज्ञातुमिच्छेयं त्वत्तोऽह**मिति**॥ १॥

इति सप्तमाध्यायस्य षोडशः खण्डः॥ १६॥



(अथ सप्तमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः।)

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्सत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः।। १७।।

विज्ञान ही ज्ञातव्य है

निश्चय ही जब पुरुष परमार्थ सत्य को विशेषरूप से जान लेता है, तभी वह (मिथ्या विकार जात के भीतर विद्यमान) सत्य को कहता है। बिना जाने सत्य को नहीं बोलता, किन्तु विशेषरूप से जानता हुआ ही सत्य का वर्णन करता है। अतः (सत्य की अपेक्षा भी श्रेष्ठ) विज्ञान की ही विशेषरूप से जिज्ञासा करनी चाहिए। (नारद ने कहा-) भगवन्! आपके द्वारा विज्ञान को मैं विशेषरूप से जानना चाहता हूँ, इस प्रकार सत्य से लेकर अग्रिम बाइसवें खण्ड के ''करोति'' पर्यन्त उत्तरोत्तर पदार्थों को पूर्व-पूर्व पदार्थों का कारण समझना चाहिये।। १।।

।। इति सप्तदशः खण्डः ।।

यदा वै सत्यं परमार्थतो **विजानातीदं** परमार्थतः **सत्यमिति**, ततोऽनृतं विकारजातं वाचारम्भणं हित्वा सर्वविकारावस्थं सदेवैकं सत्यमिति तदेवाथ वदति यद्वदति। ननु विकारोऽपि सत्यमेव। 'नामरूपे सत्यं ताभ्यामयं प्राणश्छन्नः' (बृ.१.६.३) ''प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्'' (बृ. २.१.२०) इति श्रुत्यन्तरात्। सत्यमुक्तं सत्यत्वं श्रुत्यन्तरे विकारस्य, न तु परमार्थापेक्षमुक्तं, किं तर्हीन्द्रियविषयाविषयत्वापेक्षं सच्च त्यच्चेति सत्यमित्युक्तं, तद्द्वारेण च परमार्थसत्यस्योपलब्धिर्विवक्षितेति। ''प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यमि''ति चोक्तम्। इहापि तदिष्टमेव। इह तु प्राण-विषयात्परमार्थसत्यविज्ञानाभिमानाद्व्युत्थाप्य नारदं यत्सदेव सत्यं परमार्थतो भूमाख्यं, तद्विज्ञापयिष्यामीत्येष विशेषतो विवक्षितोऽर्थः। नाविजानन्सत्यं वदति यस्त्वविजानन्वदति सोऽग्न्यादिशब्देनाग्न्यादीन्परमार्थसद्रूपान्मन्यमानो वदति, न तु ते रूपत्रयव्यतिरेकेण परमार्थतः सन्ति। तथा तान्यपि रूपाणि सदपेक्षया नैव सन्तीत्यतो **नाविजानन्सत्यं वदति। विजानन्नेव सत्यं वदति**। न च तत्सत्यविज्ञानमविजिज्ञासितमप्रार्थितं ज्ञायत इत्याह— **विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति**। यद्येवं **विज्ञानं भगवो विजिज्ञासे इति**। एवं सत्यादीनां चोत्तरोत्तराणां करोत्यन्तानां पूर्वपूर्वहेतुत्वं व्याख्येयम्।। १।।

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः।। १७।।

(अथ सप्तमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः।)

यदा वै मनुतेऽथविजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः॥ १८॥

(अथ सप्तमाध्यायस्यैकोनविंशतितमः खण्डः।)

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञासे इति ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः॥ १९॥

मति ही जानने योग्य है

(सनत्कुमार ने कहा-) जब पुरुष मनन करता है तभी वह विशेष रूप से जानता है। मनन किये बिना कोई भी किसी वस्तु को विशेषरूप से नहीं जानता, किन्तु मनन करके ही जानता है। अतः मनन की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करो, (नारद ने कहा-) भगवन्! मैं मति को ही विशेष रूप से जानना चाहता हूँ॥ १॥

॥ इत्यष्टादशः खण्डः ॥

श्रद्धा ही जानने योग्य है

(सनत्कुमार ने कहा-) जब मनुष्य आस्तिक्य बुद्धिरूप श्रद्धा करता है, तभी वह मनन करता है। श्रद्धा विये बिना कोई भी किसी वस्तु का मनन नहीं करता, किन्तु श्रद्धालु ही मनन करता है। अतः तुझे श्रद्धा को ही विशेष रूप से जानना चाहिए। (नारद ने कहा-) भगवन्! तब तो मैं श्रद्धा को ही विशेष रूप से जानना चाहता हूँ॥ १॥

॥ इत्येकोनविंशः खण्डः ॥

यदा वै मनुत इति। मतिर्मननं तर्को मन्तव्यविषये आदरः॥ १॥

इति सप्तमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः॥ १८॥

आस्तिक्यबुद्धिः श्रद्धा॥ १॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकोनविंशतितम्। खण्डः॥ १९॥

(अथ सप्तमाध्यायस्य विंशतितमः खण्डः।)

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति ॥ १॥

इति सप्तमाध्यायस्य विंशतितमः खण्डः॥ २०॥

(अथ सप्तमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ।)

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः॥२१॥

निष्ठा ही ज्ञातव्य है

(सनत्कुमार ने कहा-) जब पुरुष में भी गुरुशुश्रूषादिरूप निष्ठा होती है तभी वह श्रद्धा करता है। निष्ठा के बिना कोई भी पुरुष किसी के प्रति श्रद्धा नहीं करता, किन्तु निष्ठावान् ही श्रद्धा करता है। अतः तुम निष्ठा की ही विशेष रूप से जानने की इच्छा करो। (नारद ने कहा) भगवन्! तब तो मैं आपके द्वारा निष्ठा को ही विशेष रूप से जानना चाहता हूँ॥ १॥

॥ इति विंशः खण्डः ॥

कृति ही ज्ञातव्य है

(सनत्कुमार ने कहा-) जिस समय पुरुष (इन्द्रिय संयम और चित्त की एकाग्रतारूप) कृति करता है, उस समय वह निष्ठा भी करने लग जाता है। बिना कुछ किये कहीं पर किसी को निष्ठा नहीं होती। कुछ करने पर ही मनुष्य निष्ठावान् होता है। अतः कृति की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करो (नारद ने कहा-) भगवन्! मैं आपके द्वारा कृति को ही विशेष रूप से जानना चाहता हूँ॥ १॥

॥ इत्येकविंशः खण्डः ॥

निष्ठा गुरुशुश्रूषादिस्तत्परत्वं ब्रह्मविज्ञानाय॥ १॥

इति सप्तमाध्यायस्य विंशतितमः खण्डः॥ २०॥

यदा वै करोति। कृतिरिन्द्रियसंयमश्चित्तैकाग्रताकरणं च। सत्यां हि तस्यां निष्ठादीनि यथोक्तानि भवन्ति विज्ञानावसानानि॥ १॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः॥ २१॥

(अथ सप्तमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः।)

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञासे इति ।।१।।

इति सप्तमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः।।२२।।

(अथ सप्तमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः।)

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा

सुख ही ज्ञातव्य है

(सनत्कुमार ने कहा-) जिस समय मनुष्य को सुख मिलता है, उसी समय वह कुछ करता है। सुख मिले बिना कोई भी कुछ करता नहीं, किन्तु सुख मिलने पर ही करता है। अतः तुझे सुख की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए (नारद ने कहा- भगवन्! तब तो मैं सुख को ही विशेष रूप से जानना चाहता हूँ।।१।।

।।इति द्वाविंशः खण्डः ।।

भूमा ही ज्ञातव्य है

(सनत्कुमार ने कहा-) निश्चय ही जो भूमा (महान्) है वही सुख रूप है। सातिशय अल्प में सुख नहीं है, भूमा ही सुख रूप है। अतः तुझे भूमा की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी

साऽपि कृति**र्यदा सुखं लभते** सुखं निरतिशयं वक्ष्यमाणं लब्धव्यं मयेति मन्यते, तदा भवतीत्यर्थः। यथा दृष्टफलसुखाकृतिस्तथेहापि **नासुखं लब्ध्वा करोति**। भविष्यदपि फलं लब्ध्वेत्युच्यते। तदुद्दिश्य प्रवृत्त्युपपत्तेः। अथेदानीं कृत्यादिषूत्तरोत्तरेषु सत्सु सत्यं स्वयमेव प्रतिभासते इति न तद्विज्ञानाय पृथग्यत्नः कार्य इति प्राप्तं, ततः इदमुच्यते **सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमि**त्यादि। **सुखं भगवो विजिज्ञासे** इत्यभिमुखीभूतायाऽऽह।। १।।

इति सप्तमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ।।२२।।

यो वै भूमा महन्निरतिशयं बह्विति पर्याया**स्तत्सुखम्**। ततोऽर्वाक्सातिशयत्वादल्पम्। अतस्तस्मिन्नल्पे सुखं नास्ति। अल्पस्याधिकतृष्णाहेतुत्वात्। तृष्णा

त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ।।१।।

इति सप्तमाध्ययस्य त्रयोविंशः खण्डः।। २३।।

(अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः।)

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा

चाहिये (नारद ने कहा-) भगवन्! तब तो मैं आपके द्वारा भूमा को ही विशेष रूप से जानना चाहता हूँ।।१।।

।।इति त्रयोविंशः खण्डः ।।

भूमा के स्वरूप का वर्णन

(सनत्कुमार ने कहा-) जिस समय भूमा तत्त्व में द्रष्टा किसी भी अन्य दृश्य को देखता नहीं, अन्य किसी को सुनता नहीं और न अन्य किसी को जानता है; वह भूमा है; किन्तु जहाँ पर द्रष्टा अपने से भिन्न वस्तु को देखता है, अन्य को सुनता है एवं अन्य को जानता है, वह

च दुःखबीजम्। न हि दुःखबीजं सुखं दृष्टं ज्वरादि लोके। तस्माद्युक्तं **नाल्पे सुखमस्तीति**। अतो **भूमैव सुखम्**। तृष्णादिदुःखबीजत्वासंभवाद्भूम्नः।। १।।

इति सप्तमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः।। २३।।

किंलक्षणोऽसौ भूमेत्याह-यत्र यस्मिन्भूम्नि तत्त्वे **नान्यद्**द्रष्टव्यमन्येन करणेन द्रष्टाऽन्यो विभक्तो दृश्यात्**पश्यति** तथा **नान्यच्छृणोति**। नामरूपयोरेवान्तर्भावाद्विषयभेदस्य तद्ग्राहकयोरेवेह दर्शनश्रवणयोर्ग्रहणमन्येषां चोपलक्षणार्थत्वेन। मननं त्वत्रोक्तं द्रष्टव्यं नान्यन्मनुते इति। प्रायशो मननपूर्वकत्वाद्विज्ञानस्य। तथा **नान्यद्विजानाति**। एवं लक्षणो यः, **स भूमा**। किमत्र प्रसिद्धान्यदर्शनाभावो भूम्न्युच्यते नान्यत्पश्यतीत्यादिना। अथान्यत्र पश्यत्यात्मानं पश्यतीत्येतत्। किंचातः। यद्यन्यदर्शनाद्यभावमात्रमित्युच्यते तदा द्वैतसंव्यवहारविलक्षणो भूमेत्युक्तं भवति। अथान्यदर्शनविशेषप्रतिषेधेनाऽऽत्मानं पश्यतीत्युच्यते, तदैकस्मिन्नेव क्रियाकारकफलभेदोऽभ्युपगतो भवेत्। यद्येवं को दोषः स्यात्। नन्वयमेव दोषः संसारानिवृत्तिः। क्रियाकारकफलभेदो हि संसार इति।

तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यꣳ स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ।।१।।

अल्प है। जो भूमा है, वही अमृत है और जो अल्प है, वह मर्त्य है (नारद ने कहा-) भगवन्! वह भूमा किसमें प्रतिष्ठित है? (सनत्कुमार ने कहा-) भूमा अपनी महिमा में प्रतिष्ठित है अर्थात् भूमा किसी के आश्रित नहीं है।। १।।

आत्मैकत्व एव क्रियाकारकफलभेदः संसारविलक्षण इति चेत्। न। आत्मनो निर्विशेषैकत्वाभ्युपगमे दर्शनादिक्रियाकारकफलभेदाभ्युपगमस्य शब्दमात्रत्वात्। अन्यदर्शनाद्यभावोक्तिपक्षेऽपि यत्रेत्यन्यत्र पश्यतीति च विशेषणे अनर्थके स्यातामिति चेत्। दृश्यते हि लोके यत्र शून्ये गृहेऽन्यत्र पश्यतीत्युक्ते स्तम्भादीनात्मानं च न पश्यतीति न गम्यते। एवमिहापीति चेत्। न। तत्त्वमसीत्येकत्वोपदेशादधिकरणाधिकर्तव्यभेदानुपपत्तेः। तथा सदेकमेवाद्वितीयं सत्यमिति षष्ठे निर्धारितत्वात्। ''अदृश्येऽनात्म्ये'' (तै.२.७.१) ''न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य'' (क.६.७.) ''विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'' (बृ.२.४.१४) इत्यादिश्रुतिभ्यः स्वात्मनि दर्शनाद्यनुपपत्तिः। यत्रेति विशेषणमनर्थकं प्राप्तमिति चेत् ? न। अविद्याकृतभेदापेक्षत्वात्। यथा सत्यैकत्वाद्वितीयत्वबुद्धिं प्रकृतामपेक्ष्य सदेकमेवाद्वितीयमिति संख्याद्यनर्हमप्युच्यते। एवं भूम्न्येकस्मिन्नेव यत्रेति विशेषणम्। अविद्यावस्थायामन्यदर्शनानुवादेन च भूम्नस्तदभावत्वलक्षणस्य विवक्षितत्वान्नान्यत्पश्यतीति विशेषणम्। तस्मात्संसारव्यवहारो भूम्नि नास्तीति समुदायार्थः। अथ **यत्रा**विद्याविषयेऽन्योऽन्येना**न्यत्पश्यती**ति **तदल्पम**विद्याकालभावीत्यर्थः। यथा स्वप्नदृश्यं वस्तु प्राक् प्रबोधात्तत्कालभावीति तद्वत्। तत एव **तन्मर्त्यं** विनाशि स्वप्नवस्तुवदेव तद्विपरीतो **भूमा** यस्तदमृतम्। तच्छब्दोऽमृतत्वपरः। **स** तर्ह्येवंलक्षणो भूमा हे भगव**न्कस्मिन्प्रतिष्ठित** इत्युक्तवन्तं नारदं प्रत्याह सनत्कुमारः। **स्वे महिम्नी**ति स्वे आत्मीये महिम्नि माहात्म्ये विभूतौ प्रतिष्ठितो भूमा, **यदि** प्रतिष्ठामिच्छसि क्वचिद्यदि वा परमार्थमेव पृच्छसि, **न महिम्न्य**पि प्रतिष्ठित **इति** ब्रूमः। अप्रतिष्ठितोऽनाश्रितो भूमा क्वचिदपीत्यर्थः।। १।।

गोअश्वमिह महिमेत्याचक्षते, हस्तिहिरण्यं दासभार्यं, क्षेत्राण्यायतनानीति, नाहमेवं ब्रवीमि, ब्रवीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति ।।२।।

।।इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ।।२४।।

भूमा की सर्वव्यापकता

(अथ सप्तमाध्यायस्य पञ्चविंशः खण्डः।)

अध्याय

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदꣳ सर्वमित्यथातोऽहंकारादेश एवाहमेवा-

इस लोक में गौ, अश्वादि को महिमा कहते हैं, हाथी, सोना, दास, भार्या, क्षेत्र और घर, इन्हें भी महिमा कहते हैं। किन्तु मैं ऐसा नहीं कहता, क्योंकि अन्य पदार्थ ही अन्य में प्रतिष्ठित होता है। मैं तो ऐसा कहता हूँ, ऐसा सनत्कुमार ने कहा।। २।।

।। इति चतुर्विंशः खण्डः ।।

वह भूमा ही नीचे है, वही ऊपर है, वही पीछे है, वही आगे है, वही दाहिनी ओर है, वही बायीं ओर है, (विशेष क्या कहें-) वही सब कुछ है (उससे भिन्न कोई वस्तु नहीं है, जिसमें वह प्रतिष्ठित होवे) अब उसी में अहंकाररूप से उपदेश किया जाता है- मैं ही नीचे हूँ, मैं ही

यदि स्वमहिम्नि प्रतिष्ठितो भूमा कथं तर्ह्यप्रतिष्ठ उच्यते। शृणु। गोअश्वादीह **महिमेत्याचक्षते**। गावश्चाश्वाश्च **गोअश्वं** द्वंद्वैकवद्भावः। सर्वत्र गवाश्वादि महिमेति प्रसिद्धम्। तदाश्रितस्तत्प्रतिष्ठश्चैत्रो भवति यथा **नाहमेवं** स्वतोऽन्यं महिमानमाश्रितो भूमा चैत्रवदिति **ब्रवीम्यत्र** हेतुत्वेनान्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठितः इति व्यवहितेन संबन्धः। किंत्वेवं **ब्रवीमीति होवाच** स एवेत्यादि।। २।।

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः।। २४।।

कस्मात्पुनः क्वचिन्न प्रतिष्ठित इत्युच्यते। यस्मात्स **एव** भूमाऽ**धस्तान्न** तद्व्यतिरेकेणान्यद्विद्यते यस्मिन्प्रतिष्ठितः स्यात्। तथो**परिष्टादि**त्यादि समानम्। सति भूम्नोऽन्यस्मिन्भूमा हि प्रतिष्ठितः स्यान्न तु तदस्ति। **स एव तु सर्वम्**। अतस्तस्मादसौ न क्वचित्प्रतिष्ठितः। यत्र नान्यत्पश्यतीत्यधिकरणाधिकर्तव्यतानिर्देशात्स एवाधस्तादिति च परोक्षनिर्देशाद्द्रष्टुर्जीवादन्यो भूमा स्यादित्याशङ्का कस्यचिन्मा

धस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽह-मुत्तरतोऽहमेवेदᳯ सर्वमिति ॥१॥

अथात आत्मादेश एवाऽऽत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदᳯ सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्ना-त्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड्भवति तस्य

ऊपर हूँ, मैं ही पीछे हूँ, मैं ही आगे हूँ, मैं ही दाहिनी ओर हूँ, मैं ही बाँयी ओर हूँ और मैं ही यह सब कुछ हूँ (इस प्रकार द्रष्टा के साथ भूमा का अभेद बतलाया गया है)॥ १॥

अब आगे शुद्ध रूप से ही भूमा का उपदेश किया जाता है। आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही पीछे है, आत्मा ही आगे है, आत्मा ही दाहिनी ओर है, आत्मा ही बाँयी ओर है (विशेष क्या कहें-) यह सब कुछ आत्मा ही है, वही यह इस प्रकार देखता हुआ, इस प्रकार मनन करता हुआ तथा इस प्रकार विशेषरूप से जानता हुआ आत्मरमणरूप आभ्यन्तर क्रीडा देह भिन्न पदार्थों के साथ बाह्य आत्मक्रीड़ा, मित्रादि के साथ आत्ममिथुन और आत्मानन्द

भूदित्य**थातो**ऽनन्तर**महंकारादेशो**ऽहंकारेणाऽऽदिश्यते इत्यहंकारादेशः। द्रष्टुरनन्यत्वदर्शनार्थं भूमैव निर्दिश्यतेऽहंकारेणा**हमेवाधस्ता**दित्यादिना॥ १॥

अहंकारेण देहादिसंघातोऽप्यादिश्यतेऽविवेकिभिरित्यतस्तदाशङ्का मा भूदित्यथानन्तर**मा-त्मादेश** आत्मनैव केवलेन सत्स्वरूपेण शुद्धेनाऽऽदिश्यते। **आत्मैव** सर्वतः सर्वमित्येवमेकमजं सर्वतो व्योमवत्पूर्णमन्यशून्यं पश्यन्स वा एष विद्वान्मनन-विज्ञानाभ्यामात्मरतिरात्मन्येव रती रमणं यस्य सोऽयम**ात्मरतिः**। तथा**ऽऽत्मक्रीडः**। देहमात्रसाधना रतिर्बाह्यसाधना क्रीडा। लोके स्त्रीभिः सखिभिश्च क्रीडतीति दर्शनात्। न तथा विदुषः, किं तर्ह्यात्मविज्ञाननिमित्तमेवोभयं भवतीत्यर्थः। मिथुनं द्वंद्वजनितं सुखं तदपि द्वंद्वनिरपेक्षं, यस्य विदुषः। तथा**ऽऽत्मानन्दः** शब्दादिनिमित्त आनन्दोऽविदुषां, न तथाऽस्य विदुषः, किं तर्ह्यात्मनिमित्तमेव सर्वं सर्वदा सर्वप्रकारेण च। देहजीवितभोगादिनिमित्तबाह्यवस्तुनिरपेक्ष इत्यर्थः। **स** एवंलक्षणो विद्वाञ्जीवन्नेव स्वाराज्येऽभिषिक्तः, पतितेऽपि देहे **स्वराडेव भवति**। यत एवं भवति, तत एव **तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति**। प्राणादिषु पूर्वभूमिषु तत्रास्येति

सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति। अथ येऽन्यथाऽतो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषाꣳ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चविंशः खण्डः॥ २५॥

(अथ सप्तमाध्यायस्य षड्विंशः खण्डः।)

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशाऽऽत्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावा-

वाला होता रहता है। वह स्वराट् है, सम्पूर्ण लोकों में (प्राणादि पूर्व भूमिकाओं में) उसी की स्वेच्छापूर्वक गति होती है। पर जो इस प्रकार से नहीं जानते, वे अन्य शासकों के अधीन होने से अन्यराट् होते हैं और वे नश्वर लोकों को प्राप्त करते हैं। उनकी उक्त सम्पूर्ण लोकों में स्वेच्छागति नहीं होती।। २।।

।। इति पञ्चविंशः खण्डः ।।

इस प्रकार जानने वाले के लिये फल का वर्णन

निश्चय ही उस इस प्रकार देखने वाले, इस प्रकार मनन करने वाले तथा इस प्रकार जानने वाले, इस प्रकृत विद्वान् के लिये आत्मा से प्राण, आत्मस्वरूप से आशा, आत्मरूप से स्मृति, आत्मरूप से आकाश, आत्मरूप से जल, आत्मरूप से आविर्भाव तथा तिरोभाव, आत्मरूप से

तावन्मात्रपरिच्छिन्नकामचारत्वमुक्तमन्यराजत्वं चार्थप्राप्तं सातिशयत्वाद्यथाप्राप्तस्वाराज्य-कामचारत्वानुवादेन तत्तन्निवृत्तिरिहोच्यते ''स स्वराडि''त्यादिना। **अथ** पुनर्ये**ऽन्यथाऽत** उक्तदर्शनादन्यथा वैपरीत्येन यथोक्तमेव वा सम्यङ्न **विदु**स्तेऽन्यराजानो भवन्ति अन्यः परो राजा स्वामी येषां ते**ऽन्यराजानस्ते**। किंच **क्षय्यलोकाः** क्षय्यो लोको येषां ते क्षय्यलोकाः। भेददर्शनस्याल्पविषयत्वादल्पं च तन्मर्त्यमित्यवोचाम। तस्माद्ये द्वैतदर्शिनस्ते क्षय्यलोकाः स्वदर्शनानुरूप्येणैव **भवन्त्य**त एव **तेषां सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति**।। २।।

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चविंशः खण्डः।। २५।।

तस्य ह वा एतस्येत्यादि स्वाराज्यं प्राप्तस्य प्रकृतस्य विदुष इत्यर्थः। प्राक्सदात्मविज्ञानात्स्वात्मनोऽन्यस्मात्सतः प्राणादेर्नामान्तस्योत्पत्तिप्रलयावभूतां सदात्मविज्ञाने

वात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित्तमात्मतः संकल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामाऽऽत्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदꣳ सर्वमिति ॥१॥

तदेष श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताꣳ सर्वꣳ ह पश्यः सर्वमाप्नोति सर्वश इति, स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विꣳशतिराहारशुद्धौ

अन्न, आत्मरूप से बल, आत्मरूप से ध्यान, आत्मरूप से मन, आत्मरूप से वाणी, आत्मरूप से नाम, आत्मरूप से मन्त्र, आत्मरूप से कर्म और आत्मरूप से ही यह सब कुछ हो जाता है।। १।।

इस संबन्ध में यह मन्त्र है। तत्त्ववेत्ता न मृत्यु को देखता है, न रोग को न दुःखित्व को ही देखता है किन्तु वह विद्वान् सबको, (आत्मरूप से ही) देखता है। इसीलिये वह सबको प्राप्त हो जाता है, वह एक हो जाता है, वही तीन, पाँच, सात, नौ रूप हो जाता है, फिर वही ग्यारह रूप भी कहा गया है, वही सौ, दश, एक सहस्र और बीस भी हो जाता है। शब्दादि विषयोपलब्धि रूप आहार की शुद्धि होने पर मन की शुद्धि होती है, मन की शुद्धि होने पर

तु सतीदानीं स्वात्मत एव संवृतौ, तथा सर्वोऽप्यन्यो व्यवहार **आत्मत** एव विदुषः।। १।।

किंच तदेतस्मिन्नर्थे **एष श्लोको** मन्त्रोऽपि भवति। **न पश्यः** पश्यतीति पश्यो यथोक्तदर्शी विद्वानित्यर्थः **मृत्युं** मरणं **रोगं** ज्वरादि **दुःखतां** दुःखभावं चापि **न पश्यति। सर्वं ह** सर्वमेव स **पश्यः** पश्यत्यात्मानमेव सर्वं ततः **सर्वमाप्नोति, सर्वशः** सर्वप्रकारैरिति। **किंच** स विद्वान्प्राक्सृष्टिप्रभेदा**देकधै**व **भवत्ये**कधैव च **संस्त्रिधा**दिभेदैरनन्तभेदप्रकारो भवति सृष्टिकाले। पुनः संहारकाले मूलमेव स्वं पारमार्थिकमेकधाभावं प्रतिपद्यते स्वतन्त्र एवेति। विद्यां फलेन प्ररोचयन्स्तौति। अथेदानीं यथोक्ताया विद्यायाः सम्यगवभासकारणं मुखावभासकारणस्येवाऽऽदर्शस्य विशुद्धिकारणं साधनमुपदिश्यते— **आहारशुद्धौ**। आह्रियंते इत्याहारः शब्दादिविषयविज्ञानं भोक्तुर्भोगायाऽऽह्रियते तस्य विषयोपलब्धिलक्षणस्य विज्ञानस्य शुद्धिराहारशुद्धी रागद्वेषमोहदोषैरसंसृष्टं विषयविज्ञानमित्यर्थः।। तस्यामाहारशुद्धौ सत्यां तद्वतोऽन्तःकरणस्य

शरीर: अन्नसे प्रभा दीपक: तेल से।

बुद्धि· **सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारस्तꣳ स्कन्द इत्याचक्षते तꣳ स्कन्द इत्याचक्षते ।।२।।**

इति सप्तमाध्यायस्य षड्विंशः खण्डः।।२६।।

निश्चल स्मृति होती है तथा स्मृति की शुद्धि हो जाने पर सम्पूर्ण ग्रन्थियों का विमोक हो जाता है। इस प्रकार समाप्त हुए वासना वाले उस तत्त्ववेत्ता नारद को भगवान् सनत्कुमार ने अज्ञानरूप अन्धकार से पार कर दिया। इसलिये उन सनत्कुमारों को ''स्कन्द'' ऐसा कहते हैं, ''स्कन्द'' ऐसा कहते हैं।। २।।

।। इति सप्तमाध्याये षड्विंशः खण्डः ।।

इस प्रकार छान्दोग्योपनिषत् सप्तम अध्याय की श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य कैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज कृत मिताक्षरा व्याख्या सम्पूर्ण हुई।।७।।

सत्त्वस्य शुद्धिर्नैर्मल्यं भवति। **सत्त्वशुद्धौ** च सत्यां यथावगते भूमात्मनि ध्रुवाऽविच्छिन्ना **स्मृति**रविस्मरणं भवति। तस्यां च लब्धायां **स्मृतिलम्भे** सति सर्वेषामविद्याकृतानर्थपाश–रूपाणामनेकजन्मान्तरानुभवभावनाकठिनीकृतानां हृदयाश्रयाणां **ग्रन्थीनां विप्रमोक्षो** विशेषेण प्रमोक्षणं विनाशो भवतीति। यत एतदुत्तरोत्तरं यथोक्तमाहारशुद्धिमूलं, तस्मात्सा कार्येत्यर्थः। सर्वं शास्त्रार्थमशेषत उक्त्वाऽऽख्यायिकामुपसंहरति श्रुतिः— तस्मै मृदितकषायाय वार्क्षादिरिव कषायो रागद्वेषादिदोषः सत्त्वस्य रञ्जनारूपत्वात्स ज्ञानवैराग्याभ्यासरूपक्षारेण क्षालितो मृदितो विनाशितो यस्य नारदस्य, तस्मै योग्याय मृदितकषायाय तमसोऽविद्यालक्षणात्पारं परमार्थतत्त्वं दर्शयति दर्शितवानित्यर्थः। कोऽसौ, भगवान्।

''उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति।।'' (विष्णु पु.६.५.७८)

एवंधर्मा सनत्कुमारः। तमेव सनत्कुमारं देवं **स्कन्द इत्याचक्षते** कथयन्ति तद्विदः। द्विर्वचनमध्यायपरिसमाप्त्यर्थम्।। २।।

इति सप्तमाध्यायस्य षड्विंशः खण्डः।। २६।।

इति श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीशंकरभगवतः कृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे

सप्तमोऽध्यायः समाप्तः।। ७।।

(14)

अष्टमोऽध्यायः

(अथाष्टमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः।)

ॐ अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मि-न्नन्तराकाशस्तस्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासित-व्यमिति ॥१॥

दहर कमल में ब्रह्म की उपासना

अब इस शरीररूप ब्रह्मपुर के भीतर जो यह कमल के आकार का छोटा सा स्थान है, इसमें जो सूक्ष्म आकाश है, उस आकाश नामक तत्त्व के भीतर जो वस्तु है, उसका अन्वेषण करना चाहिए तथा उसी की विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए (गुरुके द्वारा श्रवणादि उपायों से उक्त तत्त्व का साक्षात्कार कराने में श्रुति का तात्पर्य है)॥१॥

यद्यपि दिग्देशकालादिभेदशून्यं ब्रह्म सदेकमेवाद्वितीयमात्मैवेदं सर्वमिति। षष्ठसप्तमयोरधिगतं, तथाऽपीह मन्दबुद्धीनां दिग्देशादिभेदवद्वस्त्वित्येवं भाविता बुद्धिर्न शक्यते सहसा परमार्थविषया कर्तुमित्यनधिगम्य च ब्रह्म न पुरुषार्थसिद्धिरिति तदधिगमाय हृदयपुण्डरीकदेशः उपदेष्टव्यः। यद्यपि सत्संम्यक्प्रत्ययैकविषयं निर्गुणं चाऽऽत्मतत्त्वं, तथाऽपि मन्दबुद्धीनां गुणवत्त्वस्येष्टत्वात्सत्यकामादिगुणवत्त्वं च वक्तव्यम्। तथा यद्यपि ब्रह्मविदां स्त्र्यादिविषयेभ्यः स्वयमेवोपरमो भवति, तथाऽप्यनेकजन्म-विषयसेवाभ्यासजनिता विषयविषया तृष्णा न सहसा निवर्तयितुं शक्यते इति ब्रह्मचर्यादिसाधनविशेषो विधातव्यः। तथा यद्यप्यात्मैकत्वविदां गन्तृगमनगन्तव्या भावादविद्यादिशेषस्थितिनिमित्तक्षये गगन इव विद्युदुद्भूत इव वायुर्दग्धेन्धन इवाग्निः स्वात्मन्येव निवृत्तिस्तथाऽपि गन्तृगमनादिवासितबुद्धीनां हृदयदेशगुणविशिष्टब्रह्मोपासकानां मूर्धन्यया नाड्या गतिर्वक्तव्येत्यष्टमः प्रपाठक आरभ्यते। दिग्देशगुणगतिफलभेदशून्यं हि परमार्थसदद्वयं ब्रह्म मन्दबुद्धीनामसदिव प्रतिभाति। सन्मार्गस्थास्तावद्भवन्तु, ततः शनैः परमार्थसदपि ग्राहयिष्यामीति मन्यते श्रुतिः॥

अथानन्तरं यदिदं वक्ष्यमाणं **दहरमल्पं पुण्डरीकं** पुण्डरीकसदृशं वेश्मेव **वेश्म** द्वारपालादिमत्त्वात्। अस्मिन्ब्रह्मपुरे ब्रह्मणः परस्य पुरं राज्ञोऽनेकप्रकृतिमद्यथा पुरं तथेदमनेकेन्द्रियमनोबुद्धिभिः स्वाम्यर्थकारिभिर्युक्तमिति ब्रह्मपुरम्। पुरे च वेश्म राज्ञो यथा, तथा तस्मिन्ब्रह्मपुरे शरीरे दहरं वेश्म ब्रह्मण उपलब्ध्यधिष्ठानमित्यर्थः। यथा

तं चेद्ब्रूयुर्यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म, दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः, किं तदत्र विद्यते, यदन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति, स ब्रूयात् ।।२।।

यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश, उभे अस्मिन्द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते, उभावग्निश्च वायुश्च

इस प्रकार उस उपदेशक आचार्य से शिष्य कहें कि इस परिच्छिन्न ब्रह्मपुर में जो सूक्ष्म कमलाकार गृह है, उसके अन्तर्वर्ती जो आकाश है उस अल्पतर आकाश में क्या वस्तु है जिसकी जिज्ञासा करनी चाहिये? (इस प्रकार शंका करने वाले शिष्यों से) वह आचार्य इस प्रकार कहे।। २।।

जितना बड़ा यह भौतिक आकाश है, उतना ही परिमाण का हृदयान्तर्गत आकाश भी है। इस बुद्धि उपाधि से विशिष्ट ब्रह्माकाश के भीतर ही द्युलोक और पृथिवी ये दोनों भली प्रकार से

विष्णोः शालग्रामः। अस्मिन्हि स्वविकारशुङ्गे देहे नामरूपव्याकरणाय प्रविष्टं सदाख्यं ब्रह्म जीवेनाऽऽत्मनेत्युक्तम्। तस्मादस्मिन्हृदयपुण्डरीके वेश्मन्युपसंहृतकरणैर्बाह्यविषय-विरक्तैर्विशेषतो ब्रह्मचर्यसत्यसाधनाभ्यां युक्तैर्वक्ष्यमाणगुणवद्ध्यायमानैर्ब्रह्मोपलभ्यते, इति प्रकरणार्थः। **दहरो**ऽल्पतरोऽ**स्मिन्**दहरे वेश्मनि वेश्मनोऽल्पत्वात्तदन्तर्वर्तिनोऽल्पतरत्वं वेश्मनः। **अन्तराकाश** आकाशाख्यं ब्रह्म। "आकाशो वै नामेति" हि वक्ष्यति। आकाश इवाशरीरत्वात्सूक्ष्मत्वसर्वगतत्वसामान्याच्च। तस्मिन्नाकाशाख्ये **यदन्त**र्मध्ये **तदन्वेष्टव्यम्**। **तद्वाव** तदेव च विशेषेण जिज्ञासितव्यं गुर्वाश्रयश्रवणाद्युपायैरन्विष्य च साक्षात्करणीयमित्यर्थः।। १ ।।

तं चेदेवमुक्तवन्तमाचार्यं यदि **ब्रूयु**रन्तेवासिनश्चोदयेयुः, कथं; **यदिदमस्मि-न्ब्रह्मपुरे** परिच्छिन्नेऽन्त**र्दहरं पुण्डरीकं वेश्म** ततोऽप्यन्तरल्पतर एवाऽऽकाशः। पुण्डरीके एव वेश्मनि तावत्किं स्यात्। किं ततोऽल्पतरे खे यद्भवेदित्याहुः। **दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते** न किंचन विद्यते इत्यभिप्रायः। यदि नाम बदरमात्रं किमपि विद्यते किं तस्यान्वेषणेन विजिज्ञासनेन वा फलं विजिज्ञासितुः स्यात्। अतो **यत्त**त्रान्वेष्टव्यं **विजिज्ञासित**व्यं **वा** न तेन प्रयोजनमित्युक्तवतः स आचार्यो ब्रूयादिति श्रुतेर्वचनम्।। २।।

शृणुत। तत्र यद्ब्रूथ पुण्डरीकान्तःखस्याल्पत्वात्तत्स्थमल्पतरं स्यादिति। तदसत्। न हि खं पुण्डरीकवेश्मगतं पुण्डरीकादल्पतरं मत्वाऽवोचं दहरोऽस्मिन्नन्तराकाश

सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितमिति ॥३॥

तं चेद्ब्रूयुरस्मिꣳश्चेदिदं ब्रह्मपुरे सर्वꣳ समाहितꣳ, सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा यदैतज्जरा वाऽऽप्नोति प्रध्वꣳसते

स्थित हैं, ऐसे ही अग्नि और वायु ये दोनों भी सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों तथा बिजली और नक्षत्र ये दोनों भी सम्यक्रूप से स्थित हैं। किंबहुना इस आत्मा का इस लोक में आत्मीयरूप से जो कुछ पदार्थ है और जो कुछ आत्मीयरूप से नहीं है (नष्ट हो गया या भविष्य में होगा नहीं) वह सब कुछ सम्यक् प्रकार से इसी हृदयाकाश में स्थित है।। ३।।

यदि इस प्रकार कहने वाले उस आचार्य से शिष्यगण कहें कि यदि इस ब्रह्मपुर उपलक्षित अन्तराकाश में ये सब सम्यक् प्रकार से स्थित हैं एवं सम्पूर्ण भूत और समस्त कामनाएं भी समाहित हैं। तो जिस समय वह ब्रह्मपुर जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त होता है या नष्ट हो जाता

इति। किं तर्हि पुण्डरीकमल्पं तदनुविधायि तत्स्थमन्तःकरणं पुण्डरीकाकाशपरिच्छिन्नं, तस्मिन्विशुद्धे संहतकरणानां योगिनां स्वच्छ इवोदके प्रतिबिम्बरूपमादर्श इव च शुद्धे स्वच्छं विज्ञानज्योतिःस्वरूपावभासं तावन्मात्रं ब्रह्मोपलभ्यत इति दहरोऽस्मिन्नन्तराकाश इत्यवोचामान्तःकरणोपाधिनिमित्तम्। स्वतस्तु **यावान्वै** प्रसिद्धः परिमाणतो**ऽयमाकाशो** भौतिकस्**तावानेषोऽन्तर्हृदये आकाशो** यस्मिन्नन्वेष्टव्यं विजिज्ञासितव्यं चावोचाम। नाप्याकाशतुल्यपरिमाणत्वमभिप्रेत्य तावानित्युच्यते। किं तर्हि ब्रह्मणोऽनुरूपस्य दृष्टान्तान्तरस्याभावात्। कथं पुनर्नाऽऽकाशसममेव ब्रह्मेत्यवगम्यते। "येनाऽऽवृतं खं दिवं महीं च"। "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" (तै.२.१.१) "एतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाशः" (बृ. ३.८.११) इत्यादिश्रुतिभ्यः। किंचो**भे अस्मिन्द्यावापृथिवी** ब्रह्माकाशे बुद्ध्युपाधिविशिष्टे**ऽन्तरेव** समाहिते सम्यगाहिते स्थिते। यथा वा अरा नाभावित्युक्तं हि। तथो**भावग्निश्च वायुश्**चेत्यादि समानम्। यच्चाऽऽत्मन आत्मीयत्वेन देहवतोऽस्ति विद्यते इह लोके। तथा **यच्चा**ऽऽत्मीयत्वेन न विद्यते। नष्टं भविष्यच्च **नास्ती**त्युच्यते। न त्वत्यन्तमेवासत्। तस्य हृद्याकाशे समाधानानुपपत्तेः।। ३।।

तं चेदेवमुक्तवन्तं **ब्रूयुः** पुनरन्तेवासिनो**ऽस्मिंश्चेद्य**थोक्ते चेद्यदि **ब्रह्मपुरे** ब्रह्मपुरोपलक्षितान्तराकाशे इत्यर्थः। **इदं सर्वं समाहितं सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः**। कथमाचार्येणानुक्ताः कामा अन्तेवासिभिरुच्यन्ते। नैष दोषः। यच्चास्येहास्ति

वा किं ततोऽतिशिष्यते इति ।।४।।

स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्कामाः समाहिता, एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो

है, उस समय (घट के नाश होने पर घट में स्थित दुग्ध नष्ट होने के समान इस ब्रह्मपुर में) क्या शेष रह जाता है?।।४।।

(शिष्य के उक्त शून्यत्व की शंका की निवृत्ति के लिये) आचार्य को कहना चाहिए कि इस देह की जरावस्था से (यह अन्तराकाश संज्ञक ब्रह्म) जीर्ण नहीं होता, शस्त्रादि के प्रहार से इस देह के वध कर देने पर भी उसका नाश नहीं होता। यह ब्रह्मपुर सत्य है, इसमें सभी

यच्च नास्तीत्युक्ता एव ह्याचार्येण कामाः। अपि च सर्वशब्देन चोक्ता एव कामाः। **यदा** यस्मिन्काले एतच्छरीरं ब्रह्मपुराख्यं **जरा** वलीपलितादिलक्षणा वयोहानि**र्वाऽऽप्नोति** शस्त्रादिना **वा** वृकणं **प्रध्वंसते** विस्रंसते विनश्यति, **किं ततो**ऽन्य**दतिशिष्यते**। घटाश्रितक्षीरदधिस्नेहादिवद्घटनाशे देहनाशेऽपि देहाश्रयमुत्तरोत्तरं पूर्वपूर्वनाशान्नश्यतीत्यभिप्रायः। एवं प्राप्ते नाशे किं ततोऽन्यद्यथोक्तादतिशिष्यतेऽवतिष्ठते, न किंचनावतिष्ठते इत्यभिप्रायः।।४।।

एवमन्तेवासिभिश्चोदितः **स** आचार्यो **ब्रूयात्त**न्मतिमपनयन्। कथम् ? अस्य देहस्य **जरयैत**द्यथोक्तमन्तराकाशाख्यं ब्रह्म, यस्मिन्सर्वं समाहितं न जीर्यति देहवन्न विक्रियत इत्यर्थः। **न चास्य वधेन** शस्त्रादिघातेनैत**द्धन्यते** यथाऽऽकाशं, किमु ततोऽपि सूक्ष्मतरमशब्दमस्पर्शं ब्रह्म, देहेन्द्रियादिदोषैर्न स्पृश्यते इत्यर्थः। कथं देहेन्द्रियादिदोषैर्न स्पृश्यते इत्येतस्मिन्नवसरे वक्तव्यं प्राप्तं तत्प्रकृतव्यासङ्गो मा भूदिति नोच्यते। इन्द्रविरोचनाख्यायिकायामुपरिष्टाद्वक्ष्यामो युक्तितः एतत्सत्यमवितथं **ब्रह्मपुरं** ब्रह्मैव पुरं ब्रह्मपुरं, शरीराख्यं तु ब्रह्मपुरं ब्रह्मोपलक्षणार्थत्वात्। तत्त्वनृतमेव। ''वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयम्'' (छा.६.१.४) इति श्रुतेः। तद्विकारेऽनृतेऽपि देहशुङ्गे ब्रह्मोपलभ्यते इति ब्रह्मपुरमित्युक्तं व्यावहारिकम्। सत्यं तु ब्रह्मपुरमेतदेव ब्रह्म। सर्वव्यवहारास्पदत्वात्। अतो**ऽस्मिन्पु**ण्डरीकोपलक्षिते ब्रह्मपुरे सर्वे **कामा** ये बहिर्भवद्भिः प्रार्थ्यन्ते, तेऽस्मिन्नेव स्वात्मनि **समाहिताः**। अतस्तत्प्राप्त्युपायमेवानुतिष्ठते बाह्यविषयतृष्णां त्यजतेत्यभिप्रायः। **एष आत्मा** भवतां स्वरूपम्। शृणुत तस्य लक्षणम्। **अपहतपाप्मा** अपहतः पाप्मा धर्माधर्माख्यो यस्य सोऽयमपहतपाप्मा। तथा **विजरो** विगतजरो **विमृत्युश्च**।

विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पो यथा ह्येवेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीवन्ति ॥५॥

कामनाएं समाहित हैं। यह आत्मा धर्माधर्म से शून्य, जरावस्था से रहित, मृत्युहीन, शोकरहित, क्षुधा से रहित, पिपासाशून्य, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है (संसारियों की तरह असत्य कामना और असत्य संकल्प वाला नहीं)। जैसे इस लोक में प्रजा स्वामी की आज्ञा का अनुवर्तन करती है, सो वह जिस-जिस सन्निहित वस्तु को चाहती है और जिस-जिस देश या भूमि खण्ड को चाहती है, उसी-उसी को प्राप्त कर जीवन धारण करती है।।५।।

तदुक्तं पूर्वमेव "न वधेनास्य हन्यत" इति। किमर्थं पुनरुच्यते। यद्यपि देहसंबन्धिभ्यां जरामृत्युभ्यां न संबध्यते। अन्यथाऽपि संबन्धस्ताभ्यां स्यादित्याशङ्कानिवृत्त्यर्थम्। **विशोको** विगतशोकः। शोको नामेष्टादिवियोगनिमित्तो मानसः संतापः। **विजिघत्सो** विगताशनेच्छः **अपिपासो**ऽपानेच्छः। नन्वपहतपाप्मत्वेन जरादयः शोकान्ताः प्रतिषिद्धा एव भवन्ति। कारणप्रतिषेधात्। धर्माधर्मकार्या हि ते इति। जरादिप्रतिषेधेन वा धर्माधर्मयोः कार्याभावे विद्यमानयोरप्यसत्समत्वमिति पृथक्प्रतिषेधोऽनर्थकः स्यात्; सत्यमेवं तथाऽपि धर्मकार्यानन्दव्यतिरेकेण स्वाभाविकानन्दो यथेश्वरे "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" (बृ.३.९.२८) श्रुतेः। तथाऽधर्मकार्यजरादिव्यतिरेकेणापि जरादिदुःखस्वरूपं स्वाभाविकं स्यादित्याशङ्क्येत। अतो युक्तस्तन्निवृत्तये जरादीनां धर्माधर्माभ्यां पृथक्प्रतिषेधः। जरादिग्रहणं सर्वदुःखोपलक्षणार्थम्। पापनिमित्तानां तु दुःखानामानन्त्यात्प्रत्येकं च तत्प्रतिषेधस्याशक्यत्वात्सर्वदुःखप्रतिषेधार्थं युक्तमेवापहतपाप्मत्ववचनम्। सत्या अवितथाः, कामा यस्य सोऽयं **सत्यकामः**। वितथा हि संसारिणां कामाः। ईश्वरस्य तद्विपरीताः। तथा कामहेतवः संकल्पा अपि सत्या यस्य स **सत्यसंकल्पः**। संकल्पाः कामाश्च शुद्धसत्त्वोपाधिनिमित्ता ईश्वरस्य, चित्रगुवत्। न स्वतो नेति नेतीत्युक्तत्वात्। यथोक्तलक्षण एवाऽऽत्मा विज्ञेयो गुरुभ्यः शास्त्रतश्चाऽऽत्मसंवेद्यतया च स्वाराज्यकामैः। न चेद्विज्ञायते को दोषः स्यादिति; शृणुतात्र दोषं दृष्टान्तेन। **यथा ह्येवेह** लोके **प्रजा अन्वाविशन्त्यनु**वर्तन्ते **यथानुशासनं**, यथेह प्रजा अन्यं स्वामिनं मन्यमानाः स्वस्य स्वामिनो यथा यथाऽनुशासनं तथा तथाऽन्वाविशन्ति। किम्? **यं** यमन्तं प्रत्यन्तं **जनपदं क्षेत्रभागं चाभिकामा** अर्थिन्यो **भवन्त्या**त्मबुद्ध्यनुरूपं **तं तमेव** च प्रत्यन्तादि**मुपजीवन्ती**ति। एष दृष्टान्तोऽस्वातन्त्र्यदोषं प्रति पुण्यफलोपभोगे।।५।।

तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत, एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः, क्षीयते, तद्य इहाऽऽत्मानमननुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान्कामांस्तेषांꣳ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवत्यथ य इहाऽऽत्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान्कामांस्तेषांꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥६॥

इत्यष्टमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

जैसे इस लोक में सेवादि कर्म से प्राप्त किया हुआ लोक क्षीण हो जाता है, वैसे ही अग्निहोत्रादि पुण्यकर्म से प्राप्त हुआ परलोक में पदार्थ काल पाकर नष्ट हो जाता है। जो लोक इस कर्माधिकारी मनुष्यलोक में न आत्मा को और (सत्यसंकल्प से प्राप्त होने वाले अन्तःकरण में स्थित) सत्य कामनाओं को न जानकर परलोक-गामी होते हैं, सम्पूर्ण लोकों में उन आत्मवेत्ताओं की यथेच्छ गति नहीं होती और जो इस लोक में आत्मा को तथा सत्यकामनाओं को जानकर परलोकगामी होते हैं, उनकी सभी लोकों में यथेच्छ गति होती है।।६।।

।।इति प्रथमः खण्डः ।।

अथान्यो दृष्टान्तस्तत्क्षयं प्रति **तद्यथे**हेत्यादिः। तत्तत्र यथेह लोके तासामेव स्वाम्यनुशासनानुवर्तिनीनां प्रजानां सेवादिजितो **लोकः** पराधीनोपभोगः **क्षीयते**ऽन्तवान्भवति। अथेदानीं दार्ष्टान्तिकमुपसंहरति— एवमेवामुत्राग्निहोत्रादि**पुण्यजितो लोकः** पराधीनोपभोगः क्षीयत एवेति। उक्तो दोष एषामिति विषयं दर्शयति-**तद्य** इत्यादिना। तत्त**त्रेहा**स्मिँल्लोके ज्ञानकर्मणोरधिकृता योग्याः सन्त **आत्मानं** यथोक्तलक्षणं शास्त्राचार्योपदिष्ट**मननुविद्य** यथोपदेशमनुस्वसंवेद्यतामकृत्वा व्रजन्ति देहादस्मात्प्रयन्ति। य **एतांश्च** यथोक्ता-न्**सत्यान्**सत्यसंकल्पकार्यांश्च स्वात्मस्थान्**कामा**ननुविद्य व्रजन्ति, **तेषां सर्वेषु लोकेष्वकामचारो**ऽस्वतन्त्रता **भवति**। यथा राजानुशासनानुवर्तिनीनां प्रजानामित्यर्थः। **अथ ये**ऽन्य **इह** लोक आत्मानं शास्त्राचार्योपदेश**मनुविद्य** स्वात्मसंवेद्यतामापाद्य **व्रजन्ति** यतोक्**तांश्च सत्यान्कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति** राज्ञ इव सार्वभौमस्येह लोके।। ६।।

इत्यष्टमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः।। १।।

(अथाष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।)

स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन संपन्नो महीयते ।।१।।

अथ यदि मातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन संपन्नो महीयते ।।२।।

अथ यदि भ्रातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य भ्रातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन भ्रातृलोकेन संपन्नो महीयते ।।३।।

दहर ब्रह्म की उपासना का फल

(मरने के बाद) यदि वह पितृलोक को चाहता है, तो परलोक में उसके संकल्प से ही पितृगण वहाँ पर उपस्थित हो जाते हैं, वह उपासक उस पितृलोक से सम्पन्न हो महनीय हो जाता है अर्थात् अपनी महिमा का अनुभव करता है।।१।।

और यदि वह मातृलोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से माताएँ वहाँ उपस्थित हो जाती हैं। उस मातृलोक से सम्पन्न हो वह पुरुष महिमान्वित होता है।।२।।

और यदि वह भ्रातृलोक की कामना करता है, तो उसके संकल्प से भ्रातृगण उपस्थित हो जाते हैं, वह उस भ्रातृलोक से सम्पन्न हो महिमान्वित होता है।।३।।

कथं सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवतीति? उच्यते—य आत्मानं यथोक्तलक्षणं हृदि साक्षात्कृतवान्वक्ष्यमाणब्रह्मचर्यादिसाधनसंपन्नः संस्तत्स्थांश्च सत्यान्कामान्स त्यक्तदेहो **यदि पितृलोककामः** पितरो जनयितारस्त एव सुखहेतुत्वेन भोग्यत्वाल्लोका उच्यन्ते, तेषु कामो यस्य तैः पितृभिः संबन्धेच्छा यस्य **भवति**, तस्य संकल्पमात्रादेव **पितरः समुत्तिष्ठन्त्या**त्मसंबन्धितामापद्यन्ते। विशुद्धसत्त्वतया सत्यसंकल्पत्वादीश्वरस्येव **तेन पितृलोकेन** भोगेन **संपन्नः** संपत्तिरिष्टप्राप्तिस्तया समृद्धो **महीयते** पूज्यते वर्धते वा महिमानमनुभवति।।१।।

समानमन्यत्। **मातरो** जनयित्र्योऽतीताः सुखहेतुभूताः सामर्थ्यात्। न हि

अथ यदि स्वसृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य स्वसारः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्वसृलोकेन संपन्नो महीयते ।।४।।

अथ यदि सखिलोककामो भवति संकल्पादेवास्य सखायः समुत्तिष्ठन्ति तेन सखिलोकेन संपन्नो महीयते ।।५।।

अथ यदि गन्धमाल्यलोककामो भवति संकल्पादेवास्य गन्धमाल्ये समुत्तिष्ठतस्तेन गन्धमाल्यलोकेन संपन्नो महीयते ।।६।।

अथ यद्यन्नपानलोककामो भवति संकल्पादेवास्यान्नपाने समुत्तिष्ठतस्तेनान्नपानलोकेन संपन्नो महीयते ।।७।।

हलकोडीबाबा - हनुमान दास को - कबीरदास के दर्शन करवाया - [illegible] संपर्क साधने की प्रक्रिया योगी लोग जानते हैं यथा - Telephone.

अथ यदि गीतवादित्रलोककामो भवति संकल्पादेवास्य गीतवादित्रे समुत्तिष्ठतस्तेन गीतवादित्रलोकेन संपन्नो महीयते ।।८।।

और यदि वह भगिनीलोक की कामना करता है, तो उसके संकल्प से ही बहिनें वहाँ उपस्थित हो जाती हैं, उस स्वसृलोक से सम्पन्न हो वह महिमान्वित होता है।।४।।

एवं यदि वह मित्रों के लोक की कामना वाला होता है, तो उसके संकल्प से ही मित्र सब उस लोक में उपस्थित हो जाते हैं। मित्रों के उस लोक से समृद्ध हो वह महिमान्वित होता है।।५।।

और यदि वह गन्धमाल्यलोक की कामना वाला होता है, तो उसके संकल्प से ही गन्धमाल्य लोक वहाँ पर उपस्थित हो जाते हैं। उस गन्धमाल्य लोक से युक्त हो वह पुरुष महिमा को प्राप्त होता है।।६।।

और यदि वह अन्नपान संबन्धी लोक को चाहता है, तो उसके संकल्प से ही अन्नपान लोक उसके पास उपस्थित हो जाते हैं। उस अन्नपान लोक से सम्म्पन्न हो वह महिमान्वित होता है।।७।।

और यदि वह गीतवाद्य संबन्धी लोक को चाहता है, तो उसके संकल्प से ही गीतवाद्य वहाँ उपस्तित हो जाते हैं। उस गीतवाद्य लोक से सम्पन्न हो वह पुरुष महिमान्वित होता है।।८।।

दुःखहेतुभूतासु ग्रामसूकरादिजन्मनिमित्तासु मातृषु विशुद्धसत्त्वस्य योगिन इच्छा तत्संबन्धो

अथ यदि स्त्रीलोककामो भवति संकल्पादेवास्य स्त्रियः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्त्रीलोकेन संपन्नो महीयते ॥९॥

यं यमन्तमभिकामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य संकल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन संपन्नो महीयते ॥१०॥

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः॥ २॥

(अथाष्टमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।)

त इमे सत्याः कामा अनृतापिधानास्तेषाꣳ सत्यानाꣳ

एवं यदि वह स्त्रीलोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प मात्र से स्त्रियाँ वहाँ उपस्थित हो जाती हैं। उस स्त्रीलोक से युक्त हो वह पुरुष महिमा को प्राप्त होता है॥९॥

वह जिस-जिस प्रदेश की कामना वाला होता है और जिस-जिस भोग को चाहता है, वह सब उसके संकल्प से ही वहाँ पर उपस्तित हो जाते हैं। उससे सम्पन्न वह पुरुष महिमा को प्राप्त हो जाता है॥१०॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

असत् से ढके हुए सत् की और नामाक्षर की उपासना

वे ये सत्यकाम (स्त्री, अन्न, भोजन और बाह्य विषयों की कामनारूप) मिथ्या आच्छादन वाले हैं। सत्य होने पर भी उनका मिथ्यारूप अपिधान आच्छादन करने वाला है, क्योंकि इस

वा युक्तः॥२ ॥३॥४॥५॥६॥७॥८॥९॥

यं यमन्तं प्रदेश**मभिकामो भवति। यं च कामं कामयते** यथोक्तव्यतिरेकेणापि **सोऽस्या**न्तः प्राप्तुमिष्टः कामश्च **संकल्पादेव समुत्तिष्ठत्यस्य। तेने**च्छाऽविघात-तयाऽभिप्रेतार्थप्राप्त्या च **संपन्नो महीयत** इत्युक्तार्थम्॥१०॥

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः॥२॥

यथोक्तात्मध्यानसाधनानुष्ठानं प्रति साधकानामुत्साहजननार्थमनुक्रोशन्त्याह— कष्टमिदं खलु वर्तते यत्स्वात्मस्थाः शक्यप्राप्ता अपि **त इमे सत्याः कामा अनृतापिधानास्तेषामा**त्मस्थानां स्वाश्रयाणामेव सतामनृतं बाह्यविषयेषु स्त्र्यन्नभोजना-

सतामनृतमपिधानं यो यो ह्यस्येतः प्रैति न तमिह दर्शनाय लभते ॥१॥

अथ ये चास्येह जीवा ये च प्रेता यच्चान्यदिच्छन्न लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दतेऽत्र ह्यस्यैते सत्याः कामा अनृतापिधानास्तद्यथाऽपि हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि

जीव का जो-जो (पुत्र, भ्रातृ, इष्ट मित्रादि सम्बन्धी) यहाँ से मरकर जाता है, वह उसे पुनः देखने को भी यहाँ पर नहीं मिलता है।।१।।

और इस लोक में अपने जिन जीवित या जिन मरे हुए पुत्रादि को एवं जिन अन्य पदार्थों को चाहता हुआ भी यह प्राप्त नहीं कर पाता, उन सबको यह पुरुष इस हृदयाकाश में स्थित ब्रह्म में जाकर प्राप्त कर लेता है, क्योंकि यहाँ पर इसके ये सत्यकाम मिथ्यारूप आच्छादन से आच्छादित रहते हैं। इस संबन्ध में यह दृष्टान्त है- जैसे पृथिवी में गड़े हुए सोने के खजाने को उस स्थान से अनभिज्ञ पुरुष ऊपर-ऊपर घूमते हुए भी उसे जानता नहीं। ऐसे ही यह सम्पूर्ण प्रजा

च्छादनादिषु तृष्णा तन्निमित्तं च स्वेच्छाप्रचारत्वं मिथ्याज्ञाननिमित्तत्वादनृतमित्युच्यते। तन्निमित्तं **सत्यानां** कामानामप्राप्तिरित्यपिधानमिवापिधानम्। कथमनृतापिधाननिमित्तं तेषामलाभ इति? उच्यते—**यो यो हि** यस्माद**स्य** जन्तोः पुत्रो भ्राता वेष्ट इतोऽस्माल्लोकात्**प्रैति** प्रगच्छति म्रियते तमिष्टं पुत्रं भ्रातरं वा स्वहृदयाकाशे विद्यमानमपी**ह** पुन**र्दर्शनाये**च्छन्नपि **न लभते**।।१।।

अथ पुन**र्ये चास्या**ऽविदुषो जन्तो**र्जीवा** जीवन्ती**ह** पुत्रा भ्रात्रादयो वा **ये च प्रेता** मृता इष्टाः संबन्धिनो **यच्चान्यदिह** लोके वस्त्रान्नपानादि रत्नादि वा वस्त्वि**च्छन्न लभते तत्सर्वमत्र** हृदयाकाशाख्ये ब्रह्मणि **गत्वा** यथोक्तेन विधिना विन्दते लभते। **अत्रा**स्मिन्हार्दाकाशे **हि** यस्माद**स्यैते** यथोक्ताः **सत्याः** कामा वर्तन्ते**ऽनृतापिधानाः**। कथमिव तदन्याय्यमित्युच्यते—**तत्**तत्र **यथा हिरण्यनिधिं** हिरण्यमेव पुनर्ग्रहणाय निधातृभिर्निधीयत इति निधिस्तं हिरण्यनिधिं **निहितं** भूमेरधस्तान्निक्षिप्त**मक्षेत्रज्ञा** निधिशास्त्रैर्निधिक्षेत्रमजानन्तस्ते निधे**रुपर्युपरि संचरन्तो**ऽपि निधिं न **विन्देयुः** शक्यवेदनम**पि**। **एवमेवेमा** अविद्यावत्यः **सर्वा** इमाः **प्रजा**

संचरन्तो न विन्देयुरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन हि प्रत्यूढाः ॥२॥

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तꣳ हृदयमिति तस्माद्धृदयमहरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेति ॥३॥

प्रतिदिन ब्रह्म लोक को जाते हुए भी उसे नहीं जान पाते, क्योंकि यह ब्रह्मलोक पूर्वोक्त अनृत-अविद्यादि आच्छादक दोष के द्वारा हर ली गई है।। २।।

निश्चय ही वह यह आत्मा हृदय में है। 'हृदि अयम्' (हृदय में यह आत्मा है) यही इसकी व्युत्पत्ति है, इसी से यह 'हृदय' ऐसा कहा गया है। इस प्रकार जानने वाला पुरुष स्वर्गलोक को प्राप्त होता है अर्थात् देहपात होने पर भी विद्या का फल सुनिश्चित है।। ३।।

यथोक्तं हृदयाकाशाख्यं **ब्रह्मलोकं** ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोकस्तम**हरहः** प्रत्यहं **गच्छन्त्यो**ऽपि सुषुप्तकाले न **विन्दन्ति** न लभन्त एषोऽहं ब्रह्मलोकभावमापन्नोऽस्म्यद्येति। **अनृतेन हि** यथोक्तेन हि यस्मात्**प्रत्यूढा** हृताः स्वरूपादविद्यादिदोषैर्बहिरपकृष्टा इत्यर्थः। अतः कष्टमिदं वर्तते जन्तूनां यत्स्वायत्तमपि ब्रह्म न लभ्यत इत्यभिप्रायः।। २।।

स वै य **आत्मा**ऽपहतपाप्मेति प्रकृतो, वैशब्देन तं स्मारयत्येष विवक्षित आत्मा **हृदि** हृदयपुण्डरीके आकाशशब्देनाभिहितः। **तस्यै**तस्य हृदयस्यै**तदेव निरुक्तं** निर्वचनं नान्यत्। **हृद्ययमा**त्मा वर्तत इति यस्मा**त्तस्माद्धृदयं** हृदयनामनिर्वचनप्रसिद्ध्याऽपि स्वहृदय आत्मेत्यवगन्तव्यमित्यभिप्रायः। **अहरहर्वै** प्रत्यह**मेवंविद्धृ**द्ययमात्मेति जानन्**स्वर्गं लोकं** हार्दं **ब्रह्मैति** प्रतिपद्यते। नन्वनेवंविदपि सुषुप्तकाले हार्दं ब्रह्म प्रतिपद्यते एव, सुषुप्तकाले सता सोम्य तदा संपन्न इत्युक्तत्वात्। बाढमेवं, तथाऽप्यस्ति विशेषः। यथा जानन्नजानंश्च सर्वो जन्तुः सद्ब्रह्मैव, तथाऽपि तत्त्वमसीति प्रतिबोधितो विद्वान्सदेव नान्योऽस्मीति जानन्सदेव भवति। एवमेव विद्वानविद्वांश्च सुषुप्ते यद्यपि सत्संपद्यते, तथाप्येवंविदेव स्वर्गं लोकमेतीत्युच्यते। देहपातेऽपि विद्याफलस्यावश्यंभावित्वादित्येष विशेषः।। ३।।

अथ य एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति ॥४॥

यह जो (सुषुप्ति अवस्थारूप) संप्रसाद है, वह (इस संप्रसाद से उपलक्षित आत्मा) इस शरीर से आत्मबुद्धि का परित्यग कर परम ज्योति को प्राप्त हो निजरूप से अभिसम्पन्न हो जाता है। यह आत्मा है, यही अमृत एवं अभय है और यही ब्रह्म है। ऐसा गुरु ने कहा, उस ही इस ब्रह्म का 'सत्य' ऐसा नाम है।।४।।

सुषुप्तकाले स्वेनाऽऽत्मना सता संपन्नः सन्सम्यक्प्रसीदतीति जाग्रत्स्वप्नयोर्विषयेन्द्रियसंयोगजातं कालुष्यं जहातीति संप्रसादशब्दो यद्यपि सर्वजन्तूनां साधारणस्तथाऽप्येवंवित्स्वर्गं लोकमेतीति प्रकृतत्वादेष संप्रसाद इति संनिहितवद्यत्नविशेषात्सोऽथेदं शरीरं हित्वाऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय शरीरात्मभावनां परित्यज्येत्यर्थः। न त्वासनादिव समुत्थायेतीह युक्तम्। स्वेन रूपेणेति विशेषणात्। न ह्यन्यत उत्थाय स्वरूपं संपत्तव्यम्। स्वरूपमेव हि तन्न भवति प्रतिपत्तव्यं चेत्स्यात्। परं परमात्मलक्षणं विज्ञप्तिस्वभावं ज्योतिरुपसंपद्य स्वास्थ्यमुपगम्येत्येतत्। स्वेनाऽऽत्मीयेन रूपेणाभिनिष्पद्यते प्रागेतस्याः स्वरूपसंपत्तेरविद्यया देहमेवापरं रूपमात्मत्वेनोपगत इति तदपेक्षयेदमुच्यते स्वेन रूपेणेति। अशरीरता ह्यात्मनः स्वरूपं यत्स्वं परं ज्योतिःस्वरूपमापद्यते संप्रसाद एष आत्मेति होवाच। स ब्रूयादिति यः श्रुत्या नियुक्तोऽन्तेवासिभ्यः। किंचैतदमृतमविनाशि भूमा "यो वै भूमा तदमृतम्" (छा.७.२४.१) इत्युक्तम्। अत एवाभयं भूम्नो द्वितीयाभावादत एतद्ब्रह्मेति। तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नामाभिधानम्। किं तत्सत्यमिति। सत्यं ह्यवितथं ब्रह्म। "तत्सत्यं स आत्मेति" (छा.६.८.७) ह्युक्तम्। अथ किमर्थमिदं नाम पुनरुच्यते। तदुपासनविधिस्तुत्यर्थम्।।४।।

तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतीयमिति तद्यत्सत्तदमृतमथ यत्ति तन्मर्त्यमथ यद्यं तेनोभे यच्छति यदनेनोभे यच्छति तस्माद्यमहरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेति ।।५।।

इत्यष्टमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।।३।।

वे ये 'स' 'ती' तथा 'यम्' अर्थात् सकार, तकार और यम् ऐसे तीन अक्षर हैं (यहाँ पर तकार उत्तरवर्ती ईकार उच्चारण मात्र के लिए है, क्योंकि पहले ह्रस्व इकार से ही सम्बोधित किया गया है) उनमें जो सकार है; वह अमृत है, जो तकार है; वह मर्त्य है और जो यम् है, उससे वह पुरुष दोनों का नियमन करता है। इसीलिए 'यम्' इस प्रकार जानने वाला पुरुष प्रतिदिन स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेता है।।५।।

।।इति तृतीयः खण्डः ।।

तानि ह वा एतानि ब्रह्मणो नामाक्षराणि **त्रीण्ये**तानि **सतीयमिति** सकारस्तकारो यमिति च। ईकारस्तकारे उच्चारणार्थोऽनुबन्धः। ह्रस्वेनैवाक्षरेण पुनःप्रतिनिर्देशात् तेषां **तत्त्र यत्सत्**सकारस्**तदमृतं** सद्ब्रह्मामृतवाचकत्वादमृत एव सकारस्तकारान्तो निर्दिष्टः। **अथ यत्ति** तकारस्**तन्मर्त्यम्**। **अथ यद्यम**क्षरं **तेना**क्षरेणामृतमर्त्याख्ये पूर्वे **उभे** अक्षरे **यच्छति** यमयति नियमयति वशीकरोत्यात्मनेत्यर्थः। **यद्यस्मादनेन** यमित्येतेनो**भे यच्छति तस्माद्यम्**। संयते इव ह्येतेन यमा लक्ष्येते। ब्रह्मनामाक्षरस्यापीदममृतत्वादिधर्मवत्त्वं महाभाग्यं, किमुत नामवत इत्युपास्यत्वाय स्तूयते ब्रह्मनामनिर्वचनेनैव नामवतो वेत्तैवंवित् **अहरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेती**त्युक्तार्थम्।।५।।

~~।। इति चतुर्दशाह्निकम् ।।१।।~~

इत्यष्टमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।।३।।



(अथाष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः।)

अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसंभेदाय नैतꣳ सेतुमहोरात्रे तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतꣳ सर्वे पाप्मानोऽतो निवर्तन्तेऽपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्मलोकः ।।१।।

सेतु स्वरूप आत्मोपासना का फल

(उक्त लक्षण वाला संप्रसाद स्वरूप) जो आत्मा है, वह इन लोकों को विशेष रूप से सेतु के सदृश धारण करने वाला है, जिससे कि इनका परस्पर संघर्ष न हो जाय। इस सेतुरूप आत्मा को दिन-रात प्राप्त नहीं करते (क्योंकि यह काल से परिच्छिन्न नहीं है) इसे न जरा, न मृत्यु, न शोक और न पुण्य तथा पाप ही प्राप्त होते हैं। प्रत्युत सम्पूर्ण पाप इससे निवृत्त हो जाते हैं, क्योंकि यह ब्रह्मलोक स्वरूप है, तथा पाप-शून्य है।।१।।

अथ य आत्मेति। उक्तलक्षणो यः संप्रसादस्तस्य स्वरूपं वक्ष्यमाणैरुक्तैरनुक्तैश्च गुणैः पुनः स्तूयते ब्रह्मचर्यसाधनसंबन्धार्थम्। य एष यथोक्तलक्षण आत्मा, **स** सेतुरिव **सेतुः**। **विधृतिर्**विधरणः। अनेन हि सर्वं जगद्वर्णाश्रमादिक्रियाकारक-फलादिभेदनियमैः कर्तुरनुरूपं विदधता विधृतम्। अध्रियमाणं हीश्वरेणेदं विश्वं विनश्येद्यतस्तस्मात्स सेतुर्विधृतिः। किमर्थं स सेतुरित्याह — **एषां** भूरादीनां **लोकानां** कर्तृकर्मफलाश्रयाणाम**संभेदाया**विदारणायाविनाशायेत्येतत्। किंविशिष्टश्चासौ सेतुरित्याह— **नैतम्** सेतुमात्मानम**होरात्रे** सर्वस्य जनिमतः परिच्छेदके सती नैतं **तरतः**। यथाऽन्ये संसारिणः कालेनाहोरात्रादिलक्षणेन परिच्छेद्या, न तथाऽयं कालपरिच्छेद्य इत्यभिप्रायः। "यस्मादर्वाक्संवत्सरोऽहोभिः परिवर्तत" (बृ.४.४.१६) इति श्रुत्यन्तरात्। अत एवैनं **न जरा** तरति न प्राप्नोति। तथा **न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतं** सुकृत-दुष्कृते धर्माधर्मौ। प्राप्तिरत्र तरणशब्देनाभिप्रेता नातिक्रमणम्। कारणं ह्यात्मा। न शक्यं हि कारणातिक्रमणं कर्तुं कार्येण। अहोरात्रादि च सर्वं सतः कार्यम्। अन्येन ह्यन्यस्य प्राप्तिरतिक्रमणं वा क्रियेत, नतु तेनैव तस्य। न हि घटेन मृत्प्राप्यतेऽतिक्रम्यते वा। यद्यपि पूर्वं य आत्माऽपहतपाप्मेत्यादिना पाप्मादिप्रतिषेध उक्त एव तथाऽपीहायं विशेषो न तरतीति प्राप्तिविषयत्वं प्रतिषिध्यते। तत्राविशेषेण जराद्यभावमात्रमुक्तम्। अहोरात्राद्या उक्ता अनुक्ताश्चान्ये **सर्वे पाप्मान** उच्यन्ते**ऽतो**ऽस्मादात्मनः सेतो**र्निवर्तन्ते**ऽप्राप्यैवेत्यर्थः। **अपहतपाप्मा ह्येष** ब्रह्मैव लोको **ब्रह्मलोक** उक्तः।।१।।

तस्माद्वा एतꣳ सेतुं तीर्त्वाऽन्धः सन्ननन्धो भवति विद्धः सन्नविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति तस्माद्वा एतꣳ सेतुं तीर्त्वापि नक्तमहरेवाभिनिष्पद्यते सकृद्विभातो ह्येवैष ब्रह्मलोकः ॥२॥

तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥३॥

इत्यष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः॥४॥

इसलिये सेतुरूप इस आत्मा को पार कर जाने पर (अज्ञानावस्था में पुरुष) अन्धा होने पर भी ज्ञानोत्तर काल में अन्धा नहीं होता, वैसे ही विद्ध होने पर भी अविद्ध हो जाता है। उपतापी होने पर भी रोगादि उपताप से रहित हो जाता है। इसलिए इस सेतु को प्राप्त कर तमोरूपा रात्रि भी दिन हो जाती है, क्योंकि यह ब्रह्मलोक स्वभाव से सदा प्रकाश स्वरूप है॥ २॥

ऐसा होने के कारण जो इस पूर्वोक्त ब्रह्मलोक को अष्ट मैथुन त्यागरूप ब्रह्मचर्य के द्वारा शास्त्र एवं आचार्य के उपदेश के अनन्तर जानते हैं, ऐसे उपासक को ही यह ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उनकी सम्पूर्ण लोकों में स्वेच्छागति हो जाती है॥ ३॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

यस्माच्च पाप्मकार्यमान्ध्यादि शरीरवतः स्यान्न त्वशरीरस्य। **तस्माद्वा एत**मात्मानं **सेतुं तीर्त्वा** प्राप्यानन्धो **भवति** देहवत्त्वे पूर्वमन्धोऽपि सन्। तथा **विद्धः सन्**देहवत्त्वे स देहवियोगे सेतुं प्राप्या**विद्धो भवति**। तथो**पतापी** रोगाद्युपतापवान्**सन्ननुपतापी भवति**। किंच यस्मादहोरात्रे न स्तः सेतौ, **तस्माद्वा एतं सेतुं तीर्त्वा** प्राप्य **नक्तमपि** तमोरूपं रात्रिरपि सर्व**महरेवाभिनिष्पद्यते**। विज्ञप्त्यात्मज्योतिःस्वरूपमहरिवाहः सदैकरूपं विदुषः संपद्यत इत्यर्थः। **सकृद्विभातः** सदा विभातः सदैकरूपः स्वेन रूपेणैष ब्रह्मलोकः॥ २॥

तत्तत्रैवं सत्येतं यथोक्तं **ब्रह्मलोकं** ब्रह्मचर्येण स्त्रीविषयतृष्णात्यागेन शास्त्राचार्योप-देशम**नुविन्दति** स्वात्मसंवेद्यतामापादयन्ति ये, **तेषामेव** ब्रह्मचर्यसाधनवतां ब्रह्मविदा**मेष ब्रह्मलोकः**, नान्येषां स्त्रीविषयसंपर्कजाततृष्णानां ब्रह्मविदामपीत्यर्थः। **तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवती**त्युक्तार्थम्। तस्मात्परममेतत्साधनं ब्रह्मचर्यं ब्रह्मविदामित्य-भिप्रायः॥ ३॥

इत्यष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः॥४॥



(अथाष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः।)

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्ट्वाऽऽत्मानमनुविन्दते ॥१॥

अथ यत्सत्त्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव

यज्ञादि में ब्रह्मचर्य दृष्टि

अब लोक में (परम पुरुषार्थ का साधन होने के कारण) जिसे यज्ञ कहते हैं, वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि जो ज्ञानवान् हैं, वे ब्रह्मचर्य से ही उस ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं और जिसे "इष्ट" ऐसा कहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्य ही है। क्योंकि ब्रह्मचर्यरूप साधन से ही पूजन या आत्मविषय एषणा कर उस आत्मा को शास्त्र एवं आचार्य के उपदेशानुसार साक्षात् जान लेता है।।१।।

तथा जिसे "सत्त्रायण" ऐसा कहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि पूर्वोक्त (यज्ञ और इष्ट के समान) ब्रह्मचर्यरूप साधन से ही सत्स्वरूप परमात्मा से अपनी रक्षा करता है (अतः

य आत्मा सेतुत्वादिगुणैः स्तुतस्तत्प्राप्तये ज्ञानसहकारिसाधनान्तरं ब्रह्मचर्याख्यं विधातव्यमित्याह। यज्ञादिभिश्च तत्स्तौति कर्तव्यार्थम्—

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते लोके परमपुरुषार्थसाधनं कथयन्ति शिष्टास्त**द्ब्रह्मचर्यमेव**। यज्ञस्यापि यत्फलं **तद्**ब्रह्मचर्यवाँल्लभतेऽतो यज्ञोऽपि ब्रह्मचर्यमेवेति प्रतिपत्तव्यम्। कथं ब्रह्मचर्यं यज्ञः? इत्याह— **ब्रह्मचर्येणै**व **हि** यस्मा**द्यो ज्ञाता** स **तं** ब्रह्मलोकं यज्ञस्यापि पारम्पर्येण फलभूतं **विन्दते** लभते, ततो यज्ञोऽपि ब्रह्मचर्यमेवेति। यो ज्ञातेत्यक्षरानुवृत्तेर्यज्ञो ब्रह्मचर्यमेव। **अथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्**। कथम्? **ब्रह्मचर्येणै**व साधनेन तमीश्वर**मिष्ट्वा** पूजयित्वाऽथवैषणामात्मविषयां कृत्वा त**मात्मानमनुविन्दते**। एषणादिष्टमपि ब्रह्मचर्यमेव।।१।।

अथ यत्सत्त्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्तथा सतः परस्मादात्मन आत्मनस्त्राणं रक्षणं ब्रह्मचर्यसाधनेन **विन्दते**। अतः सत्त्रायणशब्दमपि ब्रह्मचर्यमेव

तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवाऽऽत्मानमनुविद्य मनुते ॥२॥

अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदेष ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दतेऽथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्तदरश्च ह वै ण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो

सत्रायण नामवाला भी ब्रह्मचर्य ही है) और जिसे ''मौन'' ऐसा कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है; क्योंकि ब्रह्मचर्यरूप साधन से ही आत्मा को जान करके ध्यान करता है (अतः मौन नाम वाला भी ब्रह्मचर्य ही है)।।२।।

जिसे ''अनाशकायन'' (अविनाशी) कहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि जिस आत्मा को ब्रह्मचर्य से प्राप्त करता है; वह यह आत्मा नष्ट नहीं होता और जिसे ''अरण्यायन'' ऐसा कहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि इस ब्रह्मलोक में ब्रह्मचारी पुरुष 'अर' और 'ण्य' नाम

तत्। अथ **यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येणै**व साधनेन युक्तः सन्**नात्मानं** शास्त्राचार्याभ्याम**नुविद्य** पश्चान्**मनुते** ध्यायति। अतो मौनशब्दमपि ब्रह्मचर्यमेव।। २।।

अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्। यमात्मानं ब्रह्मचर्येणानुविन्दते स एष ह्यात्मा ब्रह्मचर्यसाधनवतो न नश्यत्यतोऽनशनादनाशकायनमपि ब्रह्मचर्यमेव। **अथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्**। अरण्यशब्दयोरर्णवयोर्ब्रह्मचर्यवतोऽयनादरण्यायनं ब्रह्मचर्यम्। यो ज्ञानाद्यज्ञ, एषणादिष्टं, सतस्त्राणात्सत्रायणं, मननान्मौनमनशनादनाशकायनमरण्ययोर्गमनादरण्यायनमित्यादिभिर्महद्भिः पुरुषार्थसाधनैः स्तुतत्वाद्ब्रह्मचर्यं परमं ज्ञानस्य सहकारिकारणं साधनमित्यतो ब्रह्मविदा यत्नतो रक्षणीयमित्यर्थः। तत्तत्र हि **ब्रह्मलोके**ऽरश्च ह वै प्रसिद्धौ **ण्यश्चार्णवौ** समुद्रौ समुद्रोपमे वा सरसी **तृतीयस्यां** भुवमन्तरिक्षं चापेक्ष्य तृतीया द्यौस्तस्यां तृतीयस्यामितोऽस्माल्लोकादारभ्य गण्यमानायां **दिवि**। तत्तत्रैव चैरमिराऽन्नं तन्मय ऐरो मण्डस्तेन पूर्ण**मैरंमदीयं** तदुपयोगिनां मदकरं हर्षोत्पादकं **सरः**। **तत्रैव चाश्वत्थो** वृक्षः **सोमसवनो** नामतः सोमोऽमृतं तन्निःस्रवोऽमृतस्रव इति वा। तत्रैव च ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्यसाधनरहितैर्ब्रह्मचर्यसाधनवद्भ्योऽन्यैर्न जीयते इत्**यपराजिता** नाम

दिवि तदैरंमदीयꣳ सरस्तदश्वत्थः सोमसवनस्तदपराजिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितꣳ हिरणमयम् ।।३।।

तद्य एवैतावरं च ण्यं चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ।।४।।

इत्यष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः।।५।।

वाले दो समुद्रों को प्राप्त करता है, यहाँ से तीसरे द्युलोक में ऐरंमदीय (हर्षोत्पादक) सरोवर है वहाँ पर सोम सवन नामवाला अश्वत्थ वृक्ष है, वहाँ हिरण्यगर्भ की अपराजित नामवाली पुरी है तथा ब्रह्मारूप प्रभु के द्वारा विशेषरूप से निर्मित स्वर्णमय मण्डप है।। ३।।

उस ब्रह्मलोक में जो ये 'अर' और 'ण्य' नामवाले दो समुद्र कहे गए हैं, ब्रह्मचर्य द्वारा 'अर' और 'ण्य' नाम वाले उन दोनों समुद्रों को प्राप्त करते हैं, उन्हीं को वह ब्रह्मलोक मिलता है। उनकी सम्पूर्ण लोकों में स्वेच्छा गति हो जाती है।।४।।

।।इति पञ्चमः खण्डः ।।

पूः पुरी **ब्रह्मणो** हिरण्यगर्भस्य। ब्रह्मणा च प्रभुणा विशेषेण मितं निर्मितं तच्च **हिरणमयं** सौवर्णं प्रभुविमितं मण्डपमिति वाक्यशेषः।। ३।।

तत्तत्रैव ब्रह्मलोक एतावर्णवौ यावरण्याख्यावुक्तौ **ब्रह्मचर्येण** साधनेना**नुविन्दन्ति** ये, **तेषामेवैष** यो व्याख्यातो **ब्रह्मलोकस्तेषां** च ब्रह्मचर्यसाधनवतां ब्रह्मविदां **सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति**। नान्येषामब्रह्मचर्यपराणां बाह्यविषयासक्तबुद्धीनां कदाचिदपीत्यर्थः। नन्वत्र त्वमिन्द्रस्त्वं यमस्त्वं वरुण इत्यादिभिर्यथा कश्चित्स्तूयते महार्ह, एवमिष्टादिभिः शब्दैर्न स्त्र्यादिविषयतृष्णानिवृत्तिमात्रं स्तुत्यर्हं, किं तर्हि ज्ञानस्य मोक्षसाधनत्वात्तदेवेष्टादिभिः स्तूयत इति केचित्। न। स्त्र्यादिबाह्यविषयतृष्णापहृतचित्तानां प्रत्यगात्मविवेकविज्ञानानुपपत्तेः। ''पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्'' (क.२.१.१) इत्यादिश्रुतिस्मृतिशतेभ्यः। ज्ञानसहकारिकारणं स्त्र्यादिविषयतृष्णानिवृत्तिसाधनं विधातव्यमेवेति युक्तैव तत्स्तुतिः। ननु च यज्ञादिभिः स्तुतं ब्रह्मचर्यमिति यज्ञादीनां पुरुषार्थसाधनत्वं गम्यते। सत्यं गम्यते न त्विह ब्रह्मलोकं प्रति यज्ञादीनां साधनत्वमभिप्रेत्य यज्ञादिभिर्ब्रह्मचर्यं स्तूयते, किं तर्हि, तेषां प्रसिद्धं पुरुषार्थसाधनत्वमपेक्ष्य। यथेन्द्रादिभी राजा, न तु यत्रेन्द्रादीनां व्यापारस्तत्रैव राज्ञ इति तद्वत्।

ये इमेऽर्णवादयो ब्राह्मलोकिकाः संकल्पजाश्च पित्रादयो भोगास्ते किं पार्थिवा

आप्याश्च यथेह लोके दृश्यन्ते तद्वदर्णववृक्षपूःस्वर्णमण्डपान्याहोस्विन्मानसप्रत्ययमात्राणीति। किंचातः, यदि पार्थिवा आप्याश्च स्थूलाः स्युर्हृद्याकाशे समाधानानुपपत्तिः। पुराणे च मनोमयानि ब्रह्मलोके शरीरादीनीति वाक्यं विरुध्येत। "अशोकमहिमम्" इत्याद्याश्च श्रुतयः। ननु समुद्राः सरितः सरांसि वाप्यः कूपा यज्ञा वेदा मन्त्रादयश्च मूर्तिमन्तो ब्रह्माणमुपतिष्ठन्त इति मानसत्वे विरुध्येत पुराणस्मृतिः। न। मूर्तिमत्त्वे प्रसिद्धरूपाणामेव तत्र गमनानुपपत्तेः। तस्मात्प्रसिद्धमूर्तिव्यतिरेकेण सागरादीनां मूर्त्यन्तरं सागरादिभिरुपात्तं ब्रह्मलोकगन्तृ कल्पनीयम्। तुल्यायां च कल्पनायां यथाप्रसिद्धा एव मानस्यः आकारवत्यः पुंस्त्र्याद्या मूर्तयो युक्ताः कल्पयितुं मानसदेहानुरूप्यसंबन्धोपपत्तेः। दृष्टा हि मानस्यः एवाऽऽकारवत्यः पुंस्त्र्याद्या मूर्तयः स्वप्ने।

ननु ता अनृता एव। "त इमे सत्याः कामा" इति श्रुतिस्तथा सति विरुध्येत। न। मानसप्रत्ययस्य सत्त्वोपपत्तेः। मानसा हि प्रत्ययाः स्त्रीपुरुषाद्याकाराः स्वप्ने दृश्यन्ते। ननु जाग्रद्वासनारूपाः स्वप्नदृश्या न तु तत्र स्त्र्यादयः स्वप्ने विद्यन्ते। अत्यल्पमिदमुच्यते। जाग्रद्विषया अपि मानसप्रत्ययाभिनिर्वृत्ता एव सदीक्षाभिनिर्वृत्ततेजोबन्नमयत्वाज्जाग्रद्विषयाणाम्। संकल्पमूला हि लोका इति चोक्तम् "समक्लृपतां द्यावापृथिवी" (छा.७.४.१) इत्यत्र। सर्वश्रुतिषु च प्रत्यगात्मन उत्पत्तिः प्रलयश्च तत्रैव स्थितिश्च "यथा वा अरा नाभौ" (छा.७.१५.१) इत्यादिनोच्यते। तस्मान्मानसानां बाह्यानां च विषयाणामितरेतरकार्यकारणत्वमिष्यत एव बीजाङ्कुरवत्। यद्यपि बाह्या एव मानसा मानसा एव च बाह्या नानृतत्वं तेषां कदाचिदपि स्वात्मनि भवति।

ननु स्वप्ने दृष्टाः प्रतिबुद्धस्यानृता भवन्ति विषयाः। सत्यमेव। जाग्रद्बोधापेक्षं तु तदनृतत्वं, म स्वतः। तथा स्वप्नबोधापेक्षं च जाग्रद्दृष्टिविषयानृतत्वं, न स्वतः। विशेषाकारमात्रं तु सर्वेषां मिथ्याप्रत्ययनिमित्तमिति "वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयमनृतं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्। तान्यप्याकारविशेषतोऽनृतं स्वतः सन्मात्ररूपतया सत्यम्। प्राक्सदात्मप्रतिबोधात्स्वविषयेऽपि सर्वं सत्यमेव स्वप्नदृश्या इवेति न कश्चिद्विरोधः। तस्मान्मानसा एव ब्राह्मलौकिका अरण्यादयः संकल्पजाश्च पित्रादयः कामाः। बाह्यविषयभोगवदशुद्धिरहित्वाच्छुद्धसत्त्वसंकल्पजन्या इति निरतिशयसुखाः सत्याश्चेश्वराणां भवन्तीत्यर्थः। सत्सत्यात्मप्रतिबोधेऽपि रज्ज्वामिव कल्पिताः सर्पादयः सदात्मस्वरूपतामेव प्रतिपद्यन्ते इति सदात्मना सत्या एव भवन्ति।।४।।

इत्यष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः।।५।।

(अथाष्टमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः।)

अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः ॥१॥

हृदयस्थ नाड़ी तथा आदित्य रश्मि की उपासना

इसके बाद (व्यष्टि-समष्टि की अभिन्नता बतलाते हुए ब्रह्म उपासना कहते हैं-) ये जो हृदय की नाड़ियाँ हैं, वे पिंगलवर्ण तथा सूक्ष्म रस की हैं। इसी प्रकार वे नाड़ियाँ शुक्ल, नील, पीत और लोहित रस से भी पूर्ण हैं, क्योंकि यह आदित्य पिंगलवर्ण वाला है, यह शुक्ल है, यह नील है, यह पीत है और यह लाल वर्ण है (आदित्य से सम्बद्ध होने के कारण ये नाड़ियाँ भी वैसे ही वर्ण विशेष वाली हो जाती हैं)॥१॥

यस्तु हृदयपुण्डरीकगतं यथोक्तगुणविशिष्टं ब्रह्मचर्यादिसाधनसंपन्नस्त्यक्तबाह्यविषयानृततृष्णः सन्नुपास्ते तस्येयं मूर्धन्यया नाड्या गतिर्वक्तव्येति नाडीखण्ड आरभ्यते—

अथ या एता वक्ष्यमाणा हृदयस्य पुण्डरीकाकारस्य ब्रह्मोपासनस्थानस्य संबन्धिन्यो **नाड्यो** हृदयमांसपिण्डात्सर्वतो विनिःसृता आदित्यमण्डलादिव रश्मयस्ताश्चै**ताः पिङ्गलस्य** वर्णविशेषविशिष्टस्या**णिम्नः** सूक्ष्मरसस्य रसेन पूर्णास्तदाकारा एव **तिष्ठन्ति** वर्तन्त इत्यर्थः। तथा **शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्य** च रसस्य पूर्णा **इति** सर्वत्राध्याहार्यम्। सौरेण तेजसा पित्ताख्येन पाकाभिनिर्वृत्तेन कफेनाल्पेन संपर्कात्पिङ्गलं भवति सौरं तेजः पित्ताख्यम्। तदेव च वातभूयस्त्वान्नीलं भवति। तदेव च कफभूयस्त्वाच्छुक्लम्। कफेन समतायां पीतम्। शोणितबाहुल्येन लोहितम्। वैद्यकाद्वा वर्णविशेषा अन्वेष्टव्याः कथं भवन्तीति। श्रुतिस्त्वाहाऽऽदित्यसंबन्धादेव तत्तेजसो नाडीष्वनुगतस्यैते वर्णविशेषा इति। कथम्। **असौ वा आदित्यः पिङ्गलो** वर्णत **एष** आदित्यः **शुक्लोऽप्येष नील एष पीत एष लोहित** आदित्य एव॥१॥

तद्यथा महापथ आतत उभौ ग्रामौ गच्छतीमं चामुं चैवमेवैता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोकौ गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादित्यात्प्रतायन्ते ता आसु नाडीषु सृप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः ॥२॥

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु तदा नाडीषु सृप्तो भवति तं न कश्चन पाप्मा स्पृशति तेजसा

उस विषय में यह दृष्टान्त समझना चाहिए, जैसे लोक में कोई विस्तीर्ण मार्ग इस समीपस्थ और उस दूरस्थ दोनों ग्रामों को जाता है। वैसे ही ये आदित्य किरणें इस पुरुष में और उस आदित्य मण्डल में दोनों ही लोकों में जाती हैं। वे निरन्तर इस आदित्य से ही निकलती हैं और इन शरीरस्थ नाड़ियों में व्याप्त हो जाती है। ऐसे ही जो इन नाड़ियों से निकलकर फैलती हैं, वे इस आदित्य मण्डल में प्रवेश करती हैं।।२।।

ऐसा होने से जिस समय यह जीव सोया हुआ संप्रसन्न (सम्यक् प्रकार से प्रसन्न) हो स्वप्न नहीं देखता, उस समय (सूर्य के तेज से पूर्ण हुई) इन पूर्वोक्त नाड़ियों में प्रविष्ट हो जाता है,

---

तस्याध्यात्मं नाडीभिः कथं संबन्ध इत्यत्र दृष्टान्तमाह-**त**त्तत्र **यथा** लोके महान्विस्तीर्णः पन्था **महापथ आततो** व्याप्त **उभौ ग्रामौ गच्छतीमं च** संनिहित**ममुं** च विप्रकृष्टं दूरस्थमेवं यथा दृष्टान्तो महापथ उभौ ग्रामौ **प्रविष्ट, एवमेवैता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोका**वमुं चाऽऽदित्यमण्डल**मिमं च** पुरुषं **गच्छन्त्यु**भयत्र प्रविष्टाः। यथा महापथः। कथम्? **अमुष्मादादित्यमण्डलात्प्रतायन्ते** संतता भवन्ति। **ता** अध्यात्मम**मासु** पिङ्गलादिवर्णासु यथोक्तासु **नाडीषु सृप्ता** गताः प्रविष्टा इत्यर्थः। **आभ्यो नाडीभ्यः** प्रतायन्ते प्रवृत्ताः संतानभूताः सत्यस्तेऽमुष्मिन्। रश्मीनामुभयलिङ्गत्वात्त इत्युच्यन्ते।।२।।

तत्तत्रैवं सति **यत्र** यस्मिन्काल **एतत्**स्वपनमयं जीवः **सुप्तो** भवति। स्वापस्य द्विप्रकारत्वाद्विशेषणं समस्त इति। उपसंहृतसर्वकरणवृत्तिरित्येतत्। अतो बाह्यविषयसंपर्कजनितकालुष्याभावात्सम्यक् प्रसन्नः संप्रसन्नो भवति। अत एव **स्वप्नं** विषयाकाराभासं मानसं स्वप्नप्रत्ययं **न विजानाति** नानुभवतीत्यर्थः। यदेवं सुप्तो भवत्या**सु** सौरतेजःपूर्णासु

हि तदा संपन्नो भवति ॥३॥

अथ यत्रैतदबलिमानं नीतो भवति तमभित आसीना आहुर्जानासि मां जानासि मामिति स यावदस्माच्छरीरादनुत्क्रान्तो भवति तावज्जानाति ॥४॥

तब इस जीव को कोई पाप स्पर्श नहीं करता, क्योंकि उस समय वह जीव आदित्य तेज में व्याप्त हो जाता है।।३।।

और जिस समय यह जीव (रोगादि तथा जरादि के कारण) देह की दुर्बलता को प्राप्त होता है उस समय उसके चारों ओर बैठे हुए सगे सम्बन्धी कहते हैं क्या तुम मुझ अपने पुत्र को जानते हो? क्या तुम मुझ अपने पिता को पहचानते हो? वह मुमुर्षु जीव जब तक इस शरीर से निकलकर बाहर नहीं जाता, तब तक उन्हें पहचानता रहता है।।४।।

यथोक्तासु नाडीषु **तदा सृप्तः** प्रविष्टो नाडीभिर्द्वारभूताभिर्हृदयाकाशं गतो भवतीत्यर्थः। न ह्यन्यत्र सत्संपत्तेः स्वप्नादर्शनमस्तीति सामर्थ्यान्नाडीष्विति सप्तमी तृतीयया परिणम्यते। **तं** सता संपन्नं न **कश्चन न** कश्चिदपि धर्माधर्मरूपः **पाप्मा** स्पृशतीति स्वरूपावस्थित्वात्तदाऽऽत्मनः। देहेन्द्रियविशिष्टं हि सुखदुःखकार्यप्रदानेन पाप्मा स्पृशति नतु सत्संपन्नं स्वरूपावस्थं कश्चिदपि पाप्मा स्प्रष्टुमुत्सहते, अविषयत्वात्। अन्यो ह्यन्यस्य विषयो भवति, न त्वन्यत्वं केनचित्कुतश्चिदपि सत्संपन्नस्य। स्वरूपप्रच्यवनं त्वात्मनो जाग्रत्स्वप्नावस्थां प्रति गमनं बाह्यविषयप्रतिबोधोऽविद्याकामकर्मबीजस्य ब्रह्मविद्याहुताशादाहनिमित्तमित्यवोचाम षष्ठ एव, तदिहापि प्रत्येतव्यम्। यदैवं सुप्तः सौरेण **तेजसा हि** नाड्यन्तर्गतेन सर्वतः **संपन्नो** व्याप्तो **भवति**। अतो विशेषेण चक्षुरादिनाडीद्वारैर्बाह्यविषयभोगायाप्रसृतानि करणान्यस्य **तदा** भवन्ति। तस्मादयं करणानां निरोधात्स्वात्मन्येवावस्थितः स्वप्नं न विजानातीति युक्तम्।। ३।।

तत्रैवं सत्य**थ यत्र** यस्मिन्कालेऽ**बलिमानम्**बलभावं देहस्य रोगादिनिमित्तं जरादिनिमित्तं वा कृशीभाव**मेतन्**नयनं **नीतः** प्रापितो देवदत्तो **भवति** मुमूर्षुर्यदा भवतीत्यर्थः। **तमभितः** सर्वतो वेष्टयित्वाऽऽ**सीना** ज्ञातय **आहुर्जानासि मां** तव पुत्रं, **जानासि मां** पितरं वेत्यादि। **स** मुमूर्षु**र्यावदस्माच्छरीरादनुत्क्रान्तो**ऽनिर्गतो **भवति, तावत्**पुत्रादी**ञ्जानाति**।। ४।।

अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते स ओमिति वा होद्वा मीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम् ॥५॥

तदेष श्लोकः। शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्न्या उत्क्रमणे

फिर जब यह इस शरीर से निकल जाता है, तब वह उन्हीं आदित्य रश्मियों से ऊपर की ओर जाता है। वह 'ओं' ऐसा स्मरण कर ऊर्ध्वलोक अथवा अधोलोक को जाता है। जितने देर में यह मन जाता है, उतनी ही देर में वह उपासक आदित्य लोक में पहुँच जाता है। निःसन्देह आदित्य ही लोकद्वार है, यह ब्रह्मोपासकों के लिए ब्रह्मलोक प्राप्ति का प्रशस्त द्वार है और अज्ञानियों के लिये यह निरोध स्थान है॥५॥

इस विषय में यह मन्त्र है। माँस के पिण्डरूप हृदय से सम्बन्धित एक सौ एक नाड़ियाँ है, उनमें से एक नाड़ी ऊपर की ओर जाने वाली है, जीव उसके द्वारा जाकर अमृतत्व को प्राप्त

अथ यत्र यदैतत्क्रियाविशेषणमित्य**स्माच्छरीरादुत्क्रामति। अथ** तदै**तैरेव** यथोक्ताभी **रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते** यथाकर्मजितं(त) लोकं प्रत्यविद्वान्। इतरस्तु विद्वान्यथोक्तसाधनसंपन्नः **स ओमि**त्योंकारेणाऽऽत्मानं ध्यायन्यथापूर्वं **वा** हैव, उद्वोर्ध्वं **वा** विद्वांश्चेदितरस्तिर्यङ्वेत्यभिप्रायः। **मीयते** प्रमीयते गच्छतीत्यर्थः। **स** विद्वानुत्क्रमिष्यन्**यावत्क्षिप्येन्मनो** यावता कालेन मनसः क्षेपः स्या**त्तावता** कालेना**ऽऽदित्यं गच्छति** प्राप्नोति क्षिप्रं गच्छतीत्यर्थो न तु तावतैव कालेनेति विवक्षितम्। किमर्थमादित्यं **गच्छती**त्युच्यते—**एतद्वै खलु** प्रसिद्धं ब्रह्मलोकस्य द्वारं य आदित्यस्तेन द्वारभूतेन ब्रह्मलोकं गच्छति विद्वान्। अतो **विदुषां प्रपदनं** प्रपद्यते ब्रह्मलोकमनेन द्वारेणेति प्रपदनम्। निरोधनं **निरोधो**ऽस्मादादित्याद**विदुषां** भवतीति निरोधः। सौरेण तेजसा देहे एव निरुद्धाः सन्तो मूर्धन्यया नाड्या नोत्क्रमन्ते एवेत्यर्थः। 'विष्वङ्ङन्या' इति श्लोकात्॥५॥

तदेतस्मिन्यथोक्तेऽर्थ **एष श्लोको** मन्त्रो भवति। **शतं** चैका चैकोत्तरशतं **नाड्यो हृदयस्य** मांसपिण्डभूतस्य संबन्धिन्यः प्रधानतो भवन्ति। आनन्त्या-द्देहनाडीनाम्। **तासामेका मूर्धानमभिनिःसृता** विनिर्गता **तयोर्ध्वमाय**न्गच्छन्न**मृतत्वम-**

भवन्त्युत्क्रमणे भवन्ति ॥६॥

इत्यष्टमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः॥ ६॥



(अथाष्टमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः।)

य आत्माऽपहतमाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजि-

करता है और इधर-उधर जाने वाली अन्य नाड़ियाँ केवल उत्क्रमण का कारण मात्र हैं अर्थात् उनके द्वारा निकलने पर जीव फिर से जन्म धारण कर लेता है॥ ६॥

। इति षष्ठः खण्डः ॥



आत्मतत्त्व की जिज्ञासा से इन्द्र और विरोचन का प्रजापति के पास जाना

जो आत्मा धर्माधर्मादिरूप पाप से रहित, बुढ़ापे से रहित, मृत्यु से रहित, शोकरहित, भूख-प्यास से रहित, सत्यकाम और सत्य संकल्प है, उसकी (शास्त्र और आचार्य के उपदेशों से) खोजकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, वह विशेष रूप से जानने योग्य है। जो उस आत्मतत्त्व को

मृतभाव**मेति विष्वङ्**नानागतयस्तिर्यग्विसर्पिण्य ऊर्ध्वगाश्च**ान्या** नाड्यो **भवन्ति** संसारगमनद्वारभूता न त्वमृतत्वाय, किं तर्हयुत्**क्रमणे** एवोत्क्रान्त्यर्थमेव **भवन्ती**-त्यर्थः। द्विरभ्यासः प्रकरणसमाप्त्यर्थः॥ ६॥

इत्याष्टमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः॥ ६॥

"अथ य एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्म" इत्युक्तम्। तत्र कोऽसौ संप्रसादः, कथं वा तस्याधिगमो यथा सोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते। येन स्वरूपेणाभिनिष्पद्यते स किंलक्षण आत्मा। संप्रसादस्य च देहसंबन्धीनि पररूपाणि ततो यदन्यत्कथं स्वरूपमित्येतेऽर्था वक्तव्या इत्युत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते। आख्यायिका तु विद्याग्रहणसंप्रदानविधिप्रदर्शनार्था विद्यास्तुत्यर्था च राजसेवितं पानीयमितिवत्।

य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः। यस्योपासनायोपलब्ध्यर्थं हृदयपुण्डरीकमभिहितं यस्मिन्कामाः समाहिताः

ज्ञासितव्यः स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच ।।१।।

तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे ते होचुर्हन्त तमात्मानमन्विच्छामो यमात्मानमन्विष्य सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च

शास्त्र एवं गुरु के उपदेश के द्वारा खोजकर विशेष रूप से जान लेता है, वह सम्पूर्ण लोकों को और सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है, ऐसी घोषणा प्रजापति ने की ।।१।।

प्रजापति के इस वाक्य को देव और असुर दोनों ही ने कर्ण परम्परा से जाना। दोनों ही ने (अपनी-अपनी सभा में विद्यमान सदस्यों से) कहा, कि यदि आप लोगों की अनुमति हो तो हम उस आत्मा को जानना चाहते हैं, जिसे जान लेने पर जीव सम्पूर्ण लोकों और सम्पूर्ण भोगों को प्राप्त कर लेता है। ऐसा निश्चय कर देवताओं का राजा इन्द्र और असुरों का राजा विरोचन

सत्या अनृतापिधाना यदुपासनसहभावि ब्रह्मचर्यं साधनमुक्तमुपासनफलभूतकामप्रतिपत्तये च मूर्धन्यया नाड्या गतिरभिहिता **सोऽन्वेष्टव्यः** शास्त्राचार्योपदेशैर्ज्ञातव्यः **स** विशेषेण ज्ञातुमेष्टव्यो **विजिज्ञासितव्यः** स्वसंवेद्यतामापादयितव्यः। किं तस्यान्वेषणाद्विजिज्ञासनाच्च स्यादित्युच्यते— **स** सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च **कामान्यस्तमात्मानं** यथोक्तेन प्रकारेण शास्त्राचार्योपदेशेनान्विष्य **विजानाति** स्वसंवेद्यतामापादयति, तस्यैतत्सर्वलोककामावाप्तिः सर्वात्मता फलं भवतीति ह किल प्रजापतिरुवाच। अन्वेष्टव्यो विजिज्ञासितव्य इति चैष नियमविधिरेव, नापूर्वविधिः। एवमन्वेष्टव्यो विजिज्ञासितव्य इत्यर्थः। दृष्टार्थत्वादन्वेषणविजिज्ञासनयोः। दृष्टार्थत्वं च दर्शयिष्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्यनेनासकृत्। पररूपेण च देहादिधर्मैरवगम्यमानस्याऽऽत्मनः स्वरूपाधिगमे विपरीताधिगमनिवृत्तिर्दृष्टं फलमिति नियमार्थतैवास्य विधेर्युक्ता न त्वग्निहोत्रादीनामिवापूर्वविधित्वमिह संभवति।। १।।

तद्धोभये इत्याद्याख्यायिकाप्रयोजनमुक्तम्। तद्ध किल प्रजापतेर्वचनमुभये **देवासुरा** देवाश्चासुराश्च देवासुरा **अनु** परम्परागतं स्वकर्णगोचरापन्नमनु**बबुधिरे**ऽनुबुद्धवन्तः। ते चैतत्प्रजापतिवचो बुद्ध्वा किमकुर्वन्नित्युच्यते— **ते होचु**रुक्तवन्तोऽन्योन्यं देवाः स्वपरिषद्यसुराश्च **हन्त** यद्यनुमतिर्भवतां प्रजापतिनोक्तं **तमात्मानमन्विच्छामो**ऽन्वेषणं कुर्मो **यमात्मानमन्विष्य सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च** कामानित्युक्त्वेन्द्रो **हैव**

कामानितीन्द्रो हैव देवानामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणां तौ हासंविदानावेव समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः ।।२।।

तौ ह द्वात्रिꣳशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुस्तौ ह प्रजापतिरुवाच किमिच्छन्तावावास्तमिति तौ होचतुर्य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति

(अपनी सम्पूर्ण भोग सामग्री आत्मीयजनों को सौंपकर शरीरमात्र से) ये दोनों परस्पर प्रतिस्पर्धा (ईर्ष्या) करते हुए ही अपने हाथों में समिधाओं का भार लेकर प्रजापति के पास गए।। २।।

वहाँ जाकर उन दोनों ने ही बत्तीस वर्ष तक आचार्य शुश्रूषा एवं ब्रह्मचर्यपूर्वक वास विया (तत्पश्चात् उनके अभिप्राय को समझने वाले) प्रजापति ने उनसे कहा- तुम लोग किस चीज की इच्छा करते हुए यहाँ पर रह रहे हो? उन्होंने कहा- (किसी समय आपने घोषणा की थी) जो आत्मा पापरहित, बुढ़ापे से रहित, मृत्यु से हीन, शोक से रहित, क्षुधा से रहित, प्यास से रहित, सत्यकाम और सत्य संकल्प है; उसका अन्वेषण करना चाहिए, उसकी विशेषरूप से जिज्ञासा करनी चाहिए, क्योंकि जो उस आत्मतत्त्व को खोजकर उसे विशेषरूप से जान लेता है, वह

राजैव स्वयं देवानामितरान्देवांश्च भोगपरिच्छदं च सर्वं स्थापयित्वा शरीरमात्रेणैव प्रजापतिं प्रत्य**भिप्रवव्राज** प्रगतवांस्तथा **विरोचनोऽसुराणाम्**। विनयेन गुरवोऽभिगन्तव्या इत्येतद्दर्शयति। त्रैलोक्यराज्याच्च गुरुतरा विद्येति। यतो देवासुरराजौ महार्हभोगार्हौ सन्तौ तथा गुरुमभ्युपगतवन्तौ। **तौ ह** किला**संविदानावेवा**न्योन्यं संविदमकुर्वाणौ विद्याफलं प्रत्यन्योन्यमीर्ष्यां दर्शयन्तौ **समित्पाणी** समिद्भारहस्तौ **प्रजापति-सकाशमाजग्मतु**रागतवन्तौ।। २।।

तौ ह गत्वा **द्वात्रिंशतं वर्षाणि** शुश्रूषापरौ भूत्वा **ब्रह्मचर्यमूषतु**रुषितवन्तौ। अभिप्रायज्ञः **प्रजापतिस्तावुवाच किमिच्छन्तौ** किं प्रयोजनमभिप्रेत्येच्छन्ताव-**वास्तमु**षितवन्तौ युवामितीत्युक्तौ तौ **होचतुः**। **य आत्मे**त्यादि भ**गवतो वचो वेदयन्ते** शिष्टा अतस्**तमा**त्मानं ज्ञातु**मिच्छन्तावावास्तमिति**। यद्यपि प्राक्प्रजापतेः समीपागमनादन्योन्यमीर्ष्यायुक्तावभूतां, तथाऽपि विद्याप्राप्तिप्रयोजनगौरवात्त्यक्त-

सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति भगवतो वचो वेदयन्ते तमिच्छन्तावावास्तमिति ।।३।।

तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेत्यथ योऽयं भगवोऽप्सु

सम्पूर्ण लोकों तथा सम्पूर्ण भोगों को प्राप्त कर लेता है। ऐसा आपके वाक्य को शिष्ट पुरुष परम्परा से हम जानते हैं। (यद्यपि यहाँ आने से पूर्व हम दोनों विद्वेष करते थे, किन्तु संप्रति उस परस्पर ईर्ष्या का त्याग कर हमने) उसी को जानने की इच्छा से यहाँ पर ब्रह्मचर्यपूर्वक वास कर रहे हैं।।३।।

प्रजापति ने (विशुद्धान्तःकरण समझ कर) उनसे कहा- यह जो पुरुष नेत्र में दीखता है; यह आत्मा है, यह अमर है, यह अभय है, यह ब्रह्म है''। (प्रजापति के इस वाक्य से दोनों ही ने नेत्रस्थ छाया को ही आत्मा समझकर कहा-) हे भगवन्! यह जो पुरुष जल में सभी ओर से

रागद्वेषमोहेर्ष्यादिदोषावेव भूत्वोषतुर्ब्रह्मचर्यं प्रजापतौ। तेनेदं प्रख्यापितमात्मविद्यागौरवम्।।३।।

तावेवं तपस्विनौ शुद्धकल्मषौ योग्यावुपलक्ष्य **प्रजापतिरुवाच** ह य **एषोऽक्षिणि पुरुषो** निवृत्तचक्षुर्भिर्मृदितकषायै**र्दृश्यते** योगिभिर्द्रष्टा, **एष आत्मा**ऽपहतपाप्मादिगुणो यमवोचं पुराऽहं यद्विज्ञानात्सर्वलोककामावाप्ति**रेतदमृतं** भूमाख्यमत एवा**भयम**तएव **ब्रह्म** वृद्धतममिति। अथैतत्प्रजापतिनोक्तमक्षिणि पुरुषो दृश्यत इति वचः श्रुत्वा छायारूपं पुरुषं जगृहतुः। गृहीत्वा च दृढीकरणाय प्रजापतिं पृष्टवन्तौ। **अथ योऽयं** हे **भगवोऽप्सु परिख्यायते** परिसमन्ताज्ज्ञायते **यश्चायमादर्शे** आत्मनः प्रतिबिम्बाकारः परिख्यायते खड्गादौ च, कतम एष एषां भगवद्भिरुक्तः, किंवैक एव सर्वेष्विति। एवं पृष्टः प्रजापतिरुवाच— **एष उ एव** यश्चक्षुषि द्रष्टा मयोक्त इति। एतन्मनसि कृ**त्वैषु सर्वेष्वन्तेषु** मध्येषु **परिख्यायते इति होवाच।**

ननु कथं युक्तं शिष्ययोर्विपरीतग्रहणमनुज्ञातुं प्रजापतेर्विगतदोषस्याऽऽचार्यस्य सतः। सत्यमेवं, नानुज्ञातम्। कथम्? तथाप्यात्मन्यध्यारोपितपाण्डित्यमहत्त्वबोद्धृत्वौ हीन्द्रविरोचनौ तथैव च प्रथितौ लोके। तौ यदि प्रजापतिना मूढौ युवां विपरीत-

परिसमन्ताज्ज्ञायते

परिख्यायते यश्चायमादर्शे कतम एष इत्येष उ एवैषु सर्वेष्वन्तेषु परिख्यायत इति होवाच ॥४॥ समन्तात् ज्ञायते.

इत्यष्टमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

(अथाष्टमाध्यायस्याष्टमः खण्डः।)

उदशरावे आत्मानमवेक्ष्य यदात्मनो न विजानीथस्तन्मे प्रब्रूतमिति तौ होदशरावेऽवेक्षांचक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं

दिखाई पड़ता है और जो दर्पण में पुरुष दीखता है, उनमें आत्मा कौन है? इस पर प्रजापति ने कहा- मैंने जिस नेत्रस्थ पुरुष को बतलाया है, वही इन सबमें प्रतीत होता है।।४।।

।।इति सप्तमः खण्डः ।।

जलपूर्ण सकोरे में आत्मप्रतिबिम्ब का दर्शन छायात्मनि आत्मप्रत्ययौ

(प्रजापति ने कहा-) जल से भरे हुए सकोरे में अपने को देख कर आत्मा के विषय में जो तुम लोग न समझ सको, वह मुझसे बतलाना। ऐसा सुनकर दोनों ही ने जल से भरे सकोरे

ग्राहिणावित्युक्तौ स्यातां ततस्तयोश्चित्ते दुःखं स्यात्तज्जनिताच्च चित्तावसादात्पुनःप्रश्न-श्रवणग्रहणावधारणं प्रत्युत्साहविघातः स्यादतो रक्षणीयौ शिष्याविति मन्यते प्रजापतिः। गृह्णीतां तावत्तदुदशरावदृष्टान्तेनापनेष्यामीति च। ननु न युक्तमेष उ एवेत्यनृतं वक्तुम्। न चानृतमुक्तम्। कथम्। आत्मनोक्तोऽक्षिपुरुषो मनसि संनिहिततरः शिष्यगृहीताच्छायात्मनः। सर्वेषां चाभ्यन्तरः "सर्वान्तरः" इति श्रुतेः। तमेवावोचदेष उ एवेत्यतो नानृतमुक्तं प्रजापतिना। तथा च तयोर्विपरीतग्रहणनिवृत्त्यर्थं ह्याह।।४।।

इत्यष्टामाध्यायस्य सप्तमः खण्डः।।७।।

उदशरावे उदकपूर्णे शरावादावा**त्मानमवेक्ष्या**नन्तरं **यत्त**त्राऽऽत्मानं पश्यन्तौ **न विजानीथस्तन्मे** मम **प्रब्रूतमा**चक्षीयाथामित्युक्तौ तौ ह तथैवोदशरावेऽवेक्षांचक्राते अवेक्षणं चक्रतुः। तथा कृतवन्तौ **तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति**। ननु तन्मे प्रब्रूतमित्युक्ताभ्यामुदशरावेऽवेक्षणं कृत्वा प्रजापतये न निवेदितमिदमावाभ्यां न विदितमित्यनिवेदिते चाज्ञानहेतौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति तत्र कोऽभिप्राय

पश्यथ इति तौ होचतुः सर्वमेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आ लोमभ्य आ नखेभ्यः प्रतिरूपमिति।।१।।

तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षेथामिति तौ ह साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ

में देखा, तत्पश्चात् प्रजापति ने कहा- तुम लोग क्या देखते हो? दोनों ही ने कहा- हे भगवन्! हम अपने आपको नख से लेकर लोम पर्यन्त जैसे के तैसे प्रतिबिम्ब को देखते हैं।।१।।

फिर दोनों से प्रजापति ने (छायात्मा में आत्मत्व निश्चय निवृत्ति के लिये) कहा- तुम दोनों अच्छी प्रकार से अलंकार से युक्त हो, सुन्दर वस्त्र धारण कर और लोम नखादि को कटवा कर परिष्कृत हो जल से पूर्ण सकोरे में देखो। तब उन्होंने भली प्रकार अलंकार से युक्त हो सुन्दर वस्त्र धारण कर, परिष्कृत होकर जलपूर्ण सकोरे में देखा (किसी प्रकार इनकी छाया में

इति। उच्यते— नैव तयोरिदमावयोरविदितमित्याशङ्काऽभूच्छायात्मन्यात्मप्रत्ययो निश्चित एवाऽऽसीत्। येन वक्ष्यति **तौ ह** शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुरिति। न ह्यनिश्चितेऽभिप्रेतार्थे प्रशान्तहृदयत्वमुपपद्यते। तेन नोचतुरिदमावाभ्यामविदितमिति। विपरीतग्राहिणौ च शिष्यावनुपेक्षणीयाविति स्वयमेव पप्रच्छ किं पश्यथ इति, विपरीतनिश्चयापनयाय च वक्ष्यति साध्वलंकृतावित्येवमादि। तौ होचतुः— **सर्वमेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आ लोमभ्य आ नखेभ्यः** प्रतिरूपमिति, यथैवाऽऽवां हे भगवो लोमनखादिमन्तौ स्वः एवमेवेदं लोमनखादिसहितमावयोः प्रतिरूपमुदशरावे पश्याव इति।।१।।

तौ ह पुनः **प्रजापतिरुवाच** च्छायात्मनिश्चयापनयाय, **साध्वलंकृतौ** यथा स्वगृहे **सुवसनौ** महार्हवस्त्रपरिधानौ **परिष्कृतौ** छिन्नलोमनखौ च **भूत्वोदशरावे** पुनरी**क्षेथामिति**। इह च नाऽऽदिदेश यदज्ञातं तन्मे प्रब्रूतमिति। कथं पुनरनेन साध्वलंकारादि कृत्वोदशरावेऽवेक्षणेन तयोश्छायात्मग्रहोऽपनीतः स्यात्। साध्वलंकार-सुवसनादीनामागन्तुकानां छायाकरत्वमुदशरावे यथा शरीरसंबद्धानामेवं शरीरस्यापि च्छायाकरत्वं पूर्वं बभूवेति गम्यते। शरीरैकदेशानां च लोमनखादीनां नित्यत्वेनाभि-प्रेतानामखण्डितानां छायाकरत्वं पूर्वमासीत्। छिन्नेषु च नैव लोमनखादिच्छाया दृश्यते,

भूत्वोदशरावेऽवेक्षांचक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति ॥२॥ लोमनखादिवच्छरीरस्याप्यागमापायित्वम्

तौ होचतुर्यथैवेदमावां भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ स्वे एवमेवेमौ भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतावित्येष

यावद् जीवेद् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् भस्मीभूतस्य देहस्य पुनः कुतरागमनम्

आत्मतत्व निश्चय निवृत्त हो जावे इसी अभिप्राय से) प्रजापति ने पुनः उनसे पूछा- तुम लोग क्या देखते हो?॥२॥ आसुरों की पाठ - लूट पाट सुख देता है सो पुण्य का फल, ठण्डा जल का स्नान दुःख देता है सो पाप का फल.

इन्द्र और विरोचन दोनों ने कहा- हे भगवन्! जैसे हम दोनों उत्तम अलंकार से युक्त, सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए और परिष्कृत हैं, हे भगवन्! वैसे ही जलपूर्ण सकोरे के भीतर दीखने वाले ये दोनों भी उत्तम अलंकार से युक्त, सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए और परिष्कृत हैं। तब प्रजापति ने (अपने मन में अभिमत आत्मा का ही निश्चय कर पहले की तरह) कहा- यह आत्मा है, अभय है तथा यही ब्रह्म है। तत्पश्चात् वे दोनों शान्तचित्त हो चले गए, (दीर्घ काल ब्रह्मचर्य वास से, नेत्रस्थ पुरुष का उपदेश श्रुति से तथा उदशरावादि की युक्ति से ये दोनों संस्कार युक्त हो

अतो लोमनखादिवच्छरीरस्याप्यागमापायित्वं सिद्धमित्युदशरावादौ दृश्यमानस्य तन्निमित्तस्य च देहस्यानात्मत्वं सिद्धम्। उदशरावादौ छायाकरत्वाद्देहसंबद्धालंकारादिवत्। न केवलमेतावदेतेन यावत्किंचिदात्मत्वाभिमतं सुखदुःखरागद्वेषमोहादि च कादाचित्कत्वान्नखलोमादिवदनात्मेति प्रत्येतव्यम्। एवमशेषमिथ्याग्रहापनयनिमित्ते साध्वलंकारादिदृष्टान्ते प्रजापतिनोक्ते श्रुत्वा तथा कृतवतोरपि च्छायात्मविपरीतग्रहो नापजगाम यस्मात्तस्मात्स्वदोषेणैव केनचित्प्रतिबद्धविवेकविज्ञानाविन्द्रविरोचनावभूतामिति गम्यते। **तौ** पूर्ववदेव दृढनिश्चयौ पप्रच्छ **किं पश्यथ इति**॥ २॥

तौ तथैव प्रतिपन्नौ यथैवेदमिति पूर्ववद्यथा साध्वलंकारादिविशिष्टावावां स्वः एवमेवेमौ छायात्मानाविति सुतरां विपरीतनिश्चयौ बभूवतुः। यस्याऽऽत्मनो लक्षणं य आत्माऽपहतपाप्मेत्युक्त्वा पुनस्तद्विशेषमन्विष्यमाणयोर्य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत इति साक्षादात्मनि निर्दिष्टे तद्विपरीतग्रहापनयायोदशरावसाध्वलंकारदृष्टान्तेऽप्यभिहिते आत्मस्वरूपबोधाद्विपरीतग्रहो नापगतः। अतः स्वदोषेण केनचित्प्रतिबद्धविवेकविज्ञानसामर्थ्याविति मत्वा यथाभिप्रेतमेवाऽऽत्मानं मनसि निधायैष **आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति** प्रजापतिः पूर्ववत्। न तु तदभिप्रेतमात्मानम्। य आत्मेत्याद्यात्म-

आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तौ ह शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुः ।।३।।

तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचानुपलभ्याऽऽत्मानमननुविद्य व्रजतो यतरे एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वाऽसुरा वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसुराञ्जगाम

चुके हैं। अब मेरे उपदेश का बारम्बार मनन कर इन्हें स्वयं ही आत्मबोध हो जाएगा, ऐसा समझकर प्रजापति ने अपने को कृतार्थ मानकर जाते हुए उन दोनों की उपेक्षा कर दी)।।३।।

प्रजापति ने दूर गए उन दोनों को देखकर यह वाक्य इसलिये कहा- (जिसमें पूर्व उपदेश की भाँति यह निम्नाङ्कित वाक्य भी उनके कानों में पड़ जाएगा) ये दोनों आत्मा को उपलब्ध न करके ही, उसे जाने बिना ही (विपरीत निश्चय वाले होकर) जा रहे हैं। देवता हों या असुर हों, जो भी कोई व्यक्ति ऐसे निश्चय वाले होंगे, वे निश्चय ही हारेंगे। वह विरोचन शान्त हृदय से असुरों के पास गया और उनसे देहात्म बुद्धिरूप यह आत्मविद्या सुनाई। अतः इस लोक में

लक्षणश्रवणेनाक्षिपुरुषश्रुत्या चोदशरावाद्युपपत्त्या च संस्कृतौ तावत्। मद्वचनं सर्वं पुनः पुनः स्मरतोः प्रतिबन्धक्षयाच्च स्वयमेवाऽऽत्मविषये विवेको भविष्यतीति मन्वानः पुनर्ब्रह्मचर्यादेशे च तयोश्चित्तदुःखोत्पत्तिं परिजिहीर्षन्कृतार्थबुद्धितया गच्छन्तावप्युपेक्षितवान्प्रजापतिः। **तौ** हेन्द्रविरोचनौ **शान्तहृदयौ** तुष्टहृदयौ कृतार्थबुद्धी इत्यर्थः। न तु शम एव, शमश्चेत्तयोर्जातो विपरीतग्रहो विगतोऽभविष्यत्**प्रवव्रजतु**र्गतवन्तौ।। ३।।

एवं तयोर्गतयोरिन्द्रविरोचनयो राज्ञोर्भोगासक्तयोर्यथोक्तविस्मरणं स्यादित्याशङ्क्याप्रत्यक्षं प्रत्यक्षवचनेन तयोश्चित्तदुःखं परिजिहीर्षुस्तौ दूरं गच्छन्तावन्वीक्ष्य प्रजापतिः य आत्माऽपहतपाप्मेत्यादिवचनवदेतदप्यनयोः श्रवणगोचरत्वमेष्यतीति मत्वोवाच प्रजापतिः। **अनुपलभ्य** यथोक्तलक्षणमात्मा**नमननुविद्य** स्वात्मप्रत्यक्षं चाकृत्वा विपरीतनिश्चयौ च भूत्वेन्द्रविरोचनावेतौ **व्रजतो** गच्छेताम्। अतो **यतरे** देवा वाऽसुरा वा किं विशेषिता एतदुपनिषद आभ्यां या गृहीताऽऽत्मविद्या सेयमुपनिषद्येषां देवानामसुराणां वा ते **एतदुपनिषद** एवंविज्ञाना एतन्निश्चया भविष्यन्तीत्यर्थः। **ते** किं, **पराभविष्यन्ति** श्रेयोमार्गात्पराभूता बहिर्भूता विनष्टा भविष्यन्तीत्यर्थः। स्वगृहं गच्छतोः सुरासुरराजयोर्योऽसुरराजः **स ह शान्तहृदय एव** स**न्विरोचनोऽसुराञ्जगाम**। गत्वा च

तेभ्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महय्य आत्मा परिचर्य आत्मानमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुं चेति ॥४॥

def of राक्षस, असुर

तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्यसुराणाꣳ ह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालंकारेणेति सꣳस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते ॥५॥

इत्यष्टमाध्यायस्याष्टमः खण्डः॥८॥

देहयुक्त आत्मा ही पूजनीय है और आत्मा ही सेवनीय है। इस देहरूप आत्मा की पूजा और परिचर्या करने वाला पुरुष इस लोक और परलोक दोनों लोकों को प्राप्त हो जाते हैं॥४॥

इसी से (उन असुरों का सम्प्रदाय इस समय भी विद्यमान है, अतः) इस लोक में जो दान न देने वाला, श्रद्धा न करने वाला और यथाशक्ति यजन न करने वाला पुरुष होता है, उसे शिष्ट पुरुष कहते हैं कि अरे! यह तो आसुरी स्वभाव वाला है। इस प्रकार की आत्मविद्या असुरों की ही है, वे ही मृतक पुरुष के शव को गन्ध, पुष्पादि, भिक्षा, वस्त्र अलंकार से सजाते हैं और इसके द्वारा हम परलोक को प्राप्त करेंगे, ऐसा भी मानते हैं ॥५॥

॥इत्यष्टमः खण्डः॥

तेभ्योऽसुरेभ्यः शरीरात्मबुद्धिर्योपनिषत्तामेतामुपनिषदं **प्रोवाचो**क्तवान्। देहमात्रमेवाऽऽत्मा पित्रोक्त इति। तस्मादात्मैव देहः इह लोके **महय्यः** पूजनीयस्तथा **परिचर्यः** परिचरणीयस्तथाऽऽ**त्मानमेवेह** लोके देहं **महयन्परिचरंश्चोभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुं च**। इहलोकपरलोकयोरेव सर्वे लोकाः कामाश्चान्तर्भवन्ती**ति** राज्ञोऽभिप्रायः॥४॥

तस्मात्तत्संप्रदायोऽद्याप्यनुवर्तत इह लोकेऽदानं **दानम**कुर्वाणमविभागशीलम**श्रद्दधानं** सत्कार्येषु श्रद्धारहितं यथाशक्त्य**यजमानम**यजनस्वभाव**माहुरासुरः**, खल्वयं यत एवंस्वभावो बतेति खिद्यमाना आहुः शिष्टाः। **असुराणां हि** यस्मादश्रद्दधानतादिलक्षणै**षोपनिषत्**। तयोपनिषदा संस्कृताः सन्तः **प्रेतस्य शरीरं** कुणपं **भिक्षया** गन्धमाल्यान्नादिलक्षणया **वसनेन** वस्त्रादिनाऽऽच्छादनादिप्रकारेणा**लंकारेण** ध्वजपताकादिकरणेनेत्येवं **संस्कुर्वन्त्येतेन** कुणपसंस्कारेणा**मुं** प्रेत्य प्रतिपत्तव्यं **लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते**॥५॥

इत्यष्टमाध्यायस्याष्टमः खण्डः॥८॥

॥इति पञ्चदशाह्निकम्॥१५॥

(अथाष्टमाध्यायस्य नवमः खण्डः।)

अथ हेन्द्रोऽप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श यथैव खल्वयमस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति ।।१।।

नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः सार्धं विरोचनेन

प्रजापति के पास फिर से इन्द्र का आना

पर इन्द्र ने देवताओं के पास बिना पहुँचे ही इसमें भय का अनुभव किया। जैसे इस शरीर के भली प्रकार अलंकृत होने पर यह छायारूप आत्मा भी भली प्रकार अलंकृत हो जाता है। सुन्दर वस्त्र धारण करने पर छायात्मा सुन्दर वस्त्रधारी और (नख लोमादि को निवृत्त कर) परिष्कृत होने पर छायात्मा भी परिष्कृत हो जाता है। ठीक ऐसे ही इस शरीर के अन्धे होने पर छायात्मा अंधा हो जाता है, (चक्षुनासिकादि के बहनारूप) स्राम होने पर छायात्मा स्राम हो जाता है और हाथ पैर के कट जाने पर छायात्मा भी छिन्नसा हो जाता है। अतः इस देहात्मदर्शन में मैं कोई फल नहीं देखता।।१।।

(इस प्रकार देहात्मदर्शन में दोष निश्चय कर) वह इन्द्र समित्पाणि होकर पुनः प्रजापति

अथ ह किलेन्द्रो**ऽप्राप्यैव देवान्**दैव्याऽक्रौर्यादिसंपदा युक्तत्वाद्गुरोर्वचनं पुनः पुनः स्मरन्नेव गच्छन्नेतद्वक्ष्यमाणं **भयं** स्वात्मग्रहणनिमित्तं ददर्श दृष्टवान्। उदशरावदृष्टान्तेन प्रजापतिना यदर्थो न्याय उक्तस्तदेकदेशो मघवतः प्रत्यभाद्बुद्धौ। येन च्छायात्मग्रहणे दोषं ददर्श। कथम्? **यथैव खल्वयमस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते** छायात्माऽपि **साध्वलंकृतो भवति सुवसने** च **सुवसनः परिष्कृ**ते **परिष्कृतो** यथा नखलोमादिदेहावयवापगमे छायात्माऽपि परिष्कृतो भवति नखलोमादिरहितो भवति। **एवमेवायं** छायात्माऽ**प्यस्मि**ञ्छरीरे नखलोमादिभिर्देहावयवत्वस्य तुल्यत्वाद**न्धे** चक्षुषोऽपगमे**ऽन्धो** भवति **स्रामे स्रामः**। **परिवृक्ण**श्छिन्नहस्तश्छिन्नपादो वा। स्रामे **परिवृक्णे** वा देहे छायात्माऽपि तथा भवति। तथाऽस्य देहस्य **नाशमन्वेष नश्यति**।। १ ।।

अतो नाहमत्रास्मिंश्छायात्मदर्शने देहात्मदर्शने वा **भोग्यं** फलं पश्यामीत्येवं दोषं देहच्छायात्मदर्शनेऽध्यवस्य **स समित्पाणि**र्ब्रह्मचर्यं वस्तुं **पुनरेयाय। तं ह प्रजापति-**

किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच यथैव खल्वयं भगवोऽस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ।।२।।

के पास आया। प्रजापति ने इन्द्र से कहा- हे इन्द्र! तू तो विरोचन के साथ शान्त हृदय होकर चला गया था, अब क्या चाहता हुआ पुनः आया है? इन्द्र ने कहा- हे भगवन्! जैसे इस शरीर के भली प्रकार अलंकारयुक्त होने पर यह छायात्मा भी अच्छी प्रकार अलंकृत होता है, सुन्दर वस्त्र धारण करने पर सुन्दर वस्त्रधारी हो जाता है और परिष्कृत होने पर परिष्कृत, स्राम होने पर स्राम और खण्डित होने पर खण्डित भी हो जाता है। अतः मैं इसमें कोई फल नहीं देखता।। २।।

रुवाच, मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः प्रगतवानसि **विरोचनेन सार्धं,** किमिच्छन्पुनरागम इति। विजानन्नपि पुनः पप्रच्छेन्द्राभिप्रायाभिव्यक्तये, "यद्वेत्थ तेन मोपसीदेति" यद्वत्। तथा च स्वाभिप्रायं प्रकटमकरो**द्यथैव खल्वयमि**त्यादि, एवमेवेति चान्वमोदत प्रजापतिः।

ननु तुल्येऽक्षिपुरुषश्रवणे देहच्छायामिन्द्रोऽग्रहीदात्मेति, देहमेव तु विरोचनस्तत्किं निमित्तम्? तत्र मन्यते। यथेन्द्रस्योदशरावादिप्रजापतिवचनं स्मरतो देवानप्राप्तस्यैवाऽऽचार्योक्तबुद्ध्या छायात्मग्रहणं तत्र दोषदर्शनं चाभूत्, न तथा विरोचनस्य। किं तर्हि देह एवाऽऽत्मदर्शनं, नापि तत्र दोषदर्शनं बभूव। तद्वदेव विद्याग्रहणसामर्थ्यप्रतिबन्धदोषाल्पत्वबहुत्वापेक्षमिन्द्रविरोचनयोश्छायात्मदेहयोर्ग्रहणम्। इन्द्रोऽल्पदोषत्वाद्दृश्यत इतिश्रुत्यर्थमेव श्रद्दधानतया जग्राहेतरश्छायानिमित्तं देहं हित्वा श्रुत्यर्थं लक्षणया जग्राह प्रजापतिनोक्तोऽयमिति दोषभूयस्त्वात्। यथा किल नीलानीलयोरादर्शे दृश्यमानयोः नीलवाससोर्यन्नीलं तन्महार्हमिति च्छायानिमित्तं वास एवोच्यते न, च्छाया तद्वदिति विरोचनाभिप्रायः। स्वचित्तगुणदोषवशादेव हि शब्दार्थावधारणं तुल्येऽपि श्रवणे ख्यापितं "दाम्यत दत्त दयध्वमि"ति दकारमात्रश्रवणाच्छ्रुत्यन्तरे। निमित्तान्यपि तदनुगुणान्येव सहकारीणि भवन्ति।। २।।

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाणीति स हापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ।।३।।

इत्यष्टमाध्यायस्य नवमः खण्डः।।९।।

(अथाष्टमाध्यायस्य दशमः खण्डः।)

य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव

हे इन्द्र! तूने ठीक ही समझा है। यह बात ऐसी है– ऐसा प्रजापति ने कहा, मैं तुझसे इसकी पुनः व्याख्या करूँगा। अब तुम बत्तीस वर्ष पुनः यहाँ पर निवास करो। इन्द्र ने पुनः वहाँ पर बत्तीस वर्ष निवास किया, तब प्रजापति ने उस इन्द्र से कहा।।३।।

।।इति नवमः खण्डः ।।

इन्द्र को स्वप्न पुरुष का उपदेश

''जो यह स्वप्न में (स्त्री आदि से) पूजित हुआ विचरता है यही आत्मा है'' ऐसा प्रजापति ने कहा। यह अमर है, यह अभय है और यही ब्रह्म है, ऐसा सुनकर वह इन्द्र शान्त चित्त हो चला गया। पर देवताओं के पास बिना पहुँचे ही उसने इस आत्मा में यह भय देखा। यद्यपि यह

एवमेवैष मघवन्सम्यक्त्वयाऽवगतं न च्छायात्मेत्युवाच प्रजापतिर्यो मयोक्त आत्मा प्रकृतः एतमेवाऽऽत्मानं **तु ते भूयः** पूर्वं व्याख्यातमप्य**नुव्याख्यास्यामि**। यस्मात्सकृद्व्याख्यातं दोषरहितानामवधारणविषयं प्राप्तमपि नाग्रहीस्त्वं केनचिद्दोषेण प्रतिबद्धग्रहणसामर्थ्यस्त्वमतस्तत्क्षपणाय **वसापराणि द्वात्रिंशतं** वर्षाणीत्युक्त्वा तथोषितवते क्षपितदोषाय **तस्मै होवाच**।। ३।।

इत्यष्टमाध्यायस्य नवमः खण्डः।।९।।

य आत्माऽपहतपाप्मादिलक्षणो य एषोऽक्षिणीत्यादिना व्याख्यात एष सः। कोऽसौ। **यः** स्वप्ने महीयमानः स्त्र्यादिभिः पूज्यमानश्चरत्यनेकविधान्स्वप्नभोगाननुभवतीत्यर्थः। **एष आत्मेति होवाचे**त्यादि समानम्। **स है**वमुक्त इन्द्रः **शान्तहृदयः प्रवव्राज। स हाप्राप्यैव देवा**न्पूर्ववदस्मिन्नप्यात्मनि **भयं ददर्श**। कथम् ? तदिदं शरीरं **यद्यप्यन्धं**

देवानेतद्भयं ददर्श तद्यद्यपीदꣳ शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ।।१।।

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति।।२।।

शरीर अन्धा होता है तो भी वह (स्वप्न पुरुष) अन्धा नहीं होता, यदि यह स्राम होता है, तो भी वह स्राम नहीं होता। इस प्रकार शरीर के दोष से यह स्वप्न शरीर दूषित नहीं होता।। १।।

इस देह के वध से यह स्वप्नदेह नष्ट नहीं होता और न इसके स्राम भाव से यह स्राम होता है, फिर भी इसे मानो कोई मारता हो, कोई विद्रावित (ताड़ित) करता हो, मानो अपने किसी अप्रिय वस्तु को जानता है और प्रिय के वियोग में खेद सा करता हो, ऐसा प्रतीत होता है। अतः ऐसे आत्मदर्शन में मैं कोई फल नहीं देखता ।।२।।

भवति स्वप्नात्मा योऽ**नन्धः** स भवति। **यदि स्राम**मिदं शरीर**मस्रामश्च** स भवति **नैवैष** स्वप्नात्माऽ**स्य** देहस्य **दोषेण दुष्यति**।।१।।

नाप्यस्य वधेन न हन्यते छायात्मवन्न **चास्य स्राम्येण स्रामः** स्वप्नात्मा भवति। यदध्यायादावागममात्रेणोपन्यस्तं "नास्य जरयैतज्जीर्यति"त्यादि तदिह न्यायेनोपपादयितुमुपन्यस्तम्। न तावदयं छायात्मवद्देहदोषयुक्तः, किंतु **घ्नन्ति त्वेवैनम्**। एवशब्द इवार्थे, घ्नन्तीवैनं केचनेति द्रष्टव्यम्। न तु घ्नन्त्येवेति। उत्तरेषु सर्वेष्विवशब्ददर्शनात्। नास्य वधेन हन्यते इति विशेषणाद्घ्नन्ति त्वेवेति चेन्नैवम्। प्रजापतिं प्रमाणीकुर्वतोऽनृतवादित्वापादनानुपपत्तेः। एतदमृतमित्येतत्प्रजापतिवचनं कथं मृषा कुर्यादिन्द्रस्तं प्रमाणीकुर्वन्।

ननु च्छायापुरुषे प्रजापतिनोक्तेऽस्य शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यतीति दोष-मभ्यदधात्तथेहापि स्यात्। नैवम्। कस्मात्? "य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत" इति न च्छायात्मा प्रजापतिनोक्त इति मन्यते मघवान्। कथम्? अपहतपाप्मादिलक्षणे पृष्टे यदि च्छायात्मा प्रजापतिनोक्त इति मन्यते, तदा कथं प्रजापतिं प्रमाणीकृत्य पुनः श्रवणाय समित्पाणिर्गच्छेत्, जगाम च। तस्मान्न च्छायात्मा प्रजापतिनोक्त इति मन्यते। तथा च व्याख्यातं द्रष्टाऽक्षिणि दृश्यत इति। तथा **विच्छादयन्तीव** विद्रावयन्तीव तथा च पुत्रादिमरणनिमित्त**मप्रियवेत्तेव भवति**। **अपि** च स्वयमपि **रोदितीव**। नन्वप्रियं वेत्त्येव कथं वेत्तेवेति। उच्यते— न, अमृताभयत्ववचनानुपपत्तेः। ध्यायतीवेति च श्रुत्यन्तरात्।

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच तद्यद्यपीदं भगवः शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ।।३।।

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्येवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाणीति स हाऽपराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ।।४।।

इत्यष्टमाध्यायस्य दशमः खण्डः।। १०।।

अतः वह समित्पाणि होकर पुनः प्रजापति के पास आया। प्रजापति ने उससे कहा- हे इन्द्र! तू तो शान्त हृदय हो चला गया था, अब किस चीज की इच्छा से आये हो? इन्द्र ने कहा- भगवन्! यद्यपि यह शरीर अन्धा होता है और यह स्राम होता है तो भी वह स्वप्नशरीर स्राम नहीं होता। इस प्रकार वह स्वप्नदेह इस देह के दोष से दूषित नहीं होता है।। ३।।

न इस देह के वध से उसका वध होता है और न ही इसकी स्रामता से वह स्राम होता है फिर भी मानो उसे कोई मारता हो, कोई ताड़ित करता हो, इसीलिये वह मानो अपने अनिष्ट का अनुभव करता हो और रोता हो। ऐसा अनुभव के कारण इस स्वप्न देहात्मज्ञान में मैं कोई फल नहीं देखता। तब प्रजापति ने कहा- हे इन्द्र! यह बात ऐसी ही है, मैं तुझसे इस आत्मतत्त्व को पुनः बतलाऊँगा। अतः तू बत्तीस वर्ष फिर ब्रह्मचर्य वास कर। इन्द्र ने वहाँ पर प्रजापति के सन्निधान में पुनः बत्तीस वर्ष (गुरुशुश्रूषा तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक) वास किया, तब उस इन्द्र से प्रजापति ने कहा।। ४।।

।। इति दशमः खण्डः ।।

ननु प्रत्यक्षविरोध इति चेत्। न। शरीरात्मत्वप्रत्यक्षवद्भ्रान्तिसंभवात्। तिष्ठतु तावदप्रियवेत्तेव न वेति। **नाहमत्र भोग्यं पश्यामि**। स्वप्नात्मज्ञानेऽपीष्टं फलं नोपलभ इत्यभिप्रायः। एवमेवैष तवाभिप्रायेणेति वाक्यशेषः। आत्मनोऽमृताभयगुणवत्त्वस्याभिप्रेतत्वात्। द्विरुक्तमपि न्यायतो मया यथावन्नावधारयति। तस्मात्पूर्ववदस्याद्यापि प्रतिबन्धकारणमस्तीति मन्वानस्तत्क्षपणाय **वसापराणि द्वात्रिंशतं वर्षाणि** ब्रह्मचर्यमित्यादिदेश प्रजापतिः। तथोषितवते क्षपितकल्मषायाऽऽह।। २।। ३।। ४।।

इत्यष्टमाध्यायस्य दशमः खण्डः।। १०।।

* (अथाष्टमाध्यायस्यैकादशः खण्डः।)

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श नाह खल्वयमेवꣳ संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥१॥

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच

इन्द्र के प्रति सुषुप्त पुरुष का उपदेश

जिस अवस्था में यह सोया हुआ पुरुष दर्शन वृत्ति से रहित और अत्यन्त आनन्दित होकर स्वप्न को नहीं जानता, वही आत्मा है यह अमृत है, यह अभय है और यही ब्रह्म है, ऐसा प्रजापति ने कहा। इसे सुनकर शान्त हृदय हो इन्द्र चला गया, पर देवताओं के पास पहुँचे बिना ही उसने यह भय देखा, यह सुषुप्ति अवस्था में पुरुष निश्चय ही अपने को नहीं जानता कि ''यह मैं हूँ'' और न यह इन अन्य भूतों को ही जानता है (जैसा कि यह जाग्रत् और स्वप्न में जानता था)। अतः उस समय तो मानो यह विनाश को प्राप्त हो जाता है। अतएव इसमें भी मैं इष्ट फल को नहीं देखता हूँ।।१।।

वह इन्द्र पुनः समित्पाणि होकर प्रजापति के पास आया, प्रजापति ने उससे कहा- हे इन्द्र! तू तो शान्त हृदय हो चला गया था, अब किस वस्तु को चाहता हुआ आया है? इन्द्र ने कहा-

---

पूर्ववदेतं त्वेव त इत्याद्युक्त्वा तद्यत्रैतत्सुप्त इत्यादि व्याख्यातं वाक्यम्। अक्षिणि यो द्रष्टा स्वप्ने च महीयमानश्चरति स एष सुप्तः समस्तः **संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति** स्वाभिप्रेतमेव। मघवांस्तत्रापि दोषं ददर्श। कथम्? नाह नैव सुषुप्तस्थोऽप्यात्मा खल्वयं संप्रति सम्यगिदानीं चाऽऽत्मानं जानाति नैवं जानाति। कथम्? **अयमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि** चेति। यथा जाग्रति स्वप्ने वा। अतो **विनाशमेव** विनाशमिवेति पूर्ववद्द्रष्टव्यम्। **अपीतो**ऽपिगतो **भवति**, विनष्ट इव भवतीत्यभिप्रायः। ज्ञाने हि

नाह खल्वयं भगव एवꣳ संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ।।२।।

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि नो एवान्यत्रैतस्माद्वसापराणि पञ्च वर्षाणीति स हापराणि पञ्च वर्षाण्युवास तान्येकशतꣳ संपेदुरेतत्त-

हे भगवन्! निश्चय ही मैं इस अवस्था में अपने को नहीं जानता कि "मैं यही हूँ" और न यह इन अन्य भूतों को ही जानता है उस समय तो वह विनाश को प्राप्त हुआ सा हो जाता है। अतः इसमें भी मैं इष्ट फल देखता नहीं ।।२।।

हे इन्द्र! यह बात ऐसी ही है, ऐसा प्रजापति ने कहा। मैं इसकी व्याख्या पुनः तुम्हारे प्रति करूँगा। आत्मा इससे भिन्न नहीं है (किन्तु कुछ दोष अभी शेष रह गए हैं, उसकी निवृत्ति के लिये अभी पाँच वर्ष पुनः ब्रह्मचर्य वास करो। इन्द्र ने फिर से पाँच वर्ष वहाँ निवास किया, वे सब मिलाकर एक सौ एक वर्ष हो गए। इसी से लोक में शिष्ट जन ऐसा कहते हैं कि इन्द्र ने

सति ज्ञातुः सद्भावोऽवगम्यते, नासति ज्ञाने। न च सुषुप्तस्य ज्ञानं दृश्यतेऽतो विनष्ट इवेत्यभिप्रायः। न तु विनाशमेवाऽऽत्मनो मन्यतेऽमृताभयवचनस्य प्रामाण्यमिच्छन्।। १।। २।।

पूर्ववदेवमेवेत्युक्त्वा यो मयोक्तस्त्रिभिः पर्यायैस्तमेवैतं नो एवान्यत्रैतस्मादात्मनोऽन्यं कंचन, किं तर्ह्येतमेव व्याख्यास्यामि। स्वल्पस्तु दोषस्तवावशिष्टस्तत्क्षपणाय वसापराण्यन्यानि पञ्च वर्षाणीत्युक्तः, स तथा चकार। तस्मै मृदितकषायादिदोषाय स्थानत्रयदोषसंबन्धरहितमात्मनः स्वरूपमपहतपाप्मत्वादिलक्षणं मघवते **तस्मै होवाच**। तान्येकशतं वर्षाणि संपेदुः संपन्नानि बभूवुः। **यदाहु**र्लोके शिष्टा **एकशतं ह वै वर्षाणि मघवान्प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवासे**ति। तदेतद्द्वात्रिंशतमित्यादिना दर्शितमित्याख्यायिकातोऽपसृत्य श्रुत्योच्यते। एवं किलैतदिन्द्रत्वादपि गुरुतरमिन्द्रेणापि महता

द्यदाहुरेकशतथ्ंह वै वर्षाणि मघवान्प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच ॥३॥

इत्यष्टमाध्यायस्यैकादशः खण्डः॥ ११ ॥

(अथाष्टमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।)

मघवन्मर्त्यं वा इदथ्ं शरीरमात्तं मृत्युना तदस्यामृतस्या-शरीरस्याऽऽत्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न

प्रजापति के पास एक सौ एक वर्ष ब्रह्मचर्य वास किया (तब कहीं जाकर देवराज इन्द्र को आत्मज्ञान हुआ)। तदनन्तर इन्द्र से प्रजापति ने कहा॥ ३॥

॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

मरण-धर्मा देहादि का उपदेश

हे इन्द्र! यह शरीर निश्चय ही मरणशील है, क्योंकि यह मृत्यु से सर्वदा ही ग्रस्त है। यह तो इस प्रकार अमर अशरीरी आत्मा का उपलब्धि स्थान है, सशरीर आत्मा निश्चय ही प्रिय और अप्रिय से ग्रस्त रहता है। अतः शरीर रहते हुए इष्टानिष्ट का नाश सर्वथा हो नहीं सकता, इसके

यत्नेनैकोत्तरवर्षशतकृतायासेन प्राप्तमात्मज्ञानमतो नातः परं पुरुषार्थान्तरमस्तीत्यात्मज्ञानं स्तौति॥ ३॥

इत्यष्टमाध्यायस्यैकादशः खण्डः॥ ११ ॥

मघवन्मर्त्यं वै मरणधर्मीदं **शरीरम्**। यन्मन्यसेऽक्ष्याधारादिलक्षणः संप्रसादलक्षण आत्मा मयोक्तो विनाशमेवापीतो भवतीति। शृणु तत्र कारणम्। यदिदं शरीरं वै यत्पश्यसि तदेतन्मर्त्यं विनाशि। तच्चाऽऽ**त्तं मृत्युना** ग्रस्तं सततमेव। कदाचिदेव म्रियत इति मर्त्यमित्युक्ते न तथा संत्रासो भवति यथा ग्रस्तमेव सदा व्याप्तमेव मृत्युनेत्युक्ते इति वैराग्यार्थं विशेष इत्युच्यत "आत्तं मृत्युनेति"। कथं नाम देहाभिमानतो विरक्तः सन्निवर्तत इति। शरीरमित्यत्र सहेन्द्रियमनोभिरुच्यते **तच्छरीरमस्य** संप्रसादस्य त्रिस्थानतया गम्यमानस्या**मृतस्य** मरणादिदेहेन्द्रियमनोधर्मवर्जितस्येत्येतत्। अमृतस्ये-त्यनेनैवाशरीरत्वे सिद्धे पुनरशरीरस्येति वचनं वाय्वादिवत्सावयवत्वमूर्तिमत्त्वे

ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ।।१।।

अभिमान रहित

विपरीत अशरीर होने पर प्रिय और अप्रिय इसे स्पर्श नहीं करते। (अतः आत्मा में अशरीरता स्वाभाविक है और सशरीरता प्रतीति औपाधिक है)।।१।।

मा भूतामित्यात्मनः। **आत्मनो भोगाधिष्ठानम्।** आत्मनो वा सत ईक्षितुस्तेजोऽबन्नादिक्रमेणोत्पन्नमधिष्ठानम्। जीवरूपेण प्रविश्य सदेवाधितिष्ठत्यस्मिन्निति वाऽधिष्ठानम्।

यस्येदमीदृशं नित्यमेव मृत्युग्रस्तं धर्माधर्मजनितत्वात्प्रियाप्रियवदधिष्ठानं तदधिष्ठितस्तद्वान्सशरीरो भवति, अशरीरस्वभावस्याऽऽत्मनस्तदेवाहं शरीरं, शरीरमेव चाहमित्यविवेकतः। अत एव **सशरीरः** सन्नात्तो ग्रस्तः **प्रियाप्रियाभ्याम्**। प्रसिद्धमेतत्। तस्य च **न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययो**र्बाह्यविषयसंयोगवियोगनिमित्तयोर्बाह्यविषयसंयोगवियोगौ ममेति मन्यमानस्या**पहति**र्विनाश उच्छेदः संततिरूपयोर्नास्तीति। तं पुनर्देहाभिमानादशरीरस्वरूपविज्ञानेन निवर्तिताविवेकज्ञान**मशरीरं सन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशतः**। स्पृशिः प्रत्येकं संबध्यत इति प्रियं न स्पृशत्यप्रियं न स्पृशतीति वाक्यद्वयं भवति। न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह संभाषेतेति यद्वत्। धर्माधर्मकार्ये हि ते, अशरीरता तु स्वरूपमिति तत्र धर्माधर्मयोरसंभवात्तत्कार्यभावो दूरत एवेत्यतो न प्रियाप्रिये स्पृशतः।

ननु यदि प्रियमप्यशरीरं न स्पृशतीति यन्मघवतोक्तं सुषुप्तस्थो विनाशमेवापीतो भवतीति तदेवेहाप्यापन्नम्। नैष दोषः। धर्माधर्मकार्ययोः शरीरसंबन्धिनोः प्रियाप्रिययोः प्रतिषेधस्य विवक्षितत्वात् "अशरीरं न प्रियाप्रिये स्पृशतः" इति। आगमापायिनोर्हि स्पर्शशब्दो दृष्टो यथा शीतस्पर्श उष्णस्पर्श इति न त्वग्नेरुष्णप्रकाशयोः स्वभावभूतयोरग्निना स्पर्श इति भवति, तथाऽग्नेः सवितुर्वोष्णप्रकाशवत्स्वरूपभूतस्याऽऽनन्दस्य प्रियस्यापि नेह प्रतिषेधः, "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" (बृ.३.९.२८) "आनन्दो ब्रह्म" (तै.३.६.१) इत्यादिश्रुतिभ्यः। इहापि भूमैव सुखमित्युक्तत्वात्।

ननु भूम्न प्रियस्यैकत्वेऽसंवेद्यत्वात्स्वरूपेण वा नित्यसंवेद्यत्वान्निर्विशेषतेति नेन्द्रस्य तदिष्टम्। "नाह खल्वयं संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामि" इत्युक्तत्वात्। तद्धीन्द्रस्येष्टं यद्भूतानि

चाऽऽत्मानं च जानाति न चाप्रियं किंचिद्वेत्ति स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्येन ज्ञानेन? सत्यमेतदिष्टमिन्द्रस्येमानि भूतानि मत्तोऽन्यानि लोकाः कामाश्च सर्वे मत्तोऽन्येऽहमेषां स्वामीति। न त्वेतदिन्द्रस्य हितम्। हितं चेन्द्रस्य प्रजापतिना वक्तव्यम्। व्योमवदशरीरात्मतया सर्वभूतलोककामात्मत्वोपगमेन या प्राप्तिस्तद्धितमिन्द्राय वक्तव्यमिति प्रजापतिनाऽभिप्रेतम्, न तु राज्ञो राज्याप्तिवदन्यत्वेन। तत्रैवं सति कं केन विजानीयादात्मैकत्वे इमानि भूतान्ययमहमस्मीति।

नन्वस्मिन्पक्षे "स्त्रीभिर्वा यानैर्वा" "स यदि पितृलोककामः" "स एकधा भवति" इत्याद्यैश्वर्यश्रुतयोऽनुपपन्नाः। न। सर्वात्मनः सर्वफलसंबन्धोपपत्तेरविरोधात्। मृदः इव सर्वघटकरककुण्डाद्याप्तिः। ननु सर्वात्मत्वे दुःखसंबन्धोऽपि स्यादिति चेन्न। दुःखस्याप्यात्मत्वोपगमादविरोधः। आत्मन्यविद्याकल्पनानिमित्तानि दुःखानि रज्ज्वामिव सर्पादीनि कल्पनानिमित्तानि। सा चाविद्याऽशरीरात्मैकत्वस्वरूपदर्शनेन दुःखनिमित्तोच्छिन्नेति दुःखसंबन्धाशङ्का न संभवति। शुद्धसत्त्वसंकल्पनिमित्तानां तु कामानामीश्वरदेहसंबन्धः सर्वभूतेषु मानसानां पर एव सर्वसत्त्वोपाधिद्वारेण भोक्तेति सर्वाविद्याकृतसंव्यवहाराणां परः एवाऽऽत्मास्पदं नान्योऽस्तीति वेदान्तसिद्धान्तः।

'य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते' इति च्छायापुरुष एव प्रजापतिनोक्तः। स्वप्न-सुषुप्तयोश्चान्य एव, न परोऽपहतपाप्मत्वादिलक्षणे विरोधादिति केचिन्मन्यन्ते। छायाद्यात्मनां चोपदेशे प्रयोजनमाचक्षते। आदावेवोच्यमाने किल दुर्विज्ञेयत्वात्परस्याऽऽत्मनोऽत्यन्तबाह्यविषयासक्तचेतसोऽत्यन्तसूक्ष्मवस्तुश्रवणे व्यामोहो मा भूदिति। यथा किल द्वितीयायां सूक्ष्मं चन्द्रं दिदर्शयिषुर्वृक्षं कंचित्प्रत्यक्षमादौ दर्शयति पश्यामुमेष चन्द्र इति, ततोऽन्यं ततोऽप्यन्यं गिरिमूर्धानं च चन्द्रसमीपस्थमेष चन्द्र इति, ततोऽसौ चन्द्रं पश्यति, एवमेतद्य एषोऽक्षिणीत्याद्युक्तं प्रजापतिना त्रिभिः पर्यायैर्न पर इति। चतुर्थे तु पर्याये देहान्मर्त्यात्समुत्थायाशरीरतामापन्नो ज्योतिःस्वरूपम्। यस्मिन्नुत्तमपुरुषे स्त्र्यादिभिर्जक्षत्क्रीडन्रममाणो भवति स उत्तमः पुरुषः पर उक्त इति चाऽऽहुः।

सत्यं, रमणीया तावदियं व्याख्या श्रोतुम्। नत्वर्थोऽस्य ग्रन्थस्यैवं संभवति। कथम्? अक्षिणि पुरुषो दृश्यते इत्युपन्यस्य शिष्याभ्यां छायात्मनि गृहीते तयोस्तद्विपरीतग्रहणं मत्वा तदपनयायोदशरावोपन्यासः, किं पश्यथ इति च प्रश्नः साध्वलंकारोपदेशश्चानर्थकः स्यात्। यदि च्छायात्मैव प्रजापतिनाऽक्षिणि दृश्यत

इत्युपदिष्टः। किंच यदि स्वयमुपदिष्टग्रहणस्याप्यपनयनं कारणं वक्तव्यं स्यात्। स्वप्नसुषुप्तात्मग्रहणयोरपि तदपनयकारणं च स्वयं ब्रूयात्। न चोक्तं तेन, तेन मन्यामहे नाक्षिणि च्छायात्मा प्रजापतिनोपदिष्टः। किं चान्यदक्षिणि द्रष्टा चेद्दृश्यत इत्युपदिष्टः स्यात्तत इदं युक्तम्। "एतं त्वेव त" इत्युक्त्वा स्वप्नेऽपि द्रष्टुरेवोपदेशः।

स्वप्ने न द्रष्टोपदिष्ट इति चेन्न। अपि रोदितीवाप्रियवेत्तेवेत्युपदेशात्। न च द्रष्टुरन्यः कश्चित्स्वप्ने महीयमानश्चरति। अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिरिति न्यायतः श्रुत्यन्तरे सिद्धत्वात्। यद्यपि स्वप्ने सधीर्भवति, तथाऽपि न धीः स्वप्नभोगोपलब्धिं प्रति करणत्वं भजते। किं तर्हि पटचित्रवज्जाग्रद्वासनाश्रया दृश्यैव धीर्भवतीति न द्रष्टुः स्वयंज्योतिष्ट्वबाधः स्यात्। किंचान्यत्। जाग्रत्स्वप्नयोर्भूतानि चाऽऽत्मानं च जानातीमानि भूतान्ययमहमस्मीति प्राप्तौ सत्यां, प्रतिषेधो युक्तः स्यान्नाह खल्वयमित्यादि। तथा चेतनस्यैवाविद्यानिमित्तयोः सशरीरत्वे सति प्रियाप्रिययोरपहति- र्नास्तीत्युक्त्वा तस्यैवाशरीरस्य सतो विद्यायां सत्यां सशरीरत्वे प्राप्तयोः प्रतिषेधो युक्तो "अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशत" इति। एकश्चाऽऽत्मा स्वप्नबुद्धान्त- योर्महामत्स्यवदसङ्गः संचरतीति श्रुत्यन्तरे सिद्धम्।

यच्चोक्तं संप्रसादः शरीरात्समुत्थाय यस्मिन्स्त्र्यादिभी रममाणो भवति सोऽन्यः संप्रसादादधिकरणनिर्दिष्ट उत्तमः पुरुष इति। तदप्यसत्। चतुर्थेऽपि पर्याये "एतं त्वेव ते" इति वचनात्। यदि ततोऽन्योऽभिप्रेतः स्यात्पूर्ववदेतं त्वेव त इति न ब्रूयान्मृषा प्रजापतिः। किंचान्यत्तेजोऽबन्नादीनां स्रष्टुः सतः स्वविकारदेहशुङ्गे प्रवेशं दर्शयित्वा प्रविष्टाय पुनस्तत्त्वमसीत्युपदेशो मृषा प्रसज्येत। तस्मिंस्त्वं स्त्र्यादिभी रन्ता भविष्यसीति युक्तः उपदेशोऽभविष्यद्यदि संप्रसादादन्य उत्तमः पुरुषो भवेत्। तथा भूम्न्यहमेवेत्यादिश्याऽऽत्मैवेदं सर्वमिति नोपसमहरिष्यद्यदि भूमा जीवादन्योऽभविष्यत्। "नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा" इत्यादिश्रुत्यन्तराच्च। सर्वश्रुतिषु च परस्मिन्नात्मशब्दप्रयोगो नाभविष्यत्प्रत्यगात्मा चेत्सर्वजन्तूनां पर आत्मा न भवेत्तस्मादेक एवाऽऽत्मा प्रकरणी सिद्धः।

न चाऽऽत्मनः संसारित्वम्। अविद्याध्यस्तत्वादात्मनि संसारस्य। न हि रज्जुशुक्तिकागगनादिषु सर्परजतमलादीनि मिथ्याज्ञानाध्यस्तानि तेषां भवन्तीति। एतेन सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिर्नास्तीति व्याख्यातम्। यच्च स्थितमप्रियवेत्तेवेति नाप्रियवेत्तैवेति सिद्धम्। एवं च सति सर्वपर्यायेष्वेतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति प्रजापतेर्वचनम्। यदि

अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि तद्यथैता-न्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणा-

(हस्तपादादि अवयवों के न रहने से) वायु अशरीर है, बादल, बिजली और मेघ ध्वनि ये सभी अशरीर हैं (फिर भी वर्षादि प्रयोजन के लिए) जिस प्रकार ये सब उस

वा प्रजापतिच्छद्मरूपायाः श्रुतेर्वचनं सत्यमेव भवेत्। न च तत्कुतर्कबुद्ध्या मृषा कर्तुं युक्तम्। ततो गुरुतरस्य प्रमाणान्तरस्यानुपपत्तेः। ननु प्रत्यक्षं दुःखाद्यप्रियवेत्तृ-त्वमव्यभिचार्यनुभूयते इति चेन्न। जरादिरहितो जीर्णोऽहं जातोऽहमायुष्मान्गौरः कृष्णो मृत इत्यादिप्रत्यक्षानुभववत्तदुपपत्तेः।

सर्वमप्येतत्सत्यमिति चेदस्त्येवैतदेवं दुरवगमं, येन देवराजोऽप्युदशरावादिदर्शिता-विनाशयुक्तिरपि मुमोहैवात्र विनाशमेवापीतो भवतीति। तथा विरोचनो महाप्राज्ञः प्राजापत्योऽपि देहमात्रात्मदर्शनो बभूव। तथेन्द्रस्याऽऽत्मविनाशभयसागर एव वैनाशिका न्यमज्जन्। तथा सांख्या द्रष्टारं देहादिव्यतिरिक्तमवगम्यापि त्यक्तागमप्रमाणत्वान्मृत्युविषये एवान्यत्वदर्शने तस्थुः। तथाऽन्ये काणादादिदर्शनाः कषायरक्तमिव क्षारादिभिर्वस्त्रं नवभिरात्मगुणैर्युक्तमात्मद्रव्यं विशोधयितुं प्रवृत्ताः। तथाऽन्ये कर्मिणो बाह्यविषया-पहृतचेतसो वेदप्रमाणा अपि परमार्थसत्यमात्मैकत्वं विनाशमिवेन्द्रवन्मन्यमाना घटीयन्त्र-वदारोहावरोहप्रकारैरनिशं बम्भ्रमति। किमन्ये क्षुद्रजन्तवो विवेकहीनाः स्वभावत एव बहिर्विषयापहृतचेतसः। तस्मादिदं त्यक्तसर्वबाह्यैषणैरनन्यशरणैः परमहंसपरिव्राजकैरत्या-श्रमिभिर्वेदान्तविज्ञानपरैरेव वेदनीयं पूज्यतमैः प्राजापत्यं चेमं संप्रदायमनुसरद्भिरुपनिबद्धं प्रकरणचतुष्टयेन। तथाऽनुशासत्यद्यापि "त एव नान्य" इति।।१।।

तत्राशरीरस्य संप्रसादस्याविद्यया शरीरेणाविशेषतां सशरीरतामेव संप्राप्तस्य शरीरात्समुत्थाय स्वेन रूपेण यथाऽभिनिष्पत्तिस्तथा वक्तव्येति दृष्टान्त उच्यते— **अशरीरो वायुः** अविद्यमानं शिरःपाण्यादिमच्छरीरमस्येत्यशरीरः। किं चाभ्रं **विद्युत्स्तन-यित्नुरित्येतानि** चा**शरीराणि**। तत्तत्रैवं सति वर्षादिप्रयोजनावसाने यथा **अमुष्मादिति** भूमिष्ठा श्रुतिर्द्युलोकसंबन्धिनमाकाशदेशं व्यपदिशति; एतानि यथोक्तान्याकाशसमान-रूपतामापन्नानि स्वेन वाय्वादिरूपेणागृह्यमाणान्याकाशाख्यतां गतानि, यथा संप्रसादोऽविद्यावस्थायां शरीरात्मभावमेवापन्नः, तानि तथाभूतान्यमुष्माद्द्युलोकसंबन्धिनः

भिनिष्पद्यन्ते।।२।। स्वरूप में स्थित.

जीव **एवमेवैष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमपुरुषः स तत्र पर्येति**

आकाश से समुत्थान कर सूर्य की परम ज्योति को प्राप्त हो अपने-अपने स्वरूप से अभिनिष्पन्न हो जाते हैं।। २।।

ठीक उसी प्रकार यह जीव इस शरीर से समुत्थान कर परमज्योति को प्राप्त कर अपने स्वरूप से स्थित हो जाता है, वह उत्तम पुरुष है, उस समय वह हँसता, क्रीडा करता, स्त्री, यान

आकाशदेशात्समुत्तिष्ठन्ति वर्षणादिप्रयोजनाभिनिर्वृत्तये। कथम्? शिशिरापाये सावित्रं परं ज्योतिः प्रकृष्टं ग्रैष्मकमुपसंपद्य सावित्रमभितापं प्राप्येत्यर्थः। आदित्याभितापेन पृथग्भावमापादिताः सन्तः स्वेन स्वेन रूपेण पुरोवातादिवायुरूपेण स्तिमितभावं हित्वाऽभ्रमपि भूमिपर्वतहस्त्यादिरूपेण विद्युदपि स्वेन ज्योतिर्लतादिचपलरूपेण स्तनयित्नुरपि स्वेन गर्जिताशनिरूपेणेत्येवं प्रावृडागमे **स्वेन** स्वेन **रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते**।। २।।

यथाऽयं दृष्टान्तो वाय्वादीनामाकाशादिसाम्यगमनवदविद्यया संसारावस्थायां शरीरसाम्यमापन्नोऽहममुष्य पुत्रो जातो जीर्णो मरिष्ये इत्येवंप्रकारं प्रजापतिनेव मघवान्यथोक्तेन क्रमेण नासि त्वं देहेन्द्रियादिधर्मा तत्त्वमसीति प्रतिबोधितः सन्स **एष** संप्रसादो जीवोऽ**स्माच्छरीराद**ाकाशादिव वाय्वादयः **समुत्थाय** देहादिवैलक्षण्यमात्मनो रूपमवगम्य देहात्मभावनां हित्वेत्येतत् स्वेन रूपेण सदात्मनैवाभिनिष्पद्यते इति व्याख्यातं पुरस्तात्।

स येन **स्वेन रूपेण** संप्रसादोऽ**भिनिष्पद्यते** प्राक्प्रतिबोधात्तद्भ्रान्तिनिमित्तात्सर्पो भवति यथा रज्जुः पश्चात्कृतप्रकाशा रज्ज्वात्मना स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते। एवं च **स उत्तमपुरुष** उत्तमश्चासौ पुरुषश्चेत्युत्तमपुरुषः स एवोत्तमपुरुषोऽक्षिस्वप्नपुरुषौ व्यक्तावव्यक्तश्च सुषुप्तः समस्तः संप्रसन्नोऽशरीरश्च स्वेन रूपेणेति। एषामेष स्वेन रूपेणावस्थितः क्षराक्षरौ व्याकृताव्यकृतावपेक्ष्योत्तमपुरुषः कृतनिर्वचनो ह्ययं गीतासु **स** संप्रसादः स्वेन रूपेण **तत्र** स्वात्मनि स्वस्थतया सर्वात्मभूतः **पर्येति**

जक्षत्क्रीडन्रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा नोपजनꣳ स्मरन्निदꣳ शरीरꣳ स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिञ्छरीरे प्राणो युक्तः ॥३॥

अथवा सम्बन्धियों के साथ रमण करता, अपने साथ उत्पन्न हुए इस शरीर को स्मरण न करता हुआ सभी ओर घूमता रहता है, जैसे घोड़ा या बैल गाड़ी में जुता रहता है, ठीक वैसे ही यह प्राण भी इस शरीर में जुता हुआ है॥३॥

क्वचिदिन्द्राद्यात्मना **जक्षद्ध**सन्भक्षयन्वा भक्ष्यानुच्चावचानीप्सितान्क्वचिन्मनोमात्रैः संकल्पादेव समुत्थितैर्ब्राह्मलौकिकैर्वा**क्रीडन्**स्त्र्यादिभी **रममाण**श्च मनसैव नोपजनं स्त्रीपुंसयोरन्योन्योपगमेन जायते इत्युपजनमात्मभावेन वाऽऽत्मसामीप्येन जायते इत्युपजनमिदं शरीरं तत्र स्मरन्। तत्स्मरणे हि दुःखमेव स्यात्। दुःखात्मकत्वात्तस्य।

नन्वनुभूतं चेन्न स्मरेदसर्वज्ञत्वं मुक्तस्य। नैष दोषः। येन मिथ्याज्ञानादिना जनितं तच्च मिथ्याज्ञानादि विद्ययोच्छेदितमतस्तन्नानुभूतमेवेति। न तदस्मरणे सर्वज्ञत्वहानिः। न ह्युन्मत्तेन ग्रहगृहीतेन वा यदनुभूतं तदुन्मादाद्यपगमेऽपि स्मर्तव्यं स्यात्तथेहापि संसारिभिरविद्यादोषवद्भिर्यदनुभूयते तत्सर्वात्मानमशरीरं न स्पृशति। अविद्यानिमित्ताभावात्। ये तूच्छिन्नदोषैर्मृदितकषायैर्मानसाः सत्याः कामा अनृतापिधाना अनुभूयन्ते विद्याभिव्यङ्ग्यत्वात्ते एव मुक्तेन सर्वात्मभूतेन संबध्यन्ते इत्यात्मज्ञानस्तुतये निर्दिश्यन्ते, अतः साध्वेतद्विशिनष्टि– ''य एते ब्रह्मलोके'' इति। यत्र क्वचन भवन्तोऽपि ब्रह्मण्येव हि ते लोके भवन्तीति सर्वात्मत्वाद्ब्रह्मण उच्यन्ते।

ननु कथमेकः ''सन्नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा कामांश्च ब्राह्मलौकिकान्पश्यन्रमत'' इति च विरुद्धम्। यथैको यस्मिन्नेव क्षणे पश्यति स तस्मिन्नेव क्षणे न पश्यति चेति। नैष दोषः। श्रुत्यन्तरे परिहृतत्वात्। द्रष्टुर्दृष्टेरविपरिलोपात्पश्यन्नेव भवति। द्रष्टुरन्यत्वेन कामानामभावान्न पश्यति चेति। यद्यपि सुषुप्ते तदुक्तं मुक्तस्यापि सर्वैकत्वात्समानो द्वितीयाभावः। केन कं पश्येत्' इति चोक्तमेव।

अशरीरस्वरूपोऽपहतपाप्मादिलक्षणः सन्कथमेष पुरुषोऽक्षिणि दृश्यत इत्युक्तः प्रजापतिना। तत्र यथाऽसावक्षिणि साक्षाद्दृश्यते तद्वक्तव्यमितीदमारभ्यते। तत्र को

अथ यत्रैतदाकाशमनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः पुरुषो दर्शनाय चक्षुरथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय घ्राणमथ यो वेदेदमभिव्याहराणीति स आत्माऽभिव्याहाराय वागथ यो वेदेदꣳ शृणवानीति स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम् ।।४।।

जिस जाग्रदवस्था में चक्षु द्वारा उपलक्षित आकाश देहस्थ छिद्र से अनुगत है, वह चाक्षुष पुरुष है, रूप ग्रहण के लिये उसे नेत्र है। 'मैं इसे सूंघूँ' ऐसा जो जानता है वह आत्मा है। गन्ध ग्रहण के लिये उसे नाक है। 'मैं यह शब्द बोलूँ' ऐसा जो समझता है, वही आत्मा है, शब्द उच्चारणके लिये उसे वाणी है। 'मैं सुनूँ'- ऐसा जो जानता है, वह आत्मा है, श्रवण करने के लिए उसे श्रोत्र है।।४।।

हेतुरक्षिणि दर्शने इत्याह— स दृष्टान्तो यथा प्रयोग्यः प्रयोग्यपरो वा सशब्दः। प्रयुज्यते इति प्रयोग्योऽश्वो बलीवर्दो वा। यथा लोक आचरत्यनेनेत्याचरणो रथोऽनो वा तस्मिन्नाचरणे **युक्त**स्तदाकर्षणाय, **एवमस्मिञ्छरीरे** रथस्थानीये **प्राणः** पञ्चवृत्तिरिन्द्रियमनोबुद्धिसंयुक्तः प्रज्ञात्मा विज्ञानक्रियाशक्तिद्वयसंमूर्छितात्मा **युक्तः** स्वकर्मफलोपभोगनिमित्तं नियुक्तः "कस्मिन्वहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामि" इति। ईश्वरेण राज्ञेव सर्वाधिकारी दर्शनश्रवणचेष्टा-व्यापारेऽधिकृतः। तस्यैव तु मात्रैकदेशश्चक्षुरिन्द्रियं रूपोपलब्धिद्वारभूतम्।। ३।।

अथ यत्र कृष्णतारोपलक्षित**माकाशं** देहच्छिद्रम**नुविषण्णम**नुषक्तमनुगतं तत्र स प्रकृतोऽशरीर आत्मा **चाक्षुष**श्चक्षुषि भव इति चाक्षुषस्तस्य **दर्शनाय** रूपोपलब्धये **चक्षुः** करणं यस्य तद्देहादिभिः संहतत्वात्परस्य द्रष्टुरर्थे सोऽत्र चक्षुषि दर्शनेन लिङ्गेन दृश्यते परोऽशरीरोऽसंहतः। "अक्षिणि दृश्यत" इति प्रजापतिनोक्तं सर्वेन्द्रियद्वारोपलक्षणार्थम्। सर्वविषयोपलब्धा हि स एवेति। स्फुटोपलब्धिहेतुत्वात्त्वक्षिणीति विशेषवचनं सर्वश्रुतिषु। अहमदर्शमिति तत्सत्यं भवतीति च श्रुतेः। **अथा**पि **यो**ऽस्मिन्देहे **वेद** कथ**मिदं** सुगन्धि दुर्गन्धि वा **जिघ्राणी**त्यस्य गन्धं विजानीयामिति **स आत्मा** तस्य **गन्धाय** गन्धविज्ञानाय **घ्राण**म्। **अथ यो वेदेदं** वचन**मभिव्याहराणीति** वदिष्यामीति **स आत्मा**ऽभिव्याहरणक्रियासिद्धये करणं **वागि**न्द्रियम्। **अथ यो वेदेदं शृणवानीति स आत्मा** श्र**वणाय श्रोत्रम्**।।४।।

अथ यो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान्कामान्पश्यन्रमते ये एते ब्रह्मलोके ।।५।।

तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाꣳ सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च

और जो यह जानता है कि बाह्य इन्द्रियों के बिना ही 'मैं मन से मनन करूँ' वह आत्मा है। मन तो उसका दिव्य नेत्र है, वही यह आत्मा इस दिव्यचक्षु से भोगों को देखता हुआ रमण करता है, जो ये भोग (स्वर्ण निधि के समान बाह्य विषयों की आसक्तिरूप अनृत से) ब्रह्मलोक में आच्छादित हैं, उन्हें देखता हुआ रमण करता है।।५।।

उस आत्मा की उपासना देवता करते हैं। उसी से उन देवों को सम्पूर्ण लोक और सम्पूर्ण भोग प्राप्त हैं। जो कोई उस आत्मा को शास्त्र तथा आचार्य के उपदेश द्वारा जानकर साक्षात्

· **अथ यो वेदेदं मन्वानीति** मननव्यापारमिन्द्रियासंस्पृष्टं केवलं मन्वानीति वेद स **आत्मा** मननाय **मनः**। यो वेद स आत्मेत्येवं सर्वत्र प्रयोगाद्वेदनमस्य स्वरूपमित्यवगम्यते। यथा यः पुरस्तात्प्रकाशयति स आदित्यो यो दक्षिणतो यः पश्चाद्य उत्तरतो य ऊर्ध्वं प्रकाशयति स आदित्य इत्युक्ते प्रकाशस्वरूपः स इति गम्यते। दर्शनादिक्रियानिर्वृत्त्यर्थानि तु चक्षुरादिकरणानि। इदं चास्याऽऽत्मनः सामर्थ्यादवगम्यते। आत्मनः सत्तामात्रे एव ज्ञानकर्तृत्वं न तु व्यापृततया। यथा सवितुः सत्तामात्रे एव प्रकाशनकर्तृत्वं न तु व्यापृततयेति तद्वत्। मनोऽस्याऽऽत्मनो **दैवम**प्राकृतमितरेन्द्रियैरसाधारणं, **चक्षुश्चष्टे** पश्यत्यनेनेति चक्षुः। वर्तमान-कालविषयाणि चेन्द्रियाण्यतोऽदैवानि तानि। मनस्तु त्रिकालविषयोपलब्धिकरणं मृदितदोषं च सूक्ष्मव्यवहितादिसर्वोपलब्धिकरणं चेति दैवं चक्षुरुच्यते। स वै मुक्तः स्वरूपापन्नोऽविद्याकृतदेहेन्द्रियमनोवियुक्तः सर्वात्मभावमापन्नः सन्नेष व्योमवद्विशुद्धः सर्वेश्वरमनउपाधिः सन्नेतेनैवेश्वरेण **मनसैतान्कामान्**सवितृप्रकाशवन्नित्यप्रततेन दर्शनेन **पश्यन्रमते**। कान्कामानिति विशिनष्टि— **य एते** ब्रह्मणि लोके हिरण्यनिधिवद्बाह्यविषयासङ्गानृतेनापिहिताः संकल्पमात्रलभ्यास्तानित्यर्थः।।५।।

यस्मादेष इन्द्राय प्रजापतिनोक्त आत्मा, तस्मात्ततः श्रुत्वा तमात्मानमद्यत्वेऽपि **देवा उपासते**। तदुपासनाच्च **तेषां सर्वे च लोका आत्ताः** प्राप्ताः **सर्वे च**

कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच प्रजापतिरुवाच ॥६॥

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः॥ १२॥

(अथाष्टमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः।)

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्येऽश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा

अनुभव करता है, वह सम्पूर्ण लोक और समग्र भोगों को प्राप्त कर लेता है- ऐसा प्रजापति ने कहा। द्विरुक्ति प्रकरण समाप्ति के लिये है।।६।।

।।इति द्वादशः खण्डः ।।

'श्यामाच्छबलम्' इत्यादि मन्त्र का जप के लिये उपदेश

(अत्यन्त दुर्गम होने के कारण हृदय में स्थित) श्याम ब्रह्म से मैं शबल ब्रह्म को प्राप्त होऊँ, तथा शबल से श्याम को प्राप्त होऊँ। जैसे घोड़ा शरीर को हिलाकर अपने रोओं को झाड़ कर

कामाः। यदर्थं हीन्द्र एकशतं वर्षाणि प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तत्फलं प्राप्तं देवैरित्यभिप्रायः। तद्युक्तं देवानां महाभाग्यत्वान्न त्विदानीं मनुष्याणामल्पजीवितत्वान्मन्दतरप्रज्ञत्वाच्च संभवतीति प्राप्ते इदमुच्यते— स सर्वांश्च लोकानाप्नोति **सर्वांश्च कामानि**दानींतनोऽपि। कोऽसौ। इन्द्रादिवद्य**स्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति** सामान्येन किल **प्रजापतिरुवाच**। अतः सर्वेषामात्मज्ञानं तत्फलप्राप्तिश्च तुल्यैव भवतीत्यर्थः। द्विर्वचनं प्रकरणसमाप्त्यर्थम्।। ६।।

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।। १२।।

श्यामाच्छबलं प्रपद्य इत्यादिमन्त्राम्नायः पावनो जपार्थश्च ध्यानार्थो वा। श्यामो गम्भीरो वर्णः श्याम इव श्यामो हार्दं ब्रह्मात्यन्तदुरवगाह्यत्वात्तद्धार्दं ब्रह्म ज्ञात्वा ध्यानेन तस्मा**च्छ्यामाच्छबलं** शबल इव शबलोऽरण्याद्यनेककाममिश्रत्वाद्ब्रह्मलोकस्य शाबल्यं तं ब्रह्मलोकं शबलं प्रपद्ये मनसा शरीरपाताद्वोर्ध्वं गच्छेयम्। यस्मादहं **शबलाद्**ब्रह्मलोकान्नामरूपव्याकरणाय **श्यामं प्रपद्ये** हार्दभावं प्रपन्नोऽस्मीत्यभिप्रायः। अतस्तमेव प्रकृतिस्वरूपमात्मानं शबलं प्रपद्य इत्यर्थः। कथं शबलं ब्रह्मलोकं प्रपद्य

ब्रह्मलोकमभिसंभवामीत्यभिसंभवामीति ।।१।।

इत्यष्टमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः।। १३।।

(अथाष्टमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।)

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतꣳ स आत्मा प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये यशोऽहं भवामि

शुद्ध हो जाता है, वैसे ही हार्द ब्रह्म के ज्ञान से मैं धर्माधर्मरूप पापों को झाड़ कर तथा राहु के मुख से छूटे हुए चन्द्र के समान (सम्पूर्ण अनर्थ के आश्रय भूत) शरीर को त्यागकर कृतार्थ हो नित्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूँ। ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूँ।। १ ।।

।। इति त्रयोदशः खण्डः ।।

आकाश नामक ब्रह्म का उपदेश

आकाश नामक प्रसिद्ध आत्मा नाम और रूप का निर्वाह करने वाला है। वे नाम रूप जिसके मध्य में वर्तमान हैं, वह ब्रह्म है, वह अमृत है, वही आत्मा है। मैं प्रजापति के (प्रभु निर्मित नामक) सभागृह को प्राप्त होऊँ। मैं ब्राह्मणों के यश, क्षत्रियों के यश और वैश्यों के यश

इत्युच्यते— **अश्व इव** स्वानि लोमानि **विधूय** कम्पनेन श्रमं पांस्वादि च रोमतोऽपनीय यथा निर्मलो भवत्येवं हार्दब्रह्मज्ञानेन **विधूय पापं** धर्माधर्माख्यं **चन्द्र इव** च राहुग्रस्तस्तस्माद्**राहोर्मुखात्प्रमुच्य** भास्वरो भवति यथैवं **धूत्वा** प्रहाय **शरीरं** सर्वानर्थाश्रयमिहैव ध्यानेन **कृतात्मा** कृतकृत्यः सन्नकृतं नित्यं **ब्रह्मलोकमभिसंभवामीति**। द्विर्वचनं मन्त्रसमाप्त्यर्थम्।। १ ।।

इत्यष्टमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः।। १३।।

आकाशो वा इत्यादि ब्रह्मणो लक्षणनिर्देशार्थमाध्यानाय **आकाशो** वै नाम श्रुतिषु प्रसिद्ध आत्मा। आकाशः इवाशरीरत्वात्सूक्ष्मत्वाच्च। स चाऽऽकाशो **नामरूपयोः** स्वात्मस्थयोर्जगद्बीजभूतयोः सलिलस्येव फेनस्थानीययो**र्निर्वहिता** निर्वोढा व्याकर्ता। **ते** नामरूपे **यदन्तरा** यस्य ब्रह्मणोऽन्तरा मध्ये वर्तेते, तयोर्वा नामरूपयोरन्तरा मध्ये यन्नामरूपाभ्यामस्पृष्टं यदित्येत**त्तद्ब्रह्म** नामरूपविलक्षणं यद्यपि नामरूपाभ्यामस्पृष्टं तथाऽपि तयोर्निर्वोढ्रेवंलक्षणं ब्रह्मेत्यर्थः। इदमेव मैत्रेयीब्राह्मणेनोक्तं चिन्मात्रानुगमात्सर्वत्र चित्स्वरूपतैवेति गम्यत एकवाक्यता। कथं तदवगम्यत इत्याह— **स आत्मा**। आत्मा हि नाम सर्वजन्तूनां प्रत्यक्चेतनः स्वसंवेद्यः प्रसिद्धस्तेनैव स्वरूपेणोन्नीयाशरीरो

ब्राह्मणानां यशोराज्ञां यशो विशां यशोऽहमनुप्रापत्सि स हाहं यशसां यश: श्येतमदत्कमदत्कꣳश्येतं लिन्दु माऽभिगां लिन्दु माऽभिगाम् ।।१।।

इत्यष्टमाध्यायस्य चतुर्दश: खण्ड:।। १४।।

(अथाष्टमाध्यायस्य पञ्चदश: खण्ड:।)

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतये उवाच प्रजापतिर्मनवे मनु: प्रजाभ्य आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरो: कर्मातिशेषेणा-

स्वरूप आत्मा को प्राप्त करना चाहता हूँ। वह मैं यशों का यश हूँ, मैं बिना दाँतों के भक्षण करने वाले रोहित वर्ण, पिच्छल को प्राप्त न होऊँ, प्राप्त न होऊँ (क्योंकि स्त्री अपने सेवन करने वाले के तेज, बल, वीर्य, विज्ञान तथा धर्म का विनाश कर देती है)।। १।।

।।इति चतुर्दश: खण्ड: ।।

आत्मज्ञान का उपसंहार

उस इस आत्मज्ञान को ब्रह्मा ने प्रजापति से कहा, प्रजापति ने मनु से कहा, मनु ने प्रजाओं से कहा। विधि विधान के अनुसार आचार्य के कर्तव्य कर्मों को समाप्त करके वेदाध्ययन कर

व्योमवत्सर्वगत आत्मा ब्रह्मेत्यवगन्तव्यम्। **तच्चाऽऽत्मा** ब्रह्म**ामृतम**मरणधर्मा। अत ऊर्ध्वं मन्त्र:। प्रजापतिश्चतुर्मुखस्तस्य **सभां वेश्म** प्रभुविमितं वेश्म **प्रपद्ये** गच्छेयम्। किंच **यशोऽहं** यशो नामाऽऽत्माऽहं **भवामि ब्राह्मणानाम्**। ब्राह्मणा एव हि विशेषतस्तमुपासते ततस्तेषां **यशो** भवामि। तथा **राज्ञां विशां** च। तेऽप्यधिकृता एवेति तेषामप्यात्मा भवामि। **तद्यशोऽहमनुप्रापत्स्य**नुप्राप्तुमिच्छामि। **स हाहं यशसा**मात्मनां देहेन्द्रियमनोबुद्धिलक्षणानामात्मा। किमर्थमहमेवं प्रपद्य इति, उच्यते **श्येतं** वर्णत: पक्वबदरसमं रोहितम्। तथा**ऽदत्कं** दन्तरहितम**प्यदत्कं** भक्षयितृ स्त्रीव्यञ्जनं तत्सेविनां तेजोबलवीर्यविज्ञानधर्माणामपहन्तृ विनाशयित्रित्येतत् यदेवंलक्षणं श्येतं **लिन्दु** पिच्छिलं तन्**माऽऽभिगां** माऽभिगच्छेयम्। द्विर्वचनमत्यन्तानर्थहेतुत्वप्रदर्शनार्थम्।। १ ।।

इत्यष्टा माध्यायस्य चतुर्दश: खण्ड:।। १४।।

तद्धैतदात्मज्ञानं सोपकरणमोमित्येतदक्षरमित्याद्यै: सहोपासनैस्तद्वाचकेन ग्रन्थेनाष्टाध्यायीलक्षणेन सह **ब्रह्मा** हिरण्यगर्भ: परमेश्वरो वा तद्द्वारेण **प्रजापतये**

भिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिका-न्विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्याहिꣳसन्त्सर्वभूतान्यन्यत्र

आचार्य कुल से समावर्तन हो जाने पर स्त्री परिग्रह पूर्वक कुटुम्ब में स्थित हो पवित्र स्थान में स्वाध्याय करता हुआ, पुत्र एवं शिष्यों को धर्मात्मा बनाता हुआ, सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपने अन्तःकरण में उपसंहार कर, शास्त्र की आज्ञा से विरुद्ध प्राणियों की भी हिंसा न करता हुआ, वह अधिकारी पुरुष निश्चय ही यावज्जीवन इस प्रकार बर्ताव करने वाला अन्त में ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है और फिर लौटता नहीं (इस प्रकार अर्चिरादि मार्ग से कार्यब्रह्म लोक में गया

कश्यपा**योवाच**। असावपि **मनवे** स्वपुत्राय। **मनुः प्रजाभ्य** इत्येवं श्रुत्यर्थसंप्रदायपरम्परयाऽऽगतमुपनिषद्विज्ञानमद्यापि विद्वत्स्ववगम्यते। यथेह षष्ठाद्यध्यायत्रये प्रकाशितात्मविद्या सफलाऽवगम्यते तथा कर्मणां न कश्चनार्थ इति प्राप्ते तदानर्थक्यप्राप्तिपरिजिहीर्षयेदं कर्मणोऽविद्वद्भिरनुष्ठीयमानस्य विशिष्टफलवत्त्वेनार्थवत्त्वमुच्यते**आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य** सहार्थतोऽध्ययनं कृत्वा **यथाविधानं** यथास्मृत्युक्तैर्नियमैर्युक्तः सन्नित्यर्थः। सर्वस्यापि विधेः स्मृत्युक्तस्योपकुर्वाणकं प्रति कर्तव्यत्वे गुरुशुश्रूषायाः प्राधान्यप्रदर्शनार्थमाह— **गुरोः कर्म** यत्कर्तव्यं तत्कृत्वा कर्मशून्यो योऽतिशिष्टः कालस्तेन कालेन वेदमधीत्येत्यर्थः। एवं हि नियमवताऽधीतो वेदः कर्मज्ञानफलप्राप्तये भवति नान्यथेत्यभिप्रायः। **अभिसमावृत्य** धर्मजिज्ञासां समापयित्वा गुरुकुलान्निवृत्य न्यायतो दारानाहृत्य **कुटुम्बे** स्थित्वा गार्हस्थ्ये विहिते कर्मणि तिष्ठन्नित्यर्थः। तत्रापि गार्हस्थ्यविहितानां कर्मणां स्वाध्यायस्य प्राधान्यप्रदर्शनार्थमुच्यते— **शुचौ** विविक्तेऽमेध्यादिरहिते देशे यथावदासीनः **स्वाध्यायमधीयानो** नैत्यकमधिकं च यथाशक्ति ऋगाद्यभ्यासं च कुर्वन्**धार्मिकान्पु**त्राञ्शिष्यांश्च धर्मयुक्ता**न्विदधद्धा**र्मिकत्वेन तान्नियमयन्**नात्मनि** स्वहृदये हार्दे ब्रह्मणि **सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्यो**पसंहृत्य सर्वेन्द्रियग्रहणात्कर्माणि च संन्यस्या**हिंसन्**हिंसां परपीडामकुर्वन्**सर्वभूतानि** स्थावरजङ्गमानि भूतान्यपीडन्नित्यर्थः। भिक्षानिमित्तमटनादिनाऽपि परपीडा स्यादित्यत आह— **अन्यत्र तीर्थेभ्यः**। तीर्थं नाम शास्त्रानुज्ञाविषयस्ततोऽन्यत्रेत्यर्थः। सर्वाश्रमिणां चैतत्समानं तीर्थेभ्योऽन्यत्राहिंसैवेति। अन्ये वर्णयन्ति कुटुम्ब एवैतत्सर्वं कुर्वन्**स खल्व**धिकृतो यावदायुषं यावज्जीवमेवं यथोक्तेन प्रकारेणैव **वर्तयन्ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते** देहान्ते। **न च पुनरावर्तते** शरीरग्रहणाय। पुनरावृत्तेः प्राप्तायाः प्रतिषेधात्। अर्चिरादिना

तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ॥१॥

इत्यष्टमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः॥ १५॥

इति च्छान्दोग्योपनिषद्यष्टमोऽध्यायः समाप्तः॥ ८॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

हुआ उपासक ब्रह्मलोक की स्थिति पर्यन्त दिव्य भोगों को भोगता हुआ वहाँ रहता है और फिर वहाँ पर ही मुक्त हो जाता है। अतएव उसकी भी पुनरावृत्ति नही होती है)। १॥

॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

मेरे अङ्ग पुष्ट होवें, मेरे वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, बल और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पुष्ट (ब्रह्मबोध के योग्य) होवें। यह सब (दृश्यमान जगत्) उपनिषद् वेद्य ब्रह्म ही है। मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ, और ब्रह्म मेरा निराकरण न करे (अर्थात् मैं ब्रह्म को सदा आत्मभावेन साक्षात् करूँ, उससे कभी भी विमुख न होऊँ और इसके लिए सर्वान्तर्यामी परमात्मा मुझे बल दे। वह मेरा त्याग न करे)। इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो, अनिराकरण हो। उपनिषदों में जो धर्म हैं वे आत्मबोध में लगे हुए मुझ साधक में होवें। वे सब मुझमें होवें। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

इस प्रकार छान्दोग्योपनिषत् अष्टम अध्याय की श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य कैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज कृत मिताक्षरा व्याख्या सम्पूर्ण हुई।॥८॥

मार्गेण कार्यब्रह्मलोकमभिसंपद्य यावद्ब्रह्मलोकस्थितिस्तावत्तत्रैव तिष्ठति प्राक्ततो नाऽऽवर्तत इत्यर्थः। द्विरभ्यास उपनिषद्विद्यापरिसमाप्त्यर्थः॥ १॥

॥ इति षोडशाह्निकम्॥१६॥

इत्यष्टमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः॥ १५॥

इति श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीशंकरभगवतः कृतौ छान्दोग्योपनिषद्भाष्येऽष्टमोऽध्यायः समाप्तः॥ ८॥

गुरुजन-शताब्दी-त्रिवेणी-सङ्गम-प्रसङ्गे प्रकाशितम्



श्रीकैलासपीठाधीश्वर शाङ्करभाष्यपारायणप्रवर्तकाचार्य

परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर

श्रीमत्स्वामी विद्यानन्द गिरिजी महाराज

वेदान्त-सर्वदर्शनाचार्य